श्रीललितासहस्रनाम

(हिन्दी व्याख्या)

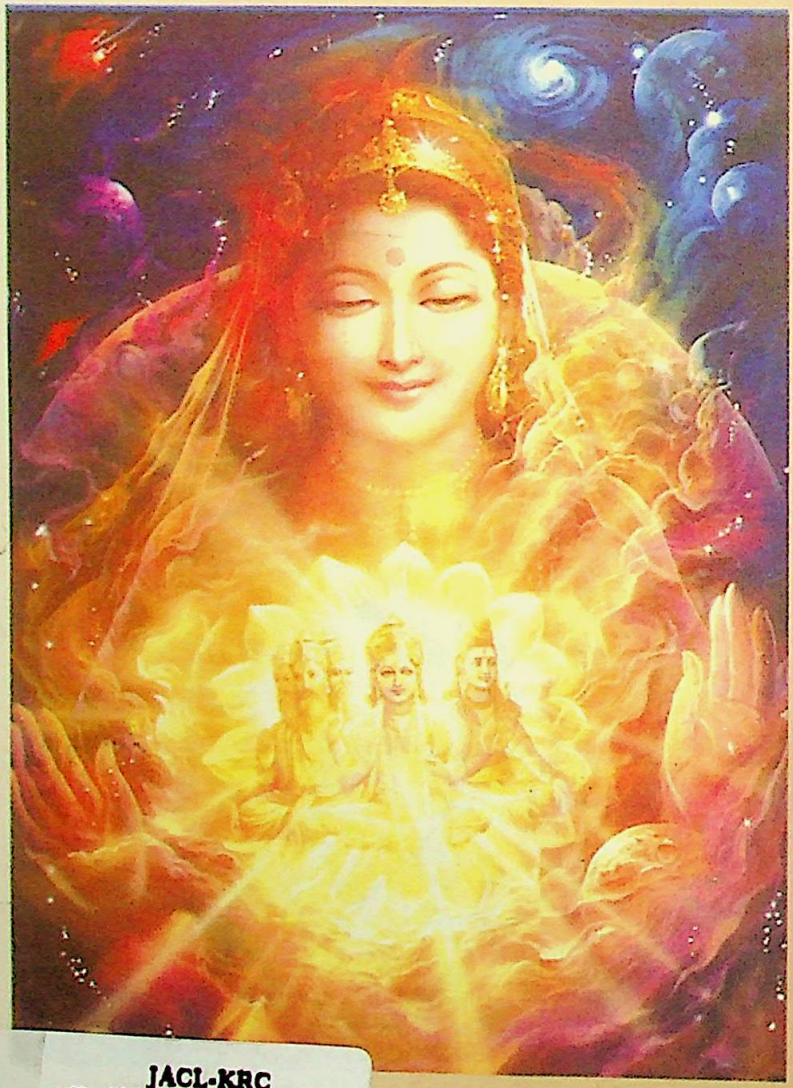

JACL-KRC
017631

न॰ चन्द्रशेखरन नायर
डॉ॰ वी॰सी॰ बालकृष्णन

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर

पुस्तकालय

पुस्तक संख्या 17631

वर्गीकरण संख्या .....

17631

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 17631

वर्गीकरण सं. .....

पुस्तक सं. 17631 दिनांक .....

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चाहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा।

1631

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 17631

17631

श्रीललितासहस्रनाम

(हिन्दी व्याख्या सहित)

पुस्तकालय
उ.ग.
1/19

श्रीललितासहस्रनाम

(हिन्दी व्याख्या)

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
मानित विश्वविद्यालय, जयनगर
24 OCT 2003
प्राप्ति क्रमांक 269

अनुवादक - डॉ॰ एन॰ चन्द्रशेखरन नायर
व्याख्याता - डॉ॰ बी॰सी॰ बालकृष्णन

जे॰पी॰ पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली

यह पुस्तक राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली की वित्तीय सहायता से प्रकाशित है।

जे॰पी॰ पब्लिशिंग हाउस
27/28, शक्ति नगर,
दिल्ली-110007

© : लेखक

प्रथम संस्करण : 2002

मूल्य : 96.00 रुपये

मुद्रक :
तरुण ऑफसेट प्रिन्टर्स, मौजपुर दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

	पेज नं॰
अवतरणिका	7 – 8
श्रीललितासहस्रनाम की व्याख्या	9 – 297
श्रीचक्र	298 – 314
श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम्	315 – 327
नामावलि	328 - 360
इस ग्रन्थ में उद्धरित पौराणिक ग्रन्थों की सूची	361 – 362

अवतरणिका

अनेक वर्षों से श्री ललितादेवी के नामस्तोत्र का सबेरे और शाम को पारायण करना मेरे लिए जीवन की चर्या बनी हुई है। फिर भी कई नामों के साथ भावात्मक सम्बन्ध टिका नहीं रहता था। तब भी परितृप्ति और आनन्दसहित शान्ति की कोई सीमा नहीं थी। श्रीललिता देवी पराशक्ति है। श्री मूकाम्बिका देवी को मैं साक्षात् पराशक्ति मानकर उनका दर्शन किया करता था। देवी की अपार कृपा के स्मरण मात्र से तन-मन पुलकित हो जाता है। वे सारे प्रपंच के चैतन्यरूप में बाहर-भीतर विराजती है। देवी दयामयी माँ हैं। ब्रह्मा विष्णु महेशों की भी जननी हैं। सारी सिद्धियाँ उनकी दासियाँ हैं और सभी कलाएँ वे स्वयं हैं। ऐसी देवी के स्तोत्र निर्मित हैं वशिन्यादि देवियों द्वारा। सर्वविदित है कि देवी के नामों के स्तोत्र असंख्य हैं। उनमें से प्रस्तुत सहस्रनाम संजीवनी जैसा स्वयं चेतनामय हैं, जिनके भक्तिसहित पारायण मात्र से ऐश्वर्य-कुबेरता के वर्णनातीत अनुभव कोटि-कोटि जनों के जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। भारत के संख्यातीत देवी मंदिरों के निर्माण का स्रोत उन अनुभव कथाओं को सूचित करता है। वैसे ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं देवी। प्रपंचरूप में विराट्स्वरूपी भी हैं। जहाँ अपेक्षाएं हैं वहाँ देवी का प्रत्यक्ष होना भी संभव है। आज के वैज्ञानिक चमत्कारों के युग में भी यह सत्य वस्तुतः प्रत्यक्ष प्रमाण जैसा है। आज साबित हुआ है कि सारा विश्व एक चेतनाशक्ति के प्रभुत्व से स्पन्दित है। वही चेतना शक्ति साक्षात् देवी हैं। वह बुद्धिरूप में, प्रज्ञारूप में, शक्ति रूप में, ज्ञानरूप में, शास्त्ररूप में, आनन्दरूप में, सब कहीं विशिष्ट भावों में प्रकट होती रहती हैं। वह जितनी क्रियाशील हैं उतनी ही संहारक भी। आँधी, तूफान, अतिवृष्टि, भूकंप आदि संहारक शक्ति भी वह हैं। शान्ति, क्षमा, उन्मेष, आनन्द आदि सौभाग्यमूलक अनुभव भी स्वयं देवीभाव हैं। अर्थात् मन का साम्राज्य उनका प्रभुत्व है, आत्मा का आनन्द उनका भोग।

हयग्रीव और अगस्त्यमुनि दोनों के बीच के संवाद का प्रकरण ललितोपाख्यान के अनुबन्ध रूप में ब्रह्माण्डपुराण में वर्णित है। यही प्रस्तुत ललिता सहस्रनाम पाठ है। इस ग्रंथ की एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ललितासहस्रनामों के साथ असंख्य पुराण कथाओं का जो संबन्ध है और वेदान्तपरक तत्वों का जो मधुर एवं संश्लिष्ट संबन्ध है उन सब का मनोयोगपूर्वक समर्थन व्याख्याकार ने इस ग्रंथ में अनायास ही किया है।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म का यह गौरवग्रंथ जितनी प्रचुरता, सर्वप्रियता एवं हृदयंगमता के साथ समग्र दक्षिण भारत में पारायणविधेय बना रहता है उतना उत्तरभारत में अपेक्षाकृत कम ही रहता है। फिर भी, समूचा भारत यह अवश्य मानता होगा कि भारत के मीमांसापरक तत्वदर्शन को सर्वात्मभाव प्रदान करने में ललितासहस्रनाम का भावप्रपंच

सक्षम है। इस तत्व का समर्थन भी इस ग्रंथ की व्याख्या में प्राप्त होता है।

ललितासहस्रनाम के इस व्याख्याग्रंथ के रचयिता केरल के नामी विद्वान एवं शब्दकोशकार डा०बी०सी० बालकृष्णन जी हैं। वे केरल विश्वविद्यालय के शब्दकोशनिर्माणविभाग के मुख्य संपादक के रूप में सेवानिवृत हुए हैं। वहाँ के सताईस वर्षों का गहरा एवं प्रभावी अनुभव अवश्य ही उन्हें प्रकाण्ड विद्वान बना चुका था। संस्कृति और देशीय दर्शन ने उन्हें मीमांसक एवं पौराणिक ग्रंथों के समर्थ व्याख्याकार के आसन पर प्रतिष्ठित किया है। वे भक्तजनमण्डली के आराध्य हैं।

डा०बी०सी० बालकृष्णन जी ने विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् ही अनेक महत्वपूर्ण कोशग्रंथों का निर्माण किया। उनमें मलयालम के प्रसिद्ध उपन्यासकार स्व० सी०वी० रामनपिल्लै की रचनाओं में आये शब्दों का कोश (चार खण्डों में और ४५०० पृष्ठों का) सबसे उल्लेखनीय एवं बहुप्रशंसित है। देश में इस प्रकार का यह अकेला ग्रंथ है। फिर ३६०० पृष्ठोंवाला एक बृहद्काय निघंडु (मलयालम-मलयालम) प्रकाशित किया। वे भारत के परम्परागत ग्रंथ-कोश-समिति (आयुर्वेद,ज्योतिष, तंत्र, वेदान्त, शिल्प, संगीत और कानून) के मुख्य सम्पादक एवं महामंत्री के रूप में अभी प्रयत्नशील हैं। वे अनेक धार्मिक ग्रंथों के रचयिता और भारतकोशकारसमिति के संस्थापक और अध्यक्ष हैं।

इस ग्रंथ में ललितासहस्रनाम के साथ जुडे हुए १३४ विख्यात पौराणिक ग्रंथों की सूची अनुबन्ध के रूप में ग्रंथ के अंत में दिया गया है। इस ग्रंथ के प्रूफ संशोधन के सन्दर्भ में प्रो०डी० तन्कप्पन नायर और स्वयं मूल लेखक ने मुझे बडा सहयोग एवं सहायता प्रदान की है। उनके प्रति मैं अतीव कृतज्ञ हूँ।

मैं चाहता हूँ और आशा रखता हूँ कि यह ग्रंथ समूचे भारत के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मंडलियों में अपना विशेष कर्तृत्व प्रस्तुत करेगा और उसी प्रकार पढे लिखे भद्रपुरुषों एवं भक्तों को सचेत-सचैतन्य कर देगा। इस महती रचना को संसार के सामने भक्तिभाव से समर्पित करता हूँ।

डा०एन०चन्द्रशेखरननायर
(यू.जी.सी. एमिरिटस प्रोफसर)
अध्यक्ष, केरल हिन्दी साहित्य अकादमी, पट्टम पालस पोस्ट
तिरुवनन्तपुरम - ६९५ ००४

ॐ

श्री ललिता सहस्रनाम की व्याख्या

१. श्रीमाता

"आपदि किं करणीयं
स्मरणीयं चरणयुगलमंबाया"?

विपदा में माँ के चरणयुगलों को आश्रय मानने के अलावा, उनका स्मरण करने के अलावा दूसरा करणीय कुछ नहीं है। ललितादेवी का माहात्म्य अवर्णनीय एवं संकल्पातीत है। श्री ललितादेवी की सहस्रनामावली का प्रथम नाम है श्रीमाता । उन वाग्देवताओं ने, जिन्होंने लोककल्याण को मानकर यह सहस्रनामावली रची, प्रथम नाम के रूप में उस परम चेतनास्वरूप को माँ शब्द से पुकारा। माँ के संबोधन से उपासनामूर्ति और उपासक के बीच का संबन्ध माता और शिशु का संबन्ध बना। शिशु का संरक्षण माता का दायित्व है। शिशु की अज्ञता एवं शठता को माता क्षमा कर देगी। "कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति " इस प्रस्ताव का श्रीमद् शंकराचार्य ने बार-बार समर्थन किया है।

कुछ लोग इस आशय का प्रचार करते हैं कि मंत्राक्षरों और यन्त्र-तन्त्रों के नामोंवाले होने से ललिता सहस्रनाम का उच्चारण कर आराधना करने का अधिकार हर किसी का नहीं है और कठोर व्रताचरण के बिना इनका पारायण करने से लाभ होने के बदले दोषफल ही प्राप्त होगा। इस प्रस्ताव केलिए भी परिहार इस आदिनाम, याने माता -से इंगित है।

शिशु माता को बुलाता है, उसे किसी अन्य मध्यस्थता की अपेक्षा नहीं है। माँ बच्चे के बुलाने अथवा रोने की प्रतीक्षा न कर उसकी ज़रूरतों की पूर्ति कर देती है। यह उसका सहज धर्म है। माँ को देखकर बच्चे का मुस्कराना अथवा अस्पष्ट ही सही 'माँ' पुकारना मां केलिए परम आनन्द का माहौल पैदा करता है।

पराशक्ति को माँ मानकर शिशुता भाव से स्तोत्र-पाठ करने का अधिकार हर किसी का होता है। इस सच्चाई की घोषणा करता है 'श्रीमाता' नामक प्रथम नाम। मन्त्र- तन्त्र आदि लक्ष्य से सहस्रनामावली का प्रयोग करनेवालों को चाहिए कि वे योग्य गुरु के निर्देशनों से साधनादि

आचरणों के बल पर देवी की आराधना करें। लेकिन, देवी की स्तुति करने के उद्देश्य से माता का संकल्प लेकर सहस्रनामावली का पारायण कर सकते हैं।

श्री और माता इन दो शब्दों का समास पद है- श्रीमाता । इसमें 'श्री' का भाव है लक्ष्मी अथवा सरस्वती। यहाँ श्रीमाता का भाव श्री की माता याने, लक्ष्मी की माता अथवा सरस्वती की माता। इस प्रकार, लक्ष्मी, सरस्वती और रुद्राणी इन देवियों की माता है आदि पराशक्ति श्रीमाता ।

श्री का अथवा लक्ष्मी का मान करने वाली (आंकनेवाली) इस अर्थ में श्रीमाता का आशय स्वीकार कर सकते हैं। तब भी श्रीमाता का महत्व 'श्री' से बडा होता है।

श्री शब्द को पुल्लिंग मानिए, तब उसका अर्थ है ब्रह्मा अथवा विष। वेद सार को प्रथमतः प्रकाशित करके ब्रह्मा को जिसने समझाया, अथवा वेदों का विभाजन जिसने किया। विष अर्थ को लेंगे तो विष का मान करनेवाली, विष को कण्ठ में धारण करनेवाली है। यहाँ श्रीकण्ठ शिव से अभिन्नता का अर्थ है। स्तोत्र का अंत तो शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललितांबिका है।

उपर्युक्त अर्थचर्चा पूर्वाचार्यों की व्याख्या को मानकर हुई है। देवी को चराचरों की जननी मानकर संस्तुति करनेवाले उपासकों के लिए उपर्युक्त व्याख्या-भेदों को अपनाने से अधिक सुगम मार्ग श्री शब्द को ऐश्वर्य एवं उत्कृष्टता को सूचित करनेवाला पद मानकर स्वीकृत करना है। उत्कृष्टता तथा महत्व को सूचित करनेवाले तत्वों के पूर्व मंगलसूचक श्री शब्द को जोड दिया जाता है। जैसे श्रीविद्या, श्रीचक्र, श्रीशैल, श्रीमती, श्रीमान इत्यादि। जहाँ माता शब्द सम्पूर्ण जगत की माता के रूप में श्री ललितादेवी को, स्वीकार किया जाता है वहाँ माता की महानता को सूचित करने केलिए श्री का प्रयोग स्वाभाविक है।

माता शब्द का अर्थ माँ ही है। चर और अचर अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में जो कुछ होता है वह सारा देवी से उत्पन्न है, इसलिए सब की जनयित्री है ललितादेवी, यही आशय माता से होता है। इस स्तोत्र में जगन्माता शब्द का प्रयोग देवी केलिए अन्यत्र प्रयुक्त हुआ है।

माता पद देवी से सम्बन्धित मंत्रों में प्रयुक्त एक द्वादशार्द्ध विद्या को सूचित करता है। हसकलरडेति व्यंजनाष्टकस्य बालायाः स्वरत्रयेणोक्ते योजने कूटत्रयात्मकं जायमाणो मन्त्रो मातेत्युच्यते" - यही भास्कराचार्य का मत है। मंत्रों का रहस्य गुरुमुख से प्राप्त होना है। इसलिए यहाँ उसकी चर्चा नहीं की जाती। (आगे के सारे नामों में आये अक्षरों एवं अक्षरसंहिताओं का मंत्र सम्बन्धी प्राधान्य होता है। देवी की मंत्रशक्ति को जगाने में वे पर्याप्त हैं। उसकी व्याख्या करने में इस लेखक की योग्यता नहीं है। मामूली उपासकों के लिए उसका ज्ञान ज़रूरी नहीं है। अतः मंत्रपरक एवं तांत्रिक अर्थों की व्याख्या इसमें नहीं मिलेगी।)

२. श्रीमहाराज्ञी

राजन नाम पद का स्त्रीलिंग रूप है राज्ञी । उसके साथ श्री, महा इन दोनों पदों को जोडा गया है। श्री शब्द का आशय जैसे प्रथम नाम की व्याख्या में ऐश्वर्य, श्रेष्ठता और

मंगलसूचक सूचित किया गया है। महत् शब्द बडपन, अपरिमेयता, श्रेष्ठता असाधारणता इत्यादि का समर्थन करता है। राज्ञी शब्द से संसार का पालन करनेवाली, इस भाव को व्यंजित किया जाता है। पर जब वह समास में पूर्व पदों के साथ मिलता है तब भौतिक शासन के आर्थ के स्थान पर जगत के सृष्टि-स्थिति-लय की कारणकर्त्री और अधिकारिणी के रूप में श्री ललितादेवी का स्थान निर्धारित हो जाता है।

आचार्यों ने अपनी व्याख्याओं में स्थापित किया है कि यह नाम मायाराज्ञी संज्ञक मंत्र की शक्ति को जगानेवाला है और इसमें लक्ष्मी बीज अन्तर्हित है।

देवी के बहुसहस्र नाम हैं। उनमें पच्चीस नाम ललितोपाख्यान में मुख्य माने गये हैं। उन पच्चीस नामों में एक है महाराज्ञी , जो सारे जगत के पापों को मिटा देने में समर्थ एवं उन सर्वोत्तम पंचविंशति नामों में एक है। वे पच्चीस नाम निम्न-लिखित हैं:

'सिंहासनेशी ललिता महाराज्ञी वरांकुशा
चापिनी त्रिपुरा चैव महात्रिपुरसुन्दरी
सुन्दरी चक्रनाथा च साम्राज्ञी चक्रिणी तथा
चक्रेश्वरी महादेवी कामेशी परमेश्वरी
कामराजप्रिया कामकोटिका चक्रवर्त्तिनी
महाविद्या शिवानंगवल्लभा सर्वपाटला
कुलनाथाऽम्नायनाथा सर्वाम्नायनिवासिनी
श्रृंगारनायिका चेति पंचविंशतिनामभिः
स्तुवन्ति ये महाभागां ललितां परमेश्वरीं
ते प्राप्नुवन्ति सौभाग्यमष्टौसिद्धिर्महद्यशः'

३. श्रीमत्सिंहासनेश्वरी

उपर्युक्त पच्चीस मुख्यनामों में प्रथम है सिंहासनेश्वरी। ईश, ईश्वर शब्दों का अर्थान्तर नहीं है। अतः उसका स्त्रीलिंग रूपों का भाव भी समान है। शब्दार्थ है श्रीयुक्त सिंहासन की ईश्वरी। सिंहासन का भाव सम्राटों के आसन से मिलता है। सिंहासन का यह आधिपत्य शासनाधिकार को सूचित करता है। यहाँ सूचना है संसार रूपी साम्राज्य का शासन। श्री से यही आशय निकलता हैं कि देवी का सिंहासन राजाओं तथा सम्राटों के सिंहासनों से अलग और श्रेष्ठ है। सिंह शब्द का अर्थ श्रेष्ठ भी है। इस प्रकार, सिंहासन शब्द से तात्पर्य है श्रेष्ठ आसन। श्रीयुक्त और श्रेष्ठ आसन की ईश्वरी। राजाओं एवं सम्राटों की शासन-परिधि होती है। पराशक्ति देवी के सम्बन्ध में वह परिधि नहीं है।

सिंहरूपी आसन पर विराजनेवाली, यह भी उचित व्याख्या है। यहाँ आसन से तात्पर्य है वाहन । देवी माहात्म्य में यह कीर्तिवचन है कि महिषासुरवध केलिए देवी का आविर्भाव सारे देवताओं के तेजःपुंजों से हुआ था। प्रत्येक देव ने देवी को आभरण और आयुध समर्पित किये।

हिमवान ने सिंह वाहन और अनेक रत्न भेंट किये। देवी माहात्म्य में इसका भी वर्णन है कि महिष के साथ देवी का संग्राम जब हुआ तब सिंह ने भी भाग लिया। " सिंहमारुह्य कन्यात्वे निहतो महिषानया महिषघ्नीत्यतो देवी तथा सिंहासनेश्वरी " - (देवीपुराण)

सिंह शब्द हिंस शब्द का वर्णविपर्यय है, यह मत कुछ वैयाकरणों का है। 'असन' का क्षेपण (फेंकना) अर्थ तो है। हिंसा से प्राणियों का क्षेपण करनेवाली अथवा लोकसंहारकारिणी, इस प्रकार भी सिंहासनेश्वरी शब्द का भाव लिया जा सकता है।

सिंहासनाख्य पांच मंत्रों की ईश्वरी यह अर्थ तो मंत्रपरक है। मंत्रपरक अर्थ को गुरुमुख से ही जानना है।

प्रस्तुत तीन मंत्रों में माता शब्द का सृष्टि से, राज्ञी का स्थिति से और सिंह का संहार से संबन्ध है। याने सृष्टि-स्थिति-संहार का बोध दिलाता है यही आचार्यमत है।

४. चिदग्निकुण्डसम्भूता

चिदग्निकुण्ड से जो पैदा हुई है। भण्ड नामधारी असुर से युद्ध में हारकर देवों ने पराशक्ति की प्रीति को लक्ष्य करके एक महायज्ञ का प्रारंभ किया। एक योजन विस्तीर्ण यागाग्नि-कुण्ड बनाकर इन्द्रादि देवों ने कायदे के अनुसार यज्ञ किया। अपने शरीरों से माँस काटकर शास्त्रानुसार मंत्रोच्चारण के साथ होमाग्नि में होम किया। उस यागाग्नि से कोटि सूर्यों के प्रकाश के साथ और कोटि चन्द्रमा की शीतलिमा के साथ एक तेजःपुञ्ज का जन्म हुआ। उस तेजःपुञ्ज के बीच में चक्राकार में एक प्रकाश दिखाई दिया। उसी के मध्य में उदयसूर्य की प्रभासहित और जगत को उत्प्रेरित करनेवाला देवी-रूप प्रत्यक्ष हो गया। उस देवी का वर्णन श्री ललितोपाख्यान में निम्न प्रकार है:

'हुतेषुसर्वमांसेषु पादेषु च करेषु च
होतुमिच्छत्सुदेवेषु कलेबरमशेषतः
प्रादुर्बभूव परमं तेजःपुंजमनोपम्
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्
तन्मध्ये समुदभूच्चक्राकारमनुत्तमम्
तन्मध्ये महादेवीमुदयार्कसमप्रभाम्
जगदुज्जीवनाकारां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्
सौन्दर्यसारसीमान्तामानन्दरससागराम्
सर्वाभरणसंयुक्तां श्रृंगारैकरसालयाम्
कृपातरंगितापांगनयनालोककौमुदीं
पाशांकुशेक्षुकोदण्डपंचबाणलसत्कराम्
तां विलोक्य महादेवीं देवास्सर्वेसवासवाः
प्रणेमुर्मुदीतात्मानो भूयो भूयोऽखिलात्मिकाम् - (ललितोपाख्यानम् VII ७२-७७)

इस नाम का अर्थ है कि वे देवी जो देवों से यागार्थ जलायी गयी अग्नि से उत्पन्न। रेणुकापुराण में भी बताया गया है कि देवी अग्निकुण्ड से उद्भूत हूई हैं। यही वर्णन है कि इक्ष्वाकु वंश से जनमी रेणुका देवी को लक्ष्यकर यज्ञ किया और उस यागाग्नि से दिव्यरूपिणी और दिव्याभरणभूषिता एवं शीतांशुबिम्बाभा होकर जगद्धात्री देवी का आविर्भाव हूआ।

चित् शब्द का अर्थ है केवलब्रह्म । इसलिए, अग्निरूपी केवलब्रह्म से उद्भूत, यही तात्पर्य है। अविद्यारूपी अन्धकार को हटाते हैं, इसलिए ब्रह्म को अग्नि का संकल्प है। ब्रह्म विश्वग्रासी है; इसलिए अग्निस्वभाव है। चित् रूपी शक्ति शिव का निर्मल चैतन्य है, यही आचार्यसम्मति है। वह अज्ञान का नाश करता है, इसलिए ज्ञानाग्नि संज्ञा भी है। " ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुना," भगवद् गीता में यह उक्ति है। ज्ञानाग्निस्वरूपिणी, केवलब्रह्म से उद्भूत देवी, यही भाव है।

५. देवकार्यसमुद्यता

देवताओं के हितार्थ सुचारुरूप से आविर्भूत देवी, यही पदार्थ है। मार्कण्डेयपुराण में देवीमाहात्म्य में इस प्रकार कहा गया है-

'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते

कूर्मपुराण में पार्वतीदेवी हिमवान से कहती हैं-

अहं वै याचितादेवैः संस्मृता कार्यगौरवात्
विनिद्य दक्षं पितरं ममेश्वरविनिन्दकम्
धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात्
मेनादेहात् समुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता'

देवी-देवताओं की प्रार्थना सुनकर उनकी कार्यसिद्धि और धर्म स्थापन के हेतु देवी ने अनेक सन्दर्भों में अवतार ले लिया है, यही वर्णन पुराणों में मिलता है।

६. उद्यद्भानुसहस्राभा

उदित होनेवाले सहस्र सूर्यों की शोभा से युक्त। उदयसूर्य का रंग अरुण है। देवीशरीर की अरुणिमा और उदित होनेवाले सहस्र सूर्यों की शोभा की तुलना की जाती है। प्रभा की अतिशय गरिमा की सूचना है। देवी की अरुणिमा की प्रभा सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होती है, इस प्रकार आगे के एक नाम में बताया गया है। ललितोपाख्यान में इस प्रकार वर्णन है:

उदयत्सहस्रमहसां सहस्रतो-
प्यतिपाटलं निजवपुःप्रभाभरम्
किरतीदिशासु वदनस्य कान्तिभिः
सृजतीव चन्द्रमयमभ्रमण्डलम्

देवी से सम्बन्धित अन्य तन्त्रों में और स्तोत्रों में देवी का रंग अरुण ही कहा गया है।

७. चतुर्बाहुसमन्विता

आचार्यों का कहना है कि देवी का रूप पांच प्रकार का है। (१) स्थूल-करचरणादि अंगों और मनुष्य सहज विकारों से युक्त। अपेक्षाकृत मामूली लोग इस रूप की उपासना करते हैं। इस उपासना से जब ज्ञान प्राप्त होता है तब अन्य रूपों की प्राप्ति का भाग्योदय होता है। (२) सूक्ष्म-मन्त्रमय, (३) सूक्ष्मतर-कामकलारूप, (४) सूक्ष्म-कुण्डलिनी रूप (५) शूद्ध ब्रह्मरूप। इस नाम से लेकर देवी का स्थूल रूप-वर्णन शुरू होता है। स्थूल रूपों के वर्णन में अन्य रूपों की व्यंजना लाने में वाग्देवताओं ने जो ध्यान दिया है उसे सूक्ष्मदृक लोग देख सकते हैं। चार हाथों से सम्यक् रूप से युक्त।

(८) रागस्वरूपपाशाढ्या (९) क्रोधाकारांकुशोज्वला

१०. मनोरूपेक्षुकोदण्डा ।। पंचतन्मात्रसायका

स्थूल रूप वर्णन में देवी को चतुर्बाहू समन्विता बताया गया। अब चारों हाथों में जो आयुध हैं उनका वर्णन है। बायें पार्श्व के पीछे के हाथ में पाश है (रस्सी), दाहिने पार्श्व के पीछे के हाथ में अंकुश है। बायें पार्श्व के सामनेवाले हाथ में इक्षुकोदण्ड (ईख का धनुष), दाहिने पार्श्व के सामनेवाले हाथ में शर।

पाश, अंकुश, धनुष, शर ये आयुध बताये गये हैं। विशेषणों से उनकी विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला गया है। रागस्वरूपी पाश से अलंकृत, क्रोधाकाररूपी अंकुश से शोभित, मनोरूपी ईख का धनुष धारण करनेवाली, पांच तन्मात्राओं का शर धारण करनेवाली इस प्रकार चार नामों का शब्दार्थ बताया गया है।

'धर्माद्या बाहवस्तेस्युरधर्माद्यायुधानि ते
यमाश्च नियमाश्चैव कर पादरूहास्तदा'

ललितोपाख्यान के उपर्युक्त श्लोक में देवी के श्रीकरों को धर्म रूप में, आयुधों को अधर्मादि के रूप में हाथों और पैरों की ऊँगलियों के नखों को यमनियमों के रूप में चित्रित किया गया है।

देवी का आयुध पाश रागस्वरूप है। राग से मतलब है प्राणियों को परस्पर मिलानेवाली चित्तवृत्ति। सारे जगत की अवस्थिति तभी है जब सारे जीवों में आपस में अनुरक्ति का भाव हो। यह अनुरक्तिविशेष केवल माँ और बच्चे, पति-पत्नी, परिवार के सदस्यों को ही आपस में मिला सकता है, यह आशय नहीं है, बल्कि निरीह एवं साधारण जीवों को भी मिला सकता है और सब में यह विशेष गुण विद्यमान है।

क्रोध प्राणियों को परस्पर संघर्ष में डालनेवाली एक मानसिक वृत्ति है। राग जिस प्रकार प्राणियों को आपस में मिलाता है उसी प्रकार क्रोध आपस का विरोध पैदा करता है और हिंसा के

लिए कारण पैदा करता है। राग की तरह क्रोध भी सभी प्राणियों में रहता है। वही क्रोध है देवी का आयुध अंकुश।

क्रोध शब्द ज्ञान का सूचक है, यह भी प्रस्ताव है। इस अर्थ को स्वीकार किया जाय तो द्वेष और ज्ञान इन दोनों से उज्ज्वल बना हुआ अंकुश माना जाना है।

तीसरा आयुध ईख से बना हुआ धनुष है जो संकल्प और विकल्प से युक्त वक्र स्वभावी मन है। चौथा हथियार प्रस्तुत धनुष से प्रयुक्त पंचतन्मात्र रूपी शर है। राग और क्रोध दोनों के व्यापार का आधार मन है। मन की प्रेरणा पाकर प्रवृत्त होनेवाले पांच तन्मात्रा हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इन्द्रियों के कार्य-व्यापार को उत्तेजित करनेवाले शब्द, दर्शन आदि कामना के लिए कारण बन जाते हैं। काम से राग, राग से (यदि उसका विघ्न हुआ तो) क्रोध पैदा होता है। क्रोध से सम्मोह और सम्मोह से स्मृतिभ्रंश पैदा होता है, यही भगवद्गीता का अभिमत है। चतुश्शती में इस प्रकार वर्णन है:

" पाशांकुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ "

तंत्रराज में इसकी सूचनायें मिलती हैं:

मनो भवेदिक्षु धनुः पाशो राग उदीरितः
द्वेषस्यादंकुशः पंच तन्मात्राः पुष्पसायकाः

वामकेश्वरतंत्र में कहा गया है:

शब्दस्पर्शादायो बाणा मनस्तस्याभवद्धनुः

राग का इच्छा अर्थ भी होता है ।

इच्छाशक्तिमयं पाशमंकुशं ज्ञानरूपिणम्
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषीदधदुज्ज्वलम् ।

उपर्युक्त वर्णन उत्तर चतुश्शती का है। पाश को इच्छा शक्ति और बाणधनुषादि को क्रियाशक्ति मानकर व्याख्या की गयी है।

पहले कहा गया है कि शब्द और स्पर्श आदि ही बाण हैं। वे तीन प्रकार के होते हैं जैसे- स्थूल, सूक्ष्म और पर।

बाणास्तु त्रिविधाः प्रोक्ताः स्थूल सूक्ष्मपरत्वतः
स्थूलाः पुष्पमयाः सूक्ष्मा मन्त्रात्मानस्समीरिताः
पराश्च वासनायान्तु प्रोक्ता स्थूलान् श्रुणुप्रिये
कमलं कैरवं पद्मं कल्हारेन्दीवरे तथा
सहकारकमित्युक्तं पंचपुष्पकमीश्वरी

इस प्रकार कादिमत पद्यों को लेकर स्थूल की स्थापना कमल, कैरव, कलहार, इन्दीवर, सहकार इन पाँच पुष्पों द्वारा की जाती है। प्रस्तुत बाण मुनियों को भी मोहित करनेवाले हैं। इनमें प्रत्येक की दूसरी संज्ञायें हैं, जैसी-हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण, मारण।

'हर्षणम् रोचनाख्यं च मोहनं शोषणम् तथा
मारणश्चेत्यमीबाणा मुनीनामपि मोहदाः' (कालिकापुराण)

ज्ञानार्णव में इन बाणों के नाम इस प्रकार हैं।:- क्षोभण, द्रावण, आकर्षण, वश्य, उन्माद-

क्षोभण द्रावणं देवी तथाकर्षणसंज्ञिता
वश्योन्मादौ क्रमेणैव नामानि परमेश्वरी

तंत्रराज में प्रस्तुत बाणों के नाम निम्नप्रकार हैं:

मदनोन्मादनौ पश्चात्तथा मोहनदीपनौ
शोषणंचेतिकथिताबाणापंच पुरोदिताः

अर्थात् मदन, उन्मादन, मोहन, दीपन, शोषण ये नाम हैं।

श्रीललितादेवी के चारों करों में अवस्थित आयुधों के विवरणों के द्वारा संसार के स्थाइत्व के कारणभूत राग-क्रोध और उनका नियामक मन तथा उस मन को मथित करनेवाले शब्द, रूप, रसादि तत्व और उनके स्थूल-सूक्ष्म रूप एवं इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति ये तत्व भी स्पष्टतः समझाया गया।

(प्रस्तुत नामों की मंत्रपरक व्याख्या यहाँ नहीं दी जाती)

१२. निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला

अपनी ही अरुण प्रभा के प्रवाह में डूबा हुआ ब्रह्माण्ड मण्डल और उसी के साथ मिली हुई देवी के अरुण वर्ण को उद्यद्भानुसहस्राभावाले नाम से सूचित किया जा चुका है। आगे के सर्वारुणा आदि नामों से प्रस्तुत आशय का पुनरावर्तन होगा ही। प्रभात के समय अरुणवर्णी देवी का ध्यान करना उत्तम है, यही आचार्यों की सम्मति है।

१३. चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचा

जब उपासनामूर्तियों का ध्यान किया जाता है तब केशादि पाद (बाल से लेकर पॉव तक) अथवा पांव से बाल तक का वर्णन किया जाता है। पुरुष रूप के ध्यान में पांव से शुरू होता है। शिव शक्तैक्य रूपिणी देवी का ध्यान दोनों प्रकार से किया जाता है। इसका कोई निश्चित नियम तो नहीं है। नारायणीय के प्रसिद्ध श्रीकृष्णवर्णन केशादि पाद को लेकर है (इसका अपवाद यह है कि वह ध्यान-श्लोक नहीं है) ललिता देवी से सम्बन्धित अधिकतर स्तोत्र केशादिपाद का वर्णन है।

भास्कराचार्य कहते हैं कि देवी का स्थूल रूप चिदग्निकुण्ड से जो उद्भूत हुआ वह पहले सिर को लेकर है। देवी का मुख ही वाग्भवकूट पंचदशी मंत्र के प्रारंभ में है; इसलिए सिर से लेकर वर्णन शुरू होता है।

(श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपंकजा यह ८५ वां नाम देखें) चम्पक, पुन्नाग, सौगन्धिक, कलहार इत्यादि पुष्पों से अलंकृत कचोंवाली (कच माने बाल)

लसत् शब्द से यही भाव निकलता है कि देवी के बालों की खुशबू नैसर्गिक है। फूल केवल अलंकार के लिए है।

१४. कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डिता

कुरुविन्द मणियों की श्रेणी से शोभित किरीट के कारण मण्डित।

कुरुविन्द पद्मराग रत्न है। रत्नों को धारण करनेवालों को उन रत्नों के गुण-दोष से भला-बुरा होता है, यही विश्वास है। लालवर्ण का पद्मराग धारण करने से काम, राग इत्यादि का उद्दीपन होता है। मंगल्य को संभव कर देता है। हरिभक्ति और अभिवृद्धि प्रदान करता है। इस प्रकार का प्रदिपादन शास्त्रों में होता है।

कामानुरागः कुरुविन्दजेषु
शनैर्न तादृक्स्फटिकोद्भवेषु
मांगल्ययुक्ता हरिभक्तिदाश्च
वृद्धिप्रदास्ते स्मरणाद्भवन्ति

देवी का मुकुट इस प्रकार के विशेष गुणों से युक्त कुरुविन्द मणियों से शोभित है। इससे यही ध्वनित होता है कि ऐसे किरीट को धारण किये हुए देवी का ध्यान करनेवालों को हरिभक्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होंगे। कुरुविन्दमणि की व्याख्या कुरुविन्द और अन्य रत्न से की जा सकती है।

गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिस्सान्द्रघटितम्
किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः
स नीडे यश्च्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलम्
धनुश्शौनासीरं किमिति न निबध्नातिधिषणाम् (सौ.ल. ४)

(हे हिमवान की पुत्री देवि, आपके समीप खडे होकर आपकी सेवा करने के उद्देश्य से माणिक्य और रत्न बने हुए आदित्यों से सान्द्र खचित एवं स्वर्णमय बने हुए आपके मुकुट का वर्णन कवि अपने समीपस्थ माणिक्यादि रत्नों की कान्ति व्याप्त रहने के कारण-नाना वर्णों की शबलता के कारण किरीट में अलंकृत चन्द्रकला का इन्द्रचाप का भ्रम अनुभव करेगा। - सौन्दर्य लहरी- श्रीशंकराचार्य)

१५. अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता

अष्टमी के चन्द्रमा के समान विशेष रूप से प्रकाशमान भाल प्रदेश से शोभित होनेवाली।

अष्टमी का चन्द्रमा आठ कलाओं से युक्त है। अर्द्ध चन्द्रमा की तुलना स्त्रियों के भालप्रदेश से करने की रीति भारतीय साहित्य में स्वीकृत कविकर्म है। आकृति-साम्य और प्रभा को सूचित करता है।

ललाटं लावण्यद्युति विमलमाभाति तव यद्
द्वितीयं तन्मन्ये मकुटघटितं चन्दशकलम्

विपर्यासन्यासादुभयमपि संभूय च मिथ -
स्सुधालेपस्सुतिः परिणमति राकाहिमकरः (सौ.ल. ४६)

(अयि देवि, मेरी यही शंका है कि सौन्दर्य की चन्द्रिका से प्रदीप्त आप का ललाट आपके मुकुट में विराजित और एक चन्द्रकला हो। मुकुट में ऊर्ध्वमुख होकर अलंकृत चन्द्रमा की लकीर और देवी के ललाट की अधोमुखी चन्द्रमा की लकीर दोनों को मिला दिया जाय तो, अमृत बरसानेवाला एक पूर्ण चन्द्रमा बन जायेगा।)

१६. मुखचन्द्रकलंकाभमृगनाभिविशेषका

मुख रूपी चन्द्रमा का कलंक मृगनाभी (कस्तूरी) का विशेषक (तिलक) धारण करनेवाली।

मुख को चन्द्रमा कहने से सौन्दर्य का आधिक्य सूचित होता है। कस्तूरी-तिलक को चन्द्रमा का कलंक कहने से मुख तिलक की सुन्दरता को बढ़ा देता है। चन्द्रमा के कलंक की मनोहारिता चन्द्रमा की अतिशय शोभा से है। कलंक की शोभा नहीं। इसी प्रकार कस्तूरी-तिलक से मुख को नहीं, प्रत्युत देवी के मुख से मिला तो तिलक की शोभा बढ़ी है।

१७. वदनस्मरमांगल्यगृहतोरणचिल्लिका

कामदेव के मंगलभवन रूपी मुख के प्रवेशनद्वार रूपी भौंहों से युक्त।

तोरण शब्द का अर्थ है बन्दनवार। भवन के प्रवेशनद्वार में अलंकरण एवं मंगल संकल्प के लिए कोई न कोई पत्ते और मालाएं लटका दी जाती हैं। देवी की भौंहों की उपमा कामदेव के मंगल भवन रूपी मुख के बंदनवार से की गयी है। सौन्दर्य की अधिकता इससे व्यंजित होती है।

१८. वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना

मुखकान्ति के प्रवाह में चंचल होती मछलियों के समान शोभित होनेवाली आँखोंवाली।

मछलियाँ बच्चों का पालन स्तन्य देकर नहीं करतीं। मछलियों का नयनों द्वारा अवलोकन उनके पोषण में सहायक होता है, यही कवि संकल्प है। देवी के नयनों की उपमा मीन से जो की गयी है उससे यह भाव प्रकट होता है कि भक्तों पर कटाक्ष मात्र से देवी ऐश्वर्य की वर्षा कर देती है।

१९. नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजिता

नये खिले चम्पक सूनों की कान्ति और मनोहारिता से शोभित नासिकावाली। नासादण्ड को चम्पक सून से उपमित किया गया है।

२०. ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरा

नक्षत्र की कान्ति को हरानेवाले नासाभरण से शोभित होनेवाली। देवी की नासिका के आभरण की शोभा शुक्रनक्षत्र के प्रकाश को निस्तेज कर देती है।

२१. कदम्बमंजरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरा

कदम्ब फूलों से बने गुछे लगाकर अलंकृत कानोंवाली। कदम्ब मंजरी से कानों को अलंकृत देवी का वर्णन अनेक स्तोत्रों में मिलता है।

कदम्बवन में निवास करनेवाली है, इस रूप में देवी का वर्णन मिलता है।

२२. ताटंकयुगलीभूततपनोडुपमण्डला

दो कर्णाभरण बने सूर्य और चन्द्र के मण्डलों से युक्त।

जब देवी के विराट्रूप का वर्णन किया जाता है तब सूरज और चन्द्रमा की दो आंखों के रूप में और दो स्तनों के रूप में वर्णित होता है।

सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरिणीम्
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः
करालं यत् क्ष्वेलं कबलितवतः कालकलना
न शंभोस्तन्मूलं तव जननी! ताटंकमहिमा (सौ.ल.२८)

(अयि माते, प्रपंच में ब्रह्मादिदेव भी भयानक जरामरणों का नाश करनेवाले अमृत का सेवन करने पर भी कालवशी होकर नाशवान हो जाते हैं। कराल विष का पान करके भी शंभु मृत्युगत नहीं होते। उसका कारण आपके (सूर्य-चन्द्र रूपी) ताटंकों की महिमा है।) ललितोपाख्यान में इस प्रकार वर्णित है-

दृशश्चन्द्रार्कदहना दिशस्ते बाहवांबिके
मरुतस्ते तनूच्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोखिला

कालचक्र का नियामन करनेवाले सूर्य और चन्द्र देवी के ताटंक रूप में रहने से काल देवी की इच्छा के अधीन रहता है।

२३. पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभूः

पद्मराग पत्थर से निर्मित आदर्श को (दर्पण को) हरानेवाले कपोल से सुन्दर।

देवी के कपोलों को पद्मरागरत्न से बने दर्पण से उपमित किया गया है। रत्न से उपमित होने से सौन्दर्य और प्रभा की अतिशयता को द्योतित किया जाता है। (कामेश्वर का प्रतिबिम्ब पडने से वर्द्धित अरुणवर्ण की कान्ति है, यही व्याख्या भी आचार्यों की है।)

स्फुरत् गण्डाभोगप्रतिफलिततातंकयुगलम्
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथरथम्
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दुचरणम्
महावीरो मारः प्रमथपतये सज्जितवते (सौ.ल.५९)

(अयि भगवति, चमकते हुए आपके कपोलों पर ताटंकों (सूर्य-चन्द्र) का प्रतिबिम्ब पड़ता है। मेरे हृदय में प्रदीप्त होनेवाली माँ का वह मुख कामदेव के चार पहियोंवाले रथ का आभास

होता है। वीरपराक्रमी कामदेव आपके मुख रूपी रथ पर आरुढ़ होकर सूर्य चन्द्र रूपी दो पहियोंवाले भूमिरूपी रथ पर चढ़कर युद्ध करनेवाले शिव को पीडित करते हैं)

२४. नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारीरदनच्छदा

नये विद्रुम और बिम्ब की श्री अथवा कान्ति को हरानेवाले ओष्ठपुटोंवाली (दांतों को ढांपनेवाले ओष्ठपुट)। रंग को निद्रुम से उपमित किया जाता है। स्त्रियों के अधरों को, रंग और आकार को बिम्ब फलों से उपमित किया जाता है।

२५. शुद्धविद्यांकुराकारद्विजपंक्तिद्वयोज्ज्वला

शुद्ध विद्यारूपी अंकुर हैं देवी के दांतों की दोनों पंक्तियां। उन दांतों से शोभित होनेवाली।

शुद्ध विद्या का भाव निर्मल ज्ञान है। यदि देवी के दांत ज्ञानांकुर हैं, तो इसका मतलब उपासक के अज्ञान को दूर करनेवाला है देवी का मन्दहास।

शुद्ध विद्या का आचार्यों ने कई अर्थों में संकल्प किया है। वह निम्नप्रकार हैः

" सा भवति शुद्धविद्याया चेदन्ताहन्तयोरभेदम " दत्तात्रेयसंहिता के उपर्युक्त उद्धरण से यही आशय निकलता है कि शुद्धविद्या षोडशाक्षरीविद्या है। यह षोडशाक्षरी विद्या देवी के मुंह से ही निकलकर फिर कर्णाकर्णी रूप से प्रसिद्ध हो गयी। शुब्दब्रह्मरूपी षोडशाक्षरी विद्या को एक बीज के साथ शास्त्रों ने उपमित किया है। शब्द रूपी षोडशाक्षरी विद्या का बीज, जो गीलापन पाकर फूटने की स्थिति में है, परा कहा जाता है। छिलका फूटा अंकुर दिखाई देता है, इस स्थिति में वह पश्यन्ति कहा जाता है। अंकुर से दो दलों की स्थिति में मध्यमा कहा जाता है। और उसका मूल उगा और दो दल पत्तों के रूप में बने, इस अवस्था में वह वैखरी कहा जाता है। शोडशाक्षरीविद्या, जैसे भाव से भान होता है, सोलह अक्षरोंवाली है, दोनों पंक्तियों में कुल बत्तीस दांत होते हैं। शोडशाक्षरीविद्या के प्रत्येक अक्षर के दो दल हैं।

परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी। ये शब्दों के अवस्थान्तर हैं। इनकी चर्चा आगे आती है। शोडशाक्षरीविद्या मंत्र है, इसलिए उसे गुरु के मूंह से जानना चाहिए।

द्विज शब्द से ब्राह्मण का अर्थ है। द्विज देवी के दांत हैं, यही व्याख्या, उचित तो नहीं मालूम होती।

२६. कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षद्दिगन्तरा

कर्पूर वीटिका की सुगन्ध से आकर्षित दिगन्तरों से युक्त।

" एलालवंगकर्पूरकस्तूरीकेसरादिभिः

जातीफलदलैः पूगैल्लांगल्यूषणनागरैः चूर्णैः खदिरसारैश्च युक्ता कर्पूरवीटिका " यही लक्षण है। इस लक्षण के अनुसार एल (इलायची) इलवर्गम्, कपूर, कस्तुरि आदि सुगन्धद्रव्यों से युक्त ताम्बूल है कर्पूर वीटिका। देवी के इस कर्पूर वीटिका के चर्वण से चारों दिगन्त आकृष्ट हो रहे हैं। कर्पूरवीटिका का जूठन पाने में सब दिग्देवता चारों ओर साग्रह खडे हैं।

२७. निजसल्लापमाधुर्यविनिर्भत्सितकच्छपी

कच्छपी सरस्वती देवी के हाथ की वीणा का नाम है। वीणा का स्वरमाधुर्य प्रसिद्ध है। सरस्वती देवी की वीणा का स्वरमाधुर्य यहाँ इंगित है। उस वीणा के स्वरमाधुर्य को निन्दित अथवा निस्तेज करनेवाला है देवी का स्वरमाधुर्य। कच्छपी के स्वरमाधुर्य से अधिक मधुर है देवी का स्वर। अपने सल्लाप से कच्छपी को निस्तेज करनेवाली।

विपंच्या गायन्ती विविधमपदानं पशुपते-
स्त्वयारब्धेवक्तुं चलितशिरसा साधुवचने
तदीयैरमाधुरैरपलपित तन्त्रीकलरवाँ
निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् (सौ.ल. ६६)

उपर्युक्त सौन्दर्य लहरी के श्लोक में, देवी के वचन माधुर्य से अपहसित अपनी वीणा को, जो तन्त्री कलरव से युक्त है, सरस्वती देवी म्यान में ही रख देती है, ऐसा वर्णन किया गया है।

२८. मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसा

मुस्कराहट की प्रभा की अधिकता से आमग्न कामेशमानस से युक्त।

कामेश का आशय है कामदेव पर विजयप्राप्त महेश। कामादि विकारों से प्रभावित होनेवाला मन नहीं है महेश का। वही मन देवी की मुस्कराहट की प्रभा में आमग्न हो जाता है। इससे देवी की मुस्कराहट की आकर्षणीयता और प्रभविष्णुता का बोध प्रकट होता है।

२९. अनाकलितसादृश्यचुबुकश्रीविराजिता

समानता दिखाने केलिए जहाँ दूसरी वस्तू नहीं है वैसी दाड़ी से जो सुन्दर बनी हूई है।

वशिन्यादि वाक्देवताओं ने कई प्रकार का वर्णन करने की कोशिश की, फिर भी देवी के चुबुक की उपमा किसी अन्य वस्तु से कर नहीं सके। वैसे ही कवियों ने भी उसका वर्णन करने में विजय प्राप्त नहीं की। इस प्रकार अनन्यसदृश है देवी का चुबुक।

कराग्रेणस्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया
करग्राह्यं शंभोर्मुखमुकुरवृन्दं गिरिसुते
कथंकारं ब्रूमस्तव चुबुकमौपम्यरहितम्। (सौ.ल. ६७)

(पर्वतराजा हिमवान से वात्सल्यपूर्वक स्पर्श किया गया और अधरपानासक्त परमशिव से बार-बार उठाया हुआ मुख रूपी मुकुर जो है उसकी मूठ जैसा आपका चुबुक कभी वर्णित नहीं हो सकता।)

३०. कामेशबद्धमांगल्यसूत्रशोभितकन्धरा

कामेश (परमशिव) द्वारा बन्धे हुए मंगल्यसूत्र से शोभित गले से युक्त।

यहाँ ललितोपाख्यान में वर्णित एक कथा की सूचना मिलती है। ऊपर कहा जा चुका

है कि देवी का जन्म चिदग्निकुण्ड से हूआ है। देवों ने देवी की आराधना ललितास्तव-राजस्तोत्र से की। ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिमूर्तियों ने और नारदादि देवर्षियों, अप्सराओं एवं गन्धर्वों, यक्षों ने देवी के पास आकर उनकी स्तुति की। ब्रह्मा की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने देवी के निवास केलिए अमरपुरी के समान एक विशिष्ट नगर का निर्माण किया। सर्व मंत्रों की अधिनायिका देवी दुर्गा, सर्वविद्याधिदेवता श्यामा, ब्राह्मी आदि माताएं, अणिमा आदि सिद्धियाँ, करोडों योगिनियाँ, भैरवगण, क्षेत्रपालक, महाशास्ता, महागणपति, स्कन्द, वटुक, वीरभद्र आदि देवता भी आकर देवी की वन्दना करके खडे रहे।

जब देवी के लिए विश्वकर्मा ने एक सुन्दर नगर का निर्माण किया तब ब्रह्मा को लगा कि देवी के साथ एक पुरुष भी रहे तभी नगर की पूर्णता होगी। देवी के लिए योग्य पुरुष कामेश्वर शिव ही हो सकते हैं, यही ब्रह्मा को मालूम हुआ। ब्रह्मा ने विष्णू और शिव के साथ देवी के समीप जाकर अभ्यर्थना की कि अपने लिए एक योग्य पुरुष को पति के रूप में स्वीकार कीजियेगा।

देवी ने ब्रह्मा की अभ्यर्थना को स्वीकार कर अपने हाथ की पुष्पमाला को आकाश में फेंक दिया। वह माला आकाश को प्रदीप्त करते हुए कामेश्वर के गले में आ गिरी। देवी की इच्छा इस प्रकार प्रकट हुई, तो ब्रह्मा और अन्य देवताओं ने मिलकर विवाह कर्म की आयोजना कर दी। देवी के भाई त्रिविक्रम ने देवी को विधि के अनुसार शम्भु को प्रदान किया। इस विवाह के सन्दर्भ में भगवान शंकर ने देवी के गले में जो मंगलसूत्र पहना दिया उसी के बारे में यहाँ इंगित किया गया है।

गले रेखास्तिस्रो गतिगमकगीतैकनिपुणे
विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्या प्रतिभुवः
विराजन्ते नानाविधमधुररागाकरभुवाम्
त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते (सौ.ल.६९)

सौन्दर्य लहरी के प्रस्तुत श्लोक में श्री शंकर भगवद्पाद ने यही वर्णित किया है कि देवी के गले की त्रिवली की जो रेखा है वह मंगल्यसूत्र की कडियों की सूचना देती है।

३१. कनकांगदकेयूरकमनीयभुजान्विता

कनकनिर्मित अंगद और केयूर आभूषणों से अलंकृत मनोहर हाथोंवाली। अंगद और केयूर दोनों स्कन्धों में पहने जानेवाले दो आभूषण हैं। भास्काराचार्य केयूर मात्र को आभूषण मानते हैं । अंगद को केयूर का विशेष मानते हैं?

अंगं ददातीत्यंगदं शरीरघटकमित्यर्थं (भास्कराचार्य)

३२. रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्विता

रत्ननिर्मित ग्रैवेय से (ग्रीवा में पहनने का आभूषण), चिन्ताक से (कण्ठ में पहनने का आभूषण) आन्दोलित मुक्ताफलों से (मोत्तियों से) अन्विता

रत्नखचित चिन्ताक और मोतियों से भूषित हैं श्रीदेवी। देवी के कण्ठाभरण में रत्नों और मोतियों का जडना सुन्दर लगता है।

३३. कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तनी

कामेश्वर (शम्भू) के प्रेम-रूपी रत्न-मणि के बदले में दिये गये स्तन धारण करनेवाली।

कामेश्वर के प्रेम को रत्नमणि से निरुपित किया गया है। उस रत्न के बदले में दिये गये हैं देवी के स्तन। मणि शब्द स्तन का विशेषण माना जा सकता है। एक रत्न के बदले में दो स्तनों के समर्पण-व्यापार में कामेश्वर को देवी का केवल अनुराग ही नहीं पातिवृत्य का भी भव्य व्यापार व्यंजित होता है। पूर्वाचार्यों की यही सम्मति है।

३४. नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वयी

नाभी रूपी आलवाल से उठी हुई रोमावली रूपी लता के दो फलों रूपी कुचों से (स्तनों से) युक्त। यह एक काव्यात्मक वर्णन है कि देवी के दोनों स्तन दो फल हैं, जो नाभी रूपी तालाब से उठी हुई रोमावली रूपी लता से फलित हैं।

हरक्रोधज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसंगो मनसिजः
समुत्तस्तौ तस्मादचलतनये धूमलतिका
जनस्तां जानीते जननि तव रोमावलिरिति (सौ.ल. ७६)

(परमेश्वर की क्रोधाग्नि की ज्वाला से भस्मभूत कामदेव देवी की नाभि रूपी तालाब में डूब गया और उसमें से निकली हुई धूमलतिका है देवी की रोमावलि)

स्थिरो गंगावर्त्तस्तेन मुकुलरोमावलिलता-
कलावालं कुण्डं कुसुमशरतेजो हुतभुजः
रतेर्लीलागारं किमपि तवनाभिर्गिरिसुते
बिलद्वारंसिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते। (सौ.ल. ७८)

ऊपर उद्धृत पद्य में (सौन्दर्यलहरी) देवी की नाभि को गंगाजल के स्थायी भंवर के रूप में बताया गया है। इसी प्रकार, वह नाभिप्रदेश वह तालाब है जहाँ से उठनेवाली रोमावली रूपी लताओं और उनमें लगनेवाले स्तन रूपी कुसुमकलियों को बढने का काम देता है। यही नहीं। कामदेव की प्रतापाग्नि को भभक उठने लायक होमकुण्ड भी वह है। और वह रतीदेवी की रंगस्थली है कि वह नाभिस्थल वह गुफा है जहाँ परमेश्वर की दृष्टियों को तपोफल के आगमन के संदर्भ में गुहा मार्ग का काम देता है। इस प्रकार सौन्दर्यलहरी में वर्णित वह रूपक यहाँ प्रयुक्त नाम के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

३५. लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमा

अवलोकनीय रोमलता की अवस्थिति को मानकर अनुमान करने योग्य मध्यशरीर से युक्त। भारतीय सौन्दर्यसंकल्प में तंग कमर का होना सुन्दरियों का लक्षण है। यहाँ वर्णित कमर

इतनी कृश है कि उसका होना ही संदिग्ध जैसा है। कमरप्रदेश अदृश्य रहने पर भी रोमलता को देखा जा सकता है। इसलिए उस रोमलता का आधार कमर प्रदेश है, यह अनुमान किया जाना चाहिए। कटि प्रदेश का कृश होना सुन्दरता व्यंजित होती है और साथ ही शरीर का सौन्दर्य भी।

३६. स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया

स्तनों के भार से कट जाने योग्य मध्यभाग में कनक पट्टीस जैसी तीन सिकुडनोंवाली।

कमर की कृशता को ऊपर बताया जा चुका है। यदि रोमावली न दिखाई देती तो यह सन्देह होता कि कमर हो या न हो। उतनी ही कृश है। स्तन तो बहुत बडे होते हैं। उन भारी स्तनों के वज़न से कटिप्रदेश का टूट जाना यदि संभव हो, तो उससे बचने केलिए मध्य प्रदेश में मानों तीन कनक पटीसें बंधी हैं, कि कमर न टूट जाये। यहाँ इन तीन पटीसों को देखना है। वे देवी के मध्य भाग की तीन सिकुडनें हैं। उन सिकुडनों को पटीस के बहाने उत्प्रेक्षा अलंकार से वर्णित हूआ है।

निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो
नमन्मूर्तेर्नारीतिलक शनकैस्त्रुट्यत इव
चिरं ते मध्यस्य त्रुटिततटिनी तीरतरुणा
समावस्थाम्नो भवतुकुशलं शैलतनये (सौ. ल. ७९)

हे देवी, स्वाभाविक रूप से क्षीणित (कृश) हुए और स्तनों के भार से थके हुए एवं झुके हूए, धीरे-धीरे टूटने जार हा है, एसी प्रतीति देनेवाला और किनारे के हट जाने से नदीके कगारे पर रहनेवाले वृक्ष की तरह स्थाई रूप से रहनेवाला आपका मध्यभाग कुशल रहे।

कुचौ सद्यःस्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ
कषन्तौ दोर्मुले कनककलशाभौ कलयता
तवत्रातुं भंगादलमिति वलग्नं तनुभुवा
त्रिधा नद्धं देवि त्रिवलि लवलीवल्लिभिरिव (सौ.ल.-८०)

है देवी, आप के स्तनों को, जो ऊपर पडे कंचुक को भेदते हैं और दोर्मुलों का स्पर्श करते हैं तथा कनक कान्ति से युक्त हैं, जिस कामदेव ने निर्मित किया उन्होंने अति कृश मध्य भाग न टूट जाय मानों इस लक्ष्य से उसे लवली नामक लता की तीन मोड से बांध रखा है।

सौन्दर्य लहरी के उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में मध्य प्रदेश की कृशता स्तनों के भारीपन और पेट पर दिखाई देनेवाली सिकुडनों के अतिशय सौन्दर्य को व्यंजित किया गया है।

३७. अरुणारुणकौसूंभवस्त्रभांस्वत्कटीतटी

अत्यंत वर्द्धित अरुण वर्णवाले कौसुंभवस्त्र से प्रकाशित कटि प्रदेश से युक्ता। (सूर्य सारथी अरुण जैसे वर्णोंवाला) अरुण शब्द के आवर्तन से वर्ण की अधिकता का द्योतन होता है। कौसुंभवस्त्र से प्रकाशित कटिप्रदेश से युक्त ।

३८. रत्नकिंकिणिकारम्यरशनादामभूषिता

रत्न किंकिणियों से जटित मनोहर मेखला से अलंकृत

रत्न किणियाँ मेखला में लटकायी जानेवाली मणियाँ हैं तो अपने भीतर के कंकडों से ध्वनित होती हैं। देवी की किंकिणियों के भीतर रत्नों के टुकडे हैं। इसलिए रत्न किंकिणि बतायी गयी है।

३९. कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्विता

मात्र कामेश को ही ज्ञात है देवी की मृदुता और जघनों का सौन्दर्य। ऐसे मृदुल और सुन्दर जघनोंवाली।

यहाँ देवी के पतिवृतात्व की व्यंजना है।

४०. माणिक्यमकुटाकारजानुद्वयविराजिता

माणिक्य से निर्मित किरीट के आकारवाले घुटनों वाली। अखण्ड माणिक्य से बनाये गये किरीट की आकृति देवी के घुटनों की जैसी है। यहाँ उन घुटनों के सौन्दर्य और दृढता की सूचना दी जाती है।

४१. इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजंघिका

इन्द्रगोपों से जडे स्मरतूणीर जैसी प्रकाशमान जंघाओंवाली

इन्द्रगोप एक प्रकार का कीडा है। वर्षाकाल में यह लाल कीडा दिखाई देता है। इस कीडे के वर्णन से लालवर्ण की सूचना मिलती है। कामदेव के तूणीर से उपमित कर जांघों की आकृति दी जाती है। दोनों में सादृश्य है। स्मर के तूणीर होने से विश्व को आकर्षित करनेवाला है, ऐसा व्यंग्य है।

पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते
निषंगौ जंघे ते विषम विशिखो बाढ़मकृत
यदग्रे दृश्यन्ते दश शरफलाः पादयुगली
नखाग्रच्छद्मानस्सुरमकुटशाणैकनिशिताः (सौ.ल. ८३)

हे गिरिसुते, यह निश्चय है कि कामदेव ने आपके जांघों को तूणीर जैसे बनाया कि उनमें रुद्र को पराजित करने हेतु अपने पंचबाणों को दुगुना कर दस बनाकर समाहित किया है। जांघों के अग्र में देवताओं के किरीट रूपी निकषों से रगड़कर तेज किये हुए अर्द्ध चन्द्राकार रूप में दस बाणों के अग्र नखाग्र के बहाने दिखाई देते हैं।

यहाँ भी देवी की जंघाओं को स्मर के तूणीर का संकल्प किया गया है।

४२. गूढगुल्फा

मांसल होने से हड्डियाँ न दिखायी देनेवाली एडियोंवाली। एडी की शोभा और पाँव की सुन्दरता को व्यंजित किया जाता है।

४३. कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्विता

कूर्म की पीठ को जीतनेवाले प्रपदोंवाली। पाँवों का ऊपरी भाग उभरा हुआ रहना सौन्दर्य का लक्षण माना जाता है सामुद्रिका शास्त्र में।

४४. नखदीधितिसंछन्ननमज्जनतमोगुणा

वह देवी जिनके पांवों के नखों की किरणों से छिपा हुआ है देवी के सम्मुख नमस्कार करनेवाले जनों का तमोगुण।

देवी के पादपद्मों में नमस्कार करनेवाले जनों के भीतर का अज्ञानरूपी तम देवी के पादनखों से निकलनेवाली किरणें दूर कर देती हैं। देवी के नखों की किरणों को देखकर अपने अज्ञान को दूर करने में मनुष्य समर्थ नहीं हैं। इसलिए नमज्जन से मतलब ब्रह्मा विष्णु आदि के लिए ही उक्त है, यही व्याख्याताओं का समर्थन है। यदि वही उचित व्याख्या है, तो यह साफ व्यंजित होता है कि ब्रह्माविष्णु आदि देवताओं का अज्ञान भी दूर करने में समर्थ है देवी की नख कान्ति।

४५. पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहा

दोनों पादों के प्रभाजाल से निन्दित कमलसूनवाली। देवी के पाद अपनी प्रभा से कमलसून को पराजित करते हैं। इसका यही आशय है कि वे पाद कमलसूनों की शोभा से अधिक शोभायुक्त और अधिक मृदुल है।

४६. शिंजानमणिमंजीरमंडितश्रीपदांबुजा।

शिंजित होनेवाले याने ध्वनितहोनेवाले मणि मंजीरों से अलंकृत ऐश्वर्य युक्त पाद पद्मोंवाली।

देवी के पांवों में पडी पायलें पैरों की चाल के साथ सिंजन प्रकट करती हैं। ऐसी पायलों की क्या ज़रूरत हैं देवी के पांवों को, क्योंकि उसके धारण करने से जो सौन्दर्य हो सकता है उससे ज़्यादा मनोहर हैं देवी के पादपद्म।

४७. मरालीमन्दगमना

हंसिनी की गति की तरह मन्द गमन करनेवाली

कवियों ने रूपवती स्त्रियों की चाल को हंसिनी की गति के साथ उपमित किया है।

४८. महालावण्यशेवधिः

महती लावण्य के लिए निधिस्वरूपिणी

सर्व प्रकार के सौन्दर्य का आधार देवी है। जितनी सुन्दर वस्तुएं जगत में हैं उन सबका सौन्दर्य देवी से प्राप्त है।

त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुम्
कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिंचिप्रभृतयः
यदा लोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा
तपोभिः दुष्प्रापामपि गिरिश सायूज्यपदवीम् (सौ.ल. १२)

अयि तुहिन गिरि कन्ये, ब्रह्मादि कविश्रेष्ठ भी आपके सौन्दर्य का वर्णन तुलना न पाने से कैसे कर सकते हैं? अर्थात् नहीं कर सकते। देवसुन्दरियाँ उस सौन्दर्य-दर्शन की उत्सुकता के कारण कठोर तपस्या से भी अप्राप्य गिरीश का सायूज्य मन ही मन ही प्राप्त करती हैं।

४९. सर्वारुणा

जो देवी वस्त्र आभरण रूप आदि सब में अरुणवर्ण की हो।

उद्यत्भानु सहस्राभा , निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला , अरुणारुण कौसुंभ वस्त्रभास्वत्कटीतटी इत्यादि अनेक नामों से देवी का अरुणवर्ण सूचित किया गया है। यहाँ सर्वारुणा कहकर उनका समाहार किया जाता है।

अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहसिते
शिरीषाभा चित्ते दृषदुपलशोभा कुचतटे
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरुरसिजारोहविषये
जगत्रातुं शंभोर्ज्जयति करुणा काचिदरुणा - (सौ.ल. ९३)

इस सौन्दर्य लहरी के श्लोक में देवी का वर्णन इसप्रकार किया गया है। देवी जगत् का त्राण करने के लिए सर्वोत्कर्ष के साथ रहती हैं और अरुणवर्ण से रहती हैं और परमशिव की करुणाशक्ति के रूप में विराजमान हैं।

५०. अनवद्यांगी

कोई भी कमी न हो, ऐसे अंगोंवाली
देवी के अंग-प्रत्यंग पूर्ण एवं सुन्दर हैं।

५१. सर्वाभरणभूषिता

चूडामणि से लेकर पादांगुलीय तक के सभी आभरणों से अलंकृत देवी।

(यहाँ तक देवी का अवतार रूप और केशादिपाद का स्थूल रूप वर्णन प्रस्तुत किया गया है)

५२. शिवकामेश्वरांकस्था

कामेश्वर शिव के अंक में रहनेवाली.।

शिव को कामेश्वर नाम से जो वर्णित है, उसकी अधिक व्याख्या अपेक्षित है। कामः शब्द से कमनीय रूपवाले अथवा इच्छित रूप धारण करने में समर्थ-यही भाव निकलता है। मन्मथ से सम्बन्धित काम शब्द इसी भाव को लेकर है। मन्मथ से ज़्यादा सुन्दर, यही यहाँ आशय है। कामः शब्द का प्रज्ञान भाव भी है। इसलिए कामेश्वर से मतलब है सारे ज्ञान के ईश्वर। और एक अर्थ यही है कि जगत की सृष्टि करने की इच्छा रखनेवाले कामेश्वर हैं।

अर्थ जो भी स्वीकार किया जाय, तब भी उसी कामेश्वर के अंकस्थल में विराजनेवाली, यही इस नाम का भाव है। अंकस्था शब्द का सामान्य अर्थ तो है शिव की गोद में रहनेवाली।

शिव में ही स्थित रहनेवाली, शिव से भिन्न न होनेवाली, इस प्रकार भी व्याख्या की जाती है। शिव की चेतना स्वरूपिणी-वही पराशक्ति।

कामेश्वरांकस्थ सदा निवासे
कालात्मिके कन्दलितानुकम्पे
कल्पावसानोत्थितकालिरूपे
कामप्रदे कल्पलते नमस्ते

इसप्रकार ललितोपाख्यान में ब्रह्मादि देवता देवी की स्तुति करते हैं (ललि-२७-२९)

५३. शिवा

उपर्युक्त व्याख्या के साथ इस शब्द का अर्थसंकल्प किया जा सकता है। शिव शब्द का स्त्रीलिंग रूप है शिवा। यहाँ पुल्लिंग-स्त्रीलिंग शब्दों का अन्तर केवल व्यावहारिक भाषा में है। शिव और शिवा इन शब्दों के अर्थ में भेद नहीं है। शिवा का अर्थ है मोक्ष देनेवाली, शोभन गुणोंवाली, परमात्म रूपिणी, स्वयंप्रभा, परानन्दा, संसार निवारणी पराशक्ति।

५४. स्वाधीनवल्लभा

वे, जो अपने अधीन रहनेवाले पति के साथ हैं।

शिव शक्ति के अधीन हैं और अपने शरीर का आधा भाग उन्हें सोंपे हुए हैं। इस प्रकार वे अर्द्धनारीश्वर कहलाते हैं। सौन्दर्य लहरी में बताया गया है कि शिव अपनी शक्ति के बिना प्रभावी नहीं रह सकते।

'शिव शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्
नचेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि
अतस्त्वामाराध्यां हरि हरविरिंचादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति'

उपर्युक्त प्रथम श्लोक में शंकर भगवत्पाद का अभिमत यही है।

सुभगोदय में " परोपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किंचन शक्तस्यात् परमेशानि शक्त्यायुक्तोभवेद्यति " कहा गया है। (शक्ति के बिना परः शक्तिहीन है। कुछ करने में अशक्त है। शक्ति के साथ हो, तो कर्म में उन्मुख हो सकते हैं) वामकेश्वरतंत्र में चतुश्शति में "परोपिशक्तिरहितः शक्त्यायुक्तोभवेद्यदि सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्तएवहि " कहा है।

'स्वाधीन वल्लभा' नाम का अर्थ यह सूचना भी देता है कि वल्लभ को स्वाधीन बना लेनेवाली है देवी। शर्याति की पुत्री सुकन्या और इन्द्रमहिषी इन्द्राणि दोनों ने देवी को प्रसन्न करके अपने-अपने पतियों को स्वाधीन बना लिया है।

५५. सुमेरुमध्यश्रृंगस्था

महामेरु पर्वत के मध्य श्रृंग में रहनेवाली सुमेरुपर्वत की तीन चोटियाँ और उनके मध्य एक चौश्रृंगी चोटी है। उपर्युक्त तीन चोटियाँ ब्रह्मा, विष्णु और परमेश्वर के निवासस्थान हैं। इन

तीनों चोटियों के त्रिकोण रूप में मिलने से बीच में एक चोटी है, जो देवी का निवासस्थान है। ललितास्तव रत्न में दुर्वासा महर्षि का निम्न प्रकार वर्णन है:

"स जयति सुवर्णशैलः सकलजगत्चक्रसंघटितमूर्तिः
कांचननिकुंजवाटीकन्दलदमरी प्रपंच संगीतः
हरिहयनैर्यृत मारुतहरितामन्तेष्ववस्थितं तस्य
विनुमस्सानुत्रितयं विधिहरिगौरीशविष्टपाधारम्
मध्ये पुनर्मनोहर रत्नरुचिस्तबकरंजितदिगन्तम्
उपरि चतुश्शतयोजनमुत्तुंगं श्रृंगपुंगवमुपासे"

५६. श्रीमन्नगरनायिका

सर्व विभूतियों से पूर्ण नगर की नायिका। पुराणों में ललितादेवी के वासस्थानों का परामर्श है। मेरु पर्वत के मध्य श्रृंग में विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सारे सौभाग्य-निधान नगर का वर्णन ललितास्तवरत्न में मिलता है। 'तत्रचतुः शतयोजना परिणाहं देवशिल्पिना रचितम्, नाना सालमनोज्ञं नमाम्यहं नगरमादि विद्यायाः' इस वर्णन में चार सौ योजना विस्तीर्ण का और नाना प्रकार की चहारदीवारियों से मनोहर है आदि विद्यारूपिणी ललिता देवी का मेरुश्रृंग नगर।

'रूद्रयामलं' में इसप्रकार वर्णित :- "अनेक कोटि ब्रह्माण्ड कोटीनां बहिरूर्ध्वतः सहस्र कोटि विस्तीर्ण सुधासिन्धोस्तु मध्यमे रत्नद्वीपे जगद्वीपे शतकोटि प्रविस्तरे पंचविंशति तत्वात्म पंचविंशति वप्रकैः त्रिलक्षयोजनोत्तुंगैः श्रीविद्यायाः पुरं शुभं।

सौन्दर्यलहरी (८) में वर्णित हैं:-

"सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपापवनवतिचिन्तामणिगृहे
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यंकनिलयाँ
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदान्दलहरीं"

सौन्दर्य लहरी में भी बताया गया है कि सुधा सिन्धु के मध्यस्थ रत्नद्वीप में देवी का निवासस्थान है। ललितोपाख्यान में २८ से ८० तक के अध्यायों में ललिता देवी के सोलह नगरों का वर्णन है। भण्डासुर वध के पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुब्रह्मण्य आदि देवताओं ने देवशिल्पी विश्वकर्मा और सुरशिल्पी मय को बुलाकर नित्य ज्ञान समुद्र ललिता देवी के लिए विश्वविख्यात सोलह नगरों का निर्माण करने की अनुज्ञा दे दी। उन नगरों को किन किन जगहों में निर्मित करना है, यह भी वतायाः-

"प्रथमं मेरु पृष्ठे च निषधे च महीधरे
हेमकूटे हेमगिरौ पंचमे गन्धमादने
नीलमेषे च श्रृंगाख्ये महेन्द्रे च महागिरौ

क्षेत्राणि वा नवैतानि भौमानि विदितान्यथ
औदकानि च सप्तैव प्रोक्तान्यखिलसिन्धुषु
लवणाब्धीक्षुसाराब्धि सुराब्धि घृतसागराः
दधिसिन्धुः क्षीरसिन्धुर्ज्जलसिन्धुश्च सप्तमः
पूर्वोक्ता नवशैलेन्द्राः पश्चात्सप्त च सिन्धवः
आहत्यषोडशक्षेत्राण्यंबा श्रीपुरक्नुप्तये" (ललितोपाख्यानं-२८-१६-१९)

(मेरुपृष्ठ, निषध,हेमकूट, हेमगिरि, गन्धमादन, नीलमेष, श्रृंग, महेन्द्रम, महागिरि इत्यादि नौ पर्वतों में नौ नगर भी, जैसे लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, घृत समुद्र, दधिसमुद्र, क्षीरसमुद्र, सुधासमुद्र इन सात समुद्रों में सात नगर देवी के निवास स्थान हैं) नगरों का विवरण ललितोपाख्यान में सविशद बताया गया है।

इन नगरों की नायिका है श्रीमन्नगरनायिका । श्रीमन्नगर शब्द श्रीचक्र को व्यंजित करता है। श्रीचक्र की नायिका है देवी, यही व्याख्या तंत्रयोग में है।

५७. चिन्तामणिगृहान्तस्था

चिन्तामणि (इच्छित वस्तु को देनेवाली मणि) से बनी जगह में रहनेवाली।

पूर्व नाम की व्याख्या में सौन्दर्य लहरी में इसप्रकार वर्णन है- 'मणिद्वीपेनीपो पवनवतिचिन्तामणिगृहे'

" सकलविबुधसंसेव्यं चिन्तामणिगणरचितं चिन्तां दूरीकरोतुमे सदनं " - (ललितास्तव रत्नं)।

देवी के गृह के लिए चिंतामणि पत्थर ही निर्माण में लायी गयी है। उन मणियों की ऐसी ताकत है कि वे उन सब को देने में समर्थ हैं जो अभिलषित है। इस स्थिति में यह कहने की ज़रूरत नहीं कि उस गृह में रहनेवाली देवी के अनुग्रह से उपासक क्या नहीं पा सकते?

चिन्तारूपी मणिगृह में रहनेवाली, यह व्याख्या भी की जा सकती है। तब यही तात्पर्य हे कि उपासक के हृदय में रहनेवाली है देवी।

५८. पंचब्रह्मासनस्थिता

पांच ब्रह्मों से निर्मित आसन में रहनेवाली।

(ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश इन चारों को पैरों के रूप में और सदाशिव ऊपरी आसन की परत बनाकर जो आसन बनाया हुआ है उसे पंच ब्रह्मासन कहते हैं।

"गतास्ते मंचत्वं द्रुहिण हरि रुद्रेश्वर भृतः
शिवस्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः
त्वदीयानाम् भासां प्रतिफलनरागारुणतया
शरीरी श्रृंगारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकं।" (सौ.ल. ९२)

हे देवी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर ये भृत्य आपका मंच बने हुए हैं। सदाशिव अपनी स्वच्छ धवल छाया के साथ ऊपर का तख्ता बनकर आपकी अरुण कान्ति का प्रतिबिम्ब पडने से मानों मूर्तिमान श्रृंगार रस जैसे आपको आनन्द प्रदान करता है। ललितोपाख्यान में पंचब्रह्मासन का वर्णन निम्न प्रकार है:

"तत्र श्री ललितादेव्याः पंच ब्रह्ममयं महत्
जगत्ति मंचरत्नं तु प्रपंचत्रयमूलकं
तस्य मंचस्य पादास्तु चत्वारः परिकीर्तिता
दश हस्तसमुन्नम्रा हस्तत्रितयवेष्टनाः
ब्रह्माविष्णुमहेशानेश्वर रूपत्वमागताः
शक्तिभावमनुप्राप्ताः सदाश्रीध्यानयोगतः
एकस्तु मंचपादस्याज्जपाकुसुमभासुरः
ब्रह्मात्मकः सविज्ञेयो वह्निदिग्भागमास्थितः
द्वितीयो मंचपादस्तु महानीलोपलप्रभः
बिष्ण्वात्मकः सविज्ञेयो रक्षोदिग्भागमाश्रितः
त्रितीयो मंचपादस्तु शुद्धस्पटिकनिर्म्मलः
रुद्रात्मकः स विज्ञेयो वायुदिग्भागमाश्रितः
एते सर्वे सायुधाश्च सर्वालंकारभूषिताः
उपर्यधः स्तम्भरूपा मध्ये पुरुषरूपिणः
श्रीध्याननिमीलिताक्षाश्च श्रीध्यानान्निश्चलांगकाः
तेषामुपरि मंचस्य फलकस्तु सदाशिवः
विकासिदाडिमच्छायश्चतुर्न्नल्वप्रविस्तरः
नल्व षड्कायामवांश्च सदा भास्वरमूर्तिमान" (ललितोपाख्यानं ३३-४९-५८)

(वहाँ (बिन्दुपीठ पर) श्री ललितादेवी के पंचब्रह्मस्वरूपी मंचरत्न की अवस्थिति है। वह त्रैलोक्य के लिए मूल कारण है। उस मंच के चार पांव दस हाथ ऊँचे और तीन हाथ आवरण का है। वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर इन देवताओं के रूप के हैं और देवी के निरंतर ध्यान से शक्ति-स्वरूप धारण करनेवाले हैं। मंच का एक पांव जपापुष्प जैसा शोभित होता है। ब्रह्मस्वरूपी वह पांव अग्निकोण में है। निर्ऋतिकोण का दूसरा पांव विष्णुरूपी है। वह इन्द्रनीलमणि की शोभा धारण करनेवाला है। शुद्धस्फटिक निर्मित तीसरा पांव रुद्ररूपी है। वह वायुकोण में है। चौथा पांव कर्णाकार पुष्प जैसा कपिलवर्ण का है। ईश्वर रूपी वह पांव ईशानकोण में है। ये सब आयुधधारी और सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं। वे ऊपर और नीचे स्तंभ की आकृतियों में और बीच में पुरुषरूपी होकर रहते हैं। और वे श्रीदेवी के ध्यान में आँखें बंद किए हुए हैं और निश्चेष्ट हैं। इन चार पांवों के ऊपर मंच का तख्ता बनकर सदाशिव खिले दाडिमपुष्प की प्रभा से युक्त

रहते हैं। सदाशिवरूपी मंच फलक चार नल्व विस्तार का और छे नल्व लंबा है और हमेशा भासुर रूप धारण किए हुए हैं।

५९. महापद्माटवीसंस्था

महापद्मों से निबिड वन में रहनेवाली। महान पद्मों से निबिड वन, यह भी अर्थ लिया जा सकता है। प्रथम पक्ष में स्थलकमल (स्थल में पैदा होनेवाले कमल) हैं। ' त्रिलक्षयोजनायाम महापद्मवनावृतम् ' - (रुद्रयामलं)

दूसरे पक्ष में " मणिसदनसालयोरधिमध्यं दशताल भूमिरुहदीर्घैः पर्णैः पयोदवर्णैः युक्तां काण्डैश्चयोजनोत्तुंगैः मिलितैस्तालीपंचकमानैर मिलितां च केसर कदम्बैः संततगलित मरन्दस्रोतोनिर्यन्मीलिन्दसंदोहां। पाटीरपवनबालकधाटीनिर्यत्परागपिंजरितां पद्माटवीं भजामः" इस प्रकार ललितास्तव रत्न में पद्माटविका वर्णन हैं।

ललितोपाख्यान में पद्माटवि का वर्णन निम्न प्रकार है।:-

"पद्माटवीस्थलं वक्ष्ये सावधानो मुने श्रृणु
समस्तरत्नखचिते तत्र षड्योजनान्तरे
परितःस्थलपद्मानि महाकाण्डानि सन्तिवै
काण्डास्तुयोजनायामा मृदुभिः कण्टकैर्वृताः
पत्राणि तालदशकमात्रायामानि सन्तिवै
केसराश्च सरोजानाम् पंचताल समायताः
किष्कूशतसमुन्नम्राः कर्णिकाः परिकिर्तिताः
अत्यंतकोमलान्यत्र सदाविकसितानि च
नव सौरभ्य हृद्यानि विशंकटदलानि च
बहुशः सन्तिपद्मानि कोटीनामपि कोटिशः"

(महर्षी, अब मैं पद्माटवी की बात कहूँगा। ध्यान से सुनिए। सारे रत्नों से जडित और छह योजन विस्तीर्णवाली इस पद्माटवी की चारों ओर बडे मोटे खम्भोंवाले स्थलपद्म हैं। उनकी शाखाएं एक योजन लम्बी और मृदुल कांटों से भरी हैं।

उनके पत्ते दस तालवृक्षों की लम्बाई के और दल पांच तालवृक्षों की लम्बाई के हैं। उनके केसर सौ गज ऊँचे हैं। पद्माटवी में ऐसे करोडों पद्म हैं जो सदा खिले, नव सुरभि फैलानेवाले, अत्यंत मृदुल और निबिड हैं। - (ललितोपाख्यान-३१-८०-८४)

'श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हाथी' यह आशय भी महापद्म को दिया जा सकता है। ऐसे हाथियों से भरे जंगल में रहनेवाली 'दंडिनी नामक वाराही रूपिणी'

सौभाग्य भास्कर बताता है कि महापद्माटवी शब्द का आशय ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रदलपद्म है । 'तस्मादूर्ध्वं कुलं पद्मं सहस्रारमधोमुखं..... महापद्मवनं चेदं समानं तस्यचोपरि'-(स्वच्छन्द

तंत्र) इस प्रकार यह व्याख्या की जा सकती है कि महादेवी सहस्रदलपद्म में रहनेवाली हैं। सारे वर्णों से शोभित एवं सारे आयुधों से अलंकृत हैं।

६०. कदम्बवनवासिनी

कदम्ब वन में रहनेवाली। नाम ५६ में वर्णित श्रीमन्नगर नायिका नाम की व्याख्या के सिलसिले में उद्धृत सौन्दर्यलहरी का पद्य देखिए।

उसमें वर्णित है कि सुधासिन्धु के मध्य में कल्पवृक्षों से भरे उद्यान से आवृत मणिद्वीप में कदम्बवृक्षों से युक्त उपवन के साथवाले चिन्तामणिगृह।

मंत्रिणी देवी के सोलह नामों में एक है यह। ललितोपाख्यान में यही बताया गया है-

"तां तुष्टुवुः षोडशभिर्नामभिर्नाकवासिनः
तानि षोडश नामानि समाकर्णय कुम्भज
संगीतयोगिनी, श्यामा, श्यामला, मन्त्रिनायका
मंत्रिणी सचिवेशानी, प्रधानेशी, शुकप्रिया
वीणावती, वैणिकी, च मुद्रणी, प्रियकप्रिया
नीपप्रिया, कदम्बेशी, कदम्बवनवासिनी
सदामदा च नामानि षोडशैतानिकुंभज
एतैसचिवेशानीं सकृस्तौति शरीरवान्
तस्यत्रैलोक्यमखिलं वशेतिष्ठत्यसंशयम्" (ललितोपाख्यानं-११-६८-७४)

' कल्पद्रुमाकल्पकादम्ब कान्तार वासप्रिये' इस प्रकार श्यामलदण्डक में श्यामला देवी की स्तुति है।

ललितोपाख्यान में श्रीपुर वर्णन के बीच कदम्बवाटि के बारे में निम्न वर्णन है:-

"तत्र दिव्या नीपवृक्षा योजनद्वयमुन्नताः
सदैव मदिरास्यन्द मेदुर प्रसवोज्ज्वलाः
एभ्यः कादम्बरीनाम योगिनी भोगदायिनी
विशिष्टामदिरोत्पन्ना मंत्रिण्याः सततं प्रिया
ते नीपवृक्षाः सछायो बहुलाः पल्लवाकुलाः
आमोदलोलभृंगालिझंकारैः पूरितोदराः
तत्रैव मन्त्रिनाथाया मन्दिरं सुमनोहरम्" (ललितोपाख्यानम्-२८-८२-८८)

महापद्माटवीसंस्था , कदम्बवनवासिनी ये दोनों नाम मंत्रिणी देवी के नाम हैं।

६१. सुधासागरमध्यस्था

सुधासागर के मध्य में रहनेवाली। नाम ५६ की व्याख्या में उद्धृत सौन्दर्यलहरी का पद्य देखिए। अमृतसमुद्र के मध्य में सुरविटपिवाटीपरिवृत मणिद्वीप में स्थित चिन्तामणिनिर्मित मणिगृह देवी का आवासस्थान है।

श्रीचक्र के नौ त्रिकोणों में निम्नस्थित एवं शिवात्मक स्वरूपी चार कोणों के ऊपरवाले शक्त्यात्मक पांच त्रिकोणों के नीचे स्थित प्रदेश को बैन्दवस्थान बताया जाता है। उस बैन्दवस्थान को सुधासिन्धु नाम है।

''बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पंचयोन्यस्सुरद्रुमाः
तावि नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्डपम्
तत्र चिन्तामणिगृहं देव्या मन्दिरमुत्तमम्
शिवात्मके महामंचे महेशानोपबर्हणे
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी
शिवार्कमण्डलं भित्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्
तदुत्भूतामृतस्यन्दि परमानन्दनन्दिता
कुलयोषित् कुलंत्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा''

यही वामकेश्वरतंत्र में प्रतिपादन है। यह उद्धरण यहाँ इसलिए दिया गया है कि उपर्युक्त व्याख्यायित सारे नामों का अपना तंत्रपरक अर्थ होता है। आगे के नामों की व्याख्या में उनके बारे में सामान्यतः सूचित किया जाना चाहिए। फिर भी वह गुरुमुंह से स्वीकार करना उत्तम है।

६२. कामाक्षी

जिन्हें कामद (कमनीय) अक्षियाँ हैं (नयन)

''आद्यापि लक्ष्मीस्सर्वेषांपुरतः परमेश्वरी
विरंचिं दक्षिणेनाक्ष्णा वामेन हरिमैक्षत
दृष्टमात्रे तदा वाणी कमले ते उभे ततः
प्रादुर्भूते प्रभापुंजपंजरांतरसंस्थितेः''

आदिलक्ष्मी और परमेश्वरी श्री ललितादेवी ने सब के सामने अपनी दाहिनी आंख से ब्रह्मा और वाम नयन से विष्णु को देखा। देवी के वीक्षण मात्र से प्रभापुंजरूपी पंजर के मध्य में वाणी, लक्ष्मी इन देवियों का आविर्भाव हुआ - (ललितोपाख्यान) । क सरस्वती और मा लक्ष्मी के द्योतक हैं। कामाक्षी शब्द का अर्थ है, सरस्वती और लक्ष्मी को जिन आँखों ने जन्म दिया वे आँखोंवाली देवी।

'' तदा प्रभृति कल्याणी कामाक्षीत्यभिधां दधौ
यदुच्चारणमात्रेण श्रीदेवी संप्रसीदति
कामाक्षीति त्रयोवर्णाः सर्वमंगल हेतवः'' (ललितोपाख्यान)

(उस समय से कल्याणी देवी ने कामाक्षी नाम स्वीकार कर लिया। उस नाम के उच्चारणमात्र से देवी प्रसन्न हो जाती है। कामाक्षी नाम के तीन अक्षर सारे मंगल का कारण बने हुए हैं। यह व्याख्या भी मिलती है कि कामेश ही जिसके नेत्र बने हैं वह देवी।

कांचीपुरवासिनी देवी कामाक्षी नाम से प्रसिद्ध है। तमिलनाडु में ब्रह्माण्ड पुराण में कामाक्षी नाम से प्रसिद्ध हैं। तमिलनाडु में यह प्रसिद्ध उक्ति है, काँचि में कामाक्षी और मधुरा में मीनाक्षी अपने कटाक्षमात्र से देवी भक्तजनों की कामनाओं की पूर्ति करती है वही कामाक्षी है, यही नाम ब्रह्मा ने उन्हें दिया है।

६३. कामदायिनी

कामनाओं का दान देनेवाली। कामद शिव से अयनि होनेवाली। (अयः शुभावहोविधि-अमरम-कोश) इससे देवी का शिव से अभेदत्व कल्पित किया जाता है। कामेश्वर शिव से हकदार रहनेवाली।

"त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगणः
त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनय।
भयात्रातुं दातुं फलमपि च वांच्छासमधिकम्
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ" (सौ.ल.४)

अयि, संसार को शरण देनेवाली देवी! अन्य देवतागण अभय एवं वरद मुद्राओं से अनुग्रह देता है। आप वरदादि मुद्रायें नहीं दिखातीं। भय से मुक्त करने और अपेक्षा से अधिक फल देने में आपके पाँव ही सक्षम हैं । इस प्रकार देवी की कृपा का वर्णन करते हैं सौन्दर्यलहरी में शंकरभगवत्पाद।

६४. देवर्षिगणसंघातस्तूयमानात्मवैभवा

देवताओं और ऋषियों के समूह द्वारा संस्तुति की गयी आत्मशक्ति से युक्त।

इस नाम से लेकर भण्डासुर के साथ युद्ध का वर्णन है।

देवर्षिगणसंघात नाम यहाँ संगत है। देवर्षियों द्वारा समूह रूप से संस्तुत होने से देवी का आत्मवैभव प्रकट होता है। संघात शब्द का एक अर्थ है नरक । तब यही आशय हो सकता है कि नरक पीडा के निवारण के लिए देवर्षियों द्वारा प्रकीर्तित होनेवाली।

संघात शब्द का अर्थ सम्यक रूप से घात् है। अर्थात् भण्डासुर वध के लिए देवर्षियों द्वारा संस्तुत होने से प्राप्त आत्मवैभव।

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं और वसिष्ठादि ऋषियों के ('आदित्य विश्ववसवस्तुषिता भास्वरानिलाः महाराजिक साध्याश्च रुद्राश्च गणदेवता) संघात (समूह) से संस्तुत स्वात्म वैभववाली', इस प्रकार भी व्याख्या की जा सकती है। इस व्याख्या में गण, संघात इन दोनों पदों के अर्थ का पुनरावर्तन नहीं होगा। यहाँ आत्मवैभव शब्द के प्रयोग से तात्पर्य है अनन्त शक्ति संयुत देवी। इसके पक्ष- समर्थन में तंत्रराजवाक्य और सौभाग्य भास्कर नामक व्याख्या में प्रयुक्त निम्न प्रयोग लिया जा सकता है- स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्व विग्रहा ।

भण्डासुरवध के कार्यलाभ के लिए विष्णु महेश एवं ऋषिगणों की अभ्यर्थना जो हुई, इसका तात्पर्य है कि इन्हें भी अप्राप्त शक्ति और ऐश्वर्य देवी में सुलभ है। ऐसा आत्मवैभव देवी में है।

६५. भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्विता

भण्डासुर के वध के लिए उद्युग्न शक्तियों की सेना से युक्त।

यह कथा प्रसिद्ध है कि श्रीपरमेश्वर का तपोभंग करने के लिए आये हुए कामदेव शंभु के तीसरे नेत्र से निकली अग्नि में जल गये। चित्रसेन नामक गणनायक ने कामदेव के शरीर के अवशिष्ट भस्म से एक पुरुष रूप को सृजित किया। वह रूप शंभु की दृष्टि में पडा। महेश की दृष्टि पडते ही उस पुरुष रूप को प्राण मिल गये। मन्मथ के बराबर सुन्दर और महाबली और तेजोरूप उस बालक को चित्रसेन ने शतरुद्रीय नामक मंत्रोपदेश दिया। उसने शतरुद्रीय मंत्र से महेश की आराधना की। भगवान ने प्रसन्न होकर उससे वर मांगने को कहा। उसने यही वर मांगा कि शत्रु का आधा बल मुझे मिले और शत्रु के अश्त्र-शस्त्र से मुझे पीडा न हो जाय। भक्तवत्सल भगवान ने वर दे दिया। उसे साठ हज़ार वर्ष तक जीवित रहकर राजशासन करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। इस घटना को देखकर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे भण्ड नाम दिया।

परमेश्वर की क्रोधाग्नि से जनमा भण्ड रौद्रशील और असुर बना। प्रतापशाली भण्ड असुर राजा हो गया। भण्डासुर के प्रताप के साथ इन्द्र का प्रभुत्व क्षीण हो गया। नारद ने इन्द्र से कहा कि भण्डासुर को पराजित करने के लिए पराशक्ति देवी का आश्रय लेना ही एकमात्र उपाय है। इन्द्र देवगणों के साथ हैमवतवन में पहूँचे और ललिताम्बा को प्रसन्न करने के लिए महती पूजा प्रारंभ की।

इसका पता पाते ही भण्ड देवेन्द्र का तपोभंग करने के लिए सेना समेत हिमवान की तराई पर पहूँचा। अपने भक्तों को असुरों से कष्ट न हो, इस उद्देश्य से जगदम्बिका ने असुर सेना और देवों के मध्य एक उज्ज्वल एवं अभेद्य माया प्राकार सृजित किया। शक्तिशाली तथा भीमकर्मा भण्ड ने दानवास्त्र का प्रयोग करके उस प्राकार को छेद दिया। फिर भी वह पूर्ववत् वहाँ स्थिर रहा। इस प्रकार कई बार असुरास्त्र और वायवास्त्र का प्रयोग कर उसे छेदा था, पर उसका नाश नहीं हुआ। तब भण्डासुर लज्जित होकर लौट गया।

जगदम्बा की इस मदद के बावजूद भी देवता लोग भण्डसेना को देखकर भयातुर बन गये। पूजा और अर्चना छोड़कर भाग खडे हुए। भागने और छिपने से बच नहीं पायेंगे, यह देखकर देवेन्द्र ने एक योजन विस्तीर्ण एवं शोभामय अग्निकुण्ड बनाकर महायाग विधि के अनुसार पराशक्ति की तृप्ति के लिए महामांस का अर्पण करके होम कुण्ड को प्रज्वलित कर दिया। (महामांस से तात्पर्य है देवताओं के शरीर से काट लिया गया मांस)। जब देव वृंद अपने पैर-हाथों का हवन करके फिर पूरे शरीर का ही अर्पण करने लगा, तब श्रीललिता देवी प्रत्यक्ष हो गयी। (चिदग्निकुण्ड संभूता नाम की व्याख्या देखिए)

देवी के दर्शन से सन्तृष्ट देवतागण ललितास्तवराज नामक स्तोत्र (जो बाद में इस नाम से प्रख्यात हो गया) से उनकी स्तुति की। प्रसन्न देवी के सामने नमस्कार कर उन्होंने भण्डासुर के उपद्रवों का स्मरण दिलाया। देवी ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं ही भण्डासुर को मारकर सारा चराचर त्रिलोक तुम्हें प्रदान करूँगी।

ब्रह्मादि त्रिमूर्ति देवी के दर्शनार्थ आये। सब की प्रार्थना सुनकर शक्ति सेना के साथ देवी भण्डासुर के वध की आयोजना की। (देवी की सेना की मुख्य शक्तियों का विवरण आगे के नामों में वर्णित है। ये सारी शक्तियाँ देवी के ही विविध स्वरूप हैं। उनमें अनेकों के नाम देवी के पर्याय बनकर इन सहस्रनामों में भी प्रयुक्त हैं। और अन्य स्तोत्रों में भी हैं। 'भण्डासुर-हननार्थमेकैवानेका' यही गौडपादीयसूत्र की उद्घोषणा है।

उपर्युक्त पुराण कथा का वेदान्तपरक अर्थ श्री भास्कराचार्य ने दिया है। उस व्याख्या के अनुसार देही को निस्तेज करनेवाले आणवमल को भण्ड शब्द प्रयुक्त होता है। प्रत्येक शरीर में फंसा हुआ देही यद्यपि परब्रह्म का अंश है फिर भी जड़ शरीर की अस्थिरता और उससे जनित वासना से संक्लिष्ट रहता है। सुख-दुःख रहित परमात्म चैतन्य को जड़ता से जोड़कर सुख और दुःखों के अधीन जो बनाया जाता है उसे ही आणवमल कहा जाता है। जहाँ आणवमल का नाश होता है वहाँ देही परमात्मा से विलीन हो जायेगी। जब यह कहा जाय कि आणवमल रूपी भण्ड का नाश करनेवाली सेना, तब इसका तात्पर्य यह होता है कि देवी के अनुग्रह से कर्माधीन होना और उससे जनित पुण्य-पाप और सुख-दुःख का नाश होना और वासना संबन्धी तत्वों से मोचित होना।

६६. सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरव्रजसेविता

समारूढ़ सिन्धुर व्रजों से सम्पत्करी देवी द्वारा सेविता।

"ललिता परमेशान्या अंकुशास्त्रात्समुद्गता
सम्पत्करीनामदेवी चचाल सहशक्तिभिः" (ललितोपाख्यानम ११-७)

इस प्रकार ही ललितोपाख्यान में सम्पत्करी देवी की उत्पत्ति का वर्णन है। पहले कहा जा चुका है कि देवी के चार श्रीहस्तों में रहनेवाले आयुधों में एक क्रोधाकर अंकुश है। अंकुश नामक उस आयुध से सम्पत्करी देवी का उत्भव है।

"अनेक कोटि मातंग तुरंग रथ पत्तिभिः
सेविता तरुणादित्यपाटला सम्पदीश्वरी
मत्तमुद्दण्डसंग्रामरसिकं शैलसन्निभम्
रणकोलाहलं नाम सारुरोह मतंगजम्।
तामन्वगा ययौ सेना महती घोरराविणी
लोलाभिः केतुमालाभिरुल्लिखन्ती। घनाघनान्
तस्याश्च सम्पन्नाधायाः पीनस्तनसुसंकटः
कंकटो घनसन्नाहो रुरुचे वक्षसि स्थितः
कम्पमाना खड्गलता व्यरुचत्तत्करे धृता
कुटिला कालनाथस्य भ्रुकुटीव भयंकरा
उत्पातवातसम्पातचालिता इव पर्वताः
तामन्वगा ययुः कोटिसंख्याताः कुंजरोत्तमाः" (ललितोपाख्यान - ११-८-१३)

(सम्पत्करी देवी, जो अनेक कोटि हाथियों, घोडों पैदल सिपाहियों द्वारा सेविता और उदयसूर्य की तरह अरुण वर्ण की है, उन्मत्त एवं भयंकर युद्ध-प्रिय और पर्वताकार रण कोलाहल नामक हाथी पर आरूढ़ हो गयी। देवी के पीछे सेना थी, जो भयानक रव से युक्त और आकाश का स्पर्श करनेवाली पताकायें लिए हुए थी। सम्पदा की अधीश्वरी देवी की छाती पर उत्तुंग स्तनों को दबानेवाली कंचुक थी। यमधर्म की भृकुटि के समान भयजनक तलवार उनकी पाणि में शोभित है। उस देव के पीछे करोडों महागज थे जो प्रलयकालीन सी आंधी में हिलते डुलते पहाडों की प्रतीति देते थे।)

सम्पत्करी देवी की सेना में अश्व-रथ-पदादि सेनाओं की सूचना है, फिर भी हाथियों की सेना ही मुख्य है। विशेष रूप से आरूढ़ सिन्धुरव्रजों द्वारा ललिता देवी की सेवा सम्पत्करी देवी करती हैं। समारूढा पद से तात्पर्य है कि हाथी का नियंत्रण करनेवाली देवियाँ हाथी पर विराजित हैं।

सम्पत्करी शब्द का आशय सुखलालसामय चित्तवृत्ति को सूचित करता है। इस पक्ष में समारूढ सिन्धुरव्रज का प्रयोग शब्द-स्पर्श-रस-इत्यादि विषयसमूह हैं। उनसे सेविता। इस सन्दर्भ में स्मरण करने की बात यह है कि सम्पत्करी देवी क्रोधाकार अंकुश से पैदा हुई है। सम्पदा क्रोधादि विकारों पर आधारित है। सम्पदा का प्रयोजन सुखलोलुपता है। वह सुख शब्द स्पर्श रसादि इन्द्रिय विषयों में सीमित रहता है। इन सबकी अधिनायिका सम्पत्करी देवी विषय प्रचोदित हाथियों स मिलकर ललितादेवी के आश्रय में रहती है। उपर्युक्त आणवमल का सम्बन्ध भी विषयलालसा के साथ संबन्धित है। ललितादेवी की कृपा मिलेगी तो सम्पत्करी देवी अधीन में आयेंगी। विषय सुखों के साथ जो सम्बन्ध है उसका निवारण होगा। यही नहीं, यदि उपासक की कामना भौतिक अनुग्रहों पर है, तो देवी के प्रसाद से उनकी अनुचरी सम्पद्करी की कृपा का प्रयोजन होगा ही।

६७. अश्वारूढ़ाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृता

अश्वारूढ़ा नामक देवी द्वारा अधीन में लाये गये करोड़ों अश्वों से घिरी हुई।

"अथ श्री ललितादेव्या श्रीपाशायुधसम्भवा
अतित्वरितविक्रांतिरश्वारूढ़ा चलत् पुरः"

(श्री ललिता देवी के पाश (ललितोपाख्यानम-११-१४) नामक आयुध से अश्वारूढ़ा नामक देवी का उदय हुआ। वह त्वरितगामी देवी सेना के आगे आगे रही।)

देवी के आयुधों में से एक है रागस्वरूपा पाश। उसमें से अश्वारूढ़ा नामक देवी का जन्म हुआ।

"तया सह हयप्रायं सैन्यं हेषातरंगितम्
व्यचलत् खुरकुद्दालनिर्दारितमहीतलम्"

उस देवी के साथ हेषातरंगित (अश्वों के शब्द से लहराते) सेना खुरपतनों से भूमि को वितीर्ण करते हुए चली। उन घोड़ों की नस्लों का वर्णन करते हुए ललितोपाख्यान निम्न प्रकार बताता है:

"अपराजित नामानमतितेजस्विनं चलम्
अत्यंतोत्तुंगवर्षमाणं कविकाविलसम्मुखम्
पार्श्वद्वयेपि पतित स्फुरतकेसरमण्डलम्
स्थूलवालधि विक्षेपक्षिप्यमाणपयोधरम्
जंघाकाण्डसमुन्नद्ध मणिकिंकिणिभासुरम्
वादयन्तमिवोच्चंडैः खुरनिष्ठुरकुट्टनैः
भूमण्डलमहावाद्यं विजयस्य समृद्धये
हेषमाणंप्रतिमुहुः सन्दर्शितगतिक्रमम
आलोलचामरव्याजाद्वहन्तं पक्षती इव
भांण्डैर्मनोहरैर्युक्तं घरघरीजालमण्डितम्
हेषाघोषस्य कपटात् हुंकुर्वाणमिवासुरान्
अश्वारूढा महादेवी समारूढाहयं ययौ
चतुर्भिबाहुभि : पाशमंकुशं वेत्रमेव च
हयवलगांचदधती बहुविक्रमशालिनी
तरुणादित्यसंकाशा ज्वलत्कांतितरंगिणी
संचचाल हयारूढा नर्तयन्तीव वाजिनम्"

(अश्वारूढ़ा नामवाली महादेवी अपराजित नामक घोडे पर सवार होकर सेना के आगे-आगे चली। वह घोड़ा अतीव तेजस्वी और तेज चलनेवाला था। उसकी चाल उत्तुंग रही थी। उसके मुख पर बागडोर शोभित थी। दोनों तरफ गले की रोयें पड़ी हुई थीं। मोटी पूंछ की चाल मेघों को हिलानेवाली रही थी। जघनों में बंधे रत्नकिंकिणियाँ शोभित हो रही थीं। उच्चण्ड रीति से उसका खुरप्रताडन का भेरीनाद देवी की विजय-सूचना देता था। दोनों तरफ हिलते-डुलते चामर ऐसी प्रतीति देते थे मानों घोडा पंख फैलाकर उड़ रहा हो। उसका हेषारव असुरों के नाश का हुंकार जैसा रहा। उदय सूरज की शोभा से युक्त एवं महापराक्रमशालिनी अश्वारूढ़ादेवी ने अपने चार करों में पाश, अंकुश, फावडा, बागडोर इन आयुधों को पकड़कर घोडे को ऐसा चलाया मानों उसे नचा रही हो।)

अश्वारूढा शब्द का अर्थ है घोडे पर चढी हुई। तुरंगेषुस्थिरत्वाच्च साश्वारूढेति गीयते - इसप्रकार त्रिपुरा सिद्धांत में वर्णन है। श्रीललितादेवी की तुरगसेना का सारा श्रेय इसी देवी को है। अश्वारूढादेवी के नेतृत्व में करोडों अश्वों से आवृता - यही नाम का वाच्यार्थ है।

रहस्यार्थ व्याख्या के अनुसार अश्व शब्द इन्द्रियों के द्योतक है। इन्द्रिय रूपी घोडों पर आरोहण करनेवाला मन है। एक ही मन अनेक इन्द्रियों के द्वारा सुख-दुःखों का अनुभव करता है। अश्वारूढ़ा शब्द को बहुवचन रूप में मानेंगे तो यही अर्थ कि अनेक मन में एक ही समय बहु संख्यक इन्द्रियों के द्वारा प्रवर्तन में व्यापृत, लिया जा सकता है।

अश्वारूढ़ादेवी ललितादेवी के हाथ के पाश नामक आयुध से पैदा हुई। पहले ही सूचित किया गया है कि वह आयुध रागस्वरूपी है। जीवों को आपस में मिलानेवाला राग है पाश।

परमात्मा एकाकी और अपरिछिन्न है। वही परमात्मा देह में निबद्ध होकर विभिन्न व्यक्तित्वों को स्वीकार करके वासना और कर्म के अनुरूप व्यापार करेंगे तब उन वासनाओं और अभिरुचियों को आपस में मिलानेवाले पाश से जनित मनोवृत्तिनियन्त्रणस्वरूपी बनकर अश्वारूढादेवी इन्द्रियों रूपी अश्वों पर आरूढ होकर उन्हें नियंत्रित कर देती हैं। ललितादेवी के आकर्षण में रहनेवाले मन को ही यहाँ चित्रित किया जाता है।

अश्वारूढ़ादेवी त्रयोदशाक्षर मंत्र का स्वरूप है। मंत्रपरक अर्थ गुरुमुख से जानना चाहिए।

६८. चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृता

चक्रराज नामक रथ में रखे हुए सारे आयुधों से अलंकृता

भण्डासुर वध के लिए तैयार देवी का रथ है चक्रराज रथ। युद्ध के लिए उद्युग्न होने से सारे आयुध रथ में रखे हुए हैं। सारे आयुधों के साथ रथ में विराजमान हैं देवी।

ललितोपाख्यान में (१२ अध्याय) इस रथ का वर्णन है। नौ तलों के आरोह से युक्त है चक्रराज रथ। उस वर्णन के अनुसार वह रथ आनन्दध्वज से अलंकृत, नौ ऊपर-ऊपर के पहाडों से युक्त, दस योजन ऊँचा और चार योजन विस्तारवाला है। चक्रराजरथ देवीस्वरूप श्रीचक्र ही है। इस पक्ष में सारे आयुधों से तात्पर्य है आत्मज्ञान साधन।

चक्रेश नामक सिद्धि को ही चक्रराज रथ बताया जा सकता है। इस पक्ष में सब कर्मों को आयुध मानना है। सभी कर्म ज्ञान में परिसमापित होते हैं, यही गीता कहती है। सर्वकर्म परिष्कृता इस अर्थ में इस नाम को शुद्ध विद्या को ही सूचित किया जाता है। 'शुद्धवद्योदयाच्चक्रेशत्वसिद्धि'- (वार्तिकम)

६९. गेयचक्ररथारूढ़मंत्रिणीपरिसेविता

गेयचक्रस्थ पर आरुढ़ हुई मत्रिणी देवी द्वारा सेविता

ललिता देवी के ईख के धनुष से उद्भूत संगीत-देवता तथा देवी की ही मंत्रिणी श्यामांबिका के रथ का नाम है गेयचक्र।

"अथारूह्य समुत्तुंगं गेयचक्रं महारथम्
बालार्कवर्णकवचा मदारुणविलोचना
ईषद् प्रस्वेदकणिकामनोहरमुखांबुजा
प्रेषयन्ती कटाक्षेण किंचित् भ्रूवल्लितांडवैः
समस्तमपि तत्सैन्यं शक्तीनामुद्धतोद्धतम्
पिंचत्रिकोणचक्रेण विरुदेन महीयसा
असामान्येन चान्यासां शक्तीनामुज्चलोदया
निर्जगाम घनश्यामा श्यामला मंत्रिनायका" (ललितोपाख्यानम ११-६५६७)

ललितोपाख्यान में इसप्रकार ही मंत्रिणी देवी की युद्धयात्रा का वर्णन है। सात तहों और सात योजन ऊँचे इस रथ के प्रत्येक परत की आवरण देवियों के नाम इस सन्दर्भ में देना संगत नहीं है।

मंत्रिणी शब्द श्यामांबिका (श्यामलांबिका) शक्ति साम्राज्यवर्तिनी ललितांबिका देवी की मंत्रिणी को सूचित करता है। रहस्यार्थ में त्रिपुरसुन्दरी से सम्बन्धित मंत्रों की अधिष्ठात्री देवी श्यामलांबिका है। गेयचक्ररथ शब्द को यदि गेयात्मक चक्रों का रथ मानें, तो वेदमंत्रों के चक्ररथ अर्थ मिलेगा। तब श्यामलांबिका का मंत्रिणी शब्द अपने भाव में पूर्णता प्राप्त करेगा।

७०. किरिचक्ररथारूढदण्डनाथापुरस्कृता

किरिचक्र नामक रथ पर आरूढ़ दण्डनाथा द्वारा पुरस्कृता (सेविता-आगे चलकर मार्ग दर्शन करनेवाली)

श्रीललिता देवी के हाथ में रहनेवाले पंचतन्मात्रसायकों में से उद्भूत वाराहि नामक देवी शक्तिसेना की अधिनायिका है। उनके हाथ में आधिकारिक मुद्रादण्ड रहता है, इसलिए दण्डनाथा नाम है। 'सर्वदा दण्डपाणित्वाद्दण्डनाथेति गीयते' इसप्रकार त्रिपुरासिद्धांत में उस पद की व्याख्या है। किरियों (वराहों) से आवृता, या किरियों से खींचा हुआ अथवा वराह की आकृतिवाला इस प्रकार भी उस शब्द की व्याख्या हो सकती है।

पांचपरतोंवाले और छे योजन ऊँचे उस किरिचक्र के पर्वों एवं पर्वदेवताओं का वर्णन ललितोपाख्यान के तेरहवें अध्याय में है।

इस नाम के रहस्यार्थ में किरि शब्द का अर्थ किरण है। सृष्टि-स्थिति-संहार रूपी किरणों का चक्रस्वरूप चक्ररथ (समूहचक्र) कालरूपी अन्तक द्वारा आरोहित है। उस देवता द्वारा पुरस्कृता (काल और कालदेवता अन्तक दोनों के अतीत। दोनों से ऊपर)

भण्डासुर वध का वर्णन करते समय ललितोपाख्यान में चक्रराज, गेयचक्र, किरिचक्र इन तीन रथों को एक साथ संचार करने का विवरण है:

"चक्रराजरथो यत्र तत्र गेयरथोत्तमः
यत्र गेयरथस्तत्र किरिचक्र रथोत्तमः
एतद्रथ त्रयं तत्र तैलोक्यमिव जंगमम्
शक्तिसेनासहस्रस्य मध्ये विरुरुचेतराम" (ललितोपाख्यान १३-८४-८५)

(चक्रराजरथ जहाँ जाता है वहाँ गेयचक्र रथ और किरिचक्ररथ भी जाते हैं। जैसे इन तीन रथों को एकसाथ शक्ति सेना सहस्रों के मध्य तीनों लोकों को जंगम बनना पड़ता है उसीप्रकार मेरु, मन्दर, विन्ध्य इन पर्वतों का एक साथ जाने की प्रतीति भी हुई।)

"ललिताचक्रराजाख्य रथनाथस्य कीर्तिताः
षड्सारथय उद्दण्डपाशग्रहणकोविदाः
इरावती प्रथमत स्तथा त्रिपुरभैरवी
संहारभैरवश्चान्यो रक्तयोगिनी वल्लभः
सारसः पंचमश्चैव चामुण्डा च तथा परा
एतास्तु देवतास्तत्र रथसारथयः स्मृताः" (ललितोपाख्यानं १३-८८-९०)

(ललिता देवी के चक्रराज रथ में छे सारथी हैं। वे बागडोर पकड़कर रथ का नियंत्रण करने में समर्थ हैं। इरावती, त्रिपुरभैरवी, संहारभैरव, रक्तयोगिनीवल्लभ, सारस, चामुण्डा ये हैं वे सारथी)

"गेयचक्ररथेन्द्रस्य सारथिस्तु हसन्तिका
किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्तंभिनी सारथिःस्मृता" (ललितोपाख्यान-१३-९१)

(गेयचक्ररथ के सारथी हसन्ति संज्ञक देवी और किरिचक्ररथ के सारथी स्तंभिनी नामक देवता है)

"दशयोजनमुन्नम्रा ललीता रथपुंगवः
सप्तयोजन मुच्छ्रायीगीतचक्ररथोत्तमः
षड्योजन समुन्नम्रः किरिचक्र रथोमुने!
महामुक्तातपत्रन्तु दशयोजनविस्तृतम्
वर्तते ललितेशान्या रथएव न चान्यतः ।
तदेवशक्ति साम्राज्य सूचकं परिकीर्तितम्
सामान्यमातपत्रन्तु रथद्वन्देपि वर्तते" (ललितोपाखअयान-१३-९२-९५)

(हे अगस्त्य! ललितादेवी का चक्रराजरथ दस योजन ऊँचा; मंत्रिणी देवी का गेयचक्ररथ सात योजन ऊँचा और दंडिनी देवी का किरिचक्ररथ छे योजन ऊँचा है। ललितेशानी के रथ में दस योजन विस्तीर्णवाला मोतियोंवाला छाता है। यह छाता शक्तिसाम्राज्य चक्रवर्तिनी नामक स्थान का चिन्ह है। अन्य दोनों रथों के छाते तदनुरूप हैं।)

७१. ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगा

ज्वालामलिनिका नामक देवी द्वारा स्थापित वह्निप्राकार (अग्निरूपी किला) के मध्य रहनेवाली।

यह नाम ललिता देवी की शक्ति सेना और भण्डासुरसैन्य दोनों के बीच हुए युद्ध को याद दिलाता है। जब युद्ध में देवी को पराजित नहीं कर सका तब भण्डासुर ने कूटनीति से देवी को पराजित करने का श्रम किया। युद्ध के नियमों का उल्लंघन करके भण्डासुर की सेना ने आधी रात में अन्धकार में ललिता देवी के चक्रराज रथ पर आक्रमण किया। पीछे से और पार्श्वों से किये गये आक्रमण से पराजित हुआ, तब दण्डनाथा और मंत्रिणी आदि देवियों नें आगे के आक्रमण को रोकने और देवी की रक्षा के लिए चक्रराजरथ और ललिता देवी की सेना को महेन्द्र पर्वत की उत्तर सीमा में सौ योजन विस्तीर्ण का शिबिर निर्मित कर वहाँ स्थापित किया। उसके बाद देवी ने ज्याला मालिनी देवी से कहा-

"वत्से, त्वं वह्निरूपासि ज्वलज्वालामुखाकृतिः
त्वया विधीयतां रक्षा बलस्यास्य महीयसः

शतयोजनविस्तारं परिवृत्य महीतलम्
त्रिंशद्योजनमुन्नम्र ज्वालाप्राकारतां व्रज
द्वारं योजनमात्रं तु मुक्तान्यत्र ज्वलत्तनुः
वह्निसालत्वमापन्ना संरक्ष सकलं बलम्" (ललितोपाख्यानम्-२१-३०-३२)

अयि वत्से, तू वह्नि स्वरूपिणी है। तेरी आकृति जलती हुई अग्नि की है। तू इस सेना का संरक्षण कर। सौ योजन विस्तीर्णवाले इस भूभाग के चारों ओर तीस योजन ऊँचाई पर जलनेवाली ज्वाला बनकर तू सेना के चारों तरफ एक दीवार जैसी बनी रह। एक योजन स्थान को द्वार के रूप में छोड़कर शेष सारी जगहों को ज्वालित कर एक अग्नि दीवार जैसी रहकर सेना का संरक्षण कर।

चारों तरफ अग्नि रूपी बनकर उस नित्या देवी ने ललिता देवी की आज्ञा मानकर उन्हें नमस्कार देते हुए एक अग्नि दीवार जैसी रहकर देवी के शिबिर को अपनी ज्वाला से बचाया।

जवाालामालिनी नामक चतुर्दशीतिथि स्वरूपिणी नित्या देवी द्वारा निर्मित वह्निप्राकार के मध्य रहनेवाली; यही नाम का अर्थ है।

इस संसार में अविराम चलनेवाले सृष्टि-स्थिति-लयादि कार्यकलापों से संबन्धित प्रवृत्तियों का ज्वालामाला और उस ज्वाला मालादि से भरे संसार को ज्वालामालिनी नामक तिथि देवता कह सकते हैं। तिथि देवता कालरूपिणी है। कालगति के अनुरूप चलनेवाले कर्मों की कारणभूता देवी हैं और उनके मध्य निर्विकार रहनेवाली परा स्वरूपिणी चेतना ललिता देवी है।

तंत्रपरक व्याख्या में यही आशय है कि पांच शक्ति त्रिकोणों में समरस भाववाले संकल्पित चार शिवत्रिकोणों के मध्य बिन्दुरूप में रहनेवाली।

"तच्छक्तिपंचकं सृष्ट्या लयेनाग्नि चतुष्टयं
पंचशक्ति चतुर्वह्नि संयोगाच्चक्र संभव" - (उत्तर चतुश्शति)

इस व्याख्या का विशद रूप गुरुमुख से सुनना है।

७२. भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षिता

भण्डासुर की सेना का वध करने में उद्युग्न शक्तियों के विक्रम को देखकर सन्तुष्ट होनेवाली।

ललितादेवी की शक्तिसेना और भण्डासुर की सेना के बीच में हुए युद्ध का वर्णन ललितोपाख्यान में सविस्तार किया गया है। देवी की शक्तिसेना ने किस विक्रम के साथ भण्डासुर की सेना पर आक्रमण करके उनका नाश कर दिया उसे देखकर देवी प्रसन्न हुई।

रहस्यार्थ इस प्रकार है: भण्डासुर जीवात्मा है। भण्डसेना जीवात्माा से संबद्ध विषयवृत्तियाँ हैं। उनको नष्ट करने के लिए उद्युग्न है देवी की सेना, माने ज्ञान स्वरूपिणी शक्तियाँ। अज्ञान का नाश करनेवाली ज्ञान की शक्तियों के कार्यकलापों में आनन्द अनुभव करनेवाली हैं देवी।

७३. नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुका

नित्याओं के पराक्रमाटोप का निरीक्षण करने में उत्सुका।

तिथिदेवता हैं नित्यायें। वे पन्द्रह हैं। त्रिपुर सुन्दरी को भी मिलाकर सोलह हैं। आवर्तित होनेवाले कालचक्र में स्थित रहनेवाली पन्द्रह तिथि देवता रूपभेद हैं, यही आचार्यों का मत है।

"सा हि नित्यास्वरूपेण कालव्याप्तिकरी परा
सर्वं कलयते देवी कलनाकलया जगत्
नित्यायाश्च महाराज्ञी नित्यायाश्च न तद्भिदा" (ललितोपाख्यान-२८-२२-२४)

(परात्मिका ललिता देवी तिथि नित्यारूप को स्वीकार करके काल की पख्याप्तिकारी बनकर कलनाकला के माध्यम से (कर्मकौशल से) संसार को चलाती हैं। तिथिरूपिणी नित्यादेवीयों और महाराज्ञी रूपिणी नित्या देवी में कोई अन्तर नहीं है।

इन नित्या देवियों के नाम का वर्णन वसिष्ठ-संहिता में निम्नप्रकार लिखे हुए हैं:-

"श्रृणुदेवी प्रवक्ष्यामि नित्या शोडशिकार्णवम्
न कस्यचिन्मयाख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्
तत्रादो प्रथमा नित्या महात्रिपुरसुन्दरी
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनो
नित्यक्लिन्ना तथाचैव भेरुण्डा वह्निवासिनी
महाविद्येश्वरी दूती त्वरिता कुलसुन्दरी
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमंगला
ज्वालामालिनिका चित्रा एता नित्यास्तु शोडश
प्रतिपत् प्रमुखा देव्याः पौर्णमास्यन्तमर्चयेत्"

प्रथमोक्त महात्रिपुरसुन्दरी के अलावा पन्द्रह तिथि देवता भी हैं। वे हैं- कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी, दूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नीलपताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वाला, मालिनी और चित्रा। उनमें मालिनी को ही ज्वालामालिनी नाम से ७१-वां नाम बताता है।

"एता देवीस्वरूपाः स्युर्म्महाबलपराक्रमाः
प्रथमामुख्यतिथितां गता व्याप्तजगत्रयाः
कालरूपा वर्तमानाः कालग्रासविचक्षणाः
ब्रह्मादीनामशेषाणां चिरकालमुपेयुषाम्
तत्तत्कालशतायुष्यरूपा देव्याज्ञया स्थिताः
नित्योद्यता निरातंकाः श्रीदेव्यंगस्य रक्षकाः
सेवन्ते जगतामृद्धै ललितां स्वैक्य रूपिणीम्
तासां भवनतां प्राप्ता दीप्ताः पंचदशस्वराः
विसृष्टिबिन्दुचक्रे तु षोडश्या भवनं मतम्" (ललितोपाख्यानं ३३-३६-४०)

ये नित्यायें महती बलशानियाँ और प्रथम इत्यादि तिथिदेवियों के स्वरूपोंवाली तथा कालरूप में तीनों लोकों में व्याप्त हैं जो काल का ग्रास करने में विलक्षण भी हैं। ये श्रीदेवी की आज्ञावर्तिनियाँ हैं और ये लम्बे अरसे से जीवित रहनेवाले ब्रह्मादि देवताओं के शतायुओं को संग्रहित कर उन्हीं रूपों में रहती हैं। ये नित्योद्युत हैं और निरांतक हैं। ये संसार के मंगल के लिए श्रीदेवी की अंगरक्षा करते हुए अपनों से अभिन्न देवी की उपासना में लीन हैं। इनके भवन दीप्तिमान आकार से लेकर पन्द्रह स्वराक्षर हैं। प्रथम देवी महा-त्रिपुरसुन्दरी का भवन विसृष्टिबिन्दुचक्र है (अन्त्यस्वर अं है)

भन्डासुर की सेना ने जब रात में चक्रराजरथ पर आक्रमण करना शुरु किया तब नित्या देवियों ने दमनक आदि राक्षस सेनानियों का निग्रह किया। उस सन्दर्भ में नित्या देवियों ने जो पराक्रम दिखाया उसे देखकर देवी अत्यंत प्रसन्न हो गयी। यह नाम उसी की सूचना देता है।

इसका रहस्यार्थ यों है- कालरूपिणी पराशक्ति अपने से अभिन्न होने पर भी काल के प्रवर्तन-चक्र की लीला को देखकर सदा विराज रही है।

७४. भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दिता

भण्ड के पुत्रों का वध करने जानेवाली बालादेवी के विक्रम को अभिनन्दन देनेवाली।

ललितादेवी की पुत्री और देवी के समीप ही सदा रहनेवाली नौ वर्षीया बालिका बालादेवी ललिताम्बा की अत्यंत प्यारी है।

भण्डासुर के तीस पुत्रों ने पिता की आज्ञा पर शक्ति सेना पर आक्रमण किया। चतुर्बाहु आदि असुरों से युद्ध करने की अनुज्ञा बाला देवी ने माँ से मांगी।

"चतुर्बाहुमुखान् श्रुत्वा भण्डदैत्य कुमारकान्
आगतान् युद्धकृत्याय बाला कौतूहलं दधे
कुमारी ललितादेव्यास्तस्या निकट वासिनी
समस्त शक्तिचक्राणां पूज्याविक्रम शालिनी
ललिता सदृशाकारा कूमारी कोपमातधे
या सदा नववर्षेव सर्व विद्यामहाखनिः
बालारुणतनुश्रेणीशोणवर्णवपुर्लता
महाराज्ञीपादपीठे नित्यमाहितसन्निधिः
तस्या बहिश्चराः प्राणा या चतुर्थं विलोचनम्
तानागतान् भण्डसुतान् योधयिष्यामि सत्वरं
इतिसंचिन्त्यबालांबा महाराज्ञैव्यजिज्ञपत्
मातर्भण्डमहादैत्यसूनवो योद्धुमागताः
तैस्समं योद्धुमिच्छामि कुमारीत्वात् सकौतुका" (ललितोपाख्यानं २२-३४-३८)

(चतुर्बाहु इत्यादि भण्डासुर पुत्रों को युद्ध में आये हुए जानकर बालादेवी उनसे युद्ध करने के लिए उद्विग्न हुई। बालादेवी अपनी माँ ललिता देवी के पास सदैव रहनेवाली और सारी शक्तियों

से शोभित एवं पूज्य हैं। वे ललिता देवी के बराबर रूपवती हैं। वे भण्डासुरपुत्रों से कोंपिष्ट हो गयीं। बालादेवी हमेशा नौ वर्षीया बालिका है। सारी विद्याओं का खान है। बाला दिव्यमण्डलों की शोभा से युक्त रक्तवर्णी शरीर लता से शोभित है। हमेशा महाराज्ञी के पादपीठ में रहनेवाली बालादेवी ललितादेवी के बहिश्चर प्राण और उनकी चौथी आंख जैसी है। उन्होंने माँ से कहा- 'माताजी, भण्डपुत्र संग्राम के लिए आये हैं। बाल्यकुतूहलता से प्रेरित होकर मैं उनसे युद्ध करना चाहता हूँ ।'

देवी के आशीर्वाद को पाकर युद्ध करने जानेवाली बाला देवी को दण्डनाथा और मंत्रिणि ने रोकने का प्रयास किया। लेकिन बाला देवी मान गयी नहीं। युद्ध में भण्डासुर के तीस पुत्र भी मारे गये।

कुमारी के विक्रम को देखकर देवी ललिता उनका अभिनन्दन करती हैं, यही सन्दर्भित नाम है।

रहस्यार्थ से यही तात्पर्य है कि बालामंत्र नाम से प्रसिद्ध मंत्र की क्षमता का अभिनन्दन करनेवाली। (मंत्र को शक्ति देनेवाली)

७५. मन्त्रिण्यंबाविरचितविषंगवधतोषिता

७६. विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनंदिता

मंत्रिणी अम्बा से (श्यामला देवी से) विरचित विषंग के वध में सन्तुष्ट।

विशुक्र के प्राणों को जिस देवी ने छीन लिया उस वाराही देवी की वीरता का अभिनन्दन करनेवाली।

विशुक्र और विषंग दोनों भण्ड के भाई हैं। भण्डासुर की उत्पत्ति की सूचना पहले ही दी गयी है। ब्रह्मांडपुराण में कहा गया है कि श्री परमेश्वर के वरप्रसाद के कारण सर्वशक्ति की सूचना पहले दी गयी है। ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि श्रीपरमेश्वर के वरप्रसाद के कारण सर्वशक्तिमान बने हुए भण्डासुर ने अपने दाहिने कंधे से विशुक्र और बायें कंधे से विषंग को सृजित किया है।

"पुरा भण्डासुरो नाम सर्वदैत्य शिखामणिः
पूर्वदेवान् बहुविधान्यः स्रष्टुम् स्वेच्छया पटुः
विशुक्रंनाम दैत्येयवर्गसंरक्षण क्षमम्
शुक्रतुल्यविचारज्ञं दक्षांसेन ससर्ज सः
वामांसेनविषंगं च सृष्टवान भ्रातरावुभौ"

भण्डासुर सेना के इन दोनों नेताओं ने मिलकर महादेवी की सेना पर आक्रमण किया। मंत्रिणीदेवी और दण्डनाथादेवी दोनों ने अपने किरिचक्र और गेयचक्र रथों में चढ़कर उनका सामना किया। दण्ड नाथा देवी ने (वाराहि) विशुक्र का और मंत्रिणी श्यामांबिका ने विषंग का वध किया।

(ललितोपाख्यान के २४ वें अध्याय में बताया गया है कि मंत्रिणी देवी ने विशुक्र का और वाराही देवी ने विषंग का वध किया।)

उपर्युक्त दोनों नामों के द्वारा विषंग और विशुक्र का वध करनेवाली मंत्रिणी और दण्डनाथा का अभिनन्दन ललिता देवी करती है।

रहस्यार्थ में उपर्युक्त तीनों नामों में (७४, ७५ और ७६) भण्डपुत्र विषंग और विशुक्र तथा आणवमल इत्यादि अज्ञान हेतुक बातों का वर्णन है। बाला, मंत्रिणी, वाराही इत्यादि देवियाँ उन आणवमलों का नाश करनेवाली आन्तरिक वृत्तियाँ हैं। ज्ञानशक्तियों के कार्य-व्यापार से अज्ञान शक्तियों का नाश होने पर स्वात्म देवता परितुष्ट होती है। नाम ६४ में भण्ड नामक पद की व्याख्या करते हुए इस प्रकार कहा गया है। इस पक्ष में विषंग शब्द को " विरुद्धः संगो विषंगो विषयाभिलाषः विषंगच्छतिइति वा विषात्मक इति यावत् " और विशुक्र शब्द को 'विरुद्धं शुक्रं तेजो यस्य स जीव भावः विशेषेण शुचं शोकं राति कामतीति वा' इसप्रकार की व्याख्या है।

७७. कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा

७८. महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयंत्रप्रहर्षिता

कामेश्वर के मुख के आलोकन से कल्पित श्रीगणेश से युक्त। महागणेश से बिलकुल भिन्न बनाये गये विघ्नयंत्र से हर्षित होनेवाली।

भण्डासुर के साथ ललितादेवी की सेना का युद्ध चला तो, उस सन्दर्भ की ओर ये नाम सूचना देते हैं। यह सन्दर्भ ललितोपाख्यान में २३ वें अध्याय में वर्णित है।

बालादेवी के हाथों भण्डासुर के सारे पुत्र मारे गये। तब भण्डासुर दुखी हुआ। उसके बाद वर्द्धित प्रतिकारबुद्धि से उत्साहित होकर विशुक्र नामक छोटे बाई को बुलाकर भण्ड ने इस प्रकार कहा।

'विशुक्र भवता गत्वा मायान्तर्हितवर्ष्मणा
जयविघ्नमहायंत्रं कर्तव्यं कटके द्विषाम् '

(हे विशुक्र ! तू माया से शरीर को छिपाकर शत्रुओं की सेना में जयाविघ्न नामक यंत्र की स्थापना करो।

भण्डासुर की अनुज्ञा पाकर विशुक्र ने अपने शरीर को छिपाकर देवी की सेना के भीतर प्रवेश करना चाहा। लेकिन ज्वालामालिनी के अग्निप्राकार के भीतर वह जा नहीं सका। तब उसने अग्निप्राकार के भीतर न जाकर भी विघ्नयंत्र की स्थापना करनी चाही। उसने आधी योजन लम्बे और उतने ही चौडे एक शिलाफलक में पूर्वदिशा से लेकर आठ दिशाओं में सिर पर संहार बीजाक्षर से युक्त आठ शूलों के जिनमें अलसा, कृपणा, दीना, निद्रा, तरु, प्रमीला, क्लीबा, निरहंकार ये आठ देवता अंकित हैं, विघ्नयंत्र मंत्रपूर्वक बनाकर विधि के अनुसार उन्हें बकरों की बलि चढाकर, अग्निप्राकार के बाहर खडा होकर शक्ति सेना में प्रक्षेपित किया।

उस यंत्र के प्रभाव से ललितादेवी की सेना आयुधों को त्यागकर अपने प्रयत्नों से विमुख हो गयी। सभी आलसी एवं थके हुए हो गये। मंत्रिणी देवी और दंडिनीदेवी दोनों पर इस यंत्र का असर नहीं पड़ा। उन्होंने किंकर्तव्य विमूढ़ होकर चक्रराज रथ पर जाकर देवी से सारी बातें बता दीं। ललितादेवी कामेश के मुख को देखकर मुस्कुरायीं। उनकी स्मिति की आभा से युक्त मुख से गजाकृतिवाले और मदजल से युक्त गणेश का अवतार हुआ। श्री महागणेश के अवतार के बारे में ललितोपाख्यान में इसप्रकार कहा गया है-

" ततः सा ललितादेवी कामेश्वरमुखं प्रति
दत्तदृष्टिः समहसन्नातिव्यक्तरदावलिः
तस्याः स्मितप्रभापुंजात् कुंजराकृतिमान् मुखे
कटक्रोडगलद्दानः कश्चिद्दंवो व्यजृंभत

उसप्रकार जन्म लिए हुए श्रीगणेशजी का स्वरूपः

जपापाटलपाटल्यपाटच्चरवपुद्युतिः
बीजापुरं गदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम्
अब्जपाशोत्पलं व्रीहिमंजरी स्वरदांकुरान्
रत्नकुंभं च दशाभिर्हस्तैः स्वीयैः समुद्वहन
तुन्दिलश्चन्द्रचूडालोमदबृंहितनिस्वनः
जिद्धलक्ष्म्या समाश्लिष्टः प्रणनाम महेश्वरीं।"

(उस देव ने, जिनका वर्ण जपापुष्प की पाटल कान्ति का तिरस्कार करता है और जिनके दसों हाथों में नीम्बू, गदा, ईख का धनुष, शूल, चक्र, कमलकलिका, पाश, नीलोत्पल, धान की मणियों का गुच्छा; अपना दांत और रत्न कुम्भ हैं, और जो तोदंवाले हैं, चन्द्रकला अलंकार के लिए धारण किये हुए हैं, मद से गहराता हुआ नाद करनेवाले हों, सिद्धलक्ष्मी नामक देवी द्वारा आलिंगित हैं, ललिता देवी का नमस्कार किया।

देवी का प्रसाद पाकर गणेशजी विघ्नयंत्र का नाश करने के लिए देवी के समीप से बाहर आये।

"सदेवो घोरनिर्घातनिस्सहैद्दन्तपातनैः
क्षणाच्चूर्णीकरोति स्म जयविघ्नमहाशिलाम्
तत्र स्थिताभिर्दुष्टाभिर्देवताभिस्सहैव सः
परागशेषतां नीत्वा तद्यंत्रं व्यक्षिपद्दिवि"

(उस देव ने वज्र समान दुस्सह दांतों के प्रहार से अतिशीघ्र विघ्नयंत्रांकित शिला को उसमें स्थित अलसा इत्यादि नीच मूर्तियों सहित चूर-चूर कर आकाश में फेंक दिया)

विघ्नयंत्र के नाश होते ही शक्ति सेना आलस्य छोड़कर युद्ध के लिए उद्युग्न हो गयी।

इसका रहस्यार्थ निम्न प्रकार हैः विशुक्र द्वारा प्रयुक्त विघ्नयंत्र जीवात्मा की वासना शक्ति

है, जो ज्ञानार्जन में बाधा पहूँचाती है। उसका नाश करनेवाले गणेशजी चिदेकात्मा की अनुरक्ति है। गणेशजी के प्रवर्तन से विघ्नयंत्र का नाश हुआ और देवी को हर्ष हुआ जो चिदानन्द लाभ है।

७९. भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिणी

भण्डासुरेन्द्र द्वारा छोडे गये अस्त्रों के बदले में प्रत्यस्त्र वर्षा करनेवाली।

भण्डासुर और देवी दोनों की आपसी लडाई में वे दोनों परस्पर अस्त्र-प्रत्यस्त्र छोडते हैं। यह नाम असुर के विरुद्ध प्रत्यस्त्र छोड़ने की सूचना देता है।

रहस्यार्थ यह है कि भण्डासुर देही को बन्धन देनेवाला कर्म और वासना है। इनमें से पैदा होनेवाले अज्ञानजनित और दुरितपूर्ण अस्त्र-शस्त्रों के विरुद्ध श्रीविद्यास्वरूपिणी देवी ज्ञानस्वरूपी प्रत्यस्त्रों को भेजकर देही को मुक्ति की ओर ले जाती है।

८०. करांगुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः

वह देवी, जिनकी ऊँगलियों के नखों से नारायण की दशाकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं।

जब ललितादेवी और भण्डासुर की लडाई हुई उस युद्ध में असुरनायक भण्ड ने उन असुरों को, जिन्होंने सर्वविद्यास्वरूपी वेदों का अपहरण किया था, दिव्यास्त्रों के प्रभाव द्वारा, प्रत्यक्ष करा दिया। महाराज्ञी के दाहिने हाथ के अंगूढे से प्रत्यक्ष हुए महामत्स्यमूर्ति नारायण ने उन असुरों का नाश किया।

वीर योद्धा भण्ड ने अर्णवास्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से कठोर जलप्रवाह में शक्तिसेना डूब गयी। तब ललितादेवी के दाहिने हाथ की तर्जनी से, दस हज़ार योजन विस्तीर्ण वाले कूर्म का रूप धरकर नारायण का अवतार हुआ। उस कूर्म ने जलमग्न शक्ति सेना को बाहर लाकर बचाया।

वीर योद्धा भण्ड ने हिरण्याक्षास्त्र का प्रयोग किया। उससे गदाधारी अनेक हिरण्याक्षों का उद्भव हुआ। हिरण्याक्षों के हाथों हतप्राय शक्ति सेना विछिन्न हो गयी। उन्हें युद्ध में उत्साह कम हुआ। उस समय ललिता देवी के दाहिने हाथ की मध्य ऊँगली से आदि वराहमूर्ति का आविर्भाव हुआ। उन्होंने वज्रायुध जैसे अपने तेज दांतों से करोडों हिरण्याक्षों का हनन किया। उनका नाश हुआ।

तदनन्तर भण्ड ने अत्यंत क्रोध से अपनी भृकुटियाँ चढ़ा दी। चढ़ी हुई भृकुटियों से करोडों हिरण्य कशिपुओं का जन्म हुआ। ज्वलित होनेवाले आतित्यों की तरह उन हिरण्यकशिपुओं ने शक्तिसेना को दबाना और प्रह्लाद को पीड़ा पहूँचाना शुरू किया। शक्तिदेवताओं का परमानन्द रूपी प्रह्लाद बालरूप अपनाकर हिरण्यकशिपुओं की पीड़ा न सहकर ललिता देवी के शरण आ गया। दयावती होकर ललिता देवी ने शक्तिदेवताओं के आह्लादरूपी बालक को बचानेकेलिए दाहिने हाथ की अंगूठीवाली ऊँगली को हिलाया। उसमें से हिलते हुए जटापटलों से युक्त और जलनेवाली तीन आँखेंवाले सिंहमुख रूपी और नीचे को मनुष्याकार रूपी नरसिंह के रूप में नारायण

का आविर्भाव हुआ। नखों के हथियारों से लज्जित कालरुद्र का घोर अट्टहास करनेवाले और असंख्य हाथोंवाले और श्रीललिता देवी के आज्ञाकारी बनकर नरसिंह रूप ने सारे हिरण्यकशिपुओं की छाती को वज्रसम कठोर नखपंक्तियों से फाड दिया।

भण्डासुर ने महा घोर सर्वदैवतानाशक बलीन्द्र नामक अस्त्र का प्रयोग देवी की ओर किया। उसमें से अनेक सहस्र बलीन्द्र उद्भूत हुए। ललिता देवी के दाहिने हाथ की कनिष्ठिका से अनेक शत वामन मूर्तियों का आविर्भाव हुआ। पाशधारी वे अनुक्षण पर्वताकार होनेवाले बलशाली बने। उन्होंने विक्रमशाली बने और महाबलियों को पाश से बान्धकर उनके अस्त्रों को निर्मूल कर दिया।

भण्डासुर ने युद्ध में श्रेष्ठ हयास्त्र का प्रयोग किया। उसमें सहस्रबाहु अनेक करोड कार्तवीर्यों का उदय हुआ। त्रिपुरादेवी के वाम कर अंगूढे के नख से ज्वलित कान्ति से युक्त परशुराम ने क्रुद्ध होकर सिंहनाद करते हुए अवतार ले लिया। उन्होंने अपने परशु की धार से सारे कार्तवीर्यार्जुनों का नाशकर डाला। भण्डासुर ने अत्यधिक क्रुद्ध होकर हुँकार भर दिया। उस हुँकार से चन्द्रहास हाथों में लिए हज़ार राक्षसों के घेरे में दशमुख और द्विदशकरोंवाला रावण प्रत्यक्ष हुआ। रावण ने अनुज कुंभकर्ण और पुत्र मेघनाद के साथ मिलकर शक्ति सेना का मर्दन किया। उस समय त्रिपुरादेवी के बाम कर की तर्जनी के नख से श्रीराम और लक्ष्मण आविर्भूत हुए। जटावत्कलधारी, बाणतूणीर से अलंकृत श्यामल कलेबर रामचन्द्र ने अपने दिव्यास्त्रों से भण्डासुर-हुंकार से जनित दशमुखादि को सलक्ष्मण मार डाला।

भण्डासुर ने अतीव भयानक द्विविदास्त्र का प्रयोग किया। उसमें से भूरे नयनोंवाले असंख्य वानर पैदा हुए। क्रोध से लालमुख से हनुमान के सदृश्य उन वानरों ने शक्तिसेना पर आक्रमण किया। उस समय ललिताम्बा के बायें हाथ की मध्यमा से नीलवस्त्र पहने हुए कैलासपर्वत के समान श्वेत वर्णवाले और क्रोध के कारण और मद्यपान के कारण लाल आंखोंवाले हलायुध बलराम का आविर्भाव हुआ। उन्होंने सारे कपियों का नाश कर दिया।

तदनन्तर भण्डासुर ने राजासुर नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र से अनेक असुर राजा उत्पन्न हुए। शिशुपाल, दन्तवक्त्र, साल्व, काशीश पौन्ड्रकवासुदेव, हंसक, दिम्बक, शंबर, प्रलम्ब, बाणासुर, कंस; चाणूर, मुष्टिक, उत्पलशेखर, आरिष्ट, धेनुक, केशी, कालिय, पूतना, शकट, तृणावर्त, इत्यादि अनन्त असुरों ने अपनी सेना और आयुधों के बल पर शक्ति सेना पर आक्रमण किया। सनातन श्रीवासुदेव उस समय ललितादेवी के बायें हाथ की अंगूठीवाली ऊँगली के नख से उत्पन्न हुए। उन्होंने वासुदेव, संकर्णण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चार मूर्तियों के दलों को बनाकर असुर राजाओं का नाश कर दिया।

भण्डासुर ने अतीव क्रुद्ध होकर धर्मविप्लव करने योग्य भयानक शक्तिशाली कल्यस्त्र का प्रयोग किया। कलि अधिदेवता थी उस अस्त्र की। उससे नाना देशों से और नाना वर्गों के असंख्य दुष्टों का आविर्भाव हुआ। उन्होंने शक्तिसेना का आक्रमण किया। उस समय ललितादेवी के अति भासुर बायें हाथ की कनिष्ठिका के नख से कल्कि नामक विष्णु भगवान का अवतार

हुआ। उन्होंने घोडे पर सवार होकर महती श्री के साथ अट्टहास किया। उस अट्टहास के नाद से ही सारे दुष्टजन मूर्छित हो गये।

ललितोपाख्यान के छब्बीसवें अध्याय में इस कथा का विस्तृत वर्णन है।

इस नाम से ललितादेवी नारायणादि त्रिमूर्तियों के लिए भी उत्पत्तिस्थान होने में प्रमाण मिल जाता है। यह भी सिद्ध होता है कि वे उन सबसे परे हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जीवन से सम्बन्धित जाग्रत् सुषुप्ति इत्यादि पांच अवस्थाओं एवं ईश्वर से सम्बन्धित सृष्टि आदि पांच अवस्थाओं को मिलाकर ही दशावतार है। ये दशोंअवतार देवी की ऊँगलियों के नखों से अनायास ही हुए हैं। इस स्थिति में नारायण शब्द जीवन और ईश्वर दोनों को इंगित करता है। दशा शब्द अवस्था और कृति शब्द कृत्य को सूचित करते हैं।

८१. महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिका

महत् पाशुपतास्त्र की अग्नि से दग्ध (निश्शेष जले हुए) असुर सेना से युक्त। भण्डासुर के युद्ध में देवी ने पाशुपतास्त्र का प्रयोग कर भण्ड के चालीस सेनापतियों का नाश कर दिया। इसी की सूचना यहाँ दी जा रही है।

"अथ पाशुपतास्त्रेण दीप्त कालानलत्विषा
चत्वारिंशच्चमूनाथान् महाराज्ञी व्यमर्दयन्"(ललितोपाख्यान)

रहस्यार्थ के अनुसार इसप्रकार व्याख्या की जा सकती है: अभ्यास और अनुष्ठान से उत्तरोत्तर शक्ति प्राप्त करनेवाली ज्ञानशक्ति को पाशुपतास्त्र मानें और वासना के बल और कर्मबल से देही का आवरण करनेवाली अविद्यारूपिणी है आसुरी सेना।

८२. कामेश्वराग्निनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यका

इस मंत्र में कामेश्वराग्नि के स्थान पर कामेश्वरास्त्र का पाठभेद मिलता है। इन दोनों में कोई बड़ा अर्थान्तर नहीं है।

कामेश्वराग्नि (कामेश्वरास्त्र) से दग्ध (निःशेष जला हुआ) भण्डासुर समेत शून्यक नामक शहर से युक्त।

पाशुपतास्त्र से ज़्यादा संहारशक्ति-संयुत एक दिव्यास्त्र के प्रयोग से श्री ललितादेवी ने भण्डासुर समेत उसकी आवासनगरी शून्यक का भी नाश कर डाला।

"अथैकशेषं तं दुष्टं निहताशेषबांधवम्
क्रोधेन प्रज्वलंतं च जगद्विप्लवकारिणम्
महासुरं महासत्वं भण्डं चण्डपराक्रमम्
महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा
गतासुमकरोन्माता ललितापरमेश्वरी
ततस्तु प्रोत्गत ज्वालैः शून्यकं नाम पट्टणम्
सस्त्रीकं च सबालं च सगोष्ठधनधान्यकम्
निर्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत" (ललितोपाख्यानं २६.८३-८५)

(इसके बाद सर्वलोकमाता ललितापरमेश्वरी ने उस भण्डासुर को, जो अपने सारे सैनिकों को युद्ध में खो गया है, और अकेला हो गया है और दुष्ट तथा क्रोध से जलनेवाला संसार नाशकारी, प्रचंडपराक्रमी था, सहस्र आदित्यों की कान्ति से युक्त कामेश्वरास्त्र का प्रयोग करके निर्जीव कर दिया। उस महास्त्र से निकली ज्वालाओं ने भण्डासुर का निवासस्थान शून्यक नामक शहर और उसमें रहनेवाले बच्चों, स्त्रियों, गोशालाओं, धान, धान्य सबको अतिशीघ्र ही नष्ट कर डाला। केवल स्थल ही बच गया।

रहस्यार्थ में कामेश्वराग्नि शब्द का आशय है चिदग्नि। आत्मभावना से देही के कर्मव्यापारों एवं उनमें से पैदा होनेवाले आणवमलों का चिदग्नि में जलकर राख होना याने आत्मभाव का भी नाश होकर शून्यता का अनुभव इस नाम से सूचित होता है। इस प्रतिक्रिया से निर्मल एवं बन्धनरहित जीवात्मा पंचभूतात्मक शरीर तथा लिंगशरीर इत्यादि स्वरूपों के नाश हो जाने पर शुद्ध शिवरूप बन जाता है। केवल शिव न जाता है। याने परब्रह्म में विलीन हो जाता है। जैसे कई बार कहा जा चुका है, भण्डासुर अज्ञान जन्य जीवभाव है। कामेश्वररूपी चिदग्नि में जलकर नष्ट हो जाता है। चिदग्नि में जीवभाव का नाश होने पर चित्मात्र बच ता है। स्त्रियों और बच्चों का नाश हुआ, इस कथन का तात्पर्य है सब प्रकार के कर्म बन्धनों से, वासना से मुक्त होकर- परमज्ञान स्वरूप चिदग्नि में दग्ध होकर शून्यता ही अवशिष्ट होती है- यही रहस्यार्थ की व्याख्या है।

८३. ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवा

भण्डासुर के वध के पश्चात् प्रसन्न हुए ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र आदि देवताओं द्वारा संस्तुत और तद्वारा वैभव-प्राप्त।

"अस्मिन्नवसरे देवा भण्डमर्दनतोषिताः
सर्वेपि सेवितुं प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्रो दिक्पास्तथैव च
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतः साध्यदेवताः
सिद्धा किंपुरुषा यक्षा निर्यत्याद्या निशाचराः
प्रह्लादाद्या महादैत्याः सर्वेप्यण्डनिवासिनः
आगत्य तुष्टुवुः प्रीत्या सिंहासनमहेश्वरीं" (ललितोपाख्यानं २७-७-९)

ब्रह्मा आदि देवताओं से संस्तुत वैभव के साथ (विभुता से- (वैभव का अर्थ इस सन्दर्भ में अपरिच्छिन्नत्व, सर्वात्मकत्व है) रहनेवाली, आत्मस्वरूपिणी, सारे जीवियों की आत्मा जो बनी हुई है।

८४. हरनेत्राग्निसंदग्धकामसंजीवनौषधिः

हर की (श्री परमेश्वर की) नेत्राग्नि में (तीसरे नयन में) जल गये कामदेव के लिए संजीवनौषधि रूपिणी

भण्डासुर वध के पश्चात् ब्रह्मादि देवताओं ने ललिता देवी की स्तुति की। प्रसन्न हुई देवी से उन्होंने प्रार्थना की कि पतिवियोग से शोकाकुल इस रतीदेवी को वैधव्य दुःख से बचायें।

ललितोपाख्यान में इस प्रकार का वर्णन है:

"सा पर्यश्रुमुखी घूर्णकुन्तला धूलिधूसरा
ननाम जगदम्बायै बैधव्यात्यक्तभूषणा
अथ दर्शनोत्पन्नकारुण्या परमेश्वरी
कान्तं कटाक्षयामास कामेश्वरमनिंदिता
ततः कटाक्षादुत्पन्नः स्मयमानमुखांबुजः
पूर्वदेहाधिकरुचिर्मन्मथो मदमेदुरः
द्विभुजःसर्वभूषाढ्यः पुष्पेषुः पुण्ड्रकार्मुकः
आनन्दयन् कटाक्षेण पूर्वजन्मप्रियां रतिम्
अथ सा रतीदेवी च महत्यानन्द सागरे
मज्जन्ती निजभर्तारमवलोक्य मुदं गता" (ललितोपाख्यान-२७-४४-४८)

(आंसुओं से भीगे मुख से धूलिधूसरित केश से वैघव्यता के कारण निराभूषित रतीदेवी ने जगदम्बा को दण्ड नमस्कार किया। उस रूप को देखकर करुणा से विकलित हुई ललिता देवी ने अपने प्रियतम की ओर देखा। उस कटाक्ष से मुसकुराते हुए पूर्वाधिक कान्तियुक्त एवं उन्मद कामदेव, जिनके दो हाथ हैं, अवतीर्ण हुए। वे देव सर्वाभरण-विभूषित तथा ईख का धनुष और पुष्प बाण धारण किये हुए हैं। उन्होंने अपने पूर्व जन्म की पत्नी रतीदेवी को कटाक्ष से प्रसन्न किया। रतीदेवी अपने पतिदेव को देखकर आनन्द सागर में डूबकियाँ मारने लगी।)

हर (परमेश्वर) के कोपभाजन बने हुए कामदेव को श्री ललिताम्बा ने बचाया। इसकी यही व्याख्या की जाती है कि पिता के कोप पात्र को माता ने बचाया। पिता का कोप वात्सल्यराहित्य नहीं है। सान्दर्भिक मात्र है। कामेश्वर को सानन्द देखा तो उस अवलोकन से ही कामदेव को पुनर्जन्म प्राप्त हुआ। इससे यही तात्पर्य है कि कामेश्वर भी उस परिणाम के हितकांक्षी रहे थे।

रहस्यार्थ में कामदेव को जीवात्मा माना जा सकता है। परमात्मा ही जीवात्मा बनकर देहबद्ध हो जाता है। देहबुद्धि और उससे अनुबन्धित कर्मवासना से जलनेवाले जीवात्मा को देवी का कटाक्ष पुनर्जम दे देता है। विद्यारूपी श्रीदेवी की उपासना से अज्ञान से बद्ध जीवात्मा पूर्वाधिक सुन्दर रूप स्वीकार करता है। अज्ञान से अलग होकर ज्ञानस्वरूप बनकर परमात्मा के साथ तादात्म्य प्राप्त हो जाता है। अपने यथार्थ स्वरूप को पहचानकर मुक्त हो जाता है। विषय और काम से अलग होने पर ही आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

८५. श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपंकजा

श्रीयुक्त वाग्भवकूटमात्रस्वरूप मुखपंकजवाली।

८६. कण्ठाध:कटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी

कण्ठ के नीचे कटिप्रदेश तक मध्यकूटस्वरूपवाली

८७. शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी

शक्तिकूट से अभिन्नता बनाये रखनेवाले कटिप्रदेश से पॉव तक शोभित होनेवाली।

सातवें नाम की व्याख्या में सूचित किया गया है कि देवी का स्वरूप पांच विधों में है। उनमें स्थूल स्वरूप में ललिता महेश्वरी के भण्डासुरवध वर्णन के पश्चात् मन्त्रस्वरूप सूक्ष्म रूप का वर्णन किया जा रहा है। मंत्रस्वरूप के बारे में गुरुमुख से जानना ही उत्तम है। फिर भी व्याख्यापूर्ति के हेतु तीनों नामों का सामान्य विवरण यहाँ दिया जाता है।

श्री विद्यामंत्र नामक प्रसिद्ध पंचदशाक्षरी मंत्र श्रीदेवी का शरीर है, यह प्रसिद्ध भी है। इस मंत्र का स्वरूप क, ए, ई, ल, ह्रीं, ह, स, क, ह, ल, ह्रीं, स, क, ल, ह्रीं इन वर्णों का है। श्री शंकराचार्य सौन्दर्य लहरी में इस प्रकार कहते हैं:

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः
अमीहल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिताः
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् (सौ.ल. ३२)

(अयि माता, क कार ए कार ई कार ल कार फिर ह कार स कार क कार ह कार और ल कार फिर स कार क कार क कार ल कार इन बारहों अक्षर चौथा, पाँचवाँ फिर तीसरा अक्षर फिर उनके पीछे ह्रीं कार के अक्षर जो लगाये गये हैं वे आप के मंत्र शरीरांगों के हैं। (आपके नाम और अंगप्रत्यंग हैं) इस श्लोक में मंत्राक्षर किस प्रकार निबद्ध हैं उसके निम्नप्रकार माना जाय।

शिवः (ककार) शक्तिः (एकार) कामः (ईकार) क्षितिः (लकार) रविः (हकार) शीतकिरणः (सकार) स्मर (ककार) हंसः (हकार) शक्रः (लकार) पराः (सकार) मारः (ककार) हरिः (लकार)

ये बारह अक्षर 'हल्लेखाभिः तिसृभिरवसानेषु घटिता :'(तीन ह्रीं कारों से विरामस्थानों में सुघटित) माँ के नामावयव को सूचित करते हैं। शिवः शक्तिः आदि पद कहीं कहीं लक्षणाव्यापार से कहीं कहीं लक्षितलक्षणा से मंत्राक्षरों की सूचना देते हैं। यह रीति सर्वत्र स्तोत्रों में आचार्यों द्वारा प्रयुक्त है। व्यावहारिक रूप से ललित माने जानेवाले अनेक स्तोंत्रों का प्रयोग इस तरह मंत्राक्षर निबद्ध करके आचार्यों ने किया है। इनका मंत्ररहस्य न जाननेवाले पाठक भी मंत्रोच्चारण का फल प्राप्त करते हैं। जैसे नहाने की इच्छा से नहीं सही, जल में गिरनेवाले का थोडी मैल धुल जाती तो है और स्नान का फल प्राप्त होता है)

पन्द्रह अक्षरोंवाला पंचदशाक्षरीमंत्र ललितादेवी का शरीर ही है। उसे तीन कूटों में विभक्त करके कहा जाता है। प्रथम पांच अक्षरों को वाग्भवकूट, बाद के छे अक्षरों को मध्यकूट और

आखिर के चार अक्षरों को शक्तिकूट नाम है। वाग्भव कूट को देवी के मंत्र शरीर का मुख, मध्यकूट को गले के नीचे से कटिप्रदेश तक का भाग और शक्तिकूट को कटिप्रदेश के नीचे से पॉव तक का भाग माना जाता है।

"त्रिखण्डो मातृकामंत्रस्सोमसूर्यानलात्मकः"

उपर्युक्त आचार्यवाक्य से यह मंत्रशरीर चन्द्र, सूर्य अग्नि इन रूपों में है, ऐसा सिद्ध होता है। मंत्र व्याख्याकार पूर्व सूरियों की व्याख्या में त्रिखण्ड के प्रयोग से इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति इन त्रिशक्तियों का स्वरूप है। साथ ही जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का स्वरूप है। विश्व, तैजस, प्राज्ञ इन तीनों वृत्तिरूपों का स्वरूप है। तम, रज और सत्व इन गुणों का स्वरूप है। इस विषय पर ज़्यादा चर्चा अपेक्षित है। फिर भी यहाँ जो व्याख्या की जाती है वह साधारण जन को मानकर है। इसलिए मंत्रपरक अर्थ का इससे ज़्यादा विशदीकरण नहीं दिया जाता।

तीनों नामों का अर्थ इसप्रकार निश्चित किया जा सकता है: श्रीमत् वाग्भवकूट स्वरूपी मुखपंकज की। गले के नीचे के भाग को मध्यकूट स्वरूपवाली। मध्यप्रदेश के नीचे पाँव तक का शक्तिकूटस्वरूपिणी।

८८. मूलमंत्रात्मिका

मूलमंत्र ही जिसका स्वरूप है वह। पिछले तीन नामों द्वारा सूचित किया गया है कि वाग्भवकूट, मध्यकूट और शक्तिकूट नाम से त्रिखण्डों में विभक्त पंचदशी मंत्र देवी का मंत्रशरीर है। मंत्र शब्द को 'मननात्त्रायतेइतिमंत्रः' इस प्रकार व्याख्यायित किया जा सकता है। मनन करनेवालों की रक्षिका और चतुर्विध पुरुषार्थों का प्रभाव है पंचदशीमंत्र। वही ललितादेवी का मंत्रशरीर है।

८९. मूलकूटत्रयकलेबरा

मूल का (मूलमंत्ररूपी पंचदशाक्षरी मंत्र कूटत्रय (याने वाग्भव. मध्य और शक्ति इन पूर्वनामों की सूचना) ही जिनका कलेवर है वे।

इस नाम में सूक्ष्मतर कामकलारूप का ही वर्णन है। कूटत्रय शब्द से कामकलाक्षर के तीन अवयवों को बताया जाता है। कामकला के एक ऊर्द्ध बिन्दु, और उसके नीचे तिर्छे दो बिन्दु मिलकर तीन अवयव हैं। ये ईश्वर, जगत् और जीव इनको सूचित किया जाता है। कामकला रहस्य यही है कि उपर्युक्त तीनों की अधिष्ठान चेतना-स्वरूपी पंचदशी मंत्र के तीन कूट है। ये ही स्थूल रूप में मुख, कर-चरण से युक्त स्थूल शरीर है। एक एवं अपरिच्छिन्न कालदेशादि गणना के अतीत चिछक्तिस्वरूपी स्रष्टा और सृष्टि और सृष्टि में व्यापृत जीवचेतना के रूप में निवसित हैं।

इस व्याख्या में कामकला रहस्य को इससे ज़्यादा विशद नहीं किया जा सकता। पूंव व्याख्याकारों ने भी इससे अधिक नहीं किया है। समझने और बताने में अशक्त कामकलारहस्य गुरुमुख से ही जानना है।

९०. कुलामृतैकरसिका

कुलामृत में रस अनुभव करनेवाली। कुल शब्द का अर्थ है, एक जाति के लोगों का या उसी प्रकार की वस्तुओं का, या व्यक्तियों का अथवा आशयों का समूह। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इन तीन सजातीय समूह को त्रिपुटी अथवा कुल बताया जाता है। दाक्षिणात्य व्यवहार में ल कार के स्थान पर ळ कार का प्रयोग कर कुळं, कौळं, कौळ-तंत्र इत्यादि प्रयोग है। त्रिपुटि की अवस्थिति में जो आनन्द होता है उसे कुळामृत कहते हैं। पृथ्वीतत्व जहाँ लयलीन है वह आधारचक्र, उससे सम्बद्ध सुषुम्ना मार्ग; सहस्रार से निकलनेवाली अमृतधारा इन सब की सूचना यहाँ मिलती है। उसी अमृतधारा का आस्वादन करके आनन्दित रहनेवाली।

इस नाम से लेकर देवी के सूक्ष्मतम रूप का वर्णन किया जा रहा है। स्थूल रूप; मंत्ररूपी सूक्ष्मरूप और कामकला रूपी सूक्ष्मतर रूप का वर्णन हो चुका। ये रूप अखिल ब्रह्माण्ड में सर्वत्रव्याप्त रहता है। ब्रह्माण्ड के भीतर के प्रस्तुत रूपों के वर्णन के पश्चात् शरीर के सूक्ष्मतम रूप का विवरण दिया जा रहा है। इसे कुण्डलिनी कहते हैं। शरीर ब्रह्माण्ड से उत्पन्न है। पंचभूतात्मक शरीर को पिण्डांड भी कहा जाता है। सुषुम्नानाडी के निम्नभाग में मूलाधार त्रिकोण में बिसतन्तु जैसी बिलकुल हलकी और बिजली जैसी साढेतीन परतों में कुण्डलिनी निवास करती है। वह अधोमुखी होकर सो रही है। उसी शक्ति को जब योगी जगाकर ऊर्द्धमुखी बनाते हैं तब वह शक्ति ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि को और षड़ाधारों को पारकर चिदाकाश में अधोमुखी होकर रहनेवाले सहस्रारपद्म में पहूँच जाती है। चिद्चन्द्रमण्डल रूपी सहस्रारपद्म के मध्य में अकुलकुण्डलिनी से कुण्डलिनी जब मिलती है तब अमृतधारा होती है। उस अमृतधारा का पान करके उन्मत्त होकर कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से ही लौटकर मूलाधार को पाकर शान्त होकर फिर निद्राधीन हो जाती है। कुण्डलिनी शक्ति का इस नाम से वर्णन किया जाता है। इस विषय के सम्बन्ध में आगे के नामों में विस्तृत वर्णन मिलेगा।

९१. कुलसंकेतपालिनी

कुल नामक उपासनारीति के संकेतों का संरक्षण करनेवाली।

कुलं (कुळं) नामक उपासना रीति में कुण्डलिनीयोगरहस्य, पूजारहस्य, चक्ररहस्य, मंत्ररहस्य आदि मिलते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रयोग से उपासक सीमातीत शक्ति अनुभव करता है। इसलिए गुरुपरम्परा द्वारा चुने हुए मात्र शिष्यों को लाभ हो, इस उद्देश्य से कुलसम्प्रदाय संरक्षित रहता है। इसका लक्ष्य यह है कि दुष्ट बुद्धि लोग इन शक्तियों के लाभ से दूसरों को उपद्रव न दे दें। 'कुल पुस्तकानि च गोपयेत्' , यह कौलमार्गानुयायी शिष्य उचित रीति से आचरित करते रहे थे। स्वयं देवी इस आराधना पद्धति का संरक्षण करते हुए अयोग्य लोगों के हाथ में न पडने से बचाकर उसका पालन करती है। अतः देवी का नाम कुल संकेतपालिनी अन्वर्थ हुआ है।

९२. कुलांगना

संभ्रांत पविार में जन्मी नारी, यही पद का अर्थ है। कुलीन नारी परपुरुषों से छिपी रहती है। इसी प्रकार श्रीदेवी अविद्या से छिपी रहती है। 'अन्यास्तु सकला विद्याः प्रकट गणिका इव इयंतु शांभवी विद्ध गुप्ता कुलवधूरिव' (अन्य विद्यायें गणिकाओं की तरह प्रकट रहती हैं। यह

शांभवी विद्या कुलवधू की तरह गुप्ता है। - (कुळार्णवं) परदेवता रूपी श्री विद्या कुलवधू की तरह अपने कुल के लोगों से ही मिली रहती है। (कुल सम्प्रदाय के अनुसार जानी जाती है)

सहस्रारपद्म में स्थित परमशिवतत्व से ही एकत्व स्थापित करनेवाली कुण्डलिनीशक्ति की उपमा उसी पतिव्रतानारी से की जा सकती है, जो अपने पति को ही प्राप्त करती है।

"महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि
मनोपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथम्
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहर से" (सौ.ल.९)

(अयि माता, आप मूलाधार में पृथ्वीतत्व को और मणिपूर में जलतत्व को और स्वाधिष्ठान में अग्नितत्व को और अनाहतचक्र में वायुतत्व को और उनके ऊपर विशुद्धिचक्र में आकाशतत्व को और भ्रूमध्य में स्थित आज्ञाचक्र में मनस्तत्व को तथा कुलपथ सुषुम्ना मार्ग को भी भेदकर सहस्रारपद्म में रहस्य रूप से पतिदेव परमेश्वर के साथ विहार करती हैं) प्रस्तुत सौन्दर्य लहरी में शंकर भगवत्पाद द्वारा वर्णित विवरण से यह स्पष्ट होता है कि कुलांगना तत्व देवी किस प्रकार प्रयोग में लाती है।

९३. कुलान्तस्था

कुल के (त्रिपुटी के) भीतर रहनेवाली।

मातृमेयों के मध्य मिति रूप में स्थित (सौभाग्यभास्कर) अमेय और मेय के बीच मेय तत्व (मान) होकर रहनेवाली। कुलशास्त्र के मध्य ज्ञेय रूपिणी होकर रहनेवाली। कुल शब्द से पिण्डाण्डस्थ सहस्रार को सूचित किया जाता है। उसके भीतर रहनेवाली। हर तरह के प्रबोधता में देवी छिपी रहती है। उस प्रतिबोध विदित परमचेतना को जाननेवाला मार्ग है कौलम्। उसी कौलमार्ग में रहनेवाली। कुल शब्द का अर्थ जनपद भी है। यह, सजातीय गण, गोत्र, देह इत्यादि अर्थ भी होते हैं। इन अर्थों में देवी को उसके भीतर रहनेवाली, माना जा सकता है।

भविष्योत्तरपुराणवाक्य में इस आशय की पुष्टि मिलती है

"पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे
गृहे-गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने"

९४. कौलिनी

कुल से सम्बन्धित यही पदार्थ है। कुल शब्द इस नाम में पिण्डसम्बन्ध से युक्त कुण्डलिनी शक्ति और ब्रह्माण्ड सम्बन्धी चिच्छक्ति को इंगित करता है। दोनों में भेद नहीं है। अकुल शब्द तो शिव को सूचित करता है। शिवशक्तैक्यस्वरूपी परमचैतन्य है कौलिनी। उपर्युक्त नामों से कुल शब्द के लिए प्रयुक्त सब अर्थों का अन्वयन कौलिनी पद के साथ किया जा सकता है। तब जनपद, गृह, सजातीय गण, गोत्र, देह सबको देवी सम्बन्धी यह शब्द प्रयुक्त है।

"कुलं शक्तिरितिप्रोक्तमकुलं शिव उच्यते
कुले कुलस्य सम्बन्ध कौलभित्यभिधीयते"

उपर्युक्त तन्त्रवाक्य के अनुसार शिवशक्तिसंयोगवाची है कौलं। उसे स्त्रीलिंग रूप में कौलिनी कहते हैं।

९५. कुलयोगिनी

कुल से योग किये रहनेवाली। पहले सूचित किया गया है कि पिण्डाण्ड में रहनेवाले षड़चक्र को कुल कहा जाता है। आधारचक्रों से युक्त रहने से उससे अभिन्न। कौलमत है कि कौल सम्प्रदाय की उपासना देवी से अभिन्न रहती है। कौल सम्प्रदाय से युक्त रहनेवाली, यह व्याख्या भी है। बाह्याकाश में श्रीचक्र का संकल्प करके उसमें जो पूजा की जाती है उस पूजा में आराधनीया, यह भी व्याख्या है।

(९४-९५ दोनों नामों को मिलाकर कौलिनी कुलयोगिनी नाम भी बताया जाता है। तब अष्टाक्षर नाम होगा। उसी पक्ष को बल देने के लिए स्वच्छन्द संग्रहं नामक तंत्रग्रन्थ में 'पंकजद्वयमीशानि कुलाकुलमयं शुभं', की शक्ति उद्धरित की जाती है। उस पक्ष में 'कुलाकुलों से युक्त', इस अर्थ को स्वीकार किया जाना चाहिए।)

कुलयोगिनी नामक पद के लिए वंश से लेकर पहले बताये गये सारे अर्थों के साथ युक्त, यह आशय बताया जा सकता है।

९६. अकुला

कुल के परे की। जिसका कोई कुल नहीं है। साधारण अर्थ में कुल के लिए इंगित सारे विवेचनों से परे की पराशक्ति है ललितादेवी। पिण्डाण्ड के अन्तर्गत छे चक्रों के ऊपर स्थित अकुल सहस्रार पद्म में रहनेवाली। 'अथश्चोर्द्ध्व सुषुम्नाया; सहस्रदलसंयुतं पंकजद्वयमीशानि कुलाकुलमयं शुभम् '- (स्वच्छन्द संग्रहं।)

९७. समयान्तस्था

समय के अन्त में रहनेवाली। समय उसे कहते हैं कि हृदय में आधारचक्रों का ध्यान करके उनमें चिच्छक्ति की पूजा करना। समय में शिव और शक्ति दोनों को सम माना जाता है। वसिष्ठतंत्र, शुकतन्त्र, सनकतन्त्र, सनन्दनतंत्र, सनत्कुमारतंत्र नामक पंचतंत्रों में समय का वर्णन है, यही सौभाग्यभास्कर में कहा गया है। इस पक्ष में यही अर्थ है कि समयाचार के भीतर रहनेवाली। इन तंत्रों में उनके कर्ता ऋषियों ने शिव और शक्ति दोनों में पांच प्रकार का साम्य बताया है। पिण्डांडस्थ आधारचक्रों में समरूप अवस्थिति होने से अधिष्ठान साम्य, नृत्यादि क्रियाओं में अवस्था साम्य, शिवभैरवादि नाम लिंग-विपर्यय के बावजूद समान होने से नामसाम्य और अरुण वर्ण आदि बातों में रूपसाम्य है। शिवशक्तैक्य रूपी चैतन्य स्वरूप में रहनेवाली ललितादेवी।

९८. समयाचारतत्परा

षड़चक्रों में से मूलाधार चक्र से प्रारंभ करके क्रमशः छे आधारों में से मानसपूजा करने की रीति को समयाचार कहते हैं। समयाचार में तत्परा। समयाचार के सम्बन्ध में रुद्रयामल में दस पहलों में वर्णित हुआ है। यह उपदेश रूप में है। गुरु के प्रसाद से अनुगृहीत दीक्षित शिष्य विविध संस्कारों के फलस्वरूप जब देवी का प्रसाद प्रप्त होता है तब श्री भगवती मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि चक्रों को पारकर मणिपूरचक्र में प्रत्यक्ष होती हैं। उपासक वहाँ देवी की पूजा विधिसहित (अर्घ्य, पाद्य, भूषणादि से) करके अनाहत चक्र ले चलते हैं। वहाँ धूपताम्बूलादि से पूजकर विशुद्धिचक्र की ओर चलते हैं। वहाँ सिंहासन पर विराजित होकर सखियों समेत रहनेवाली देवी की चन्द्रकला रूपी मणियों से अर्चना करते हैं। फिर आज्ञाचक्र ले जाकर नीराजन करके सहस्रारपद्म में स्थित सदाशिव के साथ मिलाकर पर्दा डालकर समीपवाले मन्दिर में प्रतीक्षा करते हैं। सहस्रारपद्म से निकलकर श्री भगवती लौटकर सुषुम्नानाडी के मार्ग से मूलाधारचक्र पहुँचती हैं। तब तक के समय को समयाचार कहते हैं। (समयाचार का अनुष्ठान सम्बन्धी सामान्य रूप ही ऊपर दिया गया है। अनुष्ठान कर्म गुरु के निर्देश से ही करना है। गुरुकृपा प्राप्त शिष्य ऐसा तो ऊपर बताया जा चुका है। दैवी इस प्रकार के समायाचार से प्रसन्न होनेवाली है।

९९. मूलाधारैकनिलया

मूलाधार में स्थित रहनेवाली। मूलाधार सुषुम्ना नाडी के निम्न में गुद और लिंग के मध्य में है। यहाँ चार दलोंवाला एक पद्म है। कुण्डलिनीशक्ति बिसतन्तु जैसी देह-सी उज्वल तडित्लता जैसी प्रदीप्त होकर चार दलोंवाले उस पद्म के मध्य में मुँह छिपाकर सो रही है। यह पद्म सुषुम्ना नाडी के मूल में होने से और कुण्डलिनी शक्ति का आधार होने से इसे मूलाधार कहते हैं। वही मूलाधार जिसका वासस्थान है वही देवी।

१००. ब्रह्मग्रंथिविभेदिनी

ब्रह्मग्रंथि का भेदन करनेवाली। षड़ाधार हैं- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर , अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा। (इन आधारों के बारे में आगे के नामों में विशद वर्णन है) इनको सोम, सूर्य और अग्नि इन तीन खण्डों में विभक्त किया गया है।

मूलाधार और स्वाधिष्ठान यह एक खण्ड। मणिपूरक और अनाहत दूसरा खण्ड। विशुद्धि और आज्ञा तीसरा खण्ड। इनमें प्रथम खण्ड अग्निस्थान है। इसके ऊपर कुलमार्ग को रोकनेवाली एक ग्रंथि है। इस ग्रंथि को ब्रह्मग्रंथि कहते हैं। दूसरा खण्ड सूर्यस्थान है। इसके ऊपर की ग्रंथि को विष्णुग्रंथि कहते हैं। तीसरा खण्ड चन्द्रस्थान है। उसके ऊपर की ग्रंथि को रुद्रग्रंथि कहते हैं। समाहितचित्त योगी अपने गुरु के अनुग्रहपूर्ण उपदेश और अभ्यास के बल पर चन्द्र को चन्द्रस्थान में और सूर्य को सूर्यस्थान में नियंत्रित कर सकते हैं। इस प्रकार करने से कुण्डलिनी निद्रा त्यागकर सर्प की तरह फूलकार के साथ ग्रंथित्रयों को भेदकर सहस्रारपद्म के मध्यस्थ चन्द्रमंडल का दंशन करती है। उसमें से प्रस्रवित अमृतधारा आज्ञाचक्रगत चन्द्रमण्डल को आप्लावित कर बहकर सारे शरीर को भिगो देती है। कुण्डलिनी को सहस्रार पद्म तक पहूँचने

के लिए मूलाधार चक्र के ऊपरवाले आधार चक्रों और उनके ऊपर के ग्रंथियों को पार करना है। ग्रंथि शब्द का आशय है जो उलझा हुआ है। नाडीव्यूह में व्याप्त वासना के बन्धनों की भी सूचना यह ग्रंथि शब्द देता है। देवी ब्रह्मा के रूप में स्वाधिष्ठनचक्र में रहती हैं, इसलिए उसे ब्रह्मग्रंथि का नाम है। ब्रह्मग्रंथि सृष्टिकल्पना के परे की, यह आशय भी है।

१०१. मणिपूरान्तरुदिता

मणिपूर के अन्तर्भाग में उदित अथवा प्रकाशित। नाभिप्रदेश में दस दलोंवाला पद्म मणिपूरक है। मणिपूरक के नीचे की ब्रह्मग्रंथि को जिसने पार किया है और उसके ऊपरवाली विष्णुग्रंथि का भेदन करने में उद्विग्न, यह अर्थ भी सन्दर्भ से व्यंजित होता है।

तटित्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया
स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्
तव श्यामं मेघं कमपि मणिपुरैकशरणम्
निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम् (सौ.ल.४०)

(अयि, देवी, आपका मणिपूरचक्र का मुख्य वासस्थान और तमिस्रजगत रूपी मणिपूरचक्र के तम को दूरकरनेवाली प्रोज्वल तडिल्लताओं से युक्त और प्रकाश को स्फुरित करनेवाले अनेक रत्नविशेषों से निर्मित इन्द्रचाप से युक्त और श्यामवर्णी संहाररुद्र आदित्य से जलाये जानेवाले लोकत्रय को वर्षा से शीतल करनेवाले परम शिव की मैं सेवा करता हूँ।- मणिपूरान्तरुदिता नाम की व्याख्या करते हुए सौन्दर्यलहरी)

१०२. विष्णुग्रंथिविभेदिनी

विष्णुग्रंथि का भेदन करनेवाली। मणिपूर चक्र में देवी विष्णुरूप में रहती है, इसलिए विष्णुग्रंथि कही जाती है। स्थितिवासना को पार करनेवाली। नाम सौ की व्याख्या देखिए।

१०३. आज्ञाचक्रान्तरालस्था

आज्ञाचक्र के अन्तराल में रहनेवाली। भ्रूमध्य में स्थित दो दलोंवाले पद्म को आज्ञाचक्र कहते हैं। आज्ञाचक्र में देवी रुद्ररूपी होकर रहती है।

"तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरम्
परं शंभुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता
यमाराध्यन भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये
निरालोके ऽ लोके निवसतिहि भालोकभुवने" (सौ.ल. .३६)

(अयि परमेस्वरी, जो आपके आज्ञाचक्र में रहते हैं, जो अनेक कोटि सूर्य चन्द्रों की कान्ति को धारण करते हैं, जिनके चारों ओर परचित्कला से आवृत पार्श्व मार्ग हैं उन परम शिव की मैं वन्दना करता हूँ। (शिवरूपी देवी की) जो भक्तिसहित आराधना करता है वह, सूर्य-चन्द्राग्नि को दृष्टिगोचर नहीं होता और बाह्यचक्षु से देखा नहीं जा सकता और विजन एवं ज्योत्स्नामय जगत् में स्थाई रूप से रहता है।) सौन्दर्य लहरी में बताया गया है कि रुद्ररूपी आज्ञायक में विराजमान है ।

१०४. रुद्रग्रंथिविभेदिनी

रुद्रग्रंथि का भेदन करनेवाली। उपर्युक्त नाम की व्याख्या में बताया जा चुका है कि रुद्ररूपी देवी आज्ञाचक्र में वास करती है। नाम का अर्थ संसार सम्बन्धी वासना का नाश करनेवाली, भी होता है। रुद्रग्रंथि का भेदन करने पर कुण्डलिनी सहस्रार पद्म में अवश्य पहूँचेगी।

१०५. सहस्रारांबुजारूढ़ा

सहस्रदलोंवाले कमल में रहनेवाली। पिण्डांड में आज्ञाचक्र के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र के नीचे सहस्र दलोंवाले कमल को सहस्रार कहते हैं। कुण्डलिनी रूपिणी देवी छे चक्रों का भेदन करके सहस्रार में पहूँचकर शिव शक्तैक्यस्वरूप बनकर रहती हैं। ऐसी देवी केलिए यह नाम है।

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहम्
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिमरुतमाकाशमुपरि
मनोपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथम्
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे (सौ.ल. ९)

(अयि देवी, आप मूलाधार चक्र में पृथ्वीतत्व और मणिपूरचक्र में जलतत्व को, स्वाधिष्ठान चक्र में अग्नितत्व और अनाहत चक्र में वायुतत्व को, और विशुद्धिचक्र में आकाशतत्व और भ्रूमध्य के आज्ञाचक्र में मनस्तत्व को, इस प्रकार सुषुम्ना मार्ग के (कुलपथ) सारे चक्रों को भेदकर सहस्रारपद्म में रहस्य स्थिति में पति देव के साथ विहार करती हैं।- इस प्रकार श्री शंकर भगवद्पाद आधार चक्रों और उनके ऊपर स्थित सहस्रारपद्म में रहनेवाली चिच्छक्ति का वर्णन करते हैं।)

१०६. सुधासाराभिवर्षिणी

सुधा की धारा को अच्छीतरह बरसानेवाली। आधारचक्रों एवं ब्रह्मग्रंथि, विष्णुग्रंथि, रुद्रग्रंथि का भेदन करके कुण्डलिनी शक्ति सहस्रारपद्म में जब पहुँच जाती है तब चन्द्रमण्डलस्थ सहस्रारपद्म में शिवशक्तैक्य होता है। तब चन्द्रमण्डल से निर्गलित होनेवाली अमृतधारा शरीर की नाडीव्यूहों में व्याप्त होती है। यह स्थिति साधक को परम निर्वृति में पहुँचा देती है। नाम ९० की व्याख्या देखें। इस प्रकार इस नाम का अर्थ है अमृतधारा की वर्षा करनेवाली।

१०७. तटिल्लतासमरुचिः

बिजली के समान प्रकाशमयी। पहले कहा जा चुका है कि मूलाधार में कुण्डलिनी शक्ति बिसतन्तु के समान साढे-तीन वलय में सर्पाकृति को लेकर सो रही है। इस नाम में बिजली के समान प्रकाशवती है देवी, ऐसा कहा गया है।

"तटिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीम्
निषण्णाम् षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्
महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीं" (सौ.ल.२१)

(अयि भगवती, बिजली जैसा शरीर; चेतोरूपिणी, सूर्यचन्द्राग्निस्वरूपिणी, षड़ाधार पद्मों के ऊपर सहस्रारपद्मवन में स्थित आपकी सदाख्या कला का निर्मल मन से ध्यान करनेवाले योगी परमानन्द का अनुभव करते हैं। इस प्रकार ही शंकराचार्यजी ने देवी की बिजली जैसी शोभा का वर्णन किया है।

१०८. षड़चक्रोपरिसंस्थिता

छे चक्रों के ऊपर सहस्रारपद्म में निवास करनेवाली। नम्बर १०७ में वर्णित व्याख्या के लिए उद्धृत सौन्दर्यलहरी पद्य देखें।

१०९. महासक्तिः

मह के प्रति (उत्सव के प्रति, याग के प्रति, आराधना के प्रति) आसक्ति रखनेवाली। आधारचक्रों को पारकर सहस्रारपद्म में प्रवेश करनेवाली कुण्डलिनी शक्ति का वहाँ निवास करनेवाले शैवशक्ति के साथ जो संयोग होता है उसे महा शब्द से व्यंजित किया जाता है। सहस्रारपद्म में शिवशक्तैक्य में आसक्ति रखनेवाली, यही नामार्थ है।

मह शब्द का अर्थ तेज भी है। इस रीति से यह भी व्याख्या है कि वह्निमय तेज में आसक्ति रखनेवाली।

मह शब्द के और अर्थ हैं याग, पूजा, आराधना इत्यादि। भक्त लोग जो पूजा, याग और आराधना करते हैं उसमें आसक्ति रखनेवाली, यह अर्थ भी संगत है। पूजा दो प्रकार की है, याने बाह्यपूजा और मानसपूजा दोनों देवी को प्रिय हैं और दोनों में आसक्ति हैं और दोनों से प्रसन्न हैं।

११०. कुण्डलिनी

कुण्डलिनी के रूप को धारण करनेवाली। मूलाधार में साढे तीन वलय में पडी सोनेवाली कुण्डलिनी शक्ति बिसतन्तु जैसे तनीयसी और बिजली जैसी तेजोरूपिणी है, इसकी सूचना पहले ही दी जा चुकी है। वामकेश्वरतंत्र में यह उक्ति है:

"भुजंगाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तु निभा शुभा"

(बिजली सदृश्य प्रकाशमान और बिसतन्तु जैसी आकृतिवाली कुण्डलिनी नामक शक्ति सर्पाकार के साथ मूलाधार के आश्रय में रहती है) कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर परमानन्द निर्वृति प्राप्त करने की प्रक्रिया का विवरण वामकेश्वर तंत्र में है।

"मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता
पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुंच्यसाधकः
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन कुम्भकाविष्टमानसः
वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठनगतो ज्वलन्

ज्वलनाघात पवनाघातैरुन्निद्रितो ऽ हिराट्
ब्रह्मग्रंथिं ततो भित्वा विणुग्रंथिं भिनत्यतः
रुद्रग्रंथिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्
सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारणम्"

कुण्डलिनी शक्ति अपने फनाग्र से बिसतन्तु जैसे मूल कन्द का दंशन करते हुए मुंह से पूंछ का संग्रह करके ब्रह्मरन्ध्र (सुषुम्ना मार्ग) का अवलम्ब करके रहती है। साधक योगी पद्मासनस्थ होकर गुदद्वार को दबाकर वायु को ऊपर की ओर ले जाकर कुम्भक को ध्यानपूर्वक करना चाहिए। पवन के आघात से स्वाधिष्ठनस्थित अग्नि का ज्वलन होने लगेगा। तब पवन और अग्नि दोनों के आघात से वह कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मग्रंथि का भेदन करेगी। आगे विष्णुग्रंथि और रुद्रग्रंथि तथा अन्य आधारकमलों का भेदन करेगी। उसके पश्चात् कुण्डलिनी शक्ति परम शिव के साथ मिलकर आमोद प्राप्त करेगी। वही परमोत्कृष्ट अवस्था है। वही निर्वृतिकर है।)

"मूलाधारस्थ-वह्यात्मतेजोमध्ये व्यवस्थिता
जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकाराथ तैजसी
प्रसुप्तभुजगाकारा त्रिरावर्ता महाद्युतिः
मायाशीर्षा नदन्तीं तामुच्चरत्यनिशं खगे
सुषुम्ना मध्यदेशे सा यदा कर्णद्वयस्यतु
विधाय श्रृणोत्येनं ध्वनिं तस्य तदा मृतिः"

(मूलाधार में अग्न्यात्मक तेज के मध्य कुण्डलिनी नामक जीवशक्ति प्राणाकार और तेजोरूपी होकर निवास करती है। साढे तीन वलयवाली और प्रसुप्त भुजगाकार वह महातेजोरूप मायाशीर्ष होकर हमेशा मौनरहित होकर सुषुम्ना मध्य में मूलाधार त्रिकोण में विराजमान है। दोनों कानों को अच्छी तरह दबा लेने पर उसका नाद सुना जा सकता है। जब वह शब्द सुनाई नहीं देगा तब वह मनुष्य मरा हुआ समझना चाहिए।)-तंत्रराज नामक ग्रंथ

पंचदशाक्षरी मंत्र के आद्य खण्डवाले वाग्भवकूट को कुण्डलिनी कहते हैं। वागभवकूट की रूपवाली, यही मंत्रपरक व्याख्या है।

१११. बिसतन्तुतनीयसी

बिसतन्तु (कमलनाल जैसी) तनीयसी। कुण्डलिनी शक्ति कमलनाल सी हलकी और बिजली जैसी प्रकाशमान है, यह पहले ही कहा जा चुका है। कमलनाल के साथ कुण्डलिनीशक्ति का सादृश्य प्रस्तुत नाम द्वारा दिखाया गया है।

नाम नब्बे से लेकर यहाँ तक कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन है। मूलाधारस्थ कुण्डलिनी को कुमारी बताया गया है। अनाहत के ऊपर उन्हें तरुणी और सहस्रार पद्म में सदाशिव पतिव्रता का नामकरण दिया गया है। आगे देवी के भक्तानुग्रह स्वभाव का वर्णन है।

११२. भवानी

भव का स्त्रीलिंग रूप। भव-शिव। शिव से मिली हुई शक्तिरूपिणी। भव शब्द महादेव, संसार और काम को द्योतित किया जाता है।"रुद्रो भवो भवः कामो भवः संसारसागरः तत् प्राणनादियं देवी भवानी परिकीर्तिता"- देवी पुराण। शिव को जीवन देनेवाली। कामदेव को जीवन देनेवाली। संसार सागर को चैतन्य देनेवाली।

स्थानेश्वरनामक पीठस्थान की अधिष्ठात्री यह अर्थ भी किया जाता है। 'स्थानेश्वरे भवान्याख्या' बिल्व के नामपत्रके इस प्रकार पद्मपुराण को आधार मानकर सौभाग्यभास्कर सूचित करता है।

"भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा-
मिति स्तोतुं वांच्छन् कथयति भवानित्वमिति यः
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्य पदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुट नीराजितपदाम्" (सौ.ल. २२)

(अयि भवानी! आपका दास मुझमें करुणा बरसाइए इस प्रकार अभ्यर्थना करने का आग्रह रखनेवाला उपासक जब भवानीत्वं इतना कह पाता है तब आप उस भक्त को, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवों के ज्वाज्वल्यमान मुकुटों से नीराजन किये जानेवाला अपना सायूज्यदान दे देती हैं।

सौन्दर्यलहरी के इस श्लोक में भवानित्वं शब्द के प्रयोग के लिए शंकराचार्य अहं ब्रह्मास्मि का सार भी जोड़ देते हैं।

११३. भावनागम्या

जो भावना से प्राप्त नहीं होती। (भावना-अगम्या) भावना से प्राप्त होनेवाली (भावना-गम्या) दोनों प्रकार व्याख्या की जाती है।

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इनमें अभेदत्व की कल्पना ही भावना शब्द से तात्पर्य है। उस पद से श्रीचक्र पूजा को ही इंगित किया जाता है; इस प्रकार के उपनिषद् वाक्यों को उद्धृत करनेवाली कुछ व्याख्यायें भी हैं।

११४. भवारण्यकुठारिका

भवरूपी वन के लिए कुलहाडी बनी हुई।

भव अथवा संसार अरण्य जैसा है, जो गहन और काल पाकर सूख जाय, फिरभी अवसर के अनुकूल हराभरा होकर आवर्तन के अधीन होकर सुख दुःखों से भरा रहता है। इसलिए वह वन जैसा है! संसार-बन्धन से मोचन पाना उतना सरल कार्य नहीं है। निरंतर अभ्यास से, मनोनियंत्रण से, तप जैसे अनुष्ठान से मन को क्षण समय के लिए निमंत्रित रखा जा सकता है, तब भी धीरे से वह संसार-बन्धन में आ सकता है। ललिता देवी को भवरूपी वन के लिए

कुठरिका बतायी जाती है, इस नाम में। यदि वन का नाश करना है, तो समूल उसे उखाड देना पडेगा। उसकी कुठरिका है देवी। उपासक को लौकिक बन्धन से मुक्त कर शाश्वत मोक्ष देने की क्षमता देवी में है। यही इसका भाव है।

११५. भद्रप्रिया

भद्र माने मंगल। मंगल प्रिय जिन्हें है। भक्तों को मंगल प्रदान करने में तत्पर। भद्र का आशय लक्षणयुक्त हाथी भी है। उस प्रकार के हथियों को पसन्द करनेवाली, यह अर्थ भी व्याख्याइत होता है।

११६. भद्रमूर्तिः

भद्रमूर्ति से युक्त। भद्रकाली रूप धारण करनेवाले।

११७. भक्तसौभाग्यदायिनी

भक्तों को सौभाग्य का दान देनेवाली ।

११८. भक्तिप्रिया

भक्ति को पसन्द करनेवाली। ईश्वरोन्मुख अनुष्ठान को भक्ति कहते हैं। लौकिक रीति से इसका अर्थ यों लिया जा सकता है कि अपने से श्रेष्ठ पुरुष के प्रति किये जानेवाले आदर को भी भक्ति कह सकते हैं। यहाँ सर्व संसार की माता और पराशक्ति ललिता देवी के प्रति उपासक की आराधनास्वरूप मानसिकता को द्योतित किया जाता है। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' यही भक्ति मीमांसा का सूत्र विवेचन है। कहा जाता है कि भक्ति दो प्रकार की होती है, जैसे परा और गौणि । इनमें पराभक्ति को मुख्य भक्ति कहते हैं। अपने व्यक्तिभाव को विस्मृत कर ईश्वर में लीन होनेवाली उत्कृष्ट चित्तवृत्ति है यह। गौणी भक्ति सेवास्वरूपी है। 'गौण्या तु समाधिसिद्धि' यही इसका निर्वचन है। 'भज इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्तितः तस्मात् सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिसाधनभूयसि' यही गौड़पुराण का भाष्य है। श्रीमहाभागवत का निर्देशन है कि ईश्वरसेवा अनेक प्रकार से हो सकती है, जैसे श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। ईश्वरपरक लीलाओं का कथाश्रवण, आराधनामूर्ति के अपदानों की रतुति करना, उस मूर्ति का स्मरण करना, विग्रह और बिम्ब अथवा चित्र इत्यादि से मंत्रोच्चारण करके अथवा मंत्रोच्चारण के बिना, अर्चना करना, नमस्कार करके वन्दना करना, दास्य भाव में शुश्रूषा करना, सख्य भाव बनाए रखना, सुख दुःखों को बताना और आत्म निवेदन करना इस प्रकार गौणीभक्ति को अनेक स्वरूप होते हैं। बिम्ब, चित्र, दीप आदि में ईस्वर चैतन्य का संकल्प करके उस चैतन्य को अर्घ्य, पीठ, स्नान, आभरण, चन्दन आदि प्रसाधन वस्तुवों का अर्पण करके नैवेद्य रखकर स्तोत्र मंत्र से स्तुति कर प्रसन्न करा देना बाह्य पुजा है। मन में उपासना मूर्ति का ध्यान करके बाह्यपूजा के अनुसार आराधना करना आभ्यन्तरपूजा है।

उपासक और उपासनामूर्ति दोनों में एकत्वभावना पैदा करने में पराभक्ति का महत्व अधिक श्रेष्ठ है। साधारण व्यक्तियों को उस स्थिति में सुविधा नहीं है। इसलिए महान ऋषि और योगी तक बाह्यपूजा और आभ्यंतर पूजा दोनों करते हैं। गौणीभक्ति क्रमशः आगे पराभक्ति तक पहुँचा सकती है।

इस नाम का आशय यह है कि भक्ति जो भी हो, चाहे परा अथवा गौणी दोनों देवी को प्रिय हैं।

११९. भक्तिगम्या

भक्ति से प्राप्त होनेवाली। उपर्युक्त नाम में इंगित परा अथवा गौणी भक्ति से श्रीललिता देवी प्राप्त होती है।

१२०. भक्तिवश्या

भक्ति से वश में आनेवाली। भक्तिपूर्वक आराधना करनेवाले साधक के वश में देवी आ सकती है। देवी भक्तप्रिया है। भक्तिप्रिया, भक्तिगम्या, भक्तिवश्या इन नामों से यह सूचित होता है कि उपर्युक्त नाम चतुर्विध पुरुषार्थों को ला देते हैं।

१२१. भयापहा

भयों को दूर करनेवाली। भय शब्द से प्रापंचिक एवं पारत्रिक भयों को इंगित किया जाता है। प्राणियों को शत्रुवों एवं रोगों से भय लगता है। विशेषकर मनुष्य का विचार किया जाय तो इस प्रकार के भयों की व्याप्ति बढ़ती जाती है।

"अरण्ये प्रान्तरे वापि जलेवापि स्थले ऽ पि वा
व्याघ्रकुंभीरचोरेभ्यो भयस्थाने विशेषत
अधिष्वपि च सर्वेषु देवीनामानि कीर्तयेत् "- (वायुपुराण)

वन में, नगर कूप वापी तटाक सागरादिजलस्थलों में, मनुष्य को भय देनेवाले सन्दर्भ और वस्तुएं हैं। इनके अलावा शत्रुओं, जंगली जानवरों और चोरों से डर होता है। और भी अनेक कारणों से भय होता है, जैसे रोग, मानहानि आदि आदि। कारण जैसा भी हो, भय देनेवाले सन्दर्भ जो भी हो, देवी के नामकीर्तन से वे सब दूर हो जायेंगे। सर्व भयों को भी देवी के नामस्मरण से जीत सकते हैं, इसलिए यह नाम भयापहा है।

१२२. शांभवी

शंभु से संबन्धित। शंभु के भक्तों की माता, यह आशय भी हो सकता है।

शांभवी नाम का अर्थ आठ वर्षीया कन्या भी है। आठ वर्ष की कन्या का रूप धारण करनेवाली। शांभवी नाम से योगियों के आचार की एक तंत्रमुद्रा है। उस मुद्रा का रूप धारण करनेवाली। यह रहस्यार्थ है।

"अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिनिमेषोन्मेष वर्ज्जिता
एषा सा शांभवी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता"

इस प्रकार उस मुद्रा की समीक्षा है। शाक्ती , सांभवी , मांत्री इस प्रकार त्रिविध दीक्षाएं हैं। उनमें एक यह है। विशद विवरण गुरुमुख से प्राप्त होना है।

१२३. शारदाराध्या

शारदा से आराध्या। (शारदा माने सरस्वती)। शारदा काल में याने शरत् काल में आराधना की जानेवाली, ऐसा पाठ भी है।

"शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः
सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः" (देवी माहात्म्यं १२-६४२-६४३)

जो आदमी शरत्काल की नवरात्रि के समय और वर्षाकाल की नवरात्रि में चलनेवाली पूजाओं में भक्तिसहित मेरा माहात्म्य सुनता है वह मेरे प्रसाद को पाकर सारी बाधाओं से मुक्त होकर धनधान्य समेत बन जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। -(देवी माहात्म्य)

" वासन्ते वनरात्रे तु पूजयेद्रक्तदन्तिकाम्" - यह रुद्रयामलं का उद्धरण है। शारदः शब्द जब पुल्लिंग में आता है तब पंडित अर्थ है। वि उपसर्ग के साथ जब यह शब्द रहता है तब विशारद शब्द बनता है। पंडिता (सर्वज्ञा) । पुल्लिंग में स्वीकार किया जाय तो पंडितों से आराध्या, यहीअर्थ आता है।

१२४. शर्वाणी

शर्व की पत्नी। शंर्व से सम्बन्धित। ब्रह्माणी , इन्द्राणी जैसे स्त्रीलिंग प्रत्यय लगाकर शर्व शब्द से पदनिष्पत्ति है। लिंगपुराण में बताया गया है कि क्षितिमूर्ति परमेश्वर के लिए सुकेशी नाम से पत्नी रूप में देवी का अवतार हुआ।

चराचराणां भूतानां धाता विश्वंभरात्मकः शर्व इत्युच्यते देवः सर्वशास्त्रार्थपारगैः
विश्वंभरात्मनस्तस्य "शर्वस्य परमेष्ठिनः सुकेशी कथ्यते पत्नी तनुजोंगारक स्मृतः"

वायवीय पुराण में "शर्वस्य या त्रितीया तु नाम भूमितनुः स्मृता। पत्नी तस्य -सुकेशीति, पुत्रश्चांगार को मतः" इस प्रकार की उक्ति है।

१२५. शर्मदायिनी

शर्म को (सुख को) दान में देनेवाली। सुखं ददाति भक्तेभ्यस्तेनैषा शर्मदायिनी (देवीभागवत)

१२६. शांकरी

शं (सुख) तस्यकरः अथवा शंकरे यस्य सः इस प्रकार शंकर शब्द की व्याख्या की जा सकती है। शंकरः शब्द का स्त्रीलिंग रूप है शंकरी। शंकर का संबन्ध रखनेवाली। शंकरपत्नी।

"प्रतिसर्गादिमध्यान्तमहं शंभुं निराकुलम्
स्त्रीरूपेणानुयास्यामि प्राप्य दक्षादहं तनुम्
ततस्तु विष्णुमायां मां योगनिद्रां जगन्मयं
शंकरीति स्तुविष्यन्ति रुद्राणीति दिवौकसः" (कालिका पुराण)

१२७. श्रीकरी

श्री का कर्तृत्व करनेवाली (श्री का दानकरनेवाली) ऐश्वर्यदायिनी। श्रीकर से सम्बन्ध रखनेवाली। श्रीकर हैं विष्णु।

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमान लोकत्रयाश्रयः (-विष्णु सहस्रनाम)

१२८. साध्वी

पतिव्रता । 'सती साध्वी पतिव्रता'- (अमरकोश)

"कलत्रं वैधात्रं कति कति भजान्ते न कवयः
श्रिये देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः
महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे
कुचाभ्यामासंगः कुरवकतरोरप्यसुलभः" (सौ.ल. ९६)

पतिव्रताधर्म में अग्रणि देवी महापतिव्रते, कितने ही कवि ब्रह्मपत्नी सरस्वती देवी को स्वाधीन में लाते हैं! कौन ऐसा होता है, जो अल्प धन से लक्ष्मीपति नहीं बनता? पतिव्रता नारियों में अग्रणि हे देवी! आपका कुचालिंगन महादेव के अलावा अचेतन कुरवक वृक्ष को भी प्राप्त नहीं है। (यह प्रसंसा शंकराचार्य की वाणी से है।)

"साध्वीत्यनन्यसामान्यपातिव्रत्येन गीयसे" - (देवी भागवतं)

१२९. शरच्चन्द्रनिभानना

शरतकालीन चन्द्रमा के समान मुखवाली। शरत्कालीन चन्द्रमा की आभा प्रशंसनीय है। उसी प्रकार तेजोरूप को वहन करनेवाली।

१३०. शातोदरी

शात याने कृश उदर से शोभिता। कृशकटि का वर्णन सुन्दरियों के लिए भारतीय कवियों द्वारा प्रकीर्तित है।

हिमालय को भी शातोदर पुकारते हैं, क्योंकि हिमालय की गुफायें असंख्य हैं, जिनकी गिनती असंभव है। शातोदर हिमवान की पुत्री होने से शातोदरी नाम पड़ा है, यह व्याख्या - भेद भी मिलता है।

१३१. शान्तिमती

जिसमें शान्ति है वह। भक्तों की गलतियों से जो कोपिष्ठ नहीं है। भक्तों के तापत्रयों से जनित दुःखों को दूर कर शान्ति प्रदान करनेवाली, इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है।

श्रीललितादेवी ही संसार की सृष्टि एवं स्थिति तथा लय के कारण हैं। शक्तिशाली परिवर्तन और उससे जनित नाश के लिए अवसर न देकर संसार को शान्त बनाये रखती है देवी, यह देवी के शान्त स्वभाव तो है। दुष्टों के निग्रह के हेतु देवी भयानक रूप धारण करती हैं, तब भी उनका लक्ष्य संसार की मंगलकामना है।

१३२. निराधारा

इस नाम से लेकर निर्गुण ध्यान का प्रारंभ होता है। जिसका कोई आधार नहीं हैं वही देवी ही सारे संसार का अधार है, इस लिए निराधारा है।

ऊपर बताया जा चुका है कि मूलाधार में सुषुप्ति में स्थित कुण्डलिनी रूपिणी देवी वहाँ से उठकर अन्य आधारों को पारकर सहस्रार पद्म को पाकर अमृतपान करती है। सहस्रार पद्म में प्रवेश करके जिस स्थिति में फिर देवी वहाँ रहती है उसी के आधार पर, याने फिर किसी आधार में न रहने से निराधारा कही जाती है।

पराशक्ति की पूजा दो विध की जा सकती है। जैसे बाह्यपूजा और आभ्यंतरपूजा। इनमें बाह्यपूजा वैदिक और तांत्रिक दो प्रकार की हैं। बिम्ब में देवी का संकल्प कर अर्घ्य नैवैद्य आदि के साथ जो पूजा की जाती है उसे साधारण पूजा कहते हैं। बिम्ब को आधार बनाकर पूजा करने से यह होता है। बिम्बादि की अपेक्षा न करके ज्ञान अथवा चेतना में की जानेवाली पूजा निराधार पूजा है। निराधारपूजा साधारण अन्य पूजाओं से श्रेष्ठ है। इस रीति से निराधारा मानकर पूजा की जानेवाली, यही नाम का भाव है।

"पूजा या ऽभ्यंतरा सापि द्विबिधा परिकीर्तिता
साधारा च निराधारा निराधारा महत्तरा
साधारा यातु साधारे निराधारा महत्तरा
साधारा यातु साधारे निराधारा तु संविदि
आधारे वर्णसंक्लिप्तविग्रहे परमेश्वरीं
आराधयेदतिप्रीत्या गुरुणोक्तेन वर्त्मना
या पूजा संविदि प्रोक्ता सा तु तस्यां मनोलयः
संविदेव पराशक्तिर्नेतरा परमार्थतः
अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीं
आराधयेत् परांशक्तिं प्रपंचोल्लासवर्जिताम्
स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात् स्वात्मभूतां महेश्वरीं
पूजये दादरेणैव पूजा सा पुरुषार्थदा" (सूतसंहिता)

१३३. निरंजना

जिसमें अंजन नहीं है। अंजन वह चीज़ है जो आंख में लगायी जाती है। यहाँ जीवात्मा को बाधित करनेवाले मायिक मल की ओर संकेत है। अविद्या संगरूपी मलिन वासना जिसमें

नहीं है, वह। यह भाव इसका भी संकेत है कि भक्तों के मन की मैल भी दूर करनेवाली है देवी। आचार्यों ने मनुष्य को तीन विभागों में बांट दिया है। (१) भेद भावों से युक्त, ईश्वर और आप स्वयं एक न मानकर अहं को मानकर कर्म निरत रहनेवाले। इन्हें सकल संज्ञा से बुलाते हैं। (२) कर्ममार्ग और ज्ञान मार्ग दोनों में व्यवहृत मामूली आदमी, जिन्हें प्रलयाकल का अभिधान है। (३) भेदभाव न रखनेवाले और ईश्वर और आप स्वयं एक मानकर पूर्णज्ञानयुक्त रहनेवाले जिन्हें विज्ञान केवल कहते हैं।

इन्हें क्रमशः अशुद्ध, मिश्र, शुद्ध कहते हैं। प्रथम विभाग के वे हैं, जिनमें मायिक मल है। दूसरे विभाग के वे हैं जिनमें कार्मिक मल हैं। तीसरे विभाग के वे हैं जिनमें आणव मल हैं। प्रथम विभाग के अशुद्ध, माने "सकल" के अज्ञान को दूर करनेवाली देवता के रूप में नाम आता है। इस स्थिति में आगे के विभागों में आनेवाले प्रलयाकल और विज्ञान केवल इनकी बात क्या कहें?

निरंजना शब्द का भाव है, वह जिसके साथ किसी का भी मिलाव नहीं होता। तब इसका यही भाव है कि देवी सब से अतीत है।

निरंतर रंजना से युक्त, यह भी एक व्याख्या है। अंजना शब्द का अर्थ राग भी है। राग का रंग लाल है और प्राणियों को परस्पर मिला देता है राग, जो एक पवित्र विकार है। निरन्तर अरुण वर्ण देवी का स्थूल वर्णन करते समय प्रयुक्त है और वह रंग और राग संसार को बनाये रखने का कारणभूत तत्व है, यह व्याख्या भी इस नाम की हो सकती है।

१३४. निर्लेपा

लेप कर्म का सम्बन्ध बनाये रखता है। उससे अतीत। जिसका बन्धन नहीं है, सबके परे और भक्तजनों की कर्मवासना का नाश कर उन्हें सायुज्य के अधिकारी बना देनेवाली, यही व्यंग्य है। पूर्वोक्त नाम में इंगित प्रलयाकल विभाग के लोगों की कर्मवासना का नाश करनेवाली। स्वयं ज्ञानमूर्ति होने से लेप के अधीन न आनेवाली।

१३५. निर्मला

मल (अज्ञान) जिसमें नहीं है वह। निरंजना नाम की व्याख्या में सूचित विज्ञानकेवल विभाग के व्यक्तियों के आणवमल का नाश करनेवाली। जिसमें किसी प्रकार का मल न हो। आणवमल, जो त्रिविध है, वह भी जिसमें नहीं है वह। यह भी भाव इसका है कि भक्तों के मन से त्रिविध मलों को दूर करनेवाली।

१३६. नित्या

हमेशा रहनेवाली। कालातीता। भूत, भावी, वर्तमान इन कालपरिणामों में न पड़नेवाली। नित्याएं नामक तिथियों का रूप धारने वाली। उन्हीं नाम मंत्रोंसे जिसका रूप बना हो।

१३७. निराकारा

जिसका आकार नहीं है। सारे ब्रह्माण्ड में अनेक विध रूपों में दिखाई देनेवाले सभी पदार्थों में व्याप्त पराशक्ति उन रूपों में दिखाई देती हैं। फिर भी सबसे परे रहनेवाली उस शक्ति का रूपवर्णन किया नहीं जा सकता। वह पराशक्ति ही जगत रूप में परिणत हो गयी हैं। इन सहस्र नामों में देवी स्वरूप वर्णित हैं, फिर भी देवी का रूप केवल कल्पित मात्र है। देवी का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है।

"स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न षण्डो न
पुमान न जन्तुः नायं गुणः कर्म न सन्न चा सन्निषेध शोषी जयतादशेषः।"
(यह भागवतवाक्य देवी केलिए भी लागू हो सकता है।)

१३८. निराकुला

जिसे आकुलता छू नहीं गयी है। आकुलता अभाव की सूचना देती है। सुख का अभाव सूचित करनेकेलिए ही इसका प्रयोग है। मनुष्य एवं अन्य जीव जिन्हें गुणों एवं कर्मों के अधीन रहने से, यहाँ तक, ब्रह्माण्ड को भी कालविशेष से आकुलता हो सकती है। लेकिन सर्वलोकों की जननी और गुणातीत एवं सब के अतीत पराशक्ति को आकुलता नहीं व्यापेगी।

मन की एकतानता न रहना भी आकुलता है। जिसका मन चंचल है वह देवी को पा सकता नहीं। ऐसे लोग बहिर्मुख है और उन्हें देवी प्राप्त नहीं होती।

१३९. निर्गुणा

जिसका कोई गुण नहीं है। गुण तो शरीर-धर्म है। जिसका कोई शरीर नहीं है, उसका गुण भी नहीं है। पहले ही कहा जा चुका है कि देवी निराकार है। निराकार होने से निर्गुण भी है।

शरीर से आश्रित सत्व, रज और तम इन गुणों की बाध्यता जिसे नहीं है वह।

"यदुक्तं च मया देवी लक्षणैरवर्जितेति च
श्रुणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यगर्थं विचारणात्
लक्षणं दैवकोट्यंकः शरीरैकाश्रयो गुणः
इयं तु निर्गुणा देवी नैव लक्षयितुं क्षमा"

इस प्रकार नारद मुनि मत्स्यपुराण और पद्मपुराण दोनों में देवी का गुणराहित्य व्यक्त कर देते हैं।

१४०. निष्कला

कलाएं (अंश, अंग) जिसकी नहीं हैं वह। कला तो अंश है। जिसका आकार होता है उस के आकार के अंश भी होते हैं। देवी निराकार और निर्गुण है। अतः आकार अधवा कलाएं नहीं हैं।

"ध्यानं या निष्कला चिन्ता निराधारा निराश्रया
न तु ध्यानं शरीरस्य मुखहस्तादि कल्पना"

यह विज्ञानभैरवभट्टारक का निर्वचन है। उसके अनुसार बिना मुख के, गैरहस्त-पॉव के ईस्वर संकल्प का ध्यान करना निष्कलध्यान है। वही देवी का यथार्थ ध्यान है।

१४१. शान्ता

शान्तमूर्ति। शमवती, निष्कलं निष्क्रियं शान्तम यही त्रिपुरोपनिषद का प्रस्ताव है। विकारों का समतुलित भाव शांत है। कलारहित एवं व्यापार रहित चिच्छक्ति का सहज भाव हे शान्त। पहले ही कहा जा चुका है कि चिच्छक्ति निराकार और गुणरहित है। ऐसी शक्ति को विकारदोष व्यापेगा नहीं। जो गुणी देव हैं और मनुष्य हैं वे विकारों का सन्तुलन नष्ट हो जाने से अशान्ति के अधीन हो जाते हैं। सर्वातीत देवी शान्त रहती हैं।

'श' कार में अंत होनेवाला मंत्र जिसे होता है वह। (यह मंत्रपरक अर्थ है। श-अन्ता यही विग्रह है)

१४२. निष्कामा

काम अथवा आशा जिसे न हो वह। स्वयं पूर्ण है जो उसे, उस परम चेतन स्वरूप को क्या कमी अथवा किस चीज़ की आशा है?

'पूर्णमदम्: पूर्णमिदम' इस प्रकार ही श्रुतियाँ पराशक्ति का वर्णन करती हैं। "अवाप्ताखिल कामायास्तृष्णा किं विषया भवेत्" इस प्रकार ही देवी भागवत में पूछा गया है। सारी कामनाएं देवी में प्राप्त हैं। भक्तों की इच्छापूर्ति करने में देवी तत्पर तो हैं, अन्यथा देवी को किसी प्रकार की कामना नहीं है।

१४३. निरुपप्लवा

उपप्लव अर्थात् नाश जिसका नहीं है। नित्या नाम से भी यह अर्थ समर्थित हुआ है।

'उप' शब्द से अर्थ है पिण्डाण्ड और 'प्लव' शब्द से तात्पर्य है सहस्रार से निस्रवित अमृतस्राव। इस भाव में 'निस्' शब्द का अर्थ तो अशेष है। अमृतस्यन्द से पिण्डाण्ड को अशेष रूप से सेचन करनेवाली, यह भाव द्योतित है। याने, जो शक्ति जागकर सहस्रार तक पहूँच गयी है वह।

१४४. नित्यमुक्ता

हमेशा जो मुक्त है वह। निर्लेपा नाम की व्याख्या में यह सूचना आयी थी।

अपने भक्तों को शाश्वत मुक्ति देनेवाली अथवा जिसके अनेक मुक्त भक्त हैं वह।

१४५. निर्विकारा

जिसमें कोई विकार नहीं है वह।

सांख्य तत्व कौमुदि में बताया गया है-'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृतयः सप्तषोड़शकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुष'। इस सांख्य मत के अनुसार महद् से शुरु

होकर तेईस विकार होते हैं। कालगति से देशभेद से और अन्य शक्तियों के कार्यकलापों से जगत् के सारे पदार्थों का विकार संभव है। लेकिन संसार की कारणभूता देवी चिच्छक्ति का कोई विकार नहीं होता।

१४६. निष्प्रपंचा

जिसका प्रपंच नहीं है। क्षिति से लेकर प्रपंच तक में जो कुछ है सबका आधार प्रपंच ही है। प्रपंचकारणस्वरूपी देवी के लिए प्रपंच कोई आधार नहीं है। उलटे, प्रपंच के लिए आधार पराशक्ति ललितादेवी हैं।

१४७. निराश्रया

जिसकेलिए कोई आश्रय नहीं है। जगज्जननी देवी सबका आश्रय है। उसी देवी के लिए किसी आश्रय की ज़रूरत ही नहीं है। 'विश्वं प्रतिष्ठितं यस्यां तस्याः कुत्र प्रतिष्ठिति '-संसार जिसमें प्रतिष्ठित है उसके लिए कहाँ क्या स्थान चाहिए। यह आप्तवाक्य है।

१४८. नित्यशुद्धा

हमेशा जो शुद्ध रहती है वह। शुद्धि अथवा अशुद्धि का संकल्प ऐसे जीवों के सम्बन्ध में है जिनके साथ शरीर का सम्बन्ध है। "अत्यंत मलिनो देहो देही चात्यन्त निर्मलाः" इस स्मृतिवाक्य के अनुसार मालिन्य देह के लिए है देही के लिए नहीं है। देही अतीव शुद्ध है। पिण्डाण्ड में रहनेवाली देही जहाँ परम शुद्ध है वहाँ समास्त प्रपंचों की आत्मा एवं परम चैतन्य अशुद्ध कैसे हो सकता है?

१४९. नित्यबुद्धा

सदैव प्रबुद्ध रहनेवाली। शुद्धज्ञानरूपिणी है देवी। चित्स्वरूपा। समस्त विज्ञान भी देवी है, तो फिर सदैव प्रबुद्ध ही रहेंगी।

यह भी व्याख्या की जाती है कि विज्ञ लोग अथवा महान पण्डित लोग ही देवी रूप हैं। पण्डित रूप में रहनेवाले महान व्यक्ति देवी के अंशरूप हैं।

१५०. निरवद्या

जिसका अज्ञान कुछ भी नहीं है। ज्ञानरूपिणी। निरंजना नाम से इसका आशय पहले ही सूचित हो चुका है। 'निरवद्यं निरंजनं '-श्रुति।

"तस्मादहर्निशं देवीं संस्मरेत् पुरुषो यदि
नयात्यवद्यं नरकं संक्षीणाशेषपातकः"

कूर्मपुराण में आये इस वाक्य के अनुसार देवी का दिन-रात स्मरण करनेवाले का पाप क्षीण हो जायेगा और वह अवद्य नरक में न पडेगा।

१५१. निरन्तरा

अन्तर शब्द के कई अर्थ होते हैं जैसे बीच, द्वार और मध्यभाग। यहाँ उनमें से बिना छिद्र का अर्थ ठीक है। महादेवी सर्वलोकव्याप्ता है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ देवी नहीं है। संसार

में कहीं भी ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ देवी नहीं है। निरंतरता का वही भाव यहाँ द्योतित होता है।

स्थूल वर्णन में मध्यभाग का अर्थ ठीक है। देवी का कटिप्रदेश ऐसा कृश है, जैसे मालूम हो कि वहाँ कुछ नहीं है।

१५२. निष्कारणा

जिसे कोई कारण नहीं मानना है। सब के लिए प्रथम कारणभूत है, देवी। उस देवी के सम्बन्ध में कोई कारण नहीं है। इस नाम से यह भाव निकलता है कि देवी को जन्म देनेवाला अथवा जननी नहीं है। सारे ब्रह्माण्ड के लिए देवी ही कारणभूत है।

१५३. निष्कलंका

जिसमें कोई कलंक नहीं है वह। कलंक शब्द का भाव है पाप। इसलिए आशय है कि पापरहित। भक्तजनों का पाप भी जो कर्म्मजनित एवं पूर्वजन्मजनित है, दूर करनेवाली है देवी।

१५४. निरुपाधिः

जिसे कोई उपाधि न मानना है। उपाधि शब्द के अनेक अर्थ हैं। पहला अर्थ है, जो बदले में रखी जानेवाली चीज़। देवी के बदले में और कोई नहीं है, इसलिए निस्तुल अथवा निरुपाधिः है। उपाधि शब्द एक वस्तु की विशेषता को सूचित करने के लिए प्रयुक्त होता है। देवी के विशेष गुणों को अलग-अलग करके दिखाना संभव नहीं है। इसलिए गुणों से रहित और विशेषणों से समझाया जाना असंभव है। व्याकरण में प्रकृति, स्वभाव, काल, प्रकार, प्रयोग, पुरुष, लिंग, और, वचन ये आठ उपाधि हैं। उसी प्रकार के विभजनों में न आनेवाली है देवी। उपर्युक्त व्याकरणनिष्ठ उपाधियों से देवी की महिमा को आंका नहीं जा सकता। मनुष्य अपने परिचित पदों से प्रपंच के किसी अंश का वर्णन करता है। व्याकरणोपाधियों से किसी एक से उस पद की सूचना भी दी जा सकती है। पराशक्ति देवी को उस विभजन-क्रम में लाया नहीं जा सकता।

उप-आधि इस प्रकार पद-विभेदन करेंगे तो अर्थ होगा कि आधि के समीप रहनेवाला। तब अर्थ है धर्मविचार। आधि और धर्मविचार दोनों देवी के सम्बन्ध में अप्रसक्त हैं। विकार रहित ज्ञान के लिए आधि और व्याधि बाधक नहीं है। धर्माधर्मविवेचन भी मनुष्यों और देवों आदि के लिए ही बाधक है।

कुछ व्याख्याताओं के अनुसार उपाधि शब्द का अर्थ है अविद्या। इस प्रकार अविद्यारहित, शुद्ध ज्ञानमूर्ति यह अर्थ साबित होगा।

१५५. निरीश्वरा

जिसे कोई ईश्वर नहीं हैं। देवी सबकी अधीश्वरी है, इसलिए उन्हें किसी ईश्वर को मानना नहीं चाहिए। मीमांसा, सांख्य इन शास्त्रों के सेश्वर और निरीश्वर नामक दो विभाग होते हैं। ये शास्त्र देवी के ही अंश होने से निरीश्वरा शब्द से देवी का संबोधन करना ठीक है, यही सौभाग्यभास्कर का मत है।

१५६. नीरागा

जिसका राग छुट गया है। राग के कई अर्थ हैं, जैसे आग्रह, इच्छा, अनुराग इत्यादि। जिसे कोई आशा या मोह नहीं है। कामादि विकार जिसे न हो। अथवा सारी आशायें जिन्हें सिद्ध हैं, वह। जो देवी अपने भक्तजनों की सारी अभिलाषाओं की पूर्ति कर देती है। उन्हें क्या आशा है? जो वस्तु नहीं है, उसे प्राप्त करने का मोह ही आशा है। देवी स्वयंपूर्ण है, तो फिर उन्हें आशा हो कहीं, यह नहीं होता। रूपवर्णन में उनको रागस्वरूपपाशाढ्या कहा है। निर्गुणध्यान ही इसी नाम में भाव है।

नीर-अग इस प्रकार पदछेद करके जल और पर्वत की रूपवाली संज्ञा भी व्याख्यायित होती है।

१५७. रागमथना

राग को मर्दित करनेवाली। भक्तों के दिलों में होनेवाले राग को निर्मूल करनेवाली। भक्तों के दिलों में वैराग्य भाव पैदा करके उन्हें मुक्ति देनेवाली। राग शब्द का स्नेह अर्थ है, फिर भी रागादि विकार कह सकते हैं। राग, क्रोध, अभिनिवेश इत्यादि विकारों को मथनेवाली अथवा उनको निर्मूल कर मोक्ष देनेवाली, यही भाव है।

१५८. निर्मदा १५९. मदनाशिनी

जिसमें मद नहीं है। मद का नाश करनेवाली। मद शब्द का अर्थ अहंकार है। सौन्दर्य, धन, अधिकार आदि से होनेवाले गर्व और मन की समता नष्ट होने से होनेवाली भ्रांति यही मद है। दोनों पक्षों में मदरहित है देवी। मद का नाश कर भक्तों को मुक्ति देनेवाली।

मदन-अशिनी इस प्रकार पद विग्रह करके यह अर्थ निकाल लिया जाता है कि मद पैदा करनेवाले तत्वों को खा जानेवाली। मदन शब्द का आयुर्वेद में अर्थ है धत्तूरा नामक पौधा। इस प्रकार धत्तूरे के फूल को चाहनेवाली अर्थ भी निकलता है।

१६०. निश्चिन्ता

जिन्हें कोई चिन्ता नहीं सताती। चिन्ता शब्द सामान्यतः स्मृति है। किसी विषय पर विचार स्मृति है। फिर भी दुःख का अनुभव या स्मरण ज़्यादा दिला देनेवाली है।

"चिन्ता शब्दः स्मृति सामान्य वचनोऽपि
दुःखजनकस्मृतिविशेषे निरूढलाक्षणिक" (सौभाग्य भास्कर)

चिन्ता छ्ले चुल्लिकायाम् विश्वकोश का निर्वचन यही बताता है कि चिन्ता का अर्थ कापट्य है। दुःखस्मृति अथवा कपटता जिसे नहीं है वह। "चिन्ता चिता समाज्ञेया चिन्ता वै बिन्दुनाधिका चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति जीवितम"

इस पद्य के अनुसार यह स्थापित हुआ है कि चिन्ता जैसे जीवन को ही जला देता है वह चिता से भी कठोर है जो मात्र मृतशरीर को ही जला देती है। व्याख्या यह है कि देवी उसी चिन्ता से भक्तों को बचाती है।

१६१. निरहंकारा

जिन्हें अहंकार छू नहीं गया है। 'मैं' का भाव ही अहंकार है। गुणत्रयों से उलझे व्यक्तित्व से अहंकार का जन्म होता है। पंचभूतों से बने शरीर के भीतर रहनेवाली आत्मा अथवा चेतना पराशक्ति है। फिर भी उसे शरीरबन्धन से होनेवाले भ्रम से अहं का बोध होता है। आगे 'मेरा' का भाव होने लगता है। शरीर की इन्द्रियों से अनुभूत होनेवाले विकारों को सुख अथवा दुःख के रूप में विभाजित किया जायेगा और वह भी वासना के अनुकूल होकर। सुख की अनुभूतियों से प्यार और दुःख की अनुभूतियों से नफरत करने लगते हैं। सुख की प्राप्ति के रास्ते में जो भी विघ्न उपस्थित होंगे उन्हें दूर करने और उससे अलग रहने लगेंगे। इस प्रकार कभी अन्त न होनेवाले उलझन में पडकर बार-बार जन्म लेंगे और मरेंगे। देवी की उपासना करनेवाले इस अहंकार से मोचन अवश्य प्राप्त करेंगे यही इस नाम का आशय है।

१६२. निर्मोहा

जिसे कोई मोह नहीं है। मोह आत्मज्ञान न होने से पैदा होनेवाला दुःख अथवा जाड्य (जटता) है। "मोहोवैचित्यं तदभावान्निनर्मोहा "-(सौभाग्यभास्कर) चिच्छक्ति से मैं अन्य नहीं हूँ यह ज्ञान भक्तजनों को देकर मोह का देवी नाश करती हैं। अतः देवी को मोहनाशिनी नाम से अभिहित किया जाता है। "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" - (ईश्वावास्यं) जहाँ एकत्व का बोध होता है वहाँ मोह कहाँ? शोक कहाँ?

१६३. मोहनाशिनी

जो मोह का नाश करती है वह। गत नाम की व्यख्या के साथ मिलाकर देखें। जो देवी प्रपंच के जन्म - स्थिति - लय के लिए कारणभूत है उसे कहाँ मोह है? यही नहीं, भक्तों का मोह दूर करके उन्हें कैवल्य दे देती है।

१६४. निर्ममा

जिसे 'मेरा' यह भाव नहीं है। मम शब्द विभक्ति प्रतिरूप अव्यय है। मेरा , मुझे आदि। अपने से अलग कुछ है, इस प्रतीति से मेरा बोध होता है। यह भेदबुद्धि अज्ञान से पैदा होती है। इस अनन्त प्रपंच के सारे प्रतिभास केवल देवी ही हैं, तो उनसे अलग कोई भी वस्तु नहीं है। इसलिए, देवी के लिए 'मेरा' का भाव नहीं है। भक्तजनों में निर्मम भाव पैदा करनेवाली देवी है।

१६५. ममताहन्त्री

ममता का हनन करनेवाली। पहलेवाले नाम की व्याख्या से मिलाकर देखें। भक्तों के हृदय से अज्ञान को दूर कर ममत्वबोध दूर करनेवाली।

१६६. निष्पापा. १६७. पापनाशिनी

जिसपर कोई पापभार नहीं है। इस अर्थ का विशदीकरण ज़रूरी नहीं है। देवी के ऊपर पाप नहीं होगा। भक्तजनों का पाप दूर करनेवाली है देवी। दोनों नामों के लिए यह व्याख्या युक्त है।

"मेरुपर्वतमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः
कात्यायनीं समासाद्य नश्यति क्षणमात्रतः
दुर्गार्चनरतो नित्यं महापातकसंभवैः
दोषैर्न लिप्यते वीरपद्मपत्रमिवांभसि"

(मेरुपर्वत की तरह जमे हुए पाप, पूर्णतः कात्यायनी के स्मरण मात्र से नष्ट हो जाता है। दुर्गा अर्चना-आराधना करनेवाले व्यक्ति के पाप को कमल-पत्र में पडे हुए जल के समान स्पर्श-संबन्ध नहीं होता। (यही पद्मपुराण का कथन है)

"छित्त्वा भित्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत्
प्रणम्य शिरसा देवीं न स पापैर्विलप्यते
सर्वावस्थागतो वापि युक्तो वा सर्वपातकैः
दुर्गे दृष्ट्वा नरः पूतः प्रयाति परमं पदम्"(देवी भागवत)
"वर्णाश्रम विहीनानां पापिष्ठानां नृणामपि
यद्रूपध्यानमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते" (ब्रह्माण्ड पुराण)

इन वचनों से देवी के पापनाशक अनुग्रहतत्व का स्पष्टीकरण होता है। यही बात वसिष्ठ स्मृति ने जमझायी है-

"विद्यातपोभ्यां संयुक्तं ब्राह्मणं जपनैत्यकम्
सदापि पापकर्माणमेनो न प्रतियुज्यते
जापिनां होमिनां चैव ध्यायिनां तीर्थवासिनाम्
न संवसन्ति पापानि ये च स्नाताः शिरोव्रतैः"

१६८. निष्क्रोधा, १६९. क्रोधशमनी

जिसे क्रोध नहीं आता। जो क्रोध का नाश करती है। ऐसा कोई नहीं है जिससे देवी क्रोध कर सकें। देवी विकाररहित भी हैं। इसलिए देवी क्रोधरहित हैं। सारा चराचर देवी है। वहाँ क्रोध का कारण नहीं पैदा होता। क्रोध नहीं होता।

' न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः' - भगवान ने भगवद्गीता में कहा है। क्रोध का नाश करनेवाली, यह अर्थ दोनों नामों केलिए लागू है। क्रोध प्राणियों में नफरत पैदा करने और संघर्ष का कारण है। अज्ञानजन्य अहंकार से मलिन बन जानेवाले मन में काम, क्रोध, मोह आदि विकार उत्पन्न होते हैं। उन्हीं की अधीन होनेवाले मनुष्य में धर्माधर्म विवेचन नष्ट हो जाता है। क्रोध से पाप करने में प्रेरित हो जाता है। निष्क्रोधा शब्द से भक्त को क्रोधविहीन बनानेवाली, यही अर्थ है। क्रोधशमनी नाम से यही तात्पर्य है कि जो क्रोध हुआ उससे मुक्त करके उसे धर्म मार्ग में ले जानेवाली।

"क्रोधयुक्तो यद्यजति यज्जुहोति यदर्चति
स तस्य हरते सर्वमामकुम्भो यथोदकम" (आपस्तंबवाक्य)

क्रोधी मनुष्य याग करे, अथवा होम करे या अर्चना करे, तो भी कोई फायदा नहीं है। कच्ची मिट्टी से बने घड में पानी गिरा तो जिस प्रकार घडा गल जाता है उसी प्रकार सारा प्रयत्न विफल हो जाता है। उपासक के मन से क्रोध देवी दूर कर देती है। इसलिए वह मुक्ति का अधिकारी बन जाता है।

१७०. निर्लोभा १७१. लोभनाशिनी

जिसे कोई लोभ नहीं सताता। लोभ का नाश करनेवाली । लोभ आठ रागों में एक है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दम्भ, कीना ये ही अष्टराग हैं। ये सब मनुष्य को विपथ अथवा अपथ की ओर ले जानेवाले हैं। उसका परिणाम पाप के मार्ग को अपनाना है। कहा जाता है कि लोभ के जन्म अथवा दम्भ नामक विकार का जन्म माया से उत्पन्न हुआ है। पुष्टि से तात्पर्य समृद्धि है। धन-धान्य की समृद्धि और बल एवं वीर्य की पुष्टि से दम्भ पैदा होता है। अतः दंभ और पुष्टि दोनों को एक ही माना जाता है। दंभ और माया के संयोग से लोभ पैदा होता है। जब यह डर होता है कि समृद्धि हाथ से निकल जानेवाली है तब अपने धर्म से च्युत होता है और अपनी वस्तुओं का व्यय करने में कंजूसी करता है। यही नहीं दूसरों की वस्तुओं को अपनाने का भी आग्रह करता है। यह स्वभाव मनुष्य को धीरे-धीरे क्रोध एवं हिंसा की ओर प्रवृत्त कर देता है। 'लोभस्सर्वगुणानहन्ति यह श्रुत है। जितने भी गुण हों, सबको लोभ नष्ट कर देता है। देवी लोभरहित है, इसकी व्याख्या अपेक्षित नहीं है। महालक्ष्मी जिनकी परिचारिका है उन्हें लोभ चिन्ता क्यों हों। वे राजराजेश्वरी हैं। निर्लोभा नाम का यही आशय है कि भक्त जनों पर कारुण्यवर्षा करनेवाली, किसी प्रकार के लोभसंवरण के बिना भक्तों के आग्रहों को पूरा कर देनेवाली, यही अर्थ है। लोभनाशिनी नाम से भक्तों के लोभों का नाश करनेवाली, यही अर्थ है। देवी के कारुण्य से भक्तों का जीवन ऐश्वर्यपूर्ण हो जायेगा। धन-सम्पत्ति, समृद्धि, वीर्य, अधिकार, प्रताप ये सब अपने आप आ जायेंगे। विवेकहीन भक्त देवी के कारुण्य को भूलकर अपने बडपन पर स्वयं गर्व करते होंगे। वे माया के अधीन हो जाते हैं। इस प्रकार पुष्टि और माया दोनों के मिलन से लोभ पैदा होगा। फिर धर्म का विस्मरण कर पूर्वाधिक धन, अधिकार, बल, वीर्य पाने का श्रम करेंगे। अष्ट रागों के अधीन पड़कर पाप करने में तत्पर होंगे। इस प्रकार न होने देना ही देवी की कृपा है।

१७२. निस्संशया १७३. संशयघ्नी

अनिश्चित अवस्था में विचारों का निश्चय नहीं किया जा सकता। संशय सही, गलत, धर्म और अधर्म का विवेचन करने में बाधा पहूँचाता है। अष्टरागों में संशय को स्थान नहीं दिया गया है। फिर भी मनुष्य को विपथगामी बनाने में सहायक है संशय। जहाँ शंकालू हो जाता है वहाँ एकाग्रता नहीं होती। इन्द्रियों को वश में करने में असमर्थता होती है। ज्ञान का उदय नहीं होता। शान्ति नहीं होगी। भगवद्गीता ने बताया है:

"अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः"

भगवान ने संशय के बिना कहा है 'संशयात्मा विनश्यति'। निस्संशया नाम से देवी को संशय रहिता बताया गया है। फिर भी उस अर्थ की संगति नहीं होती। क्योंकि देवी शुद्ध ज्ञानस्वरूपिणी हैं। संशयों को दूर करनेवाली, यह अर्थ ठीक है। ध्वनि यह है कि ललितांबा गुरुरूपिणी हैं। 'असंशयः संशयच्चिन्निरपेक्षो गुरुर्मत' इस तंत्रराजनिर्वचन के अनुसार गुरु संशयरहित और संशयों को दूर करनेवाले होते हैं। उन गुरु और ललिता देवी में कोई भेद नहीं। गुरु ही देवी हैं अथवा देवी ही गुरु हैं। संशयघ्नी नाम से उपासकों के संशयों को दूर कर उन्हें मुक्ति देनेवाली ही अर्थ हो सकता है। 'छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' इस प्रकार श्रुति और स्मृति बताती हैं।

१७४. निर्भवा, १७५. भवनाशिनी

जो जन्म नहीं लेती। आदि अन्तहीन पराशक्ति। भव (संसार का बन्धन) का नाश करनेवाली, यह अर्थ भी हो सकता है। लेकिन, वह अर्थ भवनाशिनी नाम से ज़्यादा व्यक्त होता है। दोनों नाम एक दूसरे के पूरक हैं। देवी अपने भक्तजनों के संसार-बन्धन को दूर कर उन्हें मुक्ति देती हैं।

"अहं वै मत्परान् भक्तानैश्वरम योगमाश्रितान्
संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु"

इसप्रकार देवीभागवत में देवी स्वयं घोषित करती है। यही आशय भगवद्गीता में भगवान भी प्रकट करते हैं:-

"येतु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्" (भग-गीता)

१७६. निर्विकल्पा

जिसमें कोई विकल्प नहीं है। भक्तजनों का विकल्प दूर करनेवाली। विकल्प का अर्थ है जिसे बदल दिया जा सकता है। जो व्यवस्थित नहीं है। किसे स्वीकार किया जाय, यह शंका जिसके सम्बन्ध में हो, वह। जिसमें चिन्तन में जडता हो, वह कोई नतीजा निकालने में जिसे कठिनाई महसूस होती हो। जिस किसी भी अर्थ में देवी निर्विकल्प हैं। विकल्प से भक्तों को न तकलीफ देनेवाली।

विकल्प का यह अर्थ भी है कि दो कल्पों के बीच का काल। कालविभाग में एक है कल्प। कल्पकाल संसार के उत्पत्ति-क्षयों को सूचित करता है। उन कल्पों से भी देवी का कोई अंतर नहीं होता, अतः निर्विकल्पा है। कल्प का अर्थ शास्त्र विधि भी है। इस आशय के अनुसार

देवी शास्त्रविधियों से भी न जानी जानेवाली है। शब्दजन्य और विषय की अपेक्षा से रहित ज्ञान को विकल्प कहते हैं। 'विकल्पः शून्य विषयकं शब्दजन्यं ज्ञानं' यही सौभाग्य भास्करं का मत है। 'शब्द मात्रानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः' यह योगसूत्र का मत है। उस विकल्प से बाहर रहनेवाली यही नाम का आशय है। वे निर्विषयक एवं नित्य ज्ञानस्वरूपिणी है।

१७७. निराबाधा

जो किसी प्रकार से बाधित नहीं होती। 'अबाधा' शब्द का अर्थ है दुःख। विशेषकर नरक दुःख को सूचित करता है। भक्तजनों के नरक सम्बन्धी दुःख को दूर करनेवाली। यह आशय भी सूचित किया जाता है कि दुर्देवताओं का उपद्रव एवं ग्रहाचार से होनेवाले कष्टों को दूर कर मुक्ति देनेवाली।

१७८. निर्भेदा- १७९. भेदनाशिनी

जिसमें कोई भेदभाव नहीं है। जो भेदभावों का नाश करती है। एक का दूसरे से जो अन्तर कल्पित किया जाता है, वही भेदभाव है । इस अन्तर अथवा भेदभावना के लिए आधार है गुणविशेष। सजातीयता की तरह भेदभाव भी एक प्रकार का बन्ध है। जिससे साधर्म्य स्थापित किया जाता है वह समानता है। जिसमें विजातीयता महसूस होती है वही भेद है। निर्भेदा नाम से देवी के सम्बन्ध में वस्तुओं एवं व्यक्तियों के गुणविशेषों में भेद नहीं है, सब देवी में समाये रहते हैं। सब देवी के अंशभुत माने जाते हैं।

वस्तुओं एवं व्यक्तियों में उनके ज्ञान; गुणभेद और वासनाभेद तथा विषयभेद के कारण अन्तर मालूम होता है। यह भ्रम अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है। विविध रूपों में अलग-अलग गुणविशेषों से युक्त दिखाई देनेवाले सब चिच्छक्ति के प्रतिभास हैं। अपने भक्तों को यह भेद-रहस्य साफ सूचित करनेवाली है भेदनाशिनी। जब तत्वज्ञान होगा तब भेदबुद्धि मिट जायेगी।

"शक्ति शक्ति मतोर्भेदम् वदन्त्यपरमार्थतः
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्वचिन्तकाः" (कूर्मपुराण)

उस पुराण में

" त्वं हि सा परमाशक्तिरनंता परमेष्ठिनी सर्वभेद विनिर्मुक्ता
सर्वभेदविनाशिनी"

इस प्रकार देवी की स्तुति की जाती है।

१८०. निर्नाशा

जिसका नाश नहीं होता। "सत्यं ज्ञानमनन्तम् " यही श्रुति की उद्घोषणा है। किसी का भी नाश नहीं होता। मनुष्यों को यह भ्रम होता है कि नित्य चेतना का स्फुरण बढता है और नष्ट होता है। काल की अभंगुर गति भी अनन्त और आदिमध्यांतरहित चिच्छक्ति के सनातन भाव का विकार मात्र है। इस सारे विश्व का नाश हो सकता है। लेकिन, यह विश्व [illegible] के स्फुरण मात्र से चलता है उसका कोई नाश नहीं होता। पराशक्तिदेवी की उत्पत्ति नहीं, नाश नहीं।

१८१. मृत्युमथनी

मृत्यु को मथनेवाली (नाश करनेवाली) भक्तों का मृत्युभय दूर करनेवाली। जो जन्मता है वह मरता है; यह प्रकृति का सनातन नियम है। देवी के भक्त भी मृत्यु का निराकरण नहीं कर सकते। इस नाम से दो बातें सूचित की जाती हैं। एक कर्मफल से जो अकाल मृत्यु हो सकती है, उसे देवी ठीक कर देती हैं। उपासना से मृत्यु का निराकरण असंभव है। लेकिन देवी की उपासना से ही मृत्यु का काल बढाया जा सकता है। दूसरी व्याख्या यह है कि संसार से संबन्धित दुःखों से मोचित करके शाश्वत मुक्ति देकर मरणभय से मुक्त करनेवाली है देवी। मनुष्य के जीवन में थोडे दिन आगे बढ़कर रहने से कोई लाभ नहीं है। फिर भी बन्धुजन यह प्रार्थना तो करते हैं कि प्रिय जन को दीर्घायु प्राप्त हो। यह बात भी प्रसिद्ध है कि देवी ने उस प्रार्थना को स्वीकार किया है। मृत्यु का मथन करनेवाली नाम का अर्थ इसी रूप में लेना ठीक है।

१८२. निष्क्रिया

जिसकी कोई क्रिया नहीं है। हर काम क्रिया है। वह कर्ता सोद्देश्य करता हो, अथवा स्वयं होनेवाला हो। सारी क्रियाओं का अपना फल होता है। जहाँ कर्ता नहीं है वहाँ क्रिया भी नहीं। क्रिया के फल को स्वीकार करनेवाला कर्म व्याकरण के नियमों के अनुसार हो भी सकता हे अथवा नहीं भी। मनुष्यों और अन्य प्राणियों के लिए यही नियम है। जो पराशक्ति सर्व कर्मों की आधारभूत शक्ति है वह कोई काम नहीं करती। लीला स्वरूप प्रपंचसृष्टि आदि केलिए प्रेरणा देती है, फिर भी वह फलप्राप्ति को मानकर न होने से कोई कर्म नहीं मानना है। इसलिए निष्क्रिया नाम है। भक्तों की दृष्टि में क्रिया व्यापार दो प्रकार के हैं। व्यक्तियों के आपसी सम्बन्ध और जीवन की अपेक्षाओं के उलझे रहने के कारण कतिपय जीवनमुक्त मनुष्यों के अलावा शेष सब किसी न किसी प्रकार से क्रिया व्यापारों में बंधे रहते हैं। ऐसे सन्दर्भों से भक्तजनों को बचाकर मोक्ष मार्ग दिखानेवाली है देवी। भक्तों को उचित अनुचित क्रियाओं का बोध देकर अहित कार्यों से निवृत्त करनेवाली, यह अर्थ भी है। क्रियाव्यापारों में मन मुग्ध न होकर फलापेक्षा के बिना काम कर सकता है। उस अवस्था में कर्म किये जाने पर भी उसे क्रिया न कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था की ओर भक्त जनों को प्रेरणा देनेवाली।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः (भःगीः ३-१७-१९)

भगवद्गीता में प्रस्तुत आशय द्रष्टव्य है।

१८३. निष्परिग्रहा

परिग्रह न करनेवाली। "परिग्रहः परिजने पत्न्यां स्वीकारमूलयो":- (मेदिनि निघण्डु) पदार्थ है स्वीकार करना। विवाह द्वारा किसी को पत्नी अथवा पति के रूप में स्वीकार करना, वस्तुओं अथवा धनादि को स्वीकार करना, शाप अथवा शपथ आदि को स्वीकार करना, परिचारक आदि नाना अर्थ इस पद के व्यवहार में आता है। देवी के पक्ष में जो कोई भी अर्थ ठीक रहेगा। देवी पराशक्ति किसी से भी कुछ स्वीकार नहीं करतीं। वे सबको देती हैं, बस। परिचर्या, पूजा, सेवा, नमस्कार इत्यादि करनेवाले अपने लिए ही सब करते हैं। भक्तवात्सल्य के कारणा देवी उन सबको स्वीकार भी करती हैं। अपने भक्तजनों के लिए ही देवी स्वीकार करती हैं। अपने लिए कुछ न स्वीकार करती हैं, इसलिए निष्परिग्रहा नाम है।

१८४. निस्तुला

जिसकी कोई तुलना नहीं है। वर्णन करते समय परिचित वस्तुओं के साथ तुलना की जाती है। वर्ण्यवस्तु और अवर्ण्यवस्तु दोनों में जब साम्य हो, तब यह संभव है। ललितादेवी के साथ किसी अन्य की तुलना हो सकती है, यह असंभव है, इसलिए निस्तुला नाम है। 'हेतेदृष्टांतवर्जितं'- (त्रिपुरोपनिषद्)

१८५. नीलचिकुरा

नीले रंग के चिकुर जिनके होते हैं वे। यह नाम स्थूल वर्णन में आता है। नीले अथवा काले रंग के बाल, जो सघन है, जिनके होते हैं वे स्त्रियाँ सुन्दरी मानी जाती हैं। यह भारतीय सौन्दर्यसंकल्प का विषय है। सुन्दरी।

१८६. निरपाया

जिसे कोई आपत्ति नहीं छूती। अपाय शब्द के कई अर्थ होते हैं, जैसे नाश, मरण, आफत्ति, दौर्भाग्य, व्यसन इत्यादि। ये सब देवी को नहीं व्यापते। इसलिए निरपाया है। भक्तों को अपाय से मुक्त करनेवाली यह भी अर्थ हो सकता है।

१८७. निरत्यया

जिसे अत्यय छू नहीं जाता। अत्यय का तात्पर्य है अतिक्रम, दुःख, दोष, दण्ड अफत्ति इत्यादि। "अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे दोषे दण्डेप्यथापदि - (अमरकोश)। इन सबसे अतीत होने से निरत्यया नाम है। भक्तों का अत्यय दूर करनेवाली, यह अर्थ भी होता है।

स्वयं स्थापित नियमों का उल्लंघन न करनेवाली, हालांकि अपने में पूर्ण शक्ति संजोये रहती हैं। देवी पराशक्ति भी है। आदिशक्ति स्फुरण रूपिणी है। सारी चेतना का बीज रूप भी वह है। आदिशक्ति रूप में देवी कारणकार्यसम्बन्धरूप में नियति बनकर विराजित हैं। प्रपंच के क्रिया-कलाप के लिए स्थल एवं काल सम्बन्धी नियमों का प्रबन्ध भी देवी ने किया है। उनके नियोजन के लिए सूर्य, अग्नि, वायु आदि अधिकारियों एवं ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि देवताओं को निश्चित

किया है। व्यक्त तथा अविचल प्रपंचप्रवर्तननियमों को मानते हुए ही मायाशक्ति काम करती है। अपने बनाये हुए नियमों का उल्लंघन न करनेवाली है देवी।

१८८. दुर्लभा

जिसे प्राप्त करना कठिन है। क्लेश मात्र से प्राप्त होनेवाली। कठोर तपस्या और निरन्तर साधना करने पर भी योगियों को भी देवीदर्शन अप्राप्य है, इसलिए दुर्लभा नाम है। एक अन्य नाम से बताया गया है कि देवी भक्ति से जल्दी प्राप्त होनेवाली हैं। देवीभक्तों को इस नाम का आशय समझना चाहिए ही। देवी की आराधना कई मार्गों से हो सकती है। उनमें एक तरीका है कौल । हठयोग क्रिया से शरीर को अधीन में लाकर इन्द्रियों के व्यापार को नियंत्रित करके कुण्डलिनी शक्ति को जगाने का तरीका दूसरा है। इसके भी कई प्रकार के अनुष्ठानभेद हैं। अन्तःकरण की शुद्धि से जो अनुगृहीत नहीं हैं ऐसे उपासक इन अनुष्ठानों से देवी को पा लेना कठिन है। उत्तम गुरु का आशीर्वाद, अनुष्ठानशुद्धि और एकतान लक्ष्यबोध भी इसकेलिए अनिवार्य है। एक अन्य तरीका है बाह्यपूजन। इसमें स्थूल रूप में देवी की आराधना मुख्य है। स्थूल रूप में देवी का संकल्प कर पूजामंत्रों द्वारा उनका आवाहन करके अर्घ्यपाद्यादि से नीराजनपर्यंत पूजा विधि से की जानेवाली क्रिया। इसी के विभाग में आयेंगे, होम, याग, आदि। विधि के अनुसार किये गये होमकुण्ड से ही देवी उत्पन्न हुई थी। चिदग्निकुण्डसंभूता नाम की व्याख्या में यह बताया जा चुका है।

और एक प्रकार है, जो यंत्र विशेषों के प्रयोग से किये जानेवाला पूजा विधान । स्वयं देवी है श्रीचक्र। उनके त्रिमान स्वरूपी मेरु भी देवी है। इनकी पूजा गुरूनिर्देश से की जाती है वह भी बाह्य पूजा है। इनकी चर्चा विस्तरभय से छोड़ देता हूँ। इन सब से श्रेष्ठ है, पूर्वोक्त मातृसंकल्प। देवी को माता मानकर उपासना करनेवाला साधक शिशुसहज भावना से पूजा का फल देवी के कारुण्य से जल्दी प्राप्त करता है। कठोर योगसाधना से भी प्राप्त होने में असाध्य है देवी।

१८९. दुर्गमा

जिसे प्राप्त करने में कठिनाई होती है। दुर्लभा नाम का वही अर्थ इसी का भी है। प्राप्त होना, इस ओर संकेत करता है कि देवी के प्रसाद को पा लेना।

अदुर्गमा नाम भी लागू होता है- सौभाग्यभास्कर की व्याख्या है। इससे यही अर्थ निकलता है कि दुर्गम जिसके सम्बन्ध में नहीं है। देवी के लिए दुर्गम का अनुभव कुछ भी नहीं है।

१९०. दुर्गा

दुर्गा नाम से जानी जानेवाली। देवीमहात्म्य एकादशस्कन्ध में देवी स्वयं कहती है "तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरं दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति" दुर्गम नामक असुर को मारने से दुर्गा नाम है। देवीमाहात्म्य को ही आधार मानेंगे, तो यह दिखाई देता है कि देवी पहले ही दुर्गा नाम से अभिहित थीं।

"दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि,
दारिद्रदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता"

देवों ने इस प्रकार देवी की स्तुति की है। दुःख से ही प्राप्त होनेवाली, यह व्याख्या भी है। दुर्ग्रह होने से दुर्गा नाम है। पर्वत जैसे दुर्गम स्थानों में रहनेवाली, यह भी व्याख्या है। दुष्टजनों से भी अर्चित एवं स्तुत्य, ऐसा अर्थ भी बताया जाता है। अर्थ को मानकर इन सभी व्याख्याओं को मानना पड़ता है। हम इसे देवी नामों में से एक मानते हैं।

दुर्गम संसार सागर को तरनेवाली है देवी, इसलिए वे दुर्गा हैं। "दुर्गासि दुर्गभवसागर नौरसंगा " (देवी माहात्म्य-४-१०) नौ वर्ष की कन्या, यह अर्थ भी दुर्गा का है। 'नववर्षा भवेत् दुर्गा '(देवीभागवत) कन्यका स्वरूप में पूजित होने से दुर्गा नाम है। देवीभागवत में बताया गया है कि वाराणसी नगर में सुबाहु नामधारी राजा ने देवी को दुर्गा नाम से प्रतिष्ठित किया है। " नगरेऽयत्र त्वया मातः स्थातव्यं सर्वदा शिवे दुर्गादेवीति नाम्ना वै त्वं शक्तिरिह संस्थिता" , इस प्रकार सुबाहु देवीप्रसाद और वरप्राप्ति से सन्तुष्ट हो कर प्रार्थना करता है।

१९१. दुखःहन्त्री

दुःख का निवारण करनेवाली। भक्तजनों के संसार-दुःख को दूर करनेवाली। जननमरणरूपी संसार चक्र ही दुःख हेतुक है। हर प्राणी को दुःख कई कारणों से होता है। जीवन में होनेवाले दुःखों और जननमरणरूपी संसारदुःख को दूर करनेवाली हैं देवी।

१९२. सुखप्रदा

सुख को प्रदान करनेवाली। लौकिक एवं कैवल्यरूपी सुख को प्रदान करनेवाली।

"दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीवशुभां ददासि
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्र-चित्ता" (दे.मा. ४-१६)

उपर्युक्त देवीमाहात्म्य के श्लोक में बताया गया है कि सुख देनेवाली और दुःख का नाश करनेवाली देवी की कृपा शक्तिशाली है।

१९३. दुष्टदूरा

दुष्टजनों से दूर रहनेवाली। (ऐसे लोग देवी के पास तक नहीं पहूँच सकते। दुष्टजनों का नाश करनेवाली। दुष्टजन माने, जिनके मन कलंकित हैं और कर्म पापपूर्ण हैं। और जो धर्म चिन्तन नहीं करते और कर्म करते हैं। ऐसे जन देवी को प्राप्त नहीं कर सकते।

१९४. दुराचारशमनी

दुराचरणों का नाश करनेवाली। कालगति के अनुसार जगत् में धर्मच्युति हो सकती है। तब दुराचरण धर्माचरण के स्थान पर घुस आयेगा। व्यक्तियों के जीवन में भी कई कारणों से दुराचरण का बोलबाला होने लगेगा। धर्म की स्थापना के लिए देवी अनेक रूपों में प्रकट होकर दुराचार का शमन करके धर्मनीति को पुनर्जीवित कर देंगी। अपने भक्तों को बुरे आचरणों से देवी बचाकर रखेंगी।

१९५. दोषवर्जिता

दोषों को दूर करनेवाली। जिसमें कोई दोष न हो। राग, द्वेष, मद, मात्सर्य इत्यादि दोष जिसमें न हो। दोषों से अपने भक्तों को बचानेवाली।

१९६. सर्वज्ञा

जो सब कुछ जानती है। शुद्ध ज्ञानस्वरूपिणी के रूप में पहले उनका वर्णन किया है। सारा ज्ञान देवी से पैदा होता है। अल्पज्ञ पण्डित उतना ही जानता है जितना देवी अखिल विश्व के जिस अंश को प्रकट करती हैं। सम्पूर्ण ज्ञान स्वयं देवी को ही होता है। हर प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों को पूरा-पूरा जाननेवाली देवी है।

१९७. सान्द्रकरुणा

घने रूप में करुणा रखनेवाली। करुणामूर्ति। भक्तजनों से माता देवी का कारुण्य कितना सान्द्र है, यह इस शब्द से बताया जाता है।

१९८. समानाधिकवर्जिता

जिनके समान अथवा ऊपर अगर कुछ हो, वैसा कोई नहीं है। "न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतो ऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः" । अर्जुन ने भगवान का विश्वरूप दर्शन पाकर भयचकित होकर इस प्रकार कहा है। देवी की तुलना और किसी से करना संभव नहीं है और देवी से बढ़कर और किसी में कोई योग्यता भी नहीं है, यही इस सन्दर्भ का विषय है। "न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते"- (श्रुति)

१९९. सर्वशक्तिमयी

जो देवी स्वयं सारी शक्ति का स्वरूप हैं वे। देवीमाहात्म्य कहता है कि देवी सर्व देवताओं की शक्ति का समन्वित रूप है। महिषासुर का आंतक सहकर जो देव भ्रष्ट और दुःखी हुए वे सब मिलकर ब्रह्मा तथा रुद्र के साथ विष्णु के सम्मुख पहूँचकर अपने दुःखों का वर्णन करने लगे। उनकी दुःख कथा सुनकर मधुसूदन कुपित हो गये।

"इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः
चकार कोपं शंभुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ
ततोतिकोपपूर्णस्य चक्रिणोवदनात्ततः

निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च
अन्वेषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत
अतीव तेजसः कूटं ज्वलंतमिव पर्वतम्
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरं
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्
एकस्थंतदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा" (दे.मा. अध्या. २,११३-११७)

(देवताओं के वचन सुनकर विष्णु और शिव कुपित हुए। उनके मुंह और भ्रू कुटिल बने। कोपिष्ठ विष्णु के मुख से तेज निकला। ब्रह्मा और शिव के मुखों से भी महान तेज निकला। इन्द्र आदि अन्य देवों के शरीर से देज निकल आया। वे तेज एक साथ मिलकर मानों पर्वताकार धारण कर गये। सर्व देव शरीरों से निकले वे तेज एकीभूत होकर एक नारी का रूप धारण कर गये।)

बाला, बगला आदि विविध शक्तियों के रूप में प्रकट होनेवाली। देवी के अनन्त मूर्तिभेद हैं। अलग अलग रूपों को स्वीकार करने पर भी सारी शक्तियाँ देवी हैं। पांचरात्रलक्ष्मीतंत्र में इन्द्र से देवी इस प्रकार बताती हैं-

"महालक्ष्मीरहं शक्र पुनः स्वायंभुवेऽन्तरे
हिताय सर्वदेवानां जाता महिषमर्दिनी
मदीयाः शक्तिलेशा ये तत्तद्देवशरीरगाः
संभूयते ममाभूवन् रूपं परमशोभनम्
आयुधानि च देवानां यानि यानि सुरेश्वर
मच्छक्तयस्तदाकारा आयुधानि तदाभवन्"

चतुर्वेद शिखा में "सर्वैर्युता शक्तिभिर्देवता सा परेति यां प्राहुरजश्रशक्तिं" कहकर देवी की सर्वशक्ति-मयता का वर्णन किया गया है। शिवशक्तिरूपीणी महादेवी सृष्टि आदि के लिए नाना शक्तियाँ बनती हैं।

"आत्मै वा खण्डाकारा चैतन्यरूपा शक्तिः" - गौडपादः

२००. सर्वमंगला

सभी मंगल जिसके रूप हैं वह। सभी मंगलों को प्रदान करनेवाली।

"सर्वाणि हृदयस्थानि मंगलानि शुभानि च
ईप्सितानि ददातीति तेन सा सर्वमंगला
शोभनानि च श्रेष्ठनि या देवी ददते हरे
भक्तानामार्तिहरिणी तेनेयं सर्वमंगला" (देवीपुराण)

"सर्व मंगलमंगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते"

(मंगलों को मंगल बनानेवाली और सब अर्थों को साध्य बनानेवाली तथा रक्षिका एवं तीन नयनोंवाली देवी शिवे तुझे नमस्कार!) इस पद्य में भी आशय वही है।

२०१. सद्गतिप्रदा

सद्गति को प्रदान करनेवाली। सद्गति का मतलब यह है कि मनुष्ययोनि में उत्कृष्ट जन्म, इसी जन्म में माँगलिक जीवन, जन्ममरणरूपी संसारबन्धन से शाश्वत मोचन इत्यादि की सूचना है। जगज्जीवन में और परलोक जीवन में सद्गति और अंत में मोक्षप्राप्ति। सद्गति को प्रदान करनेवाली, ब्रह्मज्ञान देनेवाली। सज्जनों की गति देनेवाली। देवी की आराधना करने से इस जीवन में ऐश्वर्य मिलता है और कर्मगति से यदि पुनर्जन्म आवश्यक हो जाने पर श्रेष्ठ जन्म भी प्राप्त होता है। सनातन मुक्ति प्राप्त होगी और ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा।

२०२. सर्वेश्वरी

सब की ईश्वरी जो है। सर्व ऐश्वर्यों का आधारस्वरूपी " कामेशि मोदिनि विमलेऽरुणे जयिनि सर्वेश्वरि कौलिनि रहस्ययोगिनि" - सहस्राक्षरविद्यामंत्र

२०३. सर्वमयी

सर्वस्वरूपिणी। देवी से भिन्न कोई भी वस्तु जगत में नहीं । फेन, जल, तरंग, मत्स्य, नक्र आदि सारे जलजीव समुद्र से भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार चराचरात्मक यह विश्व देवी से भिन्न नहीं है। सर्व देवीमय है। चित्स्वरूपिणी देवी से भिन्न जगत में कुछ भी नहीं है।

२०४. सर्वमंत्रस्वरूपिणी

सभी मंत्र देवी के स्वरूप हैं। उन सभी मंत्रों के रूप में रहनेवाली। पंडितों के मत में मंत्र सात करोड़ हैं। सभी मंत्र देवतास्वरूप हैं। विश्वास यह है कि महान ऋषियों के सामने देवता मंत्रों के रूप में प्रकट हुए। मंत्रों को दर्शित ऋषि का मंत्रद्रष्टा के रूप में उच्चारण के पूर्व स्मरण किया जाता है। सभी मंत्रों का उच्चारण तभी संभव है, जब वैखरी रूप स्वयं बनें। वैखरी देवी रूप है, इसलिए सभी मंत्र.देवीस्वरूप हैं।

२०५. सर्वयंत्रात्मिका

सभी यंत्रों के स्वरूप धारण किये हुए। घटार्गलादि अनेक जाति यंत्र हैं। यह वह है, जो शक्तियों को रेखाचित्र रूप में मंत्राक्षरों के साथ अथवा उनके बिना भी आलेखित किया जाता है। सारे प्रपंच के प्रतिनिधित्व से लेकर पूजाचक्र, पद्मचक्र, अमृतघट, मेरुलिंग इत्यादि मंत्रशास्त्र द्वारा प्रसिद्ध यंत्र तक विविध प्रकार के सभी यन्त्र देवी रूप हैं, इसलिए सर्वयंत्रात्मिका नाम सार्थक है।

२०६. सर्वतंत्ररूपा

देवी को मंत्र स्वरपिणी और सर्वयंत्रस्वरूपिणी के रूप में चित्रित किया है। उसी प्रकार सब तंत्रों के भी वे स्वरूप हैं। तंत्र शब्द से मतलब है वामकेश्वरादि तंत्र, कुलार्णव, ज्ञानार्णव आदि ग्रंथों में वर्णित तंत्र और कामिकादि तंत्र। कामिकादि तंत्रों को देवी के अंग प्रत्यंग रूप में ही कल्पित किया है।

"कामिकं पादकमलं योगजं गुल्फयोर्युगम्
पादद्वयांगुलीरूपे कारणप्रसृताह्वये
अजितं जानुयुगलं दीप्तमूरुद्वयं विभोः
पृष्ठभागें ऽशुमानस्य नाभिः श्री सुप्रभेदकम्
विजयं जठरं प्राहुर्निश्वासं हृदयात्मकम्
स्वायंभुवं स्तनद्वन्द्वमनलं लोचनत्रयम्
वीरागमः कंठदेशो रुरु तन्त्रं श्रुतिद्वयम्
मुकुटं मुकुटं तन्त्रं बाहवो विमलागमाः
चन्द्रज्ञानमुरः प्रोक्तं बिंबं वदनपंकजम्
प्रोत्गीततंत्रं रसना ललितं गण्डयोर्युगम्
सिद्धं ललाटफलकं सन्तानं कुण्डलद्वयम्
किरणं रत्नभूषा स्याद्वातुलं वसवात्मकम्
अंगोपांगानि रोमाणि तंत्राण्यन्यानि कृत्स्नशः
एवं तत्वात्मकं रूपं महादेव्या विचिन्तयेत्।"

हरेक तंत्र देवी के शरीर का एक अंग है। इसलिए देवी सर्वतंत्रस्वरूपिणी हैं। व्यावहारिक संस्कृतभाषा में तंत्र के कई अर्थ बताये जाते हैं, जैसे पूजा विधियों का प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ, मंत्र का विभाग, मुख्य कर्म, उपाय, राजरक्षोपाय, कुटुम्बसंरक्षण इत्यादि मंत्र होते हैं। उनमें से सन्दर्भ के अनुसार कुछ मंत्र ऊपर दिये गये हैं। इन सारे मंत्रों में देवी के सर्वतंत्र रूप की व्याख्या निहित है। फिर भी पूजाविधि से संबन्धित शास्त्र ही ज़्यादा युक्त है। जिस किसी भी तरह की आराधना देवी से संबन्धित है, इसलिए तंत्र संप्रदायभेद में आता है, बस।

२०७. मनोन्मनी

इस मंत्र की शास्त्रभेदानुसार कई व्याख्याएं होती हैं। मनोन्मन शिव का एक रूप है। मनोन्मन शिव की शक्ति मनोन्मनी।

योगशास्त्र के अभ्यास काल के एक सन्दर्भ में होनेवाली अनुभूति को उन्मनीभाव कहते हैं। यह भाव योगशास्त्र के अभ्यास के बिना भी गुरुप्रसाद अथवा देवीकृपा से हो सकता है, यह सूक्ष्म नाद के रूप में होता है। ऐसा भी एक मत है। ज़्यादा पता गुरुमुख से पाया जा सकता है।

त्रिपुरोपनिषद् में इसप्रकार दिखाई देता है- "निरस्त विषयासंगं संनिरुद्धं मनोहृदी, यदायात्युन्मनी भावं तदा तत्परमं पदं" मन के उनमनी भाव में रहने से मनोन्मनी नाम है। इस अवस्था की व्याख्या करता है त्रिपुरोपनिषद्:

"नेत्रे ययोन्मेषनिमेषमुक्ते वायुर्यया वर्जितरेचपूरः
मनश्च संकल्पविकल्पशून्यं मनोन्मनी सा मयि संनिधत्ताम्"

मन के उन्मनीभाव के लिए कारण बनने से मनोन्मनी। बृहद् नारदीय में उन्मनीभाव का वर्णन निम्नप्रकार है: "ध्यानध्यातृध्येयभावो यदा पश्यति निर्भरं, तदोन्मनत्वं भवति ज्ञानामृतनिषेवणात्" व्यावहारिक अर्थ में उन्मनीभाव को उत्कृष्ट ज्ञानयुक्त भाव माना जा सकता है। मन को उन्मय बना देनेवाली- मन को उत्कृष्ट ज्ञानसंयुत बनानेवाली। " मनश्च संकल्पविकल्पशून्यं मनोमनी " यही आप्तवाक्य है।

योग शास्त्र में प्रसिद्ध एक मुद्रा को मनोन्मनी नाम है। वह मुद्रा जिसका स्वरूप है, यह भी हो सकता है।

२०८. माहेश्वरी

महेश की सम्बन्धिनी। महेशपत्नी। गुणाभाव से महेश्वर संज्ञा। "तमसा कालरुद्राख्यो रजसा कनकाण्डजः सत्वेन सर्वगोविष्णुर्नैगुण्येन महेश्वरः" इस लिंगपुराणवाक्य के अनुसार महेश्वर गुणातीत हैं। गुणातीत होने से देवी महेश्वरी है। "यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः" -यह श्रुति है। महेश्वरः स भूतानां महतामीश्वरश्च स इस प्रकार वेदव्यास महाभारत में महेश्वरशब्द की व्याख्या करते हैं। महेश की धर्मपत्नी महेश्वरी।

२०९. महादेवी

महती देवी। महादेव की स्त्री। देवी रूपों में सर्वाधिक श्रेष्ठ। अमेय एवं अपरिमेय। "बृहदस्य शरीरं यदप्रमेयं प्रमाणतः धातुर्महेति पूजायां महादेवी ततः स्मृता"। चन्द्रमूर्ति शिव का नाम है महादेव। उनकी धर्मपत्नी महादेवी। बुध की माता रोहिणी यही देवी हैं। लिंगपुराण में इस प्रकार का वर्णन है-

"समस्तसौम्यवस्तूनां प्रकृतित्वेन विश्रुतः सोमात्मको बुधैर्देवो
महादेवः इति स्मृतः सोमात्मकस्य देवस्य महादेवस्य सूरिभिः
दयिता रोहिणी प्रोक्ता बुधश्चैव शरीरजः"

गण्डकी नदी के चक्रतीर्थ की अधीश्वरी देवी महादेवी है ।

२१०. महालक्ष्मी

क्षीरसागर के मन्थन के समय क्षीरसागर से उत्पन्न चौदह रत्नों में चतुर्भुजवाली महालक्ष्मी आयी थी। वह विष्णुकी शक्ति है। धन और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी है। कामदेव

महालक्ष्मी का पुत्र है। ललितादेवी ही महालक्ष्मी है, यही इंगित होता है इस नाम में। 'सर्वस्याद्या महालक्ष्मी' -यही मार्कण्डेयपुराण कहता है। शिवपुराण में "तस्यांक मण्डलारूढ़ा शक्तिर्माहेश्वरी परा, महालक्ष्मीरिति ख्याता श्यामा सर्वमनोहरा" श्लोक से यह भाव है कि महादेवी और महालक्ष्मी दोनों में भिन्नता नहीं है। आयुष्यसूक्त में भी देवी पार्वती और लक्ष्मी इन शब्दों में एकत्व है "श्रियं लक्ष्मीमंम्बिकामौपलांगाम्"

तेरह वर्ष की कन्यका यह अर्थ भी महालक्ष्मी शब्द का है। तेरह वर्ष की कन्या के रूप में रहनेवाली, यह भी अर्थ हो सकता है। त्रयोदशे महालक्ष्मी - (धौम्य)। सौभाग्यभास्कर में बताया गया है कि कोलापुर नामक स्थान के महाक्षेत्र में पूजित होनेवाली महादेवी महालक्ष्मी है। कोलापुर का नाम करवीर नाम से जाना जाता था। कोलापुर नाम कलिकाल में हुआ। करवीरे महालक्ष्मीः यह प्रसिद्ध था-सौभाग्यभास्कर। (अनुमान किया जा सकता है कि यह कोलापुर कर्णाटक का प्रसिद्ध मूकांबिका मन्दिर है।)

मैरालतंत्र का यह उद्धरण-

"महालनामकं दैत्यं स्यति क्षपयतीति च
महालसा महालक्ष्मीरिति च ख्यातिमागता
उपत्यकयां सह्याद्रेः पश्चिमोदधि रोधसि"

प्रस्तुत उद्धरण से यह अर्थ निकलता है- महाल नामक असुर का क्षपण करने से महालक्ष्मी नाम आया। सह्याद्रि की उपत्यका में पश्चिमसमुद्र रोधस में वह मन्दिर स्थित है।

२११ मृडप्रिया

मृड़ की प्रिया । विश्व रूपी एवं सत्वगुणी शिव को मृड़ नाम प्राप्त है । 'मृड़सुखने' यह इस शब्द का निर्वचन है । "जनसुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृड़ाय नमोनमः" (महिम्नस्तवं) मृड़ानी देवी हैं ।

२१२. महारूपा

जिसका महान रूप होता है वह। सारा प्रपंच देवी में निहित है और प्रपंच के बाहर-भीतर देवी का निवास है, इसलिए महान विशेषण उचित है। संसार के कल्याण के हेतु देवी अनेक रूपों मे भक्तों के सामने प्रकट हुई हैं। अनेक सन्दर्भों में देवी का अवतार हुआ है वह तदनुकूल रहा है। देवी माहात्म्य में महिषासुरवध के लिए अवतरित देवी का रूप सर्वदेवतास्वरूप रहा था और उस रूप को महिषासुर ने इस प्रकार देखा था-

"स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयं त्विषा
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बरां
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन तां
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थितां"

(उसने देखा कि शरीर की कांति से सारे प्रपंच को व्याप्त होनेवाली पादों के आघात से भूमि को नीचे करनेवाली, मुकुट से आकाश को उल्लंघन करनेवाली, धनुष के नाद से पाताल का विक्षोभ करनेवाली भुजों से सारे दिगन्तों में व्याप्त होनेवाली हे देवी।) ललितास्तवराज में देवी का रूप वर्णन निम्न प्रकार है :

"कलामुहूर्त काष्ठाहर्मासससंवत्सरात्मने
नमः सहस्रशीर्षायै सहस्रमुखलोचने
नमस्सहस्रहस्ताब्जपादपंकजशोभिते
अणोरणुतरे देवि महतोपि महीयसि
परात्परतरे मातस्तेजस्त्वं तेजसामसि
अतलन्तु भवत्पादौ वितलं जानुनी तव
रसातलं कटीदेशः कुक्षिस्ते धरणी भवेत्
हृदयन्तु भुवर्लोकः स्वस्ते मुखमुदाहृतम
दृशश्चन्द्रार्कदहना दिशस्ते बाहवोंबिके
मरूतस्ते तनूत्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोखिलाः
क्रीडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयश्शिवः
आहारस्ते चिदानन्दो वासस्ते हृदयं सताम्
दृश्यादृश्यस्वरूपाणि रूपाणि भुवनानि ते
शिरोरुहा नभस्ते तु तारकाः कुसुमानि ते
धर्माद्या बाहवस्ते स्युरघर्माद्यायुधानि ते
यमाश्च नियमाश्चैव करपादरूहास्तथा
स्तनौ स्वाहास्वधाकारौ लोकोज्जीवन कारकौ
प्राणायामास्तु ते नासा रसना ते सरस्वती
प्रत्याहारस्त्विन्द्रियाणि ध्यानं ते धीस्तृडासनम्
मनस्ते धारणाशक्तिर्हृदयं ते समाधिका
महीरुहास्तेंगरुहाः प्रभातं वसनं तव
भूतं भवत् भविष्यच्च नित्यं च तव विग्रहम्
यज्ञरूपा जगद्धात्री विष्वग्रूपा च पावनी
आधारं त्वां प्रपश्यन्ति न सम्यङ् निखिलाः प्रजाः"

(कला, मुहूर्त, काष्ठ, अहस्, मास, संवत्सर इत्यादि कालविभाग जिनका स्वरूप है वे ही सहस्रशीर्ष एवं सहस्रवदना हैं, उन्हीं देवी को नमस्कार! अयि! बहुसहस्र हाथों से और पॉवों से सुसोभित तथा अणु से भी अणु एवं महत् से बढ़कर महत् होकर रहनेवाली आपको नमस्कार! परात्परा माँ आपको नमस्कार। आप शोभा की भी शोभा है। अतल आप के पॉव, वितल आप

के पैरों के जोड़, रसातल आपकी कटिप्रदेश, पृथ्वी आपकी कुक्षी है। भुवर्लोक आपका हृदय है। स्वर्लोक आपका मुख है। अयि अम्बिके, चन्द्र, सूर्य और अग्नि आपके नयन हैं। दिशायें आप के हाथ और पवन आपके श्वास और श्रुतियाँ आपकी वाणियां हैं। आपकी लीला चराचर की रचना है। खेल में साथी हैं महेश्वर। आपका आहार चिदानंद है। वासस्थान सज्जनों के हृदय हैं। भौतिक जगत के जो भी दृश्य हैं, वे सब आपके कर-चरणों के नख यम और नियम हैं।

संसार के लिए जीवन कारक आपके स्तन स्वाहाकार एवं स्वधाकार है। आपकी नाक प्राणायाम एवं जिह्वा सरस्वती है। प्रत्याहार आपकी इन्द्रियाँ हैं । ध्यान बुद्धि, मन धारणाशक्ति, समाधि हृदय और आसन तृष्णा हैं। वृक्ष आपके अंगों के रोम, प्रभात वस्त्र, भूत-भविष्य-बर्ममान आपका विग्रह है। आप यज्ञरूपा, जगद्धात्री, विष्वग्रूपा और पावनी हैं। सबके आधार स्वरूप आपका दर्शन सम्यक रूप से सब लोग नहीं करते।

२१३. महापूज्या

महान लोगों से आराध्या। पूजनीय शिवजी, विष्णुजी, ब्रह्माजी आदि से पूज्या। महती पूजा की अधिकारिणी। देवी की आराधना कई प्रकार से की जाती है। अनेक प्रकार के बिम्बों श्रीचक्र आदि यंत्रों के द्वारा की जानेवाली आभ्यंतर पूजा इत्यादि अनेक प्रकार की पूजा विधियाँ हैं। यागादि कर्मों के द्वारा देवी को प्रसन्न करनेवाले आराधना क्रम भी आचार्यों द्वारा बताया गया है। ऋषियों ने देवी सम्बन्धी असंख्य मंत्रों का जनमंगल को मानकर प्रचार किया है। रुचिभेद, कर्मभेद और गुरु निर्देश के अनुसार भाग्यशाली एवं विवेकी उपासक कई प्रकार से देवी की पूजा करते हैं। देवी के उपासकों में अगस्त्यादि मुनिजन, देव और ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि भी होते हैं। पूजकों के महत्व और पूजाविधि के महत्व से देवी महापूज्या हैं।

२१४. महापातकनाशिनी

महापापों का नाश करनेवाली। सांसारिक व्यवहारों के झमेलों में फंसे रहनेवाले लोग बिना जाने भी पापकर्म करने को बाध्य हो जावेंगे। सारे कर्मों का अपना फल तो होता है। अतः संभल संभलकर जीनेवाले लोग भी समी पाप-भोक्ता बन जावेंगे। ये पाप-फल काल के बीतते हुए भोगने पडेंगे। लेकिन इन पापों से मोचन पाने के लिए देवीस्मरण ही पर्याप्त है। " कृतस्याखिलपापस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा प्रायश्चित्तं परं प्रोक्तं पराशक्तेः पदस्मृतिः" - (ब्रह्माण्डपुराण)। अपने उपासकों को पाप कर्मों से निवृत्त करके बचा लेती हैं।

२१५. महामाया

महती माया की रूपवाली। यह सारा जगत जो दृश्य और अदृश्य और सारा स्पन्दन और प्रवर्तन देवी की माया मात्र है। एक ही सच्चाई है, वह है देवी। वही सनातन एवं नित्य है। यह सत्य जाननेवाले महान ज्ञानी मुनि एवं श्रृषि भी माया की पकड से बाहर नहीं हैं।

"ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति

तया विसृज्यते विश्वं त्रैलोक्यं स चराचरम्
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये रेश्व सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता
सनातनी संसारबन्ध हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी"

वह देवी (महामाया) ज्ञानियों के मन को भी हठात् आकर्षित कर मोहविवश करती है। तीनों लोक उनमें रहनेवाले सारे चराचर उसी माया के द्वारा पैदा होते हैं। बन्धन हेतु स्वरूपिणी वही माया प्रसन्न होने पर मनुष्यों के लिए मुक्तिप्रदायिनी वरदा बन जाती है। विद्यारूपिणी सनातनी माया मुक्ति के लिए कारण बनी रहती है। सर्वेश्वर की ईश्वरी माया तो संसार-बन्धन के लिए कारण है।

"गर्भातज्ञानसंपन्नं प्रेरितं सूतिमारुतैः
उत्पन्नं ज्ञानरहितं कुरुते या निरन्तरम्
पूर्वातिपूर्वसंघातसंस्कारेणनियोज्य च
आहारादौ ततो मोहममत्वाज्ञानसशयम्
क्रोधोपरोधलोभेषु क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा पुनः पुनः
पश्चात् कामेन योज्याशु चिन्तायुक्तमहर्निशम्
आमोदयुक्तं व्यसनासक्तं जन्तुं करोति या
महामायेतिसंप्रोक्ता तेन सा जगदीश्वरी"

कालिकापुराण में इस प्रकार माया के प्रवर्तनों का वर्णन किया गया है। प्रसूतिमारुत द्वारा प्रेरित होकर जब शिशु गर्भपात्र से बाहर निकलता है तब ज्ञान अस्त हो जाता है। पूर्वजन्मवासना के बल पर आहारादि से प्रारंभ होकर मोह और ममता होती है। धीरे-धीरे क्रोध, लोभादि में डूब जाता है। जब जब बडा होता जाता है, तब तब काम वासना भी वर्द्धित हो जाती है। चिन्ताधीन होने लगता है। सन्तोष और दुःख का अनुभव करता है। ये सारे काम जगदीश्वरी माया के प्रवर्तन से होते हैं।

माया शब्द का अर्थ कृपा भी है। माया दम्भे कृपायां च -कोश। महती कृपावाली, कृपाबहुला- (सौभाग्यभास्कर)।

२१६. महासत्वा

महती सत्व से युक्त। सत्व शब्द का अर्थ त्रिगुणों में श्रेष्ठ सत्वगूण है, इसके अलावा सत्य, वस्तु, प्राण, चैतन्य, पिशाच, बल, धैर्य, सम्पदा, बुद्धि इत्यादि अनेक अर्थ भी हैं। इन अर्थों के साथ महा विशेषण भी लगाया जाय तो देवी सम्बन्धी भाव स्थापित हो सकता है। महत्वपूर्ण सत्व गुण से युक्त देवी वस्तुतः सत्यस्वरूपिणी भी है। महती वस्तुओं के रूप धरण करनेवाली, महाधीरा, महाचेतना, महा पैशाच बल से युक्त, सारी सम्पदाओं के रूपों से युक्त और सारी बुद्धि का प्रभाव भी देवी हैं।

२१७. महाशक्तिः

महती शक्ति से युक्त। महान शक्ति ही रूप धारण करनेवाली। सारे संसार के सृष्टि, स्थिति और संहार के कारणभूत देवी। इस भाव में शक्ति संज्ञा के निम्नलिखित अर्थ हैं- जैसे बल, सांमर्थ्य, महालक्ष्मी, गणपति, कवितादि कलाओं में दक्षता, प्रकृति, माया और हथियार (शूल, तलवार, भाला)। इन भावों को स्वीकार करने पर निम्न अर्थ लिया जा सकता है कि महान बल से युक्त, अचूक हथियारोंवाली, महालक्ष्मीस्वरूपिणी, गणपति का रूप धारण किया था जिसने, महती कलाओं की अधिष्ठात्री, विश्वप्रकृतिरूपिणी, मायास्वरूपिणी, हथियारों के रूपोंवाली आदि।

"यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता
सा सा विश्वेश्वरी देवी" (लिंगपुराणम)

२१८. महारति

महान आनन्द से युक्त। भक्तों को आनन्द देनेवाली। लौकिक विषयों में जितना आनन्द मनुष्य को होता है उतने से अधिक आनन्द ज्ञानियों को ज्ञान से प्राप्त होता है। उस प्रकार का शाश्वत आनन्द ज्ञानियों को देनेवाली। महाकामसुन्दरीत्व से महारति बनी, ऐसी भी व्याख्या है।

रति साहित्यशास्त्र के अनुसार श्रृंगार का स्थायीभाव है। स्त्री और पुरुष के बीच के अनुराग में वह प्रेरक है। प्रपंच के विभिन्न शक्तियों और ब्रह्माण्डस्वरूपों एवं ग्रहों को यथास्थान नियोजित करनेवाली शक्ति रति है। इसलिए वह महारति है। वही महारति स्वयं देवीरूप है।

रति शब्द के अर्थ होते हैं संतोष, तृप्ति, क्रीडा आदि। महान सन्तोष भक्तों को देनेवाली। प्रपंच-निर्माण, स्थाइत्व और विनाश में मजा लेनेवाली ।

२१९. महायोगा

महान आभोग से युक्त अथवा महान भोग से युक्त, दोनों प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। आभोग का पक्ष लिया जाय तो भूमि आदि रूप विस्तार से युक्त है। भूमि से लेकर अनन्त गोलकों को देवी का स्वरूप मानें, तो महाभोगा है। महाभोगा का तात्पर्य है महान भोगों से युक्त। भोग का अर्थ है सुखसामग्रि, सम्पदा, सेना आदि। अपने भक्तों को सुखभोगों को देनेवाली।

२२०. महैश्वर्या

महान ऐश्वर्य से युक्त। ऐश्वर्य अणिमादि अष्टसिद्धियाँ हैं। (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशित्वं, वशित्वं, प्राप्ति, प्राकाश्य) ये ऐश्वर्य योगसिद्धियों से प्राप्त होते हैं। देवी के लिए ये स्वाभाविक हैं। इसलिए महैश्वर्या है। ऐश्वर्यादि छहों को जो आधारस्वरूप बनी हुई हैं। (ऐश्वर्य, वीर्य, वैराग्य, विज्ञान, श्री, यशस यही छे एश्वर्य) ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, सम्पदा, वैराग्य, मोक्ष ये छे हैं, ऐसा मत भी है। उपर्युक्त सारे ऐश्वर्यों के लिए उत्पत्तिस्थान देवी है, इसलिए महैश्वर्या नाम है। अपने भक्तों को अष्ट ऐश्वर्यों को, प्रदान करनेवाली है देवी।

२२१. महावीर्या

महान वीर्य से युक्त। वीर्य शब्द के अर्थ हैं प्रभाव, तेज, पराक्रम, सार, बल, औषधादि के गुण, रेतस आदि। " वीर्यं शुक्ले प्रभावे च तेजस्सामर्थ्ययोरपि" - (विश्वकोशं) वस्तुवों एवं व्यक्तियों में जो प्रभाव तेज, पराक्रम, सार, बल आदि मिलते हैं वे सब और औषधादि में विशेष गुण और पुरुष में शुक्ल हैं वे सब देवी हैं, इसलिए महावीर्या।

देवी से सम्बन्धित अनेक पुराणों में बताया गया है कि देवी ने रौद्र एवं कराल रूप धारण करके दुष्ट जनों का निग्रह किया है। इन युद्ध-सन्दर्भों में दिखाये शौर्य और वीर्य को मानकर महावीरा उचित नाम है।

"दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवी शीलम्
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः
वीर्यं च हन्त हतदेव पराक्रमाणाम्
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्"

और भी

"त्वंवैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्यबीजं परमासि माया"

इन दोनों प्रकारों से देवी के वीर कर्म का वर्णन देवी माहात्म्य में वर्णित है।

२२२. महाबला

महान बल से युक्त। बल शब्द के अनेक अर्थ होते हैं, जैसे शक्ति, पुष्टि, मज़बूती, गन्ध, रस, रूप, सामर्थ्य, शुक्ल, शरीर, रक्त, अंकुर, सेना, कौआ इत्यादि। प्रथम बताये गये दस अर्थ भी देवी के पक्ष में लागू है। और उसकी विशेष व्याख्या की ज़रूरत भी नहीं। शक्ति और पुष्टि आदि गुण देवी में निहित है, इसलिए उन गुणों का अंश वस्तुओं और व्यक्तियों में दिखाई देता है। महत् विशेषण देवी में ही लागू होता है। अंकुर अर्थ उत्पत्ति को सूचित करता है। सारे जगत् के बीजरूप में देवी विराजमान है। उसी देवी से प्रपंच का उद्भव होता है। सेनानी के अर्थ में देवी के अनेक युद्ध सन्दर्भ में सहायक हुए सैनिकों की ओर इंगित किया जाता है। महाबलसंयुक्त होकर युद्ध करनेवाली। कौआ अर्थ भी बल का होता है। इस अर्थ में योगवासिष्ठ से सम्बन्धित एक घटना की सूचना मिलती है। भुसुन्ड नामधारी एक कौआ अपने इक्कीस भाइयों के साथ ब्राह्मी भगवती की चिरकाल तक पूजा करके अनुग्रहीत होकर मुक्ति पा गया। योगवासिष्ठ में यह वर्णन है। उन कौओं को मुक्ति देकर अपने में विलीन कर लिया देवी ने, इसलिए महाबला अर्थ है।

बल को पहले दिये गये ग्यारह अर्थोंवाली शक्तियाँ अपने भक्तों को देनेवाली।

२२३. महाबुद्धिः

महती बुद्धिवाली। महती एवं बुद्धिरूपिणी। "या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः" । इस प्रकार देवीमाहात्म्य देवी को बुद्धि रूप में सारेभूतों में रहनेवाली बताती है।

महादेवी बुद्धि से उत्पन्न हुई, तो सारा ज्ञान स्वयं हो जायेगा। इसलिए सौभाग्यभास्कर उन्हें महाबुद्धि कहता है। "यस्मिन विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्" - (श्रुति से उद्धृत करते हैं ।) अपने उपासकों में देवी ललितांबिका बुद्धि रूप से रहती हैं।

२२४. महासिद्धिः

महती सिद्धि के साथ रहनेवाली। सिद्धि शब्द की व्याख्या आचार्यों ने दो रूपों में की है। महेश्वर्या नाम में यही व्याख्या थी कि अणिमा महिमा आदि अष्ट ऐश्वर्यों का समुच्चय। अणिमादि अष्ट सिद्धियों का प्रभवस्थान, यह अर्थ उसी के अनुसार।

भास्कराचार्य स्कान्दपुराण से निम्न पंक्तियां उद्धृत करते हैं-

"रसानां स्वत उल्लासः प्रथमा सिद्धिरीरिता
द्वन्देरनभिभूतिश्च द्वितीया सिद्धिरुच्यते।
अधमोत्तमताभावस्तृतीया सिद्धिरुत्तमा
चतुर्थी तुल्यता तेषाधमायुषः सुखदुःखयोः
कान्तेर्बलस्य बाहुल्यं विशोका नाम पंचमी
परमात्मपरत्वेन तपोध्यानादिनिष्ठता
षष्ठी निकामचारित्वं सप्तमीसिद्धिरुच्यते
अष्टमी च तथा प्रोक्ता यत्र क्वचनशायिता"

इसके अनुसार रसवाद, शीतोष्ण सहने की शक्ति, अधम एवं अक्षमता का अभाव, सुख और दुख की बराबरता, कान्ति बल की बहुलता। विशोक, परमात्मपरता के साथ तपोध्यानादिनिष्ठा, अपनी इच्छा से चलने की स्थिति, यत्रक्वचनाशायिता ये ही महासिद्धियाँ। इन सिद्धियों को वहन करनेवाली अथवा इन सिद्धियों को प्रदान करनेवाली।

२२५. महायोगीश्वरेश्वरी

महायोगेश्वर की ईश्वरी। महायोगेश्वर माने परमशिव। शिव की शक्ति। और पक्ष में यही अर्थ है कि महायोगेश्वरों की ईश्वरी। महायोगीश्वर वह है जिन्होंने निर्विकल्प समाधि को अपनाया है। ऐसे योगियों के लिए ईश्वरी जो हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम. प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इस प्रकार योग के आठ अंग होते हैं। उनमें आठवां है समाधि। समाधि की परम अवस्था निर्विकल्प समाधि है। जो योगी उसी अवस्था को प्राप्त करता है, वह ईश्वर समान है। उन योगीश्वरों की भी ईश्वरी कहने से देवी की अद्‌भुत दिव्यता प्रकट होती है।

२२६. महातंत्रा

महान तंत्रों से आराधित। महान तंत्र से मतलब है, फलदायक तंत्रों से। कुलार्णव और ज्ञानार्णव जैसे ग्रंथ हैं तंत्र के प्रतिपादक ग्रंथ। तंत्र भी कई प्रकार के होते हैं।

"चतुःषष्ट्या तंत्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनम्
स्थितस्तत्तत् सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः
पुनस्त्वनिर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना
स्वतंत्रं ते तंत्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्" (सौ.ल. ३१)

(अयी देवी, पशुपति ने तंत्रों में उक्त सिद्धियों को जन्म देनेवाले चौंसठ तंत्रों का सृजन किया। सारे जगत को धोखा देकर चुप रहे। फिर करुणामयी आपके निर्बन्ध से आपके उस तंत्र को जो धर्मार्थकाममोक्ष जैसे पुरुषार्थों को प्रदान करता है जगत में अवतरित करा दिया।

इस श्लोक को आधार मानकर शंकराचार्य ने तंत्रों को दो प्रकार के माना है। श्रीपरमेश्वर ने पहले जो ६४ तंत्रों का निर्माण किया था वे असमर्थ हैं। इसलिए ही यह कहा जा चुका है कि उन्हें निर्मित करके पशुपति ने सारे भुवनों को धोखा दिया है। जो सिद्धियाँ अनेक काल तक तंत्रमार्ग का अनुसरण करके बनी हैं वे यदि फलदायक नहीं हैं, तो निरुपयोगी हैं। अल्पबुद्धि मनुष्यों को विभ्रांत करके ये तंत्र चमकते हैं, थोडे समय के लिए। इस प्रकार के ६४ तंत्रों का वर्णन चतुश्शती में है।

"चतुःषष्टिश्च तंत्राणि मातृणामुत्तमानि च
महामाया शंबरश्च योगिनीजालसंबरम्
तत्वशंबरकंचैव भैरवाष्टकमेव च
बहुरूपाष्टकांश्चैव यामलाष्टकमेव च
चन्द्रज्ञानं मालिनीच महासम्मोहनं तथा
वामजूष्टं महादेवं वातुलं वातुलोत्तरम्
हृद्भेदं तंत्रभेदं च गुहतंत्रं च कामिकम्
कलावादं कलासारं तथान्यत् कुण्डिकामतम्
मतोत्तरं च वीणाख्यं त्रोतलं त्रोतलोत्तरम्
पंचामृतं रूपभेदं भूतोड्डामरमेव च
कुलसारं कुलोड्डीशं कुलचूडामणिस्तथा
सर्वज्ञानोत्तरंचैव महाकालीमतं तथा
अरुणेशं मोदिनीशं विकुण्ठेश्वरमेव च
पूर्वपश्चिमदक्षं च उत्तरंच निरुत्तरम्
विमलं विलोत्तंच देवीमतमतः परम्"

ये तंत्र अक्सर साधारण सिद्धियाँ ही प्रदान करते हैं। इन तंत्रों के द्वारा इन्द्रजाल, क्षुद्रदेवताप्रीणन, निधिदर्शन आदि ही प्राप्त होते हैं। ये पुरुषार्थ सिद्धि नहीं होती। इसलिए देवी की प्रेरणा से महादेव श्रीविद्याप्रतिपादक आठ सिद्धियों का निर्माण किया गया है। वे चन्द्रकलाष्टक नाम से जाने जाते हैं। अन्यापेक्षा के बिना पुरुषार्थ को साधित करने से देवीतंत्रों को स्वतंत्र कहते हैं। देवी के ही तंत्र, यही अर्थ स्वतंत्र हैं।

तंत्रों में मुख्य स्वतंत्र हैं। उस प्रकार के तंत्रों की अधीश्वरी होने से महातंत्रा है। अपने उपासकों को स्वतंत्राचरण के लिए योग्य बना देनेवाली है देवी।

२२७. महामंत्रा

महान मंत्रों से युक्त। ऐसे मंत्र होते हैं, जो विविध दैवी शक्तियों को जगाते हैं। वे सब मंत्र वश्य, मारण, आकर्षण, उच्चाटण इत्यादि कर्मों के लिए उपयुक्त होते हैं। लेकिन इनमें कोई भी पुरुषार्थ सिद्धि और मोक्षप्राप्ति के लिए उपकारी नहीं है। मंत्रों में श्रेष्ठ श्रीविद्यामंत्र है। पंचदशाक्षरी स्वरूप श्रीविद्यामंत्र के बारे में पहले कहा जा चुका है। उसी प्रकार बालाबगलादि महामंत्र भी हैं। वे सब मंत्र देवी सम्बन्धी और स्वयं देवी स्वरूप भी हैं। इसलिए महामंत्रा नाम है। इस मंत्रसिद्धि के लिए भक्तों को योग्य बनानेवाली है देवी।

२२८. महायंत्रा

यंत्र भी मंत्रों एवं तंत्रों की तरह बहुत हैं। प्रपंचशक्तियों में किसी न किसी के प्रतिनिधित्व करनेवाले क्षुद्रयंत्र भी हैं। देवीस्वरूप श्रीचक्र भी यंत्र है। ये सब यंत्र हैं। फिर भी सारे पुरुषार्थों को प्रदान कनेवाले श्रीचक्र का उल्लेख ही यहाँ मुख्य है। ऐसे महायंत्र देवी के स्वरूप हैं और उनकी पूजा देवी की पूजा है। इसलिए देवी को महायंत्रा कहते हैं। सौभाग्यभास्कर में बताया गया है कि तंत्रों में स्वतंत्र, मंत्रों में श्रीविद्या और यंत्रों में सिद्धवज्र सर्वश्रेष्ठ हैं।

२२९. महासना

महान आसन से युक्त। क्षिति आदि छत्तीस तत्वों को देवी के आसन माने जाते हैं। "एषाँ भगवती सर्वतत्वान्याश्रित्य तिष्ठति" (देवीभागवत)। सज्जन भक्तों का हृदय देवी का आसन है। उस महान आसन पर विराजनेवाली है महासना। जानवरों का राजा सिंह देवी का आसन है, इसलिए भी महासना है। महान सिंहासन पर राजराजेश्वरी बनकर विराजनेवाली है, तब भी महासना है।

२३०. महायागक्रमाराध्या

महान यागों से आराध्या। पहले कहा जा चुका है कि भण्डासुर के वध के लिए देवी को प्रसन्न करने के उद्देश्य से देवताओं ने गंभीर यज्ञ चलाया था। उसी प्रकार के महान यागों को महा विशेषण से निरूपित किया जाता है। जिन क्षुद्र देवताओं को प्रसन्न किया जाना है उनके लिए छोटे यज्ञ काफी हैं। पराशक्ति को प्रसन्न करने के लिए महान यज्ञ करना है। महायाग से यही अर्थ

निकलता है कि देवी की सहवर्तिनी चौसठ योगिनियों की पूजा भी जहाँ की जाती है वहाँ महायज्ञ है। महायज्ञ की फल-प्राप्ति तुरंत होती है। अन्य यज्ञों की फलप्राप्ति कालक्रम से ही संभव है। भास्कराचार्य कहते हैं कि भावनोपनिषद में महायागक्रम का जो वर्णन है उस की व्याख्या मैंने स्वयं की है। उस उपनिषद में निर्देशित क्रम ही महायागक्रम है।

उपर्युक्त महायाग क्रम बाह्य-पूजा-क्रम में आता है। आभ्यंतर पूजाक्रम में महायाग हो सकता है। इस पक्ष में अग्निकुण्ड है साधक का हृदय। सबके भीतर स्फुरण रूप में विराजनेवाली चैतन्यशक्ति है अग्नि। भक्ति से और यमनियमादि से उस अग्नि को प्रज्वलित कर अपने इष्ट और अनिष्टों एवं वासनाओं को उसमें होम करने की रीति है यागक्रम। आखिर अपनी अहंबुद्धि को चिदग्नि में होम करके साधक चिच्छक्ति में विलीन हो जाता है। इस प्रकार के महायागक्रम के अनुसार आराध्या है देवी।

२३१. महाभैरवपूजिता

भैरव सृष्टि-स्थिति-संहार कर्ता श्रीपरमेश्वर है। उन्हीं को महा शब्द के संबोधन से पुकारते हैं। उन्हीं महाभैरव से पूजित।

"शंभुः पूजयते देवीं मंत्रशक्तिमयीं शुभाम्
अक्षमालांकरे कृत्वा न्यासेनैव भवोद्भवः" (पद्मपुराणम्)

देवी जब सृष्टिस्थितिसंहारकर्ता भैरव द्वारा पूजित हैं तब वे भैरव से भी श्रेष्ठ शक्तिशाली मानी जानी चाहिए।

२३२. महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी

महाप्रलयकाल में महेश्वर के महाताण्डवनृत्त का साक्षी रहनेवाली।

महाकल्पान्त काल में जब सारे जगत का प्रलय से नाश हो जाता है तब केवल परमेश्वर ही बच जाते हैं। उस समय आनन्दमद में करनेवाले शिवनटन को महाताण्डव कहते हैं। उस सन्दर्भ में संसार में केवल देवी उस ताण्डव को देखती हैं। अतः उस साक्ष्य के नाम पर महाताण्डव साक्षिणी नाम उचित है।

कल्पोपसंहरणकल्पिततांडवस्य देवस्य खण्डपरशोः परभैरवस्य
पाशांकुशैक्षवशरासनपुष्पबाणैः सा साक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका (पंचदशीस्तवं)

"तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया
नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम्
उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया
सानाधाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्" (सौ.ल. ४१)

(अयि देवी, मैं उस महा भैरव देव का नमस्कार करता हूँ जो आपके मूलाधार चक्र में नृत्त करने में तत्पर समया नामवाली महाभैरवी के साथ नवरस से युक्त और कालव्यूह जैसे नवरूपोंवाले होते हैं।

प्रपंच की उत्पत्ति के सिलसिले में इन दोनों को माता एवं पिता के रूप में जाने गये हैं।) इस श्लोक में प्रलय काल के शिवताण्डव को सूचित किया जाता है। अत्यंत तीव्रगति से करनेवाले नटन को ताण्डव कहते हैं। स्त्रीकृत नृत्त को लास्य कहते हैं। जब संसार का नाश करनेवाला ताण्डव चलता है तब उसके साक्षी रूप में ललिता देवी ही रहेंगी। महाप्रलय के पश्चात् संसार की पुनः सृष्टि के लिए दयापूर्ण होकर महाभैरव और पराशक्ति दोनों में संयोग होता है। विश्व बनता है। कौल मत (सिद्धांत) के अनुसार प्रकृति और पुरुष के परस्परदर्शन से जगत का उदय और उनके लास्य-ताण्डव के पश्चात् नाश होता है।

२३३. महाकामेशमहिषी

महाकामेश्वर की पत्नी। महेश की पत्नी। महाकाम ईश्वर की महिषी। पहले ही यह सूचित किया जा चुका है कि ललितोपाख्यान में ललितादेवी और कामेश्वर के बीच का विवाह हुआ है, ऐसी सूचना है।

२३४. महात्रिपुरसुन्दरी

त्रिपुरा शब्द का अर्थ है त्रिमूर्तियों से पूर्व विराजमान। "मूर्तित्रयस्यापि पुरातनत्वात्तदम्बिकाया स्त्रिपुरेतिसंज्ञा" यह भी अर्थ किया जा सकता है। देवी के तीन पुर हैं मन, बुद्धि और चित्त। "मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतं, तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात्तु त्रिपुरा मता" - लघुस्तव का मत है कि वहाँ वहाँ त्रित्व के पुररूप हैं जहाँ जहाँ तीन का नियम है, जैसे त्रिमूर्ति, तीन अग्नि, तीन शक्ति, तीन स्वर, तीन लोग, तीन पुर, तीन पुष्कर इत्यादि।

"देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजाँ शक्तित्रयं त्रिस्वरा
स्त्रैलोक्यं त्रिपुरी त्रिपुष्करमथ त्रिब्रह्मवर्णास्त्रयः
यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकम्
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्वतः"

त्रिपुरा शब्द का आशय से श्रेष्ठतावाची महा शब्द विशेषण प्रयुक्त है। महात्रिपुरारूपी सुन्दरी, यही पदार्थव्याख्या है।

मातृमानमेय रूपी त्रयों के लिए पुर, महती, एवं सुन्दरी- (सौभाग्य भास्कर) त्रित्व याने तीन भावों के सभी का पुर, महती और सुन्दरी ललितापरमेश्वरी के नामों में महात्रिपुरसुन्दरी नाम रत्नभूत पच्चीस नामों में आता है। सिंहासनेश्वरी नाम की व्याख्या देखिए।

२३५. चतुष्षष्ट्युपचाराढ्या

चौंसठ उपचारों द्वारा पूजित की जानेवाली। पूजाविधि के चौंसठ प्रकार माने जाते हैं। उनका विवरण परशुरामकृत कल्पसूत्र में है। उनमें सोलह प्रमुख हैं। शेष उनके अंगस्वरूप हैं। मुख्य सोलह प्रकार षोडशोपचार से जाना जाता है। उन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है। चौंसठ प्रकार की पूजा विधियों को गुरुमुख से जानना है।

"आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा
स्नानं वस्त्रं च भूषा च गंधः पुष्पं तथैव च
धूपदीपौ च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणम्
प्रणामश्चेति विख्यातैः प्रीणयेत् त्रिपुरांबिकाम्"

(आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिण, नमस्कार इत्यादि से त्रिपुरांबिका को प्रसन्न करें)

२३६. चतुष्षष्टिकलामयी

जिसका स्वरूप चौंसठ कलाएं हैं। सारी कलाएं स्वयं देवी हैं। यही कहा जा सकता है कि देवी का अंश सारी कलाओं में हैं। ऐसी कोई कला नहीं है जो देवी का अंश नहीं है। पण्डितों के मत में कलाएं चौंसठ हैं। वे सब देवी स्वरूप हैं, इसलिए उनका नाम चतुष्षष्टिकलामयी हो गया। पंडितों में मतान्तर है कि ये चौंसठ कलाएं कौन-कौन सी हैं। फिर भी सर्वसम्मत मत भोजराज का है। उनका विवरण नीचे उद्धृत है:

चौसठ कलाएं: गीत, वाद्य, नृत्त, नाट्य, चित्रकला, पुस्तक कर्म, पत्रछेद्य, लिपिज्ञान, वचनकौशल, वैलक्षण्य, माल्यविधि, गन्धयुक्ति, आस्वाद्यविधान, अनुरंजनज्ञान, सीव्य, उपकरणक्रिया, आजीवज्ञान, तिर्यग्योनिचिकित्सा, मायाकृत, पाषण्डसमयज्ञान, क्रीडाकौशल, संवाहन, शरीरसंस्कारकौशल, आयप्राप्ति, रक्षाविधान, रूपसंख्या, क्रियामार्ग, जीवग्रहण, नयज्ञान, चित्रविधि, गूढ़राशि, तुलाविधि, क्षिप्रग्रहण, अनुप्राप्ति, सूत्यनुक्रम, लीलाव्यापारमोहन, तृहणादान, उपस्थानविधि, ततं, गतं, स्त्रीपुरुष भावग्रहण, स्वरागप्रकाशन, प्रत्यंगदान, नखविचार, दंतविचार, गुह्यस्पर्शनलोम्यं, परमार्थकौशल, भूषण, समानार्थता, प्रोत्साहन, मृदुक्रोधप्रवर्णन, क्रुद्धप्रसादन, सप्तपरित्याग, परमस्वापविधि, गुह्यग्रहण, साश्रुपातन, रमणवीक्षण, स्वयंशपथक्रिया, प्रस्थितानुगमन, पुनर्निरीक्षण, लग्नपरीक्षा, लेख, युद्ध और नीवीस्रंसन।

तंत्रशास्त्र के अनुसार चौंसठ कलाएं और भी हैं। वामकेश्वर तंत्र में उन कलाओं का वर्णन है। वहाँ कला का अर्थ अंश हैं। महातंत्र रूपा नाम की व्याख्या में चौंसठ तंत्रों का विवरण मिलता है। ये तंत्र प्रत्येक एक एक कला है। इस प्रकार देवी चौंसठ कलाओं के रूप देवी स्वयं हैं। तंत्रशास्त्र के अनुसारी कलाविभाग की चर्चा यहाँ नहीं होती। उसे गुरु के मुंह से जानना है।

२३७. महाचतुःषष्टिकोटियोगिनीगणसेविता

चौंसठ करोड महती योगिनियों द्वारा पूजनीया। महा शब्द का अर्थ नौ भी होता है। देवी के निवास के चारों तरफ नौ आवरण है। हर आवरण में योगिनियाँ देवी की सेवा में खडी हैं। (ललितोपाख्यान में श्रीपुरवर्णन देखें) आठ शक्तियाँ-ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डी और महालक्ष्मी देवी की सेवा में व्यापृत हैं। उनमें प्रत्येक की आठ-आठ योगिनियाँ। प्रत्येक योगिनी की अंशभूत एक करोड योगिनियाँ। उन महागणों के द्वारा सेविता ।

" ललिताचक्रनवके प्रत्येकं शक्तयः प्रिये चतुष्षष्टिमिता कोट्यः" -
(तंत्रराज)

यह भी व्याख्या की जाती है कि मनुष्य के मन में छिपी पडी हुई चौंसठ करोड कामनाएं हैं योगिनियाँ। वे कामनाएं पराशक्ति की सेविकाएं होकर परिक्रमवर्ती बनी रहती हैं। वे कामनाएं स्वात्मस्थिति में जब रहती हैं तब उसी स्थिति को कैवल्य कहा जाता है। परिसेविता नामक पद से यही सूचना है कि कामनाएं चिच्छक्तिस्फुरण जीवशक्ति के अधीन होकर रहेंगी।

२३८. मनुविद्या

मनु से उपासिता विद्यारूपिणी। मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव, क्रोधभट्टारक इन बारह आचार्यों ने श्रीविद्योपासना के प्रकारों का निर्माण किया। उनके अनुसार श्रीविद्यापूजा बारह प्रकार से चलती है। उनमें मनु के द्वारा निर्मित श्रीविद्याप्रस्तार रूपिणी।

"मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः अगस्तिरग्निः
सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा क्रोधभट्टारको देव्या
द्वादशामी उपासकाः"

मनु शब्द का अर्थ है मंत्र । इस पक्ष में मंत्रविद्या स्वयं देवी है। सारे मंत्र देवीस्वरूप हैं।

२३९. चन्द्रविद्या

चन्द्र द्वारा उपासित श्रीविद्यास्वरूपिणी।"महेशमाधवविधातृमन्मथस्कन्दनन्दीन्द्रमनुचन्द्र कुबेरागस्त्य दुर्वारक्रोधभट्टारकविद्यात्मिके कल्याणतत्वत्रयरूपे" - सहस्राक्षर विद्यामंत्र। (ललितोपाख्यान तत्व) उपर्युक्त नाम की व्याख्या में से श्रीविद्योपासकों के नामों में थोड़ा अन्तर मिलता है। चन्द्र तो दोनों में है।

२४०. चन्द्रमण्डलमध्यगा

चन्द्रमण्डल के मध्य को प्राप्त हुई देवी। यह चिरायु होने की कला मानी जाती है कि चन्द्रमण्डल में स्थित समझकर देवी की मानसिक पूजा करना । उसी प्रकार की पूजा से आराधिता। चन्द्रमण्डल और श्रीचक्र दोनों को एक ही माना भी जाता है (श्रीचक्ररहस्य) इस पक्ष में देवी श्रीचक्र की बिन्दुस्थान में रहनेवाली है।

पिण्डाण्डगता कुण्डलिनी रूपिणी देवी सहस्रारपद्म के भीतर के चन्द्रमण्डल का भी भेदन करती है, इसलिए उनका नाम चन्द्रमण्लमध्यगा हुआ। शिवपुराण में जैसे शिव पार्वती से कहते हैं- अहमग्नि शिरोनिष्ठस्त्वं सोमरिशि स्थिता अग्नीषोमात्मकं विश्वमावाभ्यां समधिष्ठितं ।

२४१. चारुरूपा

मनोहर रूपवाली। यहाँ फिर स्थूलरूपवर्णन है।

२४२. चारुहासा

मनोहर हास से युक्त

२४३. चारुचन्द्रकलाधरा

मनोहर (वृद्धिक्षयहीन-सौभाग्यभास्कर) चन्द्रकला को धारण करनेवाली। देवी ध्यान श्लोकों में अक्सर चन्द्रकला को आभरण बनाकर मिलता है।

"सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्य मौलीस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्"

इत्यादि को देखिए। देवीभागवत में एक कथा का वर्णन है। देवी ने चन्द्र कला नामक राजकुमारी को स्वप्न-दर्शन दिया कि वह कामराज मन्त्रोपासक सुदर्शन नामक राजकुमार का वरण करे। उसी चन्द्रकला को आधार बनी हुई देवी। सौभाग्यभास्कर इस नाम की व्याख्या उस प्रकार भी करता है।

२४४. चराचरजगन्नाथा

अचर और चर सभी जगत की नाथा। जगदम्बिका

२४५. चक्रराजनिकेतना

श्रीचक्र जिसका निकेत है वह। जैसे श्रीचक्र की अधिष्ठानदेवता दिव्यमाता सारे देवी-तत्वों का उद्भवस्थान और रक्षास्थान है वैसे श्रीचक्र में अन्य सारे चक्रों का अधिवास और संरक्षण है। इसलिए श्रीचक्र चक्रराज है। (श्रीचक्रराजनिलया नाम इस सहस्रनाम में आगे भी वर्णित है। श्रीचक्र का एक लघु विवरण अनुबन्ध में दिया गया है।

२४६. पार्वती

पर्वतराज हिमवान की पुत्री होने से पार्वती।

२४७. पद्मनयना

जिसके नयन कमलदलों के समान सुन्दर हैं।

२४८. पद्मरागसमप्रभा

पद्मराग की प्रभा जैसी प्रभावाली। पद्मराग नवरत्नों में एक है। अरुणकमल का रंग है पद्मराग का। इसलिए पद्मराग नाम है। पद्म के राग से (अरुण वर्ण से) युक्त प्रभावाली। देवी की शरीर कान्ति की लाली की ओर संकेत है। इस वर्ण विशेष की अभिव्यक्ति देवी के वर्णनों में पहले भी हुई है। आगे भी अनेक नामों में यह आशय देख सकते हैं।

२४९. पंचप्रेतासनासीना

पंचप्रेतों से कल्पित आसन पर विराजनेवाली। नाम ५८ की व्याख्या देखो। वहाँ पंचब्रह्मासनस्थिता नाम है। ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, ईश्वर, सदाशिव इन मूर्तियों के प्रति इंगित है। ये अपनी अपनी शक्तियों से जब मिले रहते हैं तब पंचब्रह्मा कहे जाते हैं। जब शक्तिरहित रहते हैं तब पंचप्रेत बुलाये जाते हैं। शक्तिरहित रहने पर ये प्रेत समान हैं। इस आशय को शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी के प्रथम श्लोक में शिव को मात्र इंगित करके स्पष्ट किया है:

"शिव शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्
नचेदेवं देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिंचादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।"

अयि देवी! शक्ति से जब युक्त रहते हैं तभी महादेव प्रपंचसृष्टि जैसे कर्मों के लिए क्षमतावान होते हैं। यदि ऐसा नहीं तो देव हिलने डुलने का योग्य नहीं रहेंगे। एक मनुष्य, हे देवी! आपका स्मरण अपने पूर्व जन्म में भी नहीं कर सका, वह विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा आदि देवों से पूजनीया आपकी अब क्या पूजा-अर्चना कर सकता है?

"ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः
पंचप्रेता वरारोहे निश्चला एव ते सदा
ब्रह्मणः परमेशानि कर्तृत्वं सृष्टिरूपकम
वामा शक्तिस्तु सा ज्ञेयः बह्मा प्रेतो न संशयः"

उपर्युक्त ज्ञानार्णव के श्लोक में भी प्रस्तुत आशय की अभिव्यक्ति हुई है । देवी का अंशभूत चैतन्य जब वामा जैसी शक्तियों के रूप में ब्रह्मा आदि मूर्तियों से संयुक्त हो जाता है तब प्रपंचसृष्टि आदि कार्य-व्यापार चलता है।

२५०. पंचब्रह्मस्वरूपिणी

वह देवी जिसका पंचब्रह्मस्वरूप है । नाम २४९ में बताये अनुसार अपनी अपनी शक्ति से युक्त होने पर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव मिलकर पंचब्रह्म बनते हैं। ये सब देवी से भिन्न नहीं हैं। देवी के ही अंग हैं।

"त्वामेव हि विचिन्वन्ति योगिनस्सनकादयः
सदसत्कर्म रुपांच व्यक्ताव्यक्तो भयात्मिका
त्वामेव प्रशंसन्ति पंच ब्रह्म स्वरूपिणीं" - (ललितोपाख्यान)

निर्विशेषमपिं हि ब्रह्म स्वस्मिन मायाविलासतः

"ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः
इत्याख्यावशतः पंचब्रह्मरूपेणसंस्थितम्" - (त्रिपुरासिद्धांत)

पंचब्रह्म का अर्थ सन्दर्भानुसार व्याख्यायित किया गया है, जैसे ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात और क्षेत्रज्ञ, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार और मन क्षेत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, उपस्थ ये भी। शब्दादि पंचतन्मात्रायें और आकाशादि पंचभूत। इनके अलावा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण ये मूर्तियाँ। ये सब देवीरूप हैं। इसलिए देवी पंचब्रह्मस्वरूपिणी हैं।

२५१. चिन्मयी

चैतन्यस्वरूपी बोध है चित्। चित् ही स्वरूप जिनका है। वह चिन्मयी है।

२५२. परमानन्दा

परम आनन्द जिसका स्वरूप है। आनन्दस्वरूपिणी। आनन्द के आठ विभाग पण्डितों द्वारा माने गये हैं। विषयानन्द, ब्रह्मानन्द, वासनानन्द, आत्मानन्द, मुख्यानन्द, निजानन्द, अद्वैतानन्द और ज्ञानानन्द। इनमें ज्ञानानन्द को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं ज्ञानी लोग और ब्रह्मानन्द को सर्व श्रेष्ठ मानते हैं अद्वैतवादी जन।

परमानन्द पद के परमात्मा और ब्रह्म ये दो अर्थ हैं। परब्रह्मस्वरूपिणी अर्थ भी है।

२५३. विज्ञानघनरूपिणी

विज्ञान (चैतन्य) घनीभूत बनी हुई। विज्ञान का अर्थ विशेष ज्ञान भी है। परमज्ञान। पठन-मननादि से जो प्राप्तं नहीं हो सकता और देवी के प्रसाद मात्र से प्राप्त होनेवाले आत्यंतिक ज्ञान घनीभूत होकर रहनेवाली देवी। इससे यह अर्थ निकलता है कि देवी सब तरह के ज्ञान की खान है।

विज्ञान शब्द जीवन को बता देता है। इस पक्ष में सभी जीव समष्टि रूप में देवी में लयलीन रहता है। अर्थात् हिरण्यगर्भरूपिणी। सारे ब्रह्माण्ड को अपने भीतर धारण करनेवाली। 'एतस्माज्जीवघनाद्' (श्रुति) "यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमन्तरो यमयति" इस अंतर्यामि ब्राह्मण का उद्धरण देकर सौभाग्यभास्कर प्रस्तुत आशय का समर्थन करता है।

२५४. ध्यानध्यातृध्येयरूपा

जिनका रूपध्यान, ध्याता और ध्येय स्वयं हैं वे देवी।

ध्यान का मतलब है किसी वस्तु या रूप का लगातार मनन करना.

'ध्यै चिन्तायां' यह व्युत्पत्ति है। इधर ईश्वरपरक चिन्ता से मतलब है। ध्यान दो प्रकार के, सकल और निष्कल। दोनों का अर्थ देवी सम्बन्धी । ध्यान अष्टांगयोग में एक है (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि) ध्यान निरंतर धारणा है। ध्यान करनेवाला ध्याता चिच्छक्ति से साक्षात्कार कर पाने में निष्ठासहित प्रयत्न करनेवाला है। जो ध्यान किया जाता है वही ध्येय। ध्यान, ध्याता और ध्येय ये तीनों देवी ही हैं। इसलिए यह नाम है। ज्ञान-ज्ञातृज्ञेय रूप त्रिपुटि जिनका रूप है।

२५५. धर्माधर्मविवर्जिता

जिसने धर्म और अधर्म छोड रखा है। धर्म शब्द का अर्थ है धारण किया हुआ। न्याय, सदाचार, नीति, स्वभाव, क्षेम, वेदविधि के अनुसार किये जानेवाले याग इस प्रकार अनेक अर्थ हैं। धर्म शब्द से सम्बन्धित ये सब अर्थ सनातन है और उनका निर्माण जीवों के परस्पर अहिंसात्मक जीवन को मानकर है। धर्म शास्त्र के स्रष्टा ऋषि और देव हैं। जीवों के विशेषकर मनूष्यों के समूहजीवन की सुगमता के लिए बनायी गयी धर्म-नीतियाँ प्रपंच की जननी देवी के लिए लागू नहीं है। वे धर्म और अधर्म के परे रहनेवाली हैं। इसलिए यह नाम धर्माधर्मविवर्जिता।

धर्म और अधर्म बन्धन और मोक्ष के कारण स्वरूप है। बन्धन और मोक्ष के लिए देवी विधेय नहीं है।

मंत्र के अर्थ में शक्ति-शिव अक्षररहित पंचदशी ललितामंत्र। इस अर्थ का विशद भाव गुरुमुख से प्राप्त किया जाना है।

२५६. विश्वरूपा

विश्व अथवा प्रपंच जिसका रूप है। प्रपंच देवी से भिन्न न होने से प्रपंच को देवी रूप माना जाता है। सौभाग्यभास्कर का मत है कि देवी विश्व का आधारस्वरूप होने से धर्मीभूत अन्यरूप भी उनपर आरोपित हो सकते हैं। इसको समर्थित करने केलिए भास्कराचार्य विष्णुपुराण से निम्न उद्धरण भी देते हैं:

"यथा हि कदलीनाम त्वक्पत्रान्या न दृश्यते
एवं विश्वस्य नान्यत्वं त्वत्स्थादीश्वर दृश्यते"

उपर्युक्त श्लोक देवी स्वयं देवीभागवत में बालरूपी होकर वटवृक्षपत्र पर शयन करनेवाले विष्णु से कहती है। "सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्तिसनातनम्"।

देवी के प्रसाद से उपासक के मन के पशुस्वभाव का निवारण होता है। अतः विश्वरूपा नाम अन्वर्थ है।

त्वजा, रक्त, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्ल इत्यादि से बने शरीर पर गर्व करनेवाले और उसे ही 'मैं' माननेवाले पिण्डाण्डस्थ आत्मचेतना को विश्व नाम है। विश्व के स्वरूप से युक्त।

व्याख्याता लोग इस नाम का मंत्रपरक अर्थ भी स्वीकार करते हैं। उसका विवरण यहाँ नहीं दिया जाता।

२५७. जागरिणी

जो हमेशा जागती रहती है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनों सारे जीवों को समान अनुभव हैं। जो जगता रहता है वह जागरी-विश्व; जो पहले उक्त है। याने स्थूल शरीराभिमानी जीव, उस विश्व से जो भिन्न नहीं हैं वह जागरणी।

"सर्वाक्षगोचरत्वेन या तु बाह्यतया स्थिता
सृष्टिः साधारणी सर्वा प्रीतात्मा यं स जागरः"

यही जागरावस्था का लक्षण है।

जागर शब्द के अर्थ हैं, पोशाक, कवच इत्यादि। सदा शरीर के संरक्षण में लगा हुआ। सर्व प्रपंचों की कवच रूप में रक्षा करनेवाली।

२५८. स्वपंती

निद्रा की एक अवस्था है स्वाप। उस अवस्था में रहनेवाली। निद्रा में मन का एक ही तल प्रवृत्त होता है। तब स्पष्ट जैसे दिखनेवाली सृष्टियाँ स्वप्न हैं। स्थूल शरीराभिमानी जीव विश्व

है। स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर का ही प्रवर्तन चलता है। सूक्ष्मशरीराभिमानी जीव को स्वपंन कहते हैं। स्वपन नामक जीव से अभिन्न है स्वपन्ती।

"मनोमात्रपथेऽध्यक्षविषयत्वेन विभ्रमात्
स्पष्टावभासभावानां सृष्टिः स्वप्नपदं मतम्"

२५९. तैजसात्मिका

ऊपर बताये गये स्वप्न को तैसज नाम से भी जाना जाता है। तैजस नामक सूक्ष्म शरीराभिमानी जीव 'मैं ही हूँ , यह जाननेवाली। तेजस शब्द का अर्थ है प्रकाश, प्रभाव आदि। तेज से संबन्धित तैजस । तेज सम्बन्धी आत्मप्रभाव जिसमें है वह देवी। सारा प्रकाश और तेज स्वयं देवीस्वरूप हैं, इसलिए पदार्थनिष्ठ के अनुसार भी यह नाम सार्थक है।

२६०. सुप्ता

शब्द का अर्थ है सोनेवाली। पिछले तीन नामों में जीव की दो अवस्थाओं पर विचार हुआ। जागनेवाला और स्वप्न स्थिति में रहनेवाला। जब जागकर रहता है स्थूलशरीराभिमानी जीवन है। स्वप्नावस्था में सूक्ष्मशरीराभिमानी स्वप्न अथवा तैजस है। सूषुप्ति में कारणशरीराभिमानी जीव है। उसे प्राज्ञ कहते हैं। प्राज्ञ से अभिन्न होने से देवी सुप्ता हैं।

२६१. प्राज्ञात्मिका

प्राज्ञः ही जिसका स्वरूप है। उपर्युक्त नामों की व्याख्या में जैसे कहा गया है कि शरीर में रहनेवाले जीव को स्थूल शरीर के बोध का प्रवर्तन स्वप्नावस्था का प्रवर्तन और सूक्ष्म शरीराभिमानी जीव की सुषुप्ति का प्रवर्तन करना है। स्थूलदेहाभिमानी जीव जाग्रतावस्था में और सूक्ष्मदेहाभिमानी जीव स्वप्न में प्रवृत्त होता है। सूक्ष्मशरीराभिमानी जीवन का कार्यव्यापार जिस समय होता है तब स्थूल शरीर की अधिकतर इन्द्रियाँ प्रवर्तनविमुख रहती हैं। जीवात्मा के कार्य-व्यापार के लिए पंचप्राणों एवं मन का सहयोग होता है। यद्यपि ज्ञानेन्द्रिय एवं कमेन्द्रिय प्रवर्तनशील हैं, तब भी वे विश्राम लेते होंगे। उसी स्थिति में सूक्ष्मशरीराभिमानी जीव स्वप्नसंकल्पों का सृजन करता है। सुषुप्ति में स्थूल शरीर और सूक्ष्मशरीर दोनों विश्राम लेते हैं। पंचभूतात्मक स्थूलशरीर, जीवात्मा के सहायक पंचप्राण, मन, और ज्ञानेन्द्रिय विश्राम लेते हैं और स्थूल-सूक्ष्म शरीरों के कारणस्वरूपी कारणशरीर प्रवृत्युन्मुख रहता है। कारणशरीराभिमानी जीव है प्राज्ञ। विश्व और स्वप दोनों देवीस्वरूप हैं। इसी प्रकार प्राज्ञ भी देवीस्वरूप है, इसलिए प्राज्ञात्मिका नाम सही है।

प्राज्ञ शब्द का सामान्य अर्थ है बुद्धिशाली, ज्ञानी। याने लौकिक एवं अलौकिक की बातें जाननेवाला। देवीरूप है प्रज्ञा। इसलिए प्राज्ञ से देवी अभिन्न हैं, यह अर्थ भी माना जा सकता है।

२६२. तुर्या

पिछले नामों में जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थावों पर चर्चा हुई है। चौथी अवस्था है तुर्या। तुर्या शब्द का अर्थ है चतुर्थ। सौभाग्यभास्कर का मत इसप्रकार है- उपर्युक्त तीनों

अवस्थाओं का अनुभव करनेवाला विश्व आदि चैतन्यों एवं ज्ञानजन्य शुद्धविद्या का उदय अनुभूत करना ही तुर्यावस्था है। उसी अवस्था को प्राप्त करनेवाली। स्पन्दशास्त्र में तुर्यावस्था को "त्रिषुधामसु यद् भोग्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः विद्यात्तदुभयं यस्म स भुञ्जानो न लिप्यते" लिखा हुआ है।

शिवसूत्र में इसप्रकार बताया गया है- "जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदेऽपि तुर्याभोगसंभवः और यह भी- "त्रिषुचतुर्थ तैलवदासेच्चं इस प्रकार यह आशय है कि जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति से मिला हुआ होने पर भी उनमें से भिन्न है यह ज्ञान याने तुर्यावस्था। लेकिन, सौभाग्यभास्कर का मत है कि तुर्य महाकारणशरीराभिमानी जीव है। वह व्याख्या यह निर्देश देती है कि "मनः स्वचित्तेन प्रविशेद् "। इसके अलावा प्राणायाम आदि से मन को नियंत्रित कर तुर्यावस्था में पहूँच जाने का एक दूसरा उपाय भी बताती है।

"प्राणायामादिकं कृत्वा स्थूलोपायं विकल्पकम्
अविकल्पकरूपेण स्वचित्तेन स्वसंविदा
अन्तर्मुखपरामर्शचमत्काररसात्मना
मनस्तुर्यरसेनात्र स्वदेहादि प्रमातृताम्
मज्जनेन प्रशमयन् प्रविशेत्तत्समाविशेत्" ।

"शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते" यह शक्तिरहस्य में उक्त एक कथन है,जो बताता है कि श्रुति प्रसिद्धस्वरूपी तुरीया नामक एक देवता है। यह पद बताता है कि यह देवता ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन त्रिमूर्तियों से अलग चौथा देवता है। और ब्रह्मपत्नी सरस्वती, विष्णुपत्नी लक्ष्मी, शिवपत्नी पार्वती से भी अलग चौथी पराशक्ति है। सौन्दर्य लहरी में शंकर भगवद्पाद ने कहा है:-

"गिरमाहुर्देवीं द्रहिणगृहणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयां
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि" (सौ.ल.)

सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती इनके विवरण के पश्चाच् तुरीया एवं निस्सीममहिमा परब्रह्ममहिषी देवी का वर्णन किया गया है।

२६३. सर्वावस्थाविवर्जिता

जिसकी कोई अवस्था नहीं है। यहाँ अवस्था शब्द का संकेत उपर्युक्त जागरत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या इनसे है। इन चार अवस्थाओं को पार किये हुए जीव तुर्यातीत हैं। तुर्यातीत से अभिन्न है पराशक्ति। तुर्यातीत की अवस्था लक्षणों से वर्णित नहीं की जा सकती।

"आनन्दैकघनत्वं यद्वाचामपि न गोचरो नृणां
तुर्यातीतावस्था" (वरिवस्यारहस्य)

अवस्था शब्द का व्यावहाहिक अर्थ से भी व्याख्या की जा सकती है। कोई वस्तु अमुक प्रकार रहती है, इसे अवस्था कहते हैं। पराशक्ति देवी किस स्थिति में है, यह कहना सम्भव नहीं।

सुख, दुःख, आदि अवस्था, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था, शैशव, कौमार, यौवन, वार्द्धक्य अवस्था चतुष्टय, साहित्य शास्त्र में बताये गये कामावस्था, घनद्रववातकरूपी द्रव्यावस्था, श्वेत, श्याम, हरा, नील आदि वर्णभेद, उष्ण, शीत आदि कोई भी देवी के वर्णन या विवरण में लागू नहीं हो सकता। लेकिन इन सब का सन्दर्भानुकूल इस्तेमाल किया भी जा सकता है। इस प्रकार अवर्णनीय एवं अवाच्य स्थिति में रहनेवाला महाचैतन्य होने से सर्वावस्थाविवर्जिता नाम है।

२५६से २६३ तक के नामों से अविद्या के अधीन रहनेवाले जीव की पांच प्रकार की अवस्थाओं का विवरण दिया गया है।

२६४. सृष्टिकर्त्री

सृष्टि करनेवाली। सृष्टि शब्द से मतलब है प्रपंचसृष्टि। रजोगुणी भगवान का धर्म है सृष्टिकर्म। उसे करनेवाली सृष्टिकर्त्री। सृष्टि करने योग्य ब्रह्मरूप धारण की हुई।

"जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते
तिरस्कुर्वन्नेतत् स्वमपि वपुरीशस्तिरयति
सदा पूर्वसर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिवः
तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः" (सौ.ल. २४)

अयि लोकमाता, ब्रह्मा संसार का सृजन करते हैं। महाविष्णु उसका संरक्षण करते हैं और रुद्र उसका संहरण करते हैं। ईश्वर ब्रह्मा विष्णु और रुद्र को अपने में छिपाकर अपना रूप भी अप्रत्यक्ष करा लेते हैं। सदाशिव इन चारों मूर्तियों को आपकी भ्रुकुटिविलासनिर्देशन के मुताबिक अनुग्रह देते हैं।

संसार की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा सदाशिव के अनुग्रह से ईश्वर से भिन्न रूप को स्वीकार कर सृष्टि-कार्य करते हैं। सदाशिव देवी की ज़रासी भ्रूचाल की सूचना पाकर उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। सृष्टिकर्म देवी स्वयं न करती। फिर भी देवी की आज्ञा से ही चलता है। सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा आदि देवता देवीचेतना के रूपभेद हैं, इसलिए सृष्टि-स्थिति-संहार देवी का ही कर्म है, यह आशय आता है।

२६५. ब्रह्मरूपा

जिसने ब्रह्म का रूप धारण किया है। उपर्युक्त नाम में बताया गया है कि ब्रह्मा देवी से भिन्न नहीं हैं।

"ब्रह्मविष्णुशिवाब्रह्मन् प्रधाना ब्रह्मशक्तयः" (विष्णुपुराण)

ब्रह्म शब्द का अर्थ है कि सब कहीं व्याप्त, चलनरहित विकाररहित एवं आनन्दमय तथा जगत का कारण स्वरूप चैतन्य। इस अर्थ में सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा के कारणस्वरूप पराशक्ति देवी हैं।

२६६. गोप्त्री

गोपन करनेवाली। गोपन माने संरक्षण यह कर्म सत्वगुणी देवता का है। उस कर्म की कारणभूता होने से गोप्त्री नाम है।

गोपन शब्द का अर्थ यह भी है छिपाना। मायारूपिणी होकर जीवों के भीतर कर्मरत होकर परम सत्य को जीवों से छिपाकर रखनेवाली,यह भी अर्थ है।

२६७. गोविन्दरूपिणी

गोविन्द का रूप जिसे प्राप्त है। गोविन्द का अर्थ है भूमि का उद्धार जिसने किया वह। तब आदिवराह अवतारी विष्णु है। विष्णु का एक अवतार श्रीकृष्ण जिन्होंने कामधेनु को ऐश्वर्य प्रदान किया वही कृष्ण है। संसार (प्रपंच) का संरक्षण विष्णु के जिम्मे में है। विष्णु भी देवी का अंशरूप होने से विष्णु रूपिणी।

गोविन्द शब्द के बृहस्पति, पंडित, गडरिया ये अर्थ भी हैं। देवगुरु बृहस्पति विष्णु का अंश है। पाण्डित्य देवीकृपा से प्राप्त होता है। विष्णु के अवतार का कृष्ण गोपालन करते थे। इन अर्थों में देवी को गोविन्दरूपिणी कहना उचित है।

२६८. संहारिणी

संसार का संहरण करनेवाली। यह तमोगुणप्रधान ईश्वर का कर्म है। वही रूप धारण किये हुए। ईश्वररूपिणी देवी ही सृजन के लिए ब्रह्मा और संरक्षण के लिए विष्णु तथा संहार के लिए रुद्ररूपिणी बनती हैं। ये तीनों देवी हैं। त्रिगुणात्मिका नाम से स्पष्ट है।

२६९. रुद्ररूपा

रुद्र के रूप में रहनेवाली। रुद्र शब्द के अर्थ हैं दुख का निवारण करनेवाला और रोदन करनेवाला (जनन के समय)

" रुजं द्रावयते तस्माद् रुद्रः पशुपतिः स्मृतः" (शिवरहस्य)
"तुष्ट्यर्थं ब्रह्मणः पुत्रो ललाटादुत्थितः स्वयं
अरुदत् सुस्वरं घोरं जगतः प्रभुरव्ययः (भारत)"
"रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा तद्रावयति यः
प्रभुः रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परम कारणम्" (वायवीयसंहिता)

चाहे, यह अर्थ ले कि रोदन करनेवाला अथवा दुःख हरनेवाला, तब दोनों में रुद्र ही है। रुद्र स्वरूपिणी अर्थ है नाम का।

२७०. तिरोधानकरी

छिपानेवाली। तिरोधान शब्द का अर्थ सौभाग्यभास्कर इस प्रकार बताते हैं- 'निरवशेषोध्वंस': याने किसी को भी न बचाकर सबका नाश करनेवाली। सघनशुद्धसत्वप्रधान ईश्वर ब्रह्माविष्णुमहेश्वरों को अपने भीतर छिपाकर स्वयं सदाशिव तत्व में लयीभूत होते हैं। यही तिरोधान है। नाम से तात्पर्य है कि उस तिरोधान को करनेवाली।

तिरस्करिणी नामक एक शक्ति है। प्रार्थना से अथवा मंत्रतंत्रादि से उसे अधीन कर लेने से अन्यों के आंखों में पडे बिना रह सकता है। वह शक्ति स्वयं देवी की ही शक्ति होने से तिरस्करण करनेवाली यह अर्थ भी लागू हो सकता है।

२७१. ईश्वरी

ईश्वररूपिणी। ईश्वरपत्नी। ईश्वर का अर्थ है शिव, परमात्मा, रक्षिता, कामदेव, विष्णु। इन सब से अभिन्न। इन देवों की पत्नी यह भी अर्थ हो सकता है। ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री। भक्तों को ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली।

सौभाग्यभास्कर का अभिमत है-'घनतरशुद्ध सत्वप्रधान ईश्वरः'। ऐसे ईश्वर से अभिन्न।

"ईश्वरता कर्तृत्वं स्वतंत्रता चित्स्वरूपता चेति
एतेचाहन्तायाः पर्यायाः सद्भिरुच्यन्ते"

(कर्तृत्वं, स्वतंत्रता, चित्स्वरूपता इत्यादि है ईश्वरता। सज्जनों का अभिमत है, कि ये सब अहंता के पर्याय हैं।) उसी अहंता को पराहन्ता कहते हैं। जिसे वह है वही ईश्वरी है।

२७२. सदाशिवा

विरलतर शुद्ध सत्वस्वरूपी ईश्वर ही सदाशिव हैं। सदाशिव से अभिन्ना सदाशिवा।

पंचभूत, पंचतन्मात्राएं, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, मन, माया, शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव, (ये ही पंचविंशति हैं। इनमें पचीसवां तत्व है सदाशिव) वही तत्वस्वरूपिणी होने से सदाशिवा।) सदाशिव शक्ति से जब मिलते हैं, तभी प्रपंच की उत्पत्ति होती है।

"परोपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किन्चन
शक्तस्यात् परमेशानि शक्त्यायुक्तो भवेद्यति"

सदाशिव और शक्ति दोनों के युगल को छब्बीसवाँ तत्व माना जाता है।

२७३. अनुग्रहदा

अनुग्रह देनेवाली। भक्तों को, लौकिक एवं पारत्रिक दुःखों से बचाकर अनुग्रह देनेवाली। सौभाग्य भास्कर का यही अभिमत है कि ब्रह्माविष्णुमहेशादि को जगत् के सृष्टिस्थितिसंहार की शक्ति देकर अनुग्रह करनेवाली।

२७४. पंचकृत्यपरायणा

पंच कृत्यों में तत्परा। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, अनुग्रह ये ही पंच कृत्य हैं।

"जगज्जन्मस्थितिध्वंसतिरोधानैककारणम्
भूतभौतिकभावानां नियमस्यैतदेव हि" (मृगेन्द्रसंहिता)

"सा विश्वं कुरुते कामं सा पालयति पालितम्
कल्पान्ते संहरत्येव त्रिरूपा विश्वमोहिनी
तयायुक्तः सृजेद्ब्रह्मा विष्णु पाति तयान्वितः
रुद्रः संहरते कामं तया संमिलितो जगत्
सा बध्नाति जगत्कृत्स्नं मायापाशेन मोहितम्
अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप
योगिनो मुक्तसंगाश्च मुक्तिकामा मुमुक्षवः
तामेव समुपासन्ते देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्" (देवीभागवतम)

२७५. भानुमण्डलमध्यस्था

सूर्यमण्डल के मध्य में वास करनेवाली। (देवी की उपासना गायत्री के रूप में सूर्यमण्डलमध्यस्था मानकर की जाती है।

"अशेषवेदात्मकमेकवेद्यम्
स्वतेजसा पूरित लोकभेदम्
त्रिलोकहेतुं परमेष्ठिसंज्ञम्
नमामि रूपं रविमण्डलस्थम्" (कूर्मपुराण)

अनाहत पद्म सूर्यस्थान है। पिण्डाण्डस्था देवी को भी अनाहतपद्म में वास करनेवाली मानी जाती है।

२७६. भैरवी

भैरव परमशिव हैं। उनकी पत्नी भैरवी।

अष्ट मूर्ति शिव की एक मूर्ति है भैरव। भयंकर रूप में श्मशान में नृत्य करनेवाले भैरव की स्त्री भैरवी। भैरव शब्द का अर्थ भयंकर है। दुष्टों के निग्रह के लिए देवी ने भैरवों का रूप धारण किया है। पदार्थ तो है भयंकरी।

त्रिपुरांबा चक्रेश्वरीं नामक मंत्र के मध्यकूट का नाम भैरवी है। वह मंत्ररूपिणी। मंत्रों से संबन्धित विशद जानकारी गुरु के मुंह से जानना है।

भैरवी शब्द का अर्थ बारह वर्षीय बालिका भी होता है।

२७७. भगमालिनी

भगमालिनी नामक नित्या देवी की रूपवाली। प्रतिपद से लेकर पौर्णमी तक तिथियों की अधिष्ठन देवियाँ सोलह हैं। चन्द्रकलास्वरूपधारिणी ये सोलह नित्यायें सोडशाक्षरी मंत्र के वर्णों के रूप में हैं। उनमें तीसरी देवी का नाम भगमालिनी है। उसी देवी का रूप धारण करनेवाली।

"भगं षड़गुण्यं मलति धारयतीति भगमालिनी" (सौभाग्यभास्करम) षाड़गुण्य को धारण करनेवाली। ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान, विज्ञान ये ही षाड़गुण्य है।

"ऐश्वरस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः"

"ज्ञानविज्ञानयोश्चैव षण्णां भग इतीरणे" भग शब्द का अर्थ योनी भी है। भगमालिनी माने भगरूप को धारण करनेवाली।

"ये ये पदार्थालिंगांकास्ते ते शर्वविभूतयः अर्थाभगंकिंता ये ये ते ते गौर्या विभूतयः" इस पुराणवतन के अनुसार लिंगाकृति की सारी चीज़ें याने शिव एवं भग रूप सारी वस्तुएं देवी की विभूति मानी जाती हैं।

भगमालिनी नामक एक मंत्र है। मंत्र में भग शब्द का आवर्तन है, इसलिए भगमालिनी नाम है। उस मंत्र की आवरणदेवी यानी मंत्रस्वरूपिणी, यही मंत्रव्याख्या है।

२७८. पद्मासना

जिसका आसन पद्म है, वही। कमल पुष्प में विराजनेवाली। महालक्ष्मीस्वरूपिणी। "ब्रह्मरूपत्वात् पद्मासना" (सौभाग्यभास्कर)।

भास्कराचार्य का आगे इसप्रकार कथन है- प्रकृतिमय दलोंवाला, विकारमय केसर, संवित् का नाल इनसे शोभित पद्मपीठ बना हुआ। 'पद्माँ लक्ष्मीं सनति'। लक्ष्मी को विभाजित कर देनेवाली। (अपने भक्तों को ऐश्वर्य देनेवाली)

पद्म (शूरपद्मासुर) का नाश किया, इसलिए पद्मासना नाम आया, ऐसी व्याख्या भी मिलती है।

पद्मासन एक प्रसिद्ध योगासन है। वह आसन देवीस्वरूप होने से पद्मासना नाम है। पद्मासन पर बैठकर योगियों द्वारा आराधना की जानेवाली, यह अर्थ भी है।

२७९. भगवती

भग शब्द का अर्थ है षड्गुण। नाम २७७-भगमालिनी देखें। उसी नाम के साथ रहनेवाली।

"पूज्यते या सुरैः सर्वैस्तांश्चैव भजते यतः
सेवायां भजतिर्धातुर्भगवत्येव सा स्मृता (शक्ति रहस्य)
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां गतिमागतीं
अविद्याविद्ययोस्तत्वं वेत्तीति भगवत्यसौ" (देवीभागवत)

उत्पत्ति, विपत्ति, जीवों के आवागमन को जाननेवाली है भगवती।

२८०. पद्मनाभसहोदरी

पद्मनाभ (विष्णु) की बहिन। ब्रह्म धर्म और धर्मी ये दो रूप बने। धर्म सारे जगत के उद्धारक बने। वे ही विष्णु हैं। धर्मी ने परमशिव पत्नी का रूप स्वीकार कर लिया। ये तीनों मिलकर अखण्ड ब्रह्म है, यही शैव धर्म का रहस्य है। देवकी के गर्भ में विष्णु कृष्ण रूप में जन्म

पा गये। उसी समय देवी यशोदा के गर्भ से पैदा हुई। इस प्रकार देवी पद्मनाभ की बहिन बनी। कई पुराणों में यह वर्णन है कि इन्द्र एवं उपेन्द्र विष्णु दोनों देवी के भाई बने रहे थे।

इस नाम का तंत्रपरक एवं मंत्रपरक दोनों प्रकार विशेष अर्थ हैं। इनकी चर्चा यहाँ नहीं चलती है।

२८१. उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनावली।

उन्मेष (आँखों का विकास। आँखों का खुलना) निमिष- (आँखों का बन्द करना)। इनमें से उत्पन्न एवं नष्ट होनेवाले भुवनों की आवली (समूह) से युक्त। श्रीदेवी के उन्मेष एवं निमेष से संसार की सृष्टि और नाश होता है। यही इस नाम का सार है।

"निमेषोन्मेषाश्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शंके परिहृत निमेषास्तव दृशः" (सौ.लहरी ५५)

(पर्वत राजपुत्री आयि देवी, आपके नयनों के उन्मेष - निमेषों के साथ संसार की उत्पत्ति और नाश होता है, यही सज्जनों का कथन है । इसी कारण सेआप अपने नयन बन्द नहीं करती, इसलिए कि आपके नयनों के बन्द होने से संसार का नाश न हो जाय, यही मेरा विचार है ।)

२८२. सहस्रशीर्षवदना

सहस्रों सिर और वदन जिनके हों, वे । प्रपंच का जो कुछ है, सारे का सारा देवी रूप है, इसलिए प्रपंच के सभी जीवजालों के सिर और वदन देवी के सिर एवं वदन बन सकते हैं । इस नाम का सहस्र शब्द का भाव अनन्त अथवा संख्यातीत मानना उचित है।

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण का विश्वरूप देखकर चकित बने अर्जुन भगवान का स्तुति करते हैं :-

अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वांसर्वतोऽनन्तरूपं
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वेरूप

गीता में तेरहवें अध्याय में भगवान ही ब्रह्म के बारे में कहते हैं:

"सर्वतः पाणि पादं तत्
सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं
सर्वतः श्रुतिमल्लोके
सर्वमावृत्य तिष्ठति"

सर्वलोकव्यापी देवीरूप का स्मरण यह नाम सूचित करता है।

२८३. सहस्राक्षी

सहस्र (अनन्त) नयनोंवाली। उपर्युक्त नाम का ही आशय है।

२८४. सहस्रपात्

असंख्य पादों से युक्त

"सहस्र नयना रामा सहस्रकरसंयुता
सहस्रशीर्षचरणा भाति दूरादसंशयम्" - (देवीभागवतं)

ये तीन नाम मिलकर वाग्भवकूट के दो और तीन कूट का भी उद्धरण होता है। मंत्रव्याख्या गुरुमुख से सुनना है।

२८५. आब्रह्मकीटजननी

ब्रह्मा से लेकर कीट तक की माँ। सारे प्रपंच के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है। उसी ब्रह्मा की भी माँ और ब्रह्मा से सृजित सारे जीवों की भी माँ। सारे संसार की माँ देवी है। ब्रह्म शब्द की व्याख्या सौभाग्यभास्कर करते हैं कि स्थूलतमहिरण्यगर्भं नामक जीव ।

२८६. वर्णाश्रमविधायिनी

जिसने वर्णाश्रमों का नियोजन किया वे। उपर्युक्त नामों में यह बताया गया है कि सभी जीवजालों की माँ हैं देवी। अपनी निर्मिति में याने जगत में किस प्रकार का आचरण जीवों को करना चाहिए, यह भी देवी ने निश्चित किया। जीवों को सहजावबोध की नीति प्रदान की। मानव को सन्मार्गवता देने के लिए स्वयं वेद रूप में अवतरित हुईं। वह वेद कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों रूपों में प्रकट हुआ। कर्मकाण्ड के अनुरूप वर्णाश्रमधर्मों का प्रबन्ध हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये ही वर्ण हैं। आश्रमों के रूप में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी इन चारों में प्रकट हुआ। गुणकर्मानुसार ये सारे विभजन देवी ने ही किया है, यही इस नाम का भाव है।

२८७. निजाज्ञारूपनिगमा

अपनी आज्ञारूपी निगमोंवाली। मनुष्य का जीवन धर्माधिष्ठित हो, इस लक्ष्य को मानकर ज्ञानकाण्ड और कर्मकांड दोनों को मिलाकर वेद का निर्माण किया गया। वही वेद देवी की आज्ञा ही है। अतः यह नाम पडा है।

"ममैवाज्ञा पराशक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी
ऋग्यजुस्सामरूपेण सर्गादौ संप्रवर्तते" (कूर्मपुराण)

२८८. पुण्यापुण्यफलप्रदा

पुण्य और पाप का फल देनेवाली। देवी की आज्ञारूपी निगमों में कर्मकाण्ड के अनुसार धर्म और अधर्म और पुण्य और पाप का विवरण सविस्तृत दिया गया है। सभी कर्मों का फल स्वतः प्राप्त होता है। इसमें अन्तर नहीं आने का। लौकिक और पारत्रिक जीवन के सुख और दुःख, नरक और स्वर्ग प्रदान करेगा। नाम का भाव है कि कर्मानुसार फल देनेवाली है देवी।

२८९. श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिका

श्रुतियों की सीमन्त रेखाओं में देवी की पादधूलि लगी है। वेदों को स्त्री रूप में कल्पित किया गया है। सुमंगली नारियाँ अपनी सीमन्तरेखाओं में सिन्दूर लगा लेती हैं। श्रुतियाँ देवी का

पादनमस्कार करती हैं और उस समय देवी की पादधूलि उनकी मांगों पर पड़ती है। उन्हें यह सौभाग्य का लक्षण है।

"श्रुतीनां मूर्द्धानो दधति तव यौ शेखरतया
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ
ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजुटतटिनी
ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूडामणि रुचिः" (सौ.ल.)

(अयि माता, वेदमूर्धा उपनिषद् आप के जिन चरणकमलों को शिरोभूषण मानकर धारण करते हैं उन चरण कमलों को आप मेरे सिर पर भी दया कर के समर्पित करें। आपके चरणों के लिए परमेश्वर के जडाजूड में स्थित गंगाजल पाद्य और चरणों में लगाने का लेप महाविष्णु के किरीट के रत्नों की कान्ति है।)

२९०. सकलागमसन्दोहशुक्तिसंपुटमौक्तिका

सारे वेद समूह रूपी सीपी के भीतर मोती बनकर विराजनेवाली।

सभी वेदों के समूह को सीपी मानकर और उसमें कीमती वस्तु मोती के रूप में देवी को मानना सभी वेदों का सार देवी कहना है।

सौभाग्यभास्कर की व्याख्या है कि सारे आगम सन्दोह रूपी सीपियों से संपुटित मौक्तिक (नासाभरण) के साथ रहनेवाली। इसका तात्पर्य है कि आगमों की भी शक्ति सीमित है कि वे सम्पूर्ण रूप में से देवी का प्रतिपादन मौक्तिक का ही कर सकें। वे देवी की नासिका के केवल आभूषण का ही वर्णन कर सकते हैं। अंबा का पूर्ण रूप आगमों द्वारा वर्णित नहीं होता।

२९१. पुरुषार्थप्रदा

चारों पुरुषार्थों को-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- प्रदान करनेवाली। पुरुष शब्द का अर्थ रुद्र भी है। 'पुरुषो वै रुद्र' - (श्रुति)। अर्थप्रद पुरुष याने रुद्र का रूप जो बना है।

२९२. पूर्णा

जो पूर्णा है। जिनकी किसी भी बात में कमी न हो।

"देशकालवस्तुकृतपरिच्छेदराहियात् पूर्णा"। - (सौभाग्यभास्कर)

"पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पुर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" - (ईशावास्यं)

पूरा करनेवाली। पूर्णता देनेवाली। जिन जिन देवियों का वर्णन या व्याख्यान है उन देवियों के साथ ललिता देवी को भी जोड देना है। तभी पूर्ण होता है। ललितोपाख्यान के तैंतीसवें अध्याय में समयेश्वरियों के नाम से प्रसिद्ध कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमाला इत्यादि देवियों के बारे में कहने के बाद-

"एतासां च प्रसंगेषु नित्यानां च प्रसंजने
चक्रिणीनां योगिनीनां श्रीदेवी पुराणात्मिका
या कामेश्वरवामांककलिता ललितांबिका
कामेश्यादि चतुर्थी सा नित्यानां षोडशीमता
योगिनीचक्रदेवीनां नवमी परिपूर्तिका" (ललितोपाख्यानं-३३-२४-२६)

(इन समयेश्वरियों, नित्यादेवियों, चक्रिणियोगिनियों के वर्णन करते समय भी संख्या की पूर्ति लाने में श्री ललिता परमेश्वरी की गणना की जाती है। श्री ललिता देवी की गणना करके ही समयेशी आदियों की संख्यापूर्ति करती है। कामेश्वर शिव के वाम पार्श्व में रहनेवाली विश्वमाता ललितांबा समयेश्वरियों में चौथी, नित्यादेवियों में सोलहवीं और योगिनीचक्रदेवियों में नौवीं होकर संख्यापूर्ति करती हैं। पूर्ण करने से पूर्णा नाम है।)

२९३. भोगिनी

भोगों का अनुभव करनेवाली। भोग का मतलब है, सुखानुभव। जिसे वह सुखानुभव है वह भोगिनी। भोगिनी का और अर्थ है नाककन्या। नागकन्या स्वरूपिणी।

२९४. भुवनेश्वरी

सारे भुवन की ईश्वरी। भुवन शब्द की सूचना चौदह भुवनों की ओर है। उन सब की स्वामिनी। भुवन का अर्थ जल भी है। सभी जीवों का जीवन जल है, उसकी ईश्वरी। मंत्र-तंत्रार्थों में हल्लेखाभिमानी देवतारूपवाली। हल्लेखात्मक मंत्र का रूप जिसका है, वह हृल्लेखा शब्द ह्रींकार का द्योतक है।

"भुवनानन्दनाथस्य प्रसन्नत्वान्महेश्वरी
भुवनेष्वति विख्याता शांभवी भुवनेश्वरी"

त्रिपुरासिद्धांतवाक्य का तात्पर्य है कि सारे मानवों के भीतर रहनेवाली गुरुविशेष रूपी देवी।

२९५. अम्बिका

सारे जगत की माँ। भारती, पृथ्वी, रुद्राणी इन रूपों को धारण की हुई इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति की समस्टि। सौभाग्यभास्कर का यही मत है।

अम्बिका शब्द के निद्रा और रात्रि अर्थ भी होते हैं। इस पक्ष में निद्रारूप अर्थ है।

"रात्रिरूपा महादेवी दिवारूपो महेश्वरः" - (स्कान्दपुराण)
"विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीं
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः" - (देवीमाहात्म्य)
"प्रकृतिस्त्वं हि सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा" - (देवीमाहात्म्य)

२९६. अनादिनिधना

जिन्हें जन्म और मरण की बाध्यता नहीं है।

आदिनिधन संज्ञक शब्द अमरत्व को रोकनेवाले अस्सी मरणकारणों को सूचित करता है। उसी आदिनिधन जिसे बाधित नहीं करता वही अनादि निधना है। इस पक्ष में यही तात्पर्य है कि देवी के उपासकों को मरणकारण तंत्र नहीं करते।

त्रिमूर्तियों और उनके अवतारों एवं अनेक देवीदेवों की पूजा मनुष्य करते हैं, आसुरी शक्तिवाली मूर्तियों की पूजा भी करते हैं। ये सारी पूजाएं शुद्धविद्यारूपिणी चिदानन्दशक्ति में पहुँच जाती हैं। लेकिन संकल्पभेदों एवं कर्मभेदों के कारण पूजा के फलों में भी विभिन्नता होती है। ब्रह्मा का निश्चय जो है वही चलेगा। पूजा आदि कर्मों से उस निश्चय के विपरीत कुछ न चलेगा। इस नियम के विपरीत है, जो देवी की पूजा से प्राप्त हो सकता है। उम्र की अवधि बढाने की उपासना की अधिकारिणी देवी मात्र है। श्रीललितांबिका की उपासना उसके लिए सब कुछ है। इस नाम से सूचित होता है कि आयु को बढाने में और शाश्वत रूप से मुक्ति पाने में देवी की उपासना कामयाब है।

२९७. हरिब्रह्मेन्द्रसेविता

हरि (विष्णु) ब्रह्मा और इन्द्र से पूजिता।

"ब्रह्मा विष्णुस्तदा शम्भुर्वासवो वरुणो यमः
वायुरग्निः कुबेरस्च त्वष्टा पूषाऽश्विनौ भगः
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वदेवा मरुद्गणाः
सर्वे ध्यायंति तां देवीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्" (देवीभागवत)

ललितोपाख्यान के अन्तर्गत त्रिपुरवर्णन में कहा गया है कि विष्णु, ब्रह्मा, और इन्द्रादि जगत्पालक देव अपनेअपने प्रकारों से देवी की उपासना करते हैं। सौन्दर्यलहरी में देवी का वर्णन इस प्रकार भी है - मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुटनीराजितपदा

२९८. नारायणी

नारायण का स्वरूपधारण जिसने किया है वह। नारायण की पत्नी। नारायण शब्द का अर्थ शिव और विष्णु दोनों हैं।

"आपो नारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः
अयनं तस्य ता यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः -मनुस्मृति"

मनुस्मृति नारायण शब्द की व्युत्पत्ति बताती है। जैसे विष्णु शिव इनमें अर्थ विपर्यय नहीं है वैसे लक्ष्मी, पार्वती शब्दों में नारायणी नाम सार्थक होता है। देवीमाहात्म्य में एकादश अध्याय में स्थित प्रसिद्ध देवीस्तोत्र में सत्रह श्लोक-

नारायणी नमोऽस्तुते प्रयोग से अन्त होता है। "सर्वमंगलमंगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके, शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते"वाले मंत्रभूत श्लोक भी इसमें आता है।

नारायण विष्णु है। विष्णु की बहिन नारायणी, ऐसी भी व्याख्या है । पद्मनाभसहोदरी संज्ञक नाम २८० देखिए। "नारायणीसहचराय नमःशिवाया" की उक्ति में नारायणी पार्वती है। विष्णुरूपिणी है देवी, ऐसा कथन नाम २६७ में है। विष्णु से अभिन्न होने से नारायणी नाम युक्त है।

"अहं नारायणो गौरी जगन्माता सनातनी
विभज्य संस्थितो देवः स्वात्मानं परमेश्वरः
न मे विदुः परं तत्वं देवाद्या न महर्षयः
एकोऽहं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च" (कूर्मपुराण)

२९९. नादरूपा

जिसका रूप स्वयं नाद है। चलनक्रिया के फलस्वरूप शब्द बनता है। प्रपंच में ब्रह्माण्डों का चलन, ब्रह्माण्डों में अन्तर्भूत पृथ्वी आदि गोलकों का चलन, हरेक गोलक में स्थित चरों और अचरों का चलन, प्रत्येक जीव के शरीर और उसके अंग-प्रत्यंग का चलन, उच्चारण अंगों के कर्मों का चलन ये सब नाद की उत्पत्ति का कारण बन जायेंगे। कारणभेदों और करणभेदों से नाद कई प्रकार के होते हैं। वे सब प्रपंचमाता देवी के रूप हैं, यही इस नाम से सूचित होता है।

ह्रीं आदि बीजाक्षरों में बिन्दु के ऊपर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम रूप से काम करनेवाले आठ वर्ण हैं। उन में तीसरे का नाम नाद है। वह नाद जिसका रूप है वह।

३००. नामरूपविवर्जिता

जिसका कोई नाम या रूप नहीं है। किसी एक वस्तु या आशय अथवा भाव को परिचित करनेवाला शब्द है नाम। जिसका कोई रूप या आकृति का संकल्प नहीं किया जा सकता उसका नाम कल्पित नहीं होता। यहाँ व्याख्यायित होनेवाले हज़ार नाम श्रीललितांबिका के हैं। उनमें हरेक देवी के गुणविशेषों का अल्पमात्र स्फुरण है। कोई भी नाम जगदम्बा के समग्र स्वरूप को चित्रित करने में असमर्थ है। यहाँ के सहस्र में ऐसे नाम भी होते हैं, जो देवी के स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतम रुपों को सूचित करते हैं। फिर भी ये वर्णन देवी के रूपों के सही चित्रण नहीं कर पाते। ये वर्णन कभी कभी देवी की अवतार लीला के आधार पर अल्पमात्र सूचनायें ही दे सकते हैं। इसका तात्पर्य है कि देवी के कोई नाम अथवा रूप नहीं है। जो नाम रूप सहित है वह जगत् की मिथ्या का अंश है।

३०१. ह्रींकारी

ह्रीं बीजाक्षर जिसका स्वरूप है। ह्रीं बीजाक्षर भुवनेश्वरी-स्वरूप है और सृष्टि, स्थिति और संहार की ताकतों का वहन करती है। इस बीजाक्षर की व्याख्या मंत्रपरक होने से उसे गुरुमुख से जानना चाहिए।

'ह्री'का एक अर्थ है लज्जा। लज्जा की प्रवर्तिका।

३०२. ह्रीमती

लज्जावती। ''लज्जामती तुष्टिरिष्टा च पुष्टि'' । (देवीस्तोत्र)
''लक्ष्मी लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि स्वधे ध्रुवे
महारात्रि महामाये नारायणी नमोऽस्तुते'' - (देवीमाहात्म्य-एकादशाध्याय नारायणीस्तुति)

३०३. हृद्या

जो हृदय में पैदा हुई है। भक्तजनों के हृदय में आयी हुई। मुनियों के हृदय में रहनेवाली। हृद्या शब्द का और अर्थ है रमणीय रूपा। चाहे स्थूल रूप में हो, अथवा सूक्ष्म एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म में हो, सब तरह से सर्वांग सुन्दरी हो। वही हृद्या।

३०४. हेयोपादेयवर्जिता

जिसे हेय अथवा उपादेय नहीं है। हेय माने छोडने योग्य। उपादेय का मतलब है स्वीकार्य। इन दोनों की जिसे ज़रूरत मालूम नहीं होती। ऐसे असंख्य शास्त्र हैं, जिनके अनुसार स्वीकारने और छोडने योग्य असंख्य बातें हैं । वे सब अविद्याविषयक हैं और उन लोगों के लिए जने हैं जो माया के वशवर्ती हैं। उन नियमों का अनुसरण कराती है देवी की अनुज्ञा। लेकिन गलत क्या है अथवा ठीक क्या है, इस की विवेचना करने की ज़रूरत देवी को नहीं है। उन सबके परे की शक्ति है देवी।

३०५. राजराजार्चिता

राजाधिराज द्वारा पूजिता। राजाओं का राजा राजराज है। माने बादशाह। बादशाहों द्वारा पूजिता। यहाँ अर्थ है ईश्वरों द्वारा पूजिता। राजराज शब्द कुबेर के लिए लिया जाता है। सारी सम्पत्तियों के अधिप होने से राजाओं के भी राजा हैं। तब कुबेर द्वारा पूजिता। राजराज शब्द मनु के लिए भी उपयुक्त होता है। तब मनु द्वारा पूजिता। ह्रींकारत्रयसंपुटेन मनुनोपास्ये त्रयीमौलिभिर्वाक्ये लक्ष्यतनो - (मातृकामंत्रमाला)

३०६. राज्ञी

महाकामेश की पट्टमहिषी

३०७. रम्या

सौन्दर्यवती, सन्तुष्ट करनेवाली, रम्य शब्द का अर्थ रात्री भी है। रात्रीस्वरूपिणी।

३०८. राजीवलोचना

राजीव जैसे मनोहर नयनोंवाली। राजीव शब्द के अर्थ हैं, कमल, हिरण, मत्स्य इत्यादि। यहाँ नयन हैं कमल जैसे, अथवा हिरण के नयन जैसे अथवा मत्स्य जैसे। सुन्दरियों के नयन इन तीनों के साथ उपमित होते हैं।

३०९. रंजनी

रंजन करनेवाली। भक्तों को प्रसन्न करनेवाली। सन्तुष्ट करनेवाली । शुद्ध स्फटिक समान उज्ज्वल वर्णवाले शिवजी को अपने जपाकुसुमवाले वर्ण के सामीप्य से अरुण बनाती है। शिवजी को अपने रंग में रंगानेवाली होने से रंजनी नाम है।

३१०. रमणी

रमण करनेवाली। भक्तों को खुश करनेवाली। उनसे खेलनेवाली। जक्षन क्रीडन् रममाणः - (श्रुति)।

३११. रस्या

रस का आस्वादन करने योग्य। आत्मानन्दस्वरूपिणी।

रसो वै सः - (तैत्तिरीयोपनिषद)

३१२. रणत्किंकिणिमेखला

ध्वनित मणियोंवाली मेखला जिसकी होती है।

३१३. रमा

लक्ष्मीदेवी। लक्ष्मीस्वरूपिणी। सूतसंहिता में देवी को निम्न प्रकार वर्णित किया गया है: " लक्ष्मीर्वागादिरूपेण नर्तकीव विभाति या " (लक्ष्मी और सरस्वती के वेष धारण कर नर्तन करनेवाली जैसी)

३१४. राकेन्दुवदना

राकेन्दु जैसा मनोहर एवं शीतल मुख जिसका हो।

३१५. रतिरूपा

कामदेव की पत्नी रती की जैसी अत्यंत सुन्दरी। रती का रूप धारण किया हुआ।

चन्द्रमा की छठी कला का नाम रती है। वह कलारूपिणी।

रति का अर्थ यह भी है कि स्त्री-पुरुष संयोग से जो आनन्द होता है वह। वह आनन्दस्वरूप जिसका हो।

श्रृंगार रस का स्थायीभाव रति है। प्रपंच के अस्तित्व का आधारस्वरूप रति ही देवी का स्वरूप है।

मंत्र की व्याख्या में रमा शब्द से 'इ' वर्ण और राकेन्दुवदना शब्द से अनुस्वार इन दोनों का उद्धरण कर रतिरूपा नाम से कामकला का बोध देता है। ज़्यादा विवरण गुरुमुख से जानना है।

३१६. रतिप्रिया

रति चाहनेवाली। जब कामदेव शिव के तीसरे नयन की ज्वाला में राख हो गये तब विधवा रतीदेवी ने पतिदेव की याद में देवी की उपासना की। रतीदेवी से सन्तुष्ट होकर देवी कामेश्वर की ओर देखा। उस कटाक्ष से कामदेव दुबारा सुन्दर रूप में प्रकट हुए। (यह कथा ललितोपाख्यान के २७ अध्याय में वर्णित है।) कामदेव को पुनः जन्म देने के कारण रती की मनोकामना पूर्ण हुई, इस प्रकार रतिप्रिया बनी देवी। रती में प्रिय रखनेवाली अर्थ भी लिया जा सकता है।

३१७. रक्षाकरी

रक्षा करनेवाली। भक्तों की रक्षा करनेवाली। रक्षा शब्द का अर्थ भस्म भी है। इस अर्थ के अनुसार भस्म कर देनेवाली है। भक्तों के पाप और दौर्भाग्य को भस्म करनेवाली। प्रपंच की स्थिति एवं संहार करनेवाली।

३१८. राक्षसघ्नी

राक्षसों को मारनेवाली।

३१९. रामा

स्त्रीरूपिणी। सभी स्त्रियाँ देवी की अंशभूत हैं।

"विद्याः समस्तास्तव देवी भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु
त्वयैकया पूरितमंबयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः" (देवी माहात्म्य-एकादशस्कंध-नारायणीस्तुतिः)

'स्त्रीलिंगमखिलम् गौरी' -(लिंगपुराण) उसी पुराण में एक अन्य स्थान में निम्न प्रकार कहा गया है:

"शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी
पुल्लिगशब्द वाच्या ये ते च रुद्राः प्रकीर्तिताः
स्त्रीलिंगशब्द वाच्या याः सर्वा गौर्या विभूतयः
एवं स्त्री पुरुषाः प्रोक्तास्तयोरेव विभूतयः"

उपर्युक्त प्रकार से सभी पुरुष अपने पुल्लिंग वर्ग के कारण रुद्र और स्त्रीलिंग वर्ग की होनेवाली सब स्त्रियाँ गौरी की विभूति हैं। अनेक पुराणों में इसकी चर्चा है।

रामा पद के लिए रमण करनेवाली अर्थ है। योगियों को चिदानन्द में प्रसन्न करनेवाली। लक्ष्मी का पर्याय होने से लक्ष्मीरूपिणी है। सुन्दरी होने से लावण्यशेवधि है। नदी अर्थ होने से पुण्य तीर्थरूपिणी है।

३२०. रमणलम्पटा

रमण से लम्पटा। स्त्री रूप में अपने पति के साथ रतिक्रीड़ा करने में आसक्ति रखनेवाली। यह स्त्रीसहज अर्थ है। रतिक्रीड़ाकरने में तत्परा।

३२१. काम्या

जिससे मोह किया जा सकता है। ज्ञान से अथवा योगसाधना से जो अपनायी जा सकती है। मोक्षप्राप्ति के लिए कामना करनेवालों की आकर्षणीय देवी। इस नाम से देवी के सौन्दर्य की अधिकता को भी सूचित किया जाता है।

३२२. कामकलारूपा

कामकला का रूप जिसने धारण किया है। कामकला के बारे में मूलकूटत्रयकलेबरा नाम में (८९) वर्णन है। व्यावहारिक भाषा में कामकला का अर्थ है कामशास्त्र । स्त्रीपुरुषों का मैथुन वर्णन करनेवाला शास्त्र देवीरूप है। कामदेव का कलारूप है। स्त्री और पुरुष का भेद जिस जीव में होता है उस परम्परा का अस्तित्व इन दोनों लिंगों के परस्पर आकर्षण से होता है। वह आकर्षण कामकला है।

३२३. कदम्बकुसुमप्रिया

कदम्बपुष्प पसन्द करनेवाली। अनेक स्तोत्रों में यह बताया जा चुका है कि देवी कदम्बकुसुमों को बहुत चाहती हैं।

३२४. कल्याणी

मंगलरूपिणी। 'मंगलस्वरूपत्वात् कल्याणी' - (सौभाग्यभास्कर) । कल्य रूपी वाणी। वाक्शक्ति को शुभ देनेवाली। मलयाचलवासिनी देवी का नाम कल्याणी है। कल्याणी पद का अर्थ सुमंगली भी है। कामेशबद्धमांगल्यसूत्रशोभितकंधरा होने से उस नाम को भी सार्थक मानना चाहिए।

३२५. जगतीकन्दा

जगती का कन्द। कन्द शब्द के अर्थ हैं मूल, मेघ, पूरा करनेवाला इत्यादि। संसार का मूल। भूकाण्ड के पौधे के ठंडल, पते, फल-फूल सब के नाश होने पर भी फिर कन्द से उत्पन्न होता है। मूल रूपी देवी से फिर सारा जगत उदित होता है। मूलं शब्द से भी यह अर्थ स्पष्ट होता है। मेघ अर्थ में जलधारा से जीवों को पैदा करनेवाली हैं। और जगत को बनाए रखती हैं। जलप्रलय से संहार भी करती हैं। पानी पौधों आदि का उत्पादनकारिनी है। पूरा करनेवाली अर्थ से तात्पर्य है कि जगद् का आधार बनी हुई चेतना। इसलिए सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी नाम सार्थक होता है।

३२६. करुणारससागरा

करुणा रस का सागर। करुणा सागर न कहकर करुणारस का सागर कहने से कारुण्यसागर का द्योतन होता है। निर्मल करुणा का सागर। अपनी सन्तानों का, सारे चराचर का संरक्षण करनेवाली। मनुष्य अज्ञान से अथवा अविवेक से अकर्मों को करता है। माँ उनके अपराधों को भी माफी देकर उन्हें भी शाश्वतमोचन देती हैं। कारुण्य से उन्हें उस रास्ते में ले चलती हैं।

३२७. कलावती

कलाओं से युक्त। कला शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। यहाँ गीतनृत्यवाद्यादि ६४ कलाओं से मतलब है। सभी कलाएं देवीरूप होने से कलावती है।

कला एक काल विभाग भी है। तीस काष्ठ का समय। जहाँ अनन्तकाल देवीरूप है, वहाँ काल का अंश भी देवीरूप है। कलासंज्ञक विभाग रूप बनी हुई।

"कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी विश्वस्योपरतौ
शक्ते नारायणि नमोस्तु ते" - (देवीमाहात्म्य, एकादश अध्याय)

चन्द्रमा के सोलहवाँ भाग भी कला है। ये कलाएं तिथियों से सम्बन्धित रहती हैं। तिथिदेवताएं यानी नित्याकन्याएं कलादेवियाँ कही जाती हैं। कलाओं से युक्त याने नित्यादेवियों द्वारा सेविता अथवा प्रतिपदा आदि कलाओं से युक्त।

जोतिशास्त्र के अनुसार राशिचक्र के एक अंश को कला कहते हैं।

कला का अर्थ तेज भी होता है। इस प्रकार तेजस्विनी है। कलात्मिका, कलानाथा, कामकलारूपा इत्यादि नामों की व्याख्या भी देखिए।

३२८. कलालापा

मधुर आलाप से युक्त। मधुर एवं अस्फुट आलाप है कला।

कलाविद्यायें अपने आप आलाप जिनकी हैं। कलाओं द्वारा आलाप की जानेवाली।

३२९. कान्ता

कमनीय रूपवाली। सौन्दर्यवती। हृद्या। ये सब अर्थयुक्त हैं। भार्या अर्थ भी है। कामेश की पत्नी यहाँ सार्थक है।

३३०. कादम्बरीप्रिया

कादम्बरी एक मद्य का नाम है। कदम्बपुष्प से निर्मित। उस मद्य को पसन्द करनेवाली।

कादम्बरी सरस्वती देवी का पर्याय है। इस पक्ष मं अर्थ है कादम्बरी याने सरस्वती को पसन्द करनेवाली। सरस्वती कला एवं अन्य विधाओं की अधिष्ठानदेवी है। अतः कला एवं विद्याओं को पसन्द करनेवाली। सरस्वती को जो प्रिय हैं।

३३१. वरदा

वरों का दान करनेवाली। ब्रह्मा विष्णु आदि देवों को वरदान करनेवाली।

"त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया
भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वांछासमधिकम्
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ" - (सौ.ल.४)

(संसार को शरण देनेवाली अयी देवी, आपको छोडकर अन्य सभी देव अपने हाथों से वर देते हैं। अभयमुद्रा और वरदमुद्रा धारण करते हैं। आप हाथ से अभय और वर नहीं देती। आपके पॉव भय से मोचन देने और अपेक्षा से ज़्यादा वरदान करने में सक्षम हैं। इस प्रकार सौन्दर्यलहरी में शंकराचार्य देवी के वरदानक्षम पादपद्मों का वर्णन करते हैं।)

"वरार्थिभ्यः सुरादिभ्यः कामान् पूरयतीश्वरी
धातुर्वृज्ञ्वरणे प्रोक्तस्तेन सा वरदा स्मृता"

वर प्रार्थी देवों की कामनाएं पूर्ण कर देती हैं देवी, इसलिए वरदा हैं, यही देवीभागवत में बताया गया है।

३३२. वामनयनः

वाम नयनोंवाली, याने सुन्दर नयनोंवाली। सुन्दरी। पूजामार्गों में एक है वाम। उसको चलानेवाली। वाममार्ग से पूजाविधियों का प्रवर्तन भक्तों द्वारा करानेवाली।

कर्मजन्य फल को भी वाम कहते हैं। कर्म के फलों को प्रदान करनेवाली।

३३३. वारुणीमदविह्वला

वारुणी से जनित मद से जो विह्वल हुई हो। वारुणी खजूर वृक्ष से निकाला जानेवाला एक मद्य। उस मद्य के सेवन से विह्वला। (बाह्य को भूली हुई और स्वात्मानन्द में मग्न)

वारुणीमन् यह शब्द सहस्रफण आदिशेष के लिए इंगित होता है। वारुणीमद-अविह्वला इस नाम का विस्लेषण करके जैसे अत्यंत भारी काम याने भूमि को धारण करने में आदिशेष जिस प्रकार अविह्वल रहता है उसी प्रकार अविह्वल रहनेवाली है देवी, यही व्याख्या की जाती है।

वायु देवता से संबन्धित शरीर की एक नाडी का नाम वारुणी है।

"अधश्चोर्द्ध्वं स्थिता नाडी वारुणी सर्वगामिनी
पूषा दिग्देवता प्रोक्ता वारुणी वायुदेवता" (योगशास्त्र)

जो योगी वारुणी नाडी पर विजय प्राप्त कर लेता है वह वारुणीमान। उस योगी की अविह्वलता देवीकृपा से होती है ।

३३४. विश्वाधिका

विश्व से बढ़कर श्रेष्ठ। ' विश्वाधिको रुद्रो महर्षि' - (श्रुति)। विश्वाधिक रुद्र का रूप धारण करनेवाली। क्षिति आदि शिवान्त तत्वों से उत्कृष्ठ। सर्वतत्वों से श्रेष्ठ। सर्वतत्वस्वरूपिणी।

३३५. वेदवेद्या

जो वेदों से जानीजाती हैं, वे। श्रीपुरवर्णन में बताया गया है कि ऋक्, यजू, साम, अथर्व ये चार वेद देवी के निवास रूपी मणिगृह के चार गोपुरद्वार हैं। इसका आशय यह है कि देवी के दर्शन करने जाना है, तो प्रवेशद्वारों से प्रवेश करना है और तब वेदों से देवी को जानना है। अन्य नामों द्वारा अन्यत्र सूचित किया गया है कि ललिता माता वेदस्वरूपिणी हैं।

' वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यः' , यही स्मृतियों में बताया गया है षडंगयुक्तश्रुतिवाक्यमृग्ये - ललितोपाख्यान २४-१४

३३६. विन्ध्याचलनिवासिनी

विन्ध्याचल में निवास करनेवाली।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे
सुंभो निसुंभश्चैवान्यावुत्पत्स्ये महासुरौ
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसंभवा
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी - देवी का ही यह कथन है।
(देवी माहात्मय - अध्याय २)

३३७. विधात्री

विधाता का स्त्रीलिंग रूप। सृष्टिकर्ती। ब्रह्मा की पत्नी। आज्ञा करनेवाली "विदधाति धारयति पोषयति वा जगदिति विधात्री" - (सौभाग्यभास्कर)

संसार को धारण करनेवाली। और उसका पोषण करनेवाली।

३३८. वेदजननी

वेदों की जननी।

"यतः श्रृंगाटकाकार कुण्डलिन्याः समुद्गता
स्वराश्च व्यंजनानीति वेदमाता ततः स्मृता" - (देवीपुराण)

३३९. विष्णुमाया

विष्णुमायारूपिणी

"त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया
मामेव ये प्रपन्त्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते
न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपंत्यंते नराधमाः
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः"

इस प्रकार स्वयं भगवान कृष्ण गीता के द्वारा विष्णुमाया का कर्तृत्व वर्णित कर देते हैं। (गीता-७,१३-१५)

"अव्यक्त व्यक्त रूपेण रजः सत्व तमोगुणैः
विभज्य यार्थं कुरुते विष्णुमायेतिसोच्यते"

उपर्युक्त उक्ति कालीपुराण की है। व्यापनशील विष्णु की आवरणकर्त्री है माया, जो सारे जगत को मोहित कर लेती है। पुराणों की यही सम्मति है। वही माया स्वयं देवी है।

३४०. विलासिनी

विलास से युक्त। विलास स्त्री को प्रियदर्शन से प्राप्त होनेवाली चेष्टा है। नायिका के अलंकारों में एक है विलास, यही आलंकारिकों का अभिमत है। स्त्री के सौन्दर्यादि गुणविशेषों

को प्रभापूर्ण बनानेवाली वस्तु। अर्थसंक्रमण से यह शब्द लीला, मधुरभाषण, चकित भाव, इत्यादि स्त्रीसहज अनेक भावों को द्योतित करता है। यह आशय अन्वर्थ है कि महाकामेश के सतत सामीप्य से विलासवती।

"विलासो विक्षेपशक्तिरस्या अस्तीति तथा पीठशक्ति विशेषरूपा वा" (सौभाग्यभास्कर)

विक्षेप माया की शक्तियों में एक है। परमात्मा को जीवात्मा से छिपाकर रखनेवाली आवरणशक्ति।

चिन्तामणिगृह में देवी के पीठ की सेवा करती हुई रहनेवाली देवियों में एक। उस देवी के लिए भी इंगित है।

योगपरक व्याख्या इसप्रकार है कि बिल में याने ब्रह्मरंध्र में आसीन। ब्रह्मरंध्र का स्थान सुषुम्नानाडी के मार्ग से सिर पर का आखिरी पडाव। इसे भेदकर देही बाहर जाता है। देवी मोक्षमार्ग का रोधन कर ब्रह्मरंध्र में रहती है।

'तत्र ब्रह्मविलं ज्ञेयं रुद्रकोट्यर्बुदैर वृतं' और आगे "ब्रह्माणीत्यपरा शक्ति ब्रह्मणोत्संगगामिनी द्वारं सा मोक्षमार्गस्य रोधयित्वाव्यवस्थिता" -स्वच्छंदतंत्रं

३४१. क्षेत्रस्वरूपा

जिसका स्वरूप स्वयं क्षेत्र है। क्षेत्र के कई अर्थ होते हैं। देवालय अथवा पुण्यस्थान के पक्ष में कामरूप, विन्ध्याचल इत्यादि तीर्थस्थलियाँ, जो देवी के सान्निध्य से अनुगृहीत हैं देवीस्वरूप ही मानी जानी है।

क्षेत्र शब्द शरीर को इंगित करता है। "इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते, एतद यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः" (भगवद्गीता-(१३) में भगवान अर्जुन से कहते हैं। छत्तीस तत्वों से युक्त शरीर देवीस्वरूप होने से क्षेत्रस्वरूपा है।

३४२. क्षेत्रेशी

क्षेत्रों की ईश्वरी। क्षेत्र शब्द के दोनों अर्थ, जो ऊपर वर्णित हैं, यहाँ लागू हैं।

क्षेत्रेश है शिवजी, शिव से सम्बन्धित, शिवशक्तिस्वरूपिणी इत्यादि अर्थों में देवी क्षेत्रेशी है।

३४३. क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिनी

क्षेत्र और 'क्षेत्रज्ञ दोनों को पालनेवाली। क्षेत्रस्वरूपी शरीर और क्षेत्रज्ञ जीवन दोनों का पालन करनेवाली। इन्द्रिय आदि संयुक्त रूप है शरीर। यह शरीर ही क्षेत्र है। जैसे भूमि में सस्य है वैसे कर्मफल शरीर से भोगा जाता है। इसलिए क्षेत्र है। इस क्षेत्ररूपी शरीर को मैं और मेरा माननेवाला जीवन क्षेत्रज्ञ है। ज्ञानी लोग क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों को जानते हैं।

"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत् तत् ज्ञानं मतं मम"

इस भगवद्गीता के श्लोक में भगवान का समर्थन है कि सभी क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ रूप में मैं ही विराजित हूँ। चाहे एक ही चेतना हो, विभिन्न शरीरों में रहने से अविद्या के कारण मैं का भाव पैदा होता है और जीवचैतन्य से भिन्न है मैं यह बोध होने लगता है। ज्ञान से जब अविद्या का नाश होगा, तब क्षेत्रज्ञ सर्वान्तर्यामी परम चेतना है , यह बोध होता है। उसी यथार्थ ज्ञान को भगवान इस श्लोक द्वारा प्रकट करते हैं। क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ दोनों के बारे में भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में विशद रूप से सरलभाषा में समझाया गया है। उसे पढने से इस नाम का आशय आसानी से समझ सकते हैं।

"चतुर्विंशतितत्वानि क्षेत्रशब्दे सूरयः
आहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं पुरुषं तथाः"

इस प्रकार लिंगपुराण में भी इस आशय की चर्चा है।

क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का पालन करनेवाली। प्रपंच की अवस्थिति के लिए यह द्वैतभाव ज़रूरी है, इसलिए अपनी मायाशक्ति द्वारा क्षेत्रं और क्षेत्रज्ञ दोनों को आपस में न पहचाने जाने की स्थिति में रखकर उन दोनों की रक्षा करती हैं देवी।

३४४. क्षयवृद्धिविनिर्मुक्ता

जिनका कोई क्षय नहीं है और वृद्धि नहीं होती। क्षय और वृद्धि के शरीर एवं जगत् के लिए देवी अधिष्ठात्री हैं। फिर भी देवी के लिए क्षय और वृद्धि की अपेक्षा नहीं है। देवी द्वारा सृजित सारी सृष्टि की उत्पत्ति, वृद्धि, और नाश हैं। पर देवी इसके परे हैं। देवी शाश्वत, एवं परम आत्मचेतनामात्र है।

"नैनं छिन्दन्ति शत्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएव च
नित्य सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते"

ये वचन भगवान के हैं, गीता में। परमात्मचैतन्य की शाश्वतीस्थिति की यह अभिव्यक्ति है।

३४५. क्षेत्रपालसमर्चिता

क्षेत्रपाल द्वारा सम्यक रूप से अर्चिता। शिव की ही एक मूर्ति है क्षेत्रपाल। दारुकासुर के वध के पश्चात् भी जब देवी का क्रोध शान्त नहीं हुआ और जगत देवी की कोपाग्नि से जल जाने का सन्दर्भ आया तब शिवजी एक शिशु का रूप धारण करके कालीमाता के सामने पडा रोया! कालीमाता ने बालक को उठकर स्तन्य दिया। स्तन्य के साथ देवी की कोपाग्नि को भी शिशु ने पानकर लिया। वही बालक क्षेत्रपाल है। नाम का अर्थ है क्षेत्रपाल द्वारा अर्चिता।

क्षेत्र शब्द का अर्थ यागायतन भी है। इस पक्ष की व्याख्या है यागभूमि की रक्षा करनेवाले के द्वारा अर्चिता।

३४६. विजया

विजय जिसका शील अथवा स्वभाव है। ज्ञानस्वरूपिणी। काश्मीर की एक पुण्य नदी। वह तीर्थ जिसका स्वरूप है। पद्म नामक असुर को जीतने के कारण विजया नाम। (देवीपुराण)

"विजित्य पद्मनामानं दैत्यराजं महाबलं
त्रिषु लोकेषु विख्याता विजया चापराजिता"

प्रसिद्ध शिल्प शास्त्र सम्बन्धी एक प्रासाद को विजय कहते हैं। उस प्रासाद का रूप धारण करनेवाली।

विजय एक शुभमुहूर्त का नाम है।

"अश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये
स कालो विजयो ज्ञेयः सर्वकार्यार्थ सिद्धिदः" (चिन्तामणि)

जहाँ वह शुभदेनेवाला है वहाँ उसका रूप धारण करनेवाली। विजया संज्ञक शुभमुहूर्त में आराधनीया। विजयदशमी के शुभदिन में पूजिता।

३४७. विमला

मल रहित। मल का यहाँ भाव है अज्ञान। तब ज्ञानस्वरूपिणी है।

पुरुषोत्तम नामक प्रसिद्ध स्थान का देवीतीर्थ है विमला। वहाँ तीर्थरूपिणी होकर रहती है। शिल्प शास्त्र का एक प्रसिद्ध प्रासाद विमला नाम से है। उस प्रासाद के स्वरूप में रहनेवाली है विमला।

३४८. वंद्या

वन्दनीया। वन्दन करने लायक।

३४९. वन्दारुजनवत्सला

वन्दन करनेवालों से वात्सल्य रखनेवाली।

३५०. वाग्वादिनी

वाक् से वादविवाद करने की योग्यता प्रदान करनेवाली। वाग्रूप से सब जनों में रहनेवाली।

"नमो नमो लोकगुरुप्रधाने
नमो नमस्तेखिल वाग्विभूत्यै
नमोस्तु लक्ष्म्यै जगदेकतुष्टै
नमो नमश्शाम्भवि शर्वशक्तै" (ललितोपाख्यान-ललितास्तवराजम्)
"शब्दानां जननी त्वमेव भुवने वाग्यादिनीत्युच्यसे" (लघुस्तवम्)

३५१. वामकेशी

वाम (मनोहर) केशवाली। वामकेश (शिव) की पत्नी। वामकेश द्वारा बताये गये तंत्र का नाम है वामकेश। उस तंत्र में प्रतिपादिता। उसी का स्वरूपधारण करनेवाली।

३५२. वह्निमण्डलवासिनी

वह्निमण्डल में निवास करनेवाली। वहिनमण्डल से तात्पर्य है सोम, सूर्य और अग्नि के तीनों मण्डल-यह भास्काराचार्य का मत है। श्रीचक्र सोमसूर्यवह्नि मण्डल का स्वरूप है इसलिए तंत्र समीक्षा के अनुसार उसमें रहनेवाली है।

"अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत्
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम्
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्
त्रिकोणं बैन्दवं सौम्यमष्टकोणं च विश्रकम्
चंक्र चन्द्रमयं चैव दशारद्वितयं तथा
चतुर्दशारं वह्नेस्तु चतुश्चक्रं च भानुमत
एतत् प्रसादादिन्द्राद्याः वसवोष्टौ मरुदगणाः
ये ये समृद्धा लोकेस्मिन् त्रिपुराचक्रसेवकाः
पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम्
महालक्ष्म्याः पुरं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः"

(श्रीचक्र अग्नीषोमात्मक है। यह प्रपंच भी अग्नीषोमात्मक है। अग्नि चन्द्रस्वरूपक है। अग्नि चन्द्ररूपी सूर्य अग्नि में अन्तर्लीन है। तीन खण्डों का श्रीचक्र चन्द्रसूर्याग्नि स्वरूप है। श्रीचक्र के अंग त्रिकोण और बिन्दुचक्र चन्द्रसम्बन्धी हैं। अष्टकोणचक्र चन्द्रसूर्यस्वरूप है। उसी प्रकार दशकोणचक्र दोनों चन्द्रमय हैं। चतुर्दशार अग्निस्वरूप है। इस चक्रविद्या के प्रसाद से इन्द्रादि देव, अष्टवसु, सप्तमरुत आदि अपनी-अपनी जगह स्वस्थ हैं। इस संसार में जो जो समृद्धिसम्पन्न हैं वे सब त्रिपुरा के सेवक हैं। श्रीचक्र के तीन पुर चन्द्रसूर्याग्निस्वरूप हैं। उसी में सदाशिव का वास है।

उपर्युक्त सौन्दर्य लहरी की लक्ष्मीधरव्याख्या से उद्धृत यह अंश यह साबित करता है कि श्रीचक्र में वास करनेवाली देवी यह आशय कैसे व्यक्त करता है।

पिण्डाण्डस्थ आधार चक्रों को भी सूर्य-चन्द्र-अग्नि मण्डलों में विभाजित किया गया है। उस अर्थ में भी वह्निमण्डलवासिनी नाम अन्वर्थ है। आधारचक्रों के बारे में आगे प्रतिपादन मिलता है। मूलाधार आदि चक्रों की तरह पराकाश में भी सूर्य-चन्द्र-वह्निमण्डल हैं। उनमें याने अग्निमण्डल में रहनेवाली, यह व्याख्या भी हो सकती है।

३५३. भक्तिमत्कल्पलतिका

भक्तों के लिए कल्पलतिका समान होनेवाली। कल्पलतिका भक्तों की अभिलाषाओं की पूर्ति कर देनेवाली लता है। उसी कल्पलतिका के समान देवी भक्तों की इच्छापूर्ति कर देती हैं।

"सरस्वत्या लक्ष्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्" (सौ.ल.९९)

(अयि भगवती! आपका उपासक ब्रह्मदेव और विष्णुभगवान दोनों से स्पर्धा रखकर सरस्वती और लक्ष्मी से मिलकर विहार करता है। अत्यंत सुन्दर शरीर द्वारा कामपत्नी रती देवी के पातिव्रत्य को दुर्बल बनाता है। जीवात्मा को आनादि काल से प्राप्त अविद्याबन्धन का नाश करके अनेक काल तक जीवित रहकर निरतिशय आनन्दरूपी सुख को पाता है।) प्रस्तुत श्लोक व्यक्त करता है कि भक्तों के लिए देवी किस प्रकार कल्पलतिका बनी है।

३५४. पशुपाशविमोचिनी

पशुवों को पाश से मोचित करनेवाली। जिसे अभेदज्ञान की विद्या प्राप्त नहीं हुई है, उसे पशु कहते हैं। जीवन को आवृत करनेवाले अविद्याबन्धनों को पाश कहते हैं। अज्ञान से जीवन को मोचित करनेवाली।

पशुप से आशा रखनेवालों को मोचित करनेवाली। पशुप याने शिव और आशा माने भक्ति। अर्थात् शिव से भक्ति रखनेवालों को मोक्ष देनेवाली।

३५५. संहृताशेषपाषण्डा

पाषण्डों को निश्शेष मारनेवाली। धार्मिक नियमों के विरुद्ध करनेवाले पाखण्ड हैं। पाखण्डों का निग्रह कर धर्मनियमों का संरक्षण करनेवाली।

३५६. सदाचारप्रवर्तिका

सज्जनों का आचार अथवा सच्चा आचार, इसे सदाचार कहते हैं। उसका आचरण करने और करानेवाली । उपर्युक्त नाम के अर्थ को जोड़कर देखें।

३५७. तापत्रयाग्निसंतप्तसमाह्लादनचन्द्रिका

तापत्रय रूपी अग्नि के कारण सन्तप्त हुए जनों को आह्लाद प्रदान करनेवाली चन्द्रिकास्वरूपिणी। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीनों तापत्रय हैं। इनमें आध्यात्मिक स्वयं प्राप्त करनेवाला ताप है। अपने आप में होनेवाला दुःख। याने कर्मफल से प्राप्त होनेवाला। सारे कर्मों का फल होता है। अतः गलती की तो उसी का फल भी भोगना पडेगा, यह नियम है। आधिभौतिक भूतों से पैदा होनेवाला है। पंचभूतात्कम शरीर को भूतों में

से किसी से संघात के कारण होनेवाले असन्तुलन के कारण संजात अतिवृष्टि, अनावृष्टि, प्रलय, आंधी, अग्निबाधा, इत्यादि ताप। आधिदैविक ईश्वरेच्छा से होनेवाला। इन तीनों में कार्य-कारण सम्बन्ध है। आधार जीवियों का कर्म है। कर्म और कर्मफल आधिभौतिक और आधिदैविक तापों को आमंत्रित कर लेते हैं। तापत्रयों को नाम में अग्नि रूप में उपमित किया गया है। अग्नि में पड्नेवाले पदार्थ जिस प्रकार तपित होता है उसीप्रकार तापत्रयों में पड़नेवाले व्यक्ति ताप का अनुभव करते है। (ताप का अर्थ है गरमी अथवा दुःख)

ताप का निवारण शीतल चन्द्रिका से संभव है। दोपहर के ताप में विवश मनुष्य को शीतल चन्द्रिका से आनन्द मिलता है। तापत्रयों में संतप्त मनुष्य के लिए देवी समाह्लादनचन्द्रिका है। तापत्रयों से दुःखित मनुष्य को देवी उस ताप से मोचित करती है। देवी की उपासना करनेवाले सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाते हैं।

३५८. तरुणी

युवती। तरुणी वह युवती है, जो सोलह वर्ष से तीस वर्ष के भीतर की उम्रवाली। कामेश्वर के पत्नी रूप में शाश्वत युवती के रूप में रहनेवाली होने से ललितादेवी को तरुणी नाम आया है।

३५९. तापसाराध्या

तापसों द्वारा आराध्या। तप से आत्मशक्ति और ज्ञान प्राप्त हुए विज्ञ ही तापस हैं। अविद्या-मुक्त एवं ज्ञानी तापसों द्वारा आराध्या। तापस शब्द का चन्द्र भी आशय है। तब चन्द्र द्वारा आराध्या, यह अर्थ भी लागू है। चतुर्दश मनुओं में एक मनु का नाम तापस है। उस मनु द्वारा आराध्या।

३६०. तनुमध्या

जिसका कटिप्रदेश कृश है। कटि प्रदेश की कृशता सामुद्रिकाशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र दोनों प्रकार से सौन्दर्य का लक्षण माना जाता है। देवी का यह स्थूलरूपवर्णन सौन्दर्य की सीमा को सूचित करता है।

कांचीपुर के प्रसिद्ध क्षेत्र की अधिष्ठान देवता का नाम तनुमध्या है। उस देवी के लिए यह नाम प्रयुक्त है, ऐसा सौभाग्यभास्कर का मत है।

३६१. तमोपहा

तम अथवा अंधकार को दूर करनेवाली। तम का अर्थ गुणत्रयों में एक भी है। अन्य है सत्व और रज। आलस्य और निद्रा आदि गुणों का प्रतीक है तम।

"तमस्त्वज्ञानदं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत
सत्वं गुणे सज्जयति रजः कर्मणि भारत

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत
रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत
रजः सत्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा" (भ.गीता-१४-८-१०)

जान लो, अज्ञान से तमोगुण होता है। वह प्रमाद, आलस्य, निद्रा इत्यादि विकारों के सहारे जीवों को बन्धन दे देता है। हे भारत, सत्वगुण जीवों को सुख में आसक्त कर देता है। रजोगुण जनों को कर्मासक्त बना देता है। तमोगुण ज्ञान रूपी प्रकाश को छिपा लेता है। और जीवों को प्रमाद, आलस्य और निद्रा में आसक्त कर देता है। हे अर्जुन, रज और तम दोनों का अतिक्रमण कर सत्ववृद्धि प्राप्त करता है। तम भी उसी प्रकार से सत्व और रज को पराजित कर देता है । तमोगुण के बारे में भगवान ने गीता में इस प्रकार ही कहा है। यहाँ अर्थ है, उसी प्रकार के तमोगुण का नाश करके अपने भक्तों को प्रमाद, आलस्य और निद्रा से मोचित करती है देवी।

तम का अर्थ है अन्धकार। अन्धकार को दूर करनेवाला है प्रकाश। देवी तोजोरूपिणी है।

३६२. चितिः

ज्ञानस्वरूपिणि। "चितिः अविद्यापरिपन्थि ज्ञानरूपा" अविद्यापरिपन्थि रूपी ज्ञान जिसका स्वरूप है, यही भास्कराचार्य का कथन है। "चिति स्वतंत्रा विश्वसिद्धि हेतुः" - शक्तिसूत्र

३६३. तद्पदलक्ष्यार्था

तद् शब्द का आशय है उद्दिष्ट अर्थवाली। तत्वमसी आदि महावाक्यों में प्रयुक्त तद् शब्द को यहाँ इंगित किया गया है। तत्वमसी शब्द वेदान्त तत्व प्रतिपादक वाक्य है। वाक्य का अर्थ है वह तू है। परमात्मा और विश्व दोनों एक ही है, यह तत्व इसमें निहित है। यहाँ तद् शब्द का संकेत देवी है। सौभाग्यभास्कर तद् शब्द की व्याख्या निम्न प्रकार की हैः वाच्यार्थ है संसार की सृष्टि के द्वारा विशेष रूप से शबलब्रह्म। धर्मी मात्र शुद्धब्रह्म लक्ष्यार्थ है।

यहाँ वाच्य और लक्ष्य दोनों अर्थों का जिसके द्वारा तादात्म होता है वही देवी याने ब्रह्मस्वरूपिणी।

३६४. चिदेकरसरूपिणी

चित् स्वयं जिसे एकतान रस बना हुआ है वह। चित् का भाव है विशेष रूप से ज्ञान का कारण।

"प्रेक्षोपिलब्धिश्चित्
संवित् प्रतिपज्ञप्तिचेतनाः
धीर्धारणावती मेधा संकल्पः
कर्म मानसम्" (अमरकोश)

एकरस से मतलब है चित् से अभिन्न अवस्था। उसी रूप की देवी। विशेषज्ञान से अभिन्न रूपवाली। अपने से अभिन्न धर्म से युक्त, धर्मरूपिणी।

३६५. स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्माद्यानन्दसन्ततिः

अपने आत्मरूपी आनन्द से शोभित हे ललितादेवी। अतः आनन्दरूपिणी। स्वात्मानन्द का अर्थ है अपने आत्मस्वरूपी आनन्द। जिस आनन्द में दुःख, क्लेश, कामक्रोधादि; मद मात्सार्यादि बिलकुल नहीं हैं वही सत्ता आनन्द है। व्यक्ति की जीवन चर्या एवं भौतिक साहचर्य के अनुसार आनन्द के परिमाण में अन्तर होता है। माता से अलग हुए बच्चे को माता का दर्शन आनन्ददायक है। भूखे को भोजन प्राप्त होना, रोगी को रोग से मुक्त होना और दरिद्र को धनलाभ होना आनन्द है। ये सारे सन्दर्भ केवल थोडे समय के लिए प्रतीत होते हैं। लेकिन वही वास्तविक चिदानन्द अथवा आत्मानन्द है जब यह बोध होता है कि मैं स्वयं संतृप्त हूँ और मैं स्वयं विश्व और विस्व मेरा प्रतिरूप है और विश्व की आधारस्वरूपिणी पराशक्ति और मैं अभिन्न हूँ। आनन्द का अनुभव व्यक्ति विशेष के कारण बदलता है। फिर सर्वाधार स्वरूपी देवी पराशक्ति के सम्बन्ध में आनन्द की कौन सी अवस्था ठीक होगी, यह कहना दुष्कर है। इसलिए देवीस्वरूपआनन्द को स्वात्मानन्द कहना उचित है। स्वयं देवी ही आनन्द हैं। अथवा आनन्दसागर है। उस आनन्द की कणिकामात्र है ब्रह्मादियों की आनन्दसन्तति। (सन्तति-समूह) ब्रह्माविष्णुमहेशादि देवों का आनन्दसमूह अथवा आनन्दपरम्परा देवीरूपी आनन्दसागर की कणिकाएं हैं। देवी चिदानन्दरूपी है। उनके अंशमात्र से ब्रह्मादि भी आनन्दरूपिणी बने हैं।

३६६. परा

नादब्रह्म की चार अवस्थाओं में प्रथम अवस्था हे परा। उसी रूप में रहनेवाली।

"मूलाधारे परा प्रोक्ता पश्यन्ती नाभिसंस्थिता
मध्यमा बुद्धिसंयुक्ता अष्टस्थानेषु वैखरी"

यही इनके स्थान के आश्रय का विवरण। नाद, जो कारणबिन्दु जाना जाता है वायु की प्रेरणा से पहले पहल मूलाधार में व्यंजित होती है। उस समय उसे परा नाम है। "मूलाधारात् प्रथममुदितो यश्च भावः पराख्यः" (आप्तवाक्य) आगे आये हुए अनेक नाम उससे संबन्धित है, इसलिए इसको और विशद करना है। अरूप और निर्गुण को ही शास्त्रों में परब्रह्म कहा जाता है। प्रलय के पश्चात् संसार की पुनःसृष्टि के लिए यही परब्रह्म कारण बनता है।

जो जीव पुनः सृजित होते हैं वे ब्रह्म के ही रूपविभेद हैं। इसलिए माया से आवृत ब्रह्म जीवों की सृष्टि के लिए उपयोगी हो, तदनुसार घनीभूत हो जाते हैं। सृष्टि में उद्युग्न घनीभूतब्रह्म रूपरहित होने से शास्त्र उसे कारणबिन्दु कहते हैं। इस कारणबिन्दु से माया के संसर्ग के कारण कार्यबिन्दु अविर्भूत होते हैं और कार्यबिन्दु से नाद और नाद से बीज। इन तीनों को शास्त्र यथाक्रम पर, सूक्ष्म और स्थूल कहते हैं । इनमें पर चिद्रूप, सूक्ष्म चित् और माया इनका मिला हुआ है। स्थूल अचित् (मायारूपी) है

"कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति त्रिधाने
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेन तस्य त्रैविध्यमिष्यते
स बिन्दु नाद बीजत्वभेदेन च निगद्यते" (रहस्यागम)

ब्रह्माण्ड की सृष्टि के लिए कारणभूत ये त्रिविध रूप पिण्डांडों में मूलाधार में सूक्ष्म रूप में वास करते हैं। योगशास्त्र में उन्हें शक्तिपिण्ड अथवा कुण्डलिनी कहा जाता है।

"शक्तिःकुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमां
ज्ञात्वेत्थं न पुनः विशन्ति जननी गर्भेऽर्भकत्वं नराः" (लघुस्तवं)

सूक्ष्मबिन्दुरूप में मूलाधार में स्थित रहनेवाले घनीभूत ब्रह्म जब पर, स्थूल, सूक्ष्म इन तीनों की सृष्टि करने लगते हैं, तब अपना कार्यारंभ करते हैं। जब सृष्टि का उन्मुखत्व होता है तब अव्यक्त एवं स्थूल कर्ण सम्बन्धी न होकर एक नाद पैदा होता है। इस नाद को शब्दब्रह्म अथवा नादब्रह्म से अभिहित किया जा सकता है। नादब्रह्म कारणबिन्दु के रूप में जो तन्मयीभाव में रहता है वस्तुतः सर्वव्याापी होने पर भी पिण्डाण्ड में रहने से उस जीवन की वासना के अनुरूप रहता है। इच्छाशक्ति शरीर में आभ्यंतर प्रयत्न को उपजाती है। प्रयत्न के अनुसार जगनेवाले पवन से मिलकर प्रवर्तित शब्दब्रह्म मूलाधार में शब्द रूप में पैदा होता है। शब्दोत्पादन के कारणभूत इस अंकुर को परा कहते हैं। पश्यन्ती रूपी वाक् वायु से आनीत होकर हृदय में पहूँच जाता है। तब वह बुद्धि से मिलकर पूर्वाधिक वेगवान बनता है। मन और बुद्धि की प्रेरणा से स्पन्दित उस नाद को मध्यमा कहते हैं। पवन उस नाद को हृदय से मुंह में आनीत करता है। श्वासकोश से निर्गलित वह नाद वायु से मिलकर जिह्वा, ओष्ठ आदि उच्चारण करणों के द्वारा दंत, तालू आदि उच्चारणस्थानों के साथ कई प्रकार से रुककर दबकर मूंह से जब बाहर निकलता है तब उसे सुननेवालों को अकारादि वर्ण स्वरूप से लगता है। इसे वैखरी कहते हैं। भाषा का अस्तित्व वैखरी रूप में है । अधर, जिह्वा आदि के प्रवर्तन सुननेवालों को परिचित है। वर्णरूप से मिले हुए शब्दों से परिचित है। तब वे मानने लगते हैं कि वे शब्द ही वैखरी हैं।

शब्द की उत्पत्ति सोद्देश्य है। इसलिए वर्णों के प्रेरक वातावरण और शब्दब्रह्म का मूलाधार से लेकर होनेवाले परिवर्तन पर ध्यान देना है। यहाँ परा का वह देवी रूप ही परामर्शित होता है, जो नाद ब्रह्म का आदि रूप है और वर्ण में रूपान्तरित होता है।

परा के और भी अर्थ होते हैं, जैसे अन्य, अतिक्रमण करके जो रहता है, श्रेष्ठ इत्यादि। इसलिए यह पद सबसे परे रहनेवाला अथवा सब से श्रेष्ठ और पराशक्ति इन अर्थों में भी व्यवहत हो सकते हैं।

जीवात्मा का कर्मों से जब मोचन होता है तब उसे परा कहते हैं। उसी अवस्था में रहनेवाली। जीव को उस स्थिति में पहूँचा देनेवाली।

ज्ञान की दो अवस्थाएं होती हैं-पराविद्या और अपराविद्या। वेदों एवं वेदांगों के ज्ञान को अपराविद्या और उसे छोड़ अन्य विद्या को पराविद्या कहते हैं। यहाँ परा विद्यास्वरूपिणी है।

माया के लिए भी परा शब्द का उपयोग किया जाता है। उस पक्ष में परा मायास्वरूपिणी है।

३६७. प्रत्यक्चितीरूपा

अन्य वस्तुओं से न मिलने से अव्यक्त रूपी बना हुआ ब्रह्म। वही ब्रह्म जिसका रूप है। माया का स्पर्श भी जिस रूप में नहीं है वही। प्रत्यक् शब्द का अर्थ है, जो पीछे का है; जिसमें मिलावट नहीं। चिति का भाव है ज्ञान और ज्ञान से सम्बन्धित ग्रहण, धारणा, चित्त इत्यादि

प्रतिकूलं स्वात्माभिमुखमञ्जतीति प्रतीचि सा च सा चिति च प्रत्यक्चिति
अव्यक्त संज्ञं सैव रूपं यस्यास्तथा - (सौभाग्यभास्कर)

बहिर्मुख को छोड़कर स्वात्माभिमुख होकर अन्तर्मुख होकर रहनेवाला ब्रह्म प्रतीचि। जब वह चिति से मिलता है तब वह अव्यक्त ब्रह्म हो जाता है। उसे प्रत्यक्चिति कहते हैं। वही ब्रह्म परा पश्यन्ति मध्यमा वैखरी इन रूपों को प्राप्त करता है।

३६८. पश्यन्ती

देखनेवाली। "पश्यति सर्वं स्वात्मनि करणानां सरणिमपि यदुत्तीर्णा तेनेयं पश्यन्ती त्युत्तीर्णे- त्यप्युदीर्यते माता" (सौभाग्यसुधोदय)

उपर्युक्त नाम की अवस्थाओं में दूसरी है पश्यंति। पश्यन्ति का नामान्तर उत्तीर्णा भी है। उत्तीर्णा का रूप धारण करनेवाली।

३६९. परदेवता

श्रेष्ठ देवता। अन्य सारे देवताओं को शक्ति प्रदान करनेवाली पराशक्ति।

३७०. मध्यमा

मध्य में रहनेवाली। नाम ३६७ में वर्णित नाद की चार अवस्थाओं में तीसरा है मध्यमा। उसी रूप में रहनेवाली। पश्यंति और वैखरी के बीच में रहने से यह नाम पड़ा है।

"पश्यंतीव न केवलमुत्तीर्णा नापि वैखरीव बहिः
स्फुटतरनिखिलावयवा वाग्रूपा मध्यमा" (योगशास्त्र)

३७१. वैखरीरूपा

वैखरी का रूप धारण करनेवाली। वैखरी का अर्थ है विशेष रूप से जो खर है। परा पश्यन्ती, मध्यमा इन अवस्थाओं में नाद का कोई रूप नहीं है। केवल योगी ही उन नादों को पहचान सकते हैं। जीवन की वासना से प्रेरित शक्ति और शारीरिक धर्म दोनों आपस में मिलकर घनीभूत बना हुआ स्वरव्यंजन वर्णों का रूप धारण करता है। अतः खरत्व का आरोप स्वीकार करके वैखरी नाम स्वीकृत हुआ।

"वै निश्चयेन खं कर्णविवरं राति गच्छतीति " यही व्युत्पत्ति है। निश्चित रूप से कर्ण को प्राप्त करने से वैखरी बनी। अरूपी नाद वर्णरूप पाकर सुनने लायक हो जाने से उसे वैखरी नाम हुआ।

"प्राणेन विखराख्येन प्रेरित वैखरी" यही सौभाग्यसुधोदय की व्याख्या है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि विखर वायु से उत्पन्न होने से वैखरी नाम आया। वैखरी शब्द की व्युत्पत्ति जैसी भी मानी जाय, अर्थ है वर्ण रूपी नाद । वैखरीरूपीणी यही देवी पक्ष में व्याख्या है।

३७२. भक्तमानसहंसिका

भक्तजनों के मन रूपी मानससर के लिए हंस। मानस शब्द श्लेषार्थ में है। मानस सरोवर हिमालय में स्थित एक तालाब है। ब्रह्मा ने मन से इसका निर्माण किया, इसलिए यह नाम है। पुराणों में प्रसिद्ध है कि यह सरोवर हंसों के लिए प्रिय है। जैसे हंस मानस सरोवर में निवास करते हैं वैसे भक्त के मन में रहनेवाली देवी। भक्तप्रिया।

३७३. कामेश्वरप्राणनाडी

कामेश की प्राण रूपी नाड़ी जो है।

"विरिंचि पंचत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं
विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्
वितन्द्री महेन्द्री विततिरपि सम्मीलितदृशा
महासंसारेस्मिन् विहरति सती! त्वत्पतिरसौ" (सौ.ल. २६)

(ब्रह्मा भी मरणलीन हो जाते हैं। विष्णु भी अवसान को पा जाते हैं। सारे जीवों के मृत्युदाता अन्तक भी विनष्ट हो जाते हैं। नव निधियों के नाथ कुबेर भी कालधर्मवशगत होते हैं। चौदह मन्वंतरों के इन्द्रादि भी जड़ हो जाते हैं । इसप्रकार के महाप्रलयकाल में भी आपके पतिदेव परमेश्वर अकेले क्रीडा में रमते हैं।) सौन्दर्य लहरी का प्रस्तुत श्लोक यही बताता है कि देवी के पातिवृत्य से ही परमेश्वर का नाश नहीं होता।

"सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरिणीम्
विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः
करालं यत्क्ष्वेलं कबलितवतः कालकलना
न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटंकमहिमा" (सौ.ल. २८)

(अयि माता, भयजनक जरामरणों को निर्मूल करनेवाला अमृतपान करने पर भी ब्रह्मादि देवगण कालकवलित होते हैं। कराल विषका पान करने पर भी आपके पति का नाश नहीं होता। उसका कारण आपकी ताटंकमहिमा है।) शंकर भगवत्पाद का कथन है कि विषपान करने पर भी परमशिव का नाश इसलिए नहीं होता कि देवी की पातिवृत्यशक्ति उतनी बड़ी है।

कामेश्वर के अमरण का कारण देवी है। वे देवी को अपनी प्राणनाडी के रूप में मानते हैं।

३७४. कृतज्ञा

जो किया हुआ है उसे जाननेवाली। सारे जीवों के सारे कर्मों को जाननेवाली होने से कृतज्ञा है। शुभाशुभ सारे कर्मों को जाननेवाली होने से कर्मफलदायिनी भी है। कर्मसाक्षिणी होने से तदनुसार फल ही देवी देती है।

"सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पंच च
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नवसाक्षिणः"

सूर्य, सोम, यम, काल, पंचभूत ये जीवों के सारे कर्मों के साक्षी हैं। ये सब देवी के ही रूप होने से सब कर्मसाक्षी हैं।

कृतयुग धर्मों को जाननेवाली। कृतयुग में धर्म चार पांवों पर खडा है। अन्य युगों में प्रवेश करते हुए एक एक पाँव कम होता है। और कलियुग में एक ही पैर पर खड़ा होता है। पुराणों का कहना है कि कृतयुग से अन्य युग की ओर बढ़ने पर धर्मज्ञान क्रमशः कम होता जाता है। धर्मच्युति होने पर भी सच्चे कृतयुगधर्म की स्थापना करने के लिए उसे स्मरण रखती है देवी ।

३७५. कामपूजिता

कामदेव द्वारा पूजिता।

"हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीम्
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्
स्मरोपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम्" (सौ.ल.५)

कामदेव ने देवी का नमस्कार किया और रतीदेवी के नयनों को आस्वाद्य बनने लायक सुभग शरीर धारण कर मुनिजनों को भी मोहित करने योग्य बने। आगे के श्लोक में

"धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पंचविशिखाः
वसन्तस्सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः
तथाप्येकस्सर्वं हिमगिरिसुते कामापि कृपा-
मपांगात्ते लब्ध्वा जगदिदमनंगो विजयते"

(धनुष पुष्पमय, प्रत्यंचा भ्रमर पंक्ति, शहर पांच मात्र, मंत्री वसंतऋतु, रथ मलयमारुत, शरीर तो नहीं। कामदेव युद्ध के लिए जाने योग्य नहीं है। फिर भी, लोकजनयित्री, आप की कृपा होने से कामदेव इस सारे जगत पर शासन करते हैं।

भण्डासुर के वध के बाद देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न देवी ललितांबिका ने कामेश्वर का कटाक्ष किया और उस कटाक्ष के बल पर कामदेव पूर्वाधिक सुन्दर बनकर दुबारा जन्म पा गया, इसका वर्णन नाम संख्या ८४ में सूचित है। इसप्रकार दुबारा शरीर पाकर कामदेव ने देवी

की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर उनके अनुग्रह से चन्द्रचूड भगवान को हराया, ऐसा ललितोपाख्यान में वर्णित है। अध्याय (२७)

कामगिरिपीठ पर (कारणबिन्दु) पूजिता। मूलाधार ही कामरूप पीठ है। गुदमेड्रान्तरालस्यं मूलाधारं त्रिकोणकं यदेतत् कामरूपाख्यं पीठं कामफलप्रदम् (योगशास्त्रम)

३७६. श्रृंगाररससम्पूर्णा

श्रृंगार रस से भरी हुई। श्रृंगार रस नवरसों में मुख्य है। स्त्री-पुरुषों की परस्पर रति ही उसका स्थायीभाव है। शिव कामेश्वर की गोद में बैठनेवाली और शिव का आधा शरीर रहनेवाली देवी हमेशा श्रंगार रस से पूर्ण है। ललितादेवी का रूप देवी का श्रृंगार रूप ही है।

श्रृंग शब्द के दो अर्थ हैं। श्रृंग संख्या दो है। अर शब्द का दल अर्थ है। रस शब्द का अर्थ है छे। रस छे हैं, जैसे षड्रस। इन सब को मिलाकर श्रृंगार रस को बारह दलोंवाला कहते हैं। तंत्रव्याख्या के अनुसार देवी बारह दलोंवाले अनाहत चक्र में याने पूर्ण गिरिपीठ पर संपूर्णा बनकर रहनेवाली है।

"द्वादशारं महाचक्रममलानाहताह्वयम्
तदेतत् पूर्णगिर्य्याख्यं पीठं तव वरानने" (योगद्वास्त्र)

श्रृंग शब्द का प्रधान भूत अर्थ भी है। असर का कवाड इस पक्ष में श्रृंगार का अर्थ है प्रधान कवाटभूत । इस अर्थ में देवी आवरणविद्यारूपिणी, मायारूपिणी, सम्पूर्णा, ब्रह्म से मिली हुई, शबलब्रह्मरूपिणी, शुद्धब्रह्मरूपिणी होकर रहनेवाली हैं ।

३७७. जया

जयस्वरूपा। विजयी बनना जिसका स्वभाव है। देवी की सेविकाओं में एक का नाम। वह देवी भी ललिता देवी स्वयं हैं। देवी की सेवा में रहनेवाली सोलह माताओं में एक का नाम जया है।

महाभारत का एक नाम जया है। सर्ववेदवेदांगों के सार और सर्वस्व होने से और भीष्मपर्व में जया नामक देवीस्तोत्र को अंकित किये जाने से महाभारत को यह नाम आया है। व्यासनिर्मित महाभारत देवीस्वरूप होने से उस ग्रंन्थ का रूप धारण किया हुआ है देवीस्वरूप।

वराहशैल में पूजित देवीविग्रह का नाम जया है। उस रूप को देवी ने धारण किया है।

३७८. जालन्धरस्थिता

जालन्धर पीठ पर रहनेवाली। जालन्धरे विष्णुमुखी - (पद्मपुराण)। विष्णुमुखी नाम से जालन्धर पीठ पर रहनेवाली।

'जालन्धर' पिण्डाण्ड में विशुद्धिचक्र है। विशुद्धिचक्र में नाद रूप में विराजमान "कण्ठकूपे विशुद्धाख्यं यच्चक्रं शोडशाश्रकं पीठं जालन्धरन्नाम तिष्ठत्यत्र महेश्वरी" - (योगशास्त्र)

३७९. ओड्याणपीठनिलया

ओड्याण नामक पीठ पर रहनेवाली। ओड्याण आज्ञाचक्र को संकेत करता है।

आज्ञानाम भ्रुवोर्मध्यं द्विदलंचक्रमुत्तमम्

ओड्याणाख्यं महापीठमुपरिष्यत् प्रतिष्ठितम्- (योगशास्त्र)

ओड्याणपीठ पर बीज रूपिणी होकर देवी विराजमान है, यही अण्णा का कथन है। (तमिल ललितासहस्रनामव्याख्या)

३८०. बिन्दुमण्डलवासिनी

बिन्दुमण्डल में रहनेवाली। श्रीचक्र के बीच के बिन्दु को बिन्दुमण्डल कहते हैं। उसमें रहनेवाली।

पिण्डाण्डस्थब्रह्मरन्ध्र को बिन्दुमण्डल कहते हैं। उसमें रहनेवाली। "सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे" (सौन्दर्यलहरी)

३८१. रहोयागक्रमाराध्या

रात में किये जानेवाले आराधनाक्रमों में आराधनीया। रहस माने विजनप्रदेश। विजन में किये जानेवाला आराधनाक्रम गोपनीय है। रहस्ययोग को व्याख्याताओं ने विशद अर्थ दिया है। याग के लिए यहाँ होमाग्नि चिदग्नि ही है। कुण्डलिनी में अधिष्ठित चिदग्नि में पुण्य और पापों का होम करना। उसके उचित क्रमानुसार के निर्वहण में आराधनीया है देवी। कुण्डलिनीरूपी चिदग्नि में पुण्यपापों का होमक्रम यहाँ वर्णित नहीं किया जा सकता। गुरुमुख से जानना है।

३८२. रहस्तर्पणतर्पिता

गोपनीय रीति से किये जानेवाले तर्पण से प्रसन्न। यह नाम नंबर ३८१ नाम के साथ लेना चाहिए। रहस्तर्पण प्रयोग को 'मंत्ररहस्य को व्यक्त रूप से जानना' इस आशय में व्याख्या की गयी है।

"अन्तर्निरन्तरनिरिन्धनमेधमाने
माोहान्धकारपरिपन्धिनि संविदग्नौ
कस्मिंश्चिदद्भुतमरीचिविकासभूमौ
विश्वं जुहोमि वसुधादिशिवावसानम्"

रहस्तर्पण से मतलब है कि भीतर लगातार इंधन के बिना जला, अज्ञानरूपी अन्धकार का शत्रु, अद्भुत प्रकाशवीचि का विकासभू होना, और उस चिदग्नि में वसुधा इत्यादि शिवपर्यंत विश्व को होम करना है।

उपर्युक्त चिदग्नि का वर्णन यहाँ संक्षेप में हुआ है। पुण्य-पापों को और प्राप्त हुए धर्माधर्मों को, वसुधा इत्यादि शिवपर्यंत विश्व को चिदग्नि में होम कर देना मोक्षप्राप्ति का उपाय है। यह योगशास्त्रीय कर्मों से और भक्तिपूर्वक भावना से किया जा सकता है। प्रथम तरीका गुरु के उपदेश से और दूसरा भक्तियुक्त साधना से करना है। पुण्यपापों एवं धर्माधर्मों तथा वसुधादि शिवपर्यंत तथ्यों के सम्बन्ध में जो भी धारणा है वह व्यक्तिपरक है। चिदग्नि में उन सब को होम करने से अहं का भाष, अपना पुण्य, प्राप्त पाप, अपना धर्म, और अधर्म इत्यादि विचारों के लिए कोई स्थान नहीं रहता। उसी के साथ भूमि, आकाश, देव, ब्रह्मा विष्णु महेश इत्यादि देवताओं के विचार भी मिट जाते हैं। निरन्तर एवं इन्धन रहित चिदग्नि की अद्भुत तरंगें ही बची रहेंगी। उपासक उसी का अंश बनेगा। चिदग्नि बन जायेगा। वह चिदग्नि सब के भीतर कुण्डलिनी रूप में विराजमान है। उसे जगाकर होमाग्नि के रूप में परिवर्तित करना है। उस होमाग्नि में अहंकार और लौकिक तथा पारत्रिक बन्धनों को विसर्जित करना है। योगशास्त्रीयरीति से अथवा भक्तिभावना से हो यही श्री विद्योपासना है। यही कैवल्य अथवा मोक्ष जाना जाता है।

३८३. सद्यप्रसादिनी

शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाली। प्रथम नाम में देवी को मां बता दिया है। जो मातृभाव से देवी की आराधना करता है उसे देवी के प्रसाद के लिए प्रतीक्षा में बैठे रहने की आवश्यकता नहीं है। बच्चे की ज़रूरतों को पूर्ण करनेवाली मां की तरह स्मरण करते ही प्रसन्न होनेवाली है माँ।

"भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणमा-
मिति स्तोतुं वांछन कथयति भवानि त्वमिति यः
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायूज्यपदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुटनीरातिपदाम" - (सौ.लहरी-२२)

(अयि देवी, मुझ दास में करुणापूर्ण दृष्टि डालियेगा। इस प्रकार प्रार्थना करनेवाले एक भक्त को भवानी त्वं इन दो शब्दों के उच्चारण मात्र से आप उसे अपने उस पादकमल में स्थान देकर सायूज्य प्रदान करती हैं, जिस पादकमल में विष्णु, ब्रह्मा, देवेन्द्र आदि देवों के मुकुटों की शोभा से नीरांजन होता है। इस श्लोक के 'भवानि त्वं' शब्दप्रयोग का सम्बन्ध अहं ब्रह्मोस्मि से है, जिसकी पूर्ण व्याख्या यहाँ नहीं दी जाती। यहाँ शंकराचार्य देवी के सद्यप्रसादित्व को दिखाते हैं।)

३८४. विश्वसाक्षिणी

विश्व के लिए साक्षीस्वरूपिणी। प्रपंच की उत्पत्ति से लेकर नाश तक सब का साक्षी केवल पराशक्ति ही होती है। उत्पत्ति और लय जिसका नहीं होता और संसार का कारणभूत है, स्थितिकारणी एवं संहारकारिण है वही विश्वसाक्षिणी है।

३८५. साक्षिवर्जिता

जिनका कोई साक्षी नहीं है। उपर्युक्त नाम के साथ अर्थ ले लें। सब के लिए साक्षी हैं देवी मात्र, उन्हीं देवी के लिए साक्षी कहीं नहीं है। सारा विश्व देवी से उत्पन्न है। देवी सब की साक्षी हैं। लेकिन देवी की उत्पत्ति और लय का कोई साक्षी नहीं है, क्योंकि उत्पत्तिलय के परे है, देवी।

३८६. षडंगदेवतायुक्ता

षड़ अंगों के देवताओं से मिली हुई। षड़ अंग हैं- हृदय, सिर, शिखा, नेत्र, कवच, अस्त्र। इनमें हरेक की देवता की शक्ति है। उन्हें अंगदेवता अथवा षडंगशक्तियाँ पुकारी जाती हैं। उन शक्तियों से आवृत। इन शक्तियों का अधिष्ठान देवता शिव होने से उनसे मिली हुई, यह भी व्याख्या की जाती है।

"सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः
अनंतता चेति विधेर् विधिज्ञाः
षडाहुरंगानि महेश्वरस्य" (देवीभागवत)

इसप्रकार महेश के अंग छे हैं। सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतंत्रता, अलुप्तशक्ति और अनन्तता। ये छे अंग देवतारूपों में देवी के साथ मिले हुए हैं। इसलिए षडंगदेवतायुक्ता है।

वेदांगों के शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प इनको भी षडंग कहते हैं। ये भी देवता रूप में देवी का अनुसरण करने से वेदस्वरूपिणी है।

३८७. षाड्गुण्यपरिपुरिता

छे गुणों से पूरित देवी। सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैतीभाव, समाश्रय ये राज्यशासन सम्बन्धी षड़ंग हैं। ये छे तंत्र प्रायोगिक तंत्र और शक्तिस्वरूप होने से देवी के पादपरिचारकत्व उन्हें प्राप्त है। अतः उनसे मिली हुई है।

ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य ये ही षड़ंग हैं। इनसे मिली हुई। इसप्रकार एक दूसरी व्याख्या है।

३८८. नित्यक्लिन्ना

हमेशा दया से पिघले हृदयवाली। कई बार स्मरण दिलाया जा चुका है कि इस सहस्रनामावली के प्रारंभ में ही देवी को माँ के रूप में कल्पित होकर शुरुआत हुई है। माँ की आंखों में सन्तानों का पाप पाप नहीं है। अधर्म भी नहीं है। देवी ने ही कर्मफल का आयोजन किया है। इस नियम से व्यक्ति को अपने कर्म का फल भोगना पड़ता है। अतः तापत्रयों से क्लेश भोगनेवालों के लिए देवी ही समाह्लाद देनेवाली चन्द्रिका है। इसका वर्णन हो चुका है।

पहले सूचित किया जा चुका है कि नित्याएं सोलह हैं। उनमें एक का नाम नित्यक्लिन्ना है। उस नित्या का रूप धारण करनेवाली।

३८९. निरुपमा

जिसकी कोई उपमा नहीं है। देवी के साथ किसी भी स्त्री रूप या वस्तु का साम्य दिखाया नहीं जा सकता। संसार की सारी वस्तुएं देवी की अंशभूत हैं। उन्हीं वस्तुओं से देवी की उपमा कैसे की जा सकती है। फिर भी देवी की महिमापूर्ण स्वरूप की तुलना करने में किसी न किसी वस्तु से कवियों को आश्रय लेना पड़ता है। "न तस्य प्रतिमा अस्ति" यही श्रुति है।

३९०. निर्वाणसुखदायिनी

निर्वाणसुख प्रदान करनेवाली। "निर्गतम बाणम् शरीरं यस्मिंस्तदशरीरं" शरीररहित रहना मोक्ष है। शरीर और शरीर से सम्बन्धित कामनाओं से दुःख होता है। उनमें से मोचन पाना ही मोक्ष है। विवेकी जनों का लक्ष्य भी मोक्षप्राप्ति है। उस अवस्था में तापत्रय जीव को तंग नहीं करेंगे। अतः निर्वाण सुखदायिनी नाम है। जिसमें दुःखलेश की भी संभावना नहीं है उसी को प्रदान करनेवाली। कौर्म पुराण में देवी स्वयं हिमवान से कहती हैः

"मामनादृत्य परमं निर्वाणममलम् पदम्
प्राप्यते नहि शैलेन्द्र ततो मां शरणं व्रज
एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयतोऽपि वा
मामुपास्य महाराज ततो यास्यति तत्पदम"

देवी की उपासनामात्र से अमल मोक्ष की प्राप्ति होगी। भगवद्गीता में भगवान निर्वाण का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

"योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः
स योगी ब्रह्म निर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम्" (भगवद्गीता ५.२४.२६)

३९१. नित्याषोडशिकारूपा

सोलह नित्या देवियों का रूप जिसने धारण किया है।

"शृणु देवी प्रवक्ष्यामि नित्याषोडशकं तव
न कस्यचिन्मयाऽख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्
तत्रादौ प्रथमा नित्या महात्रिपुरसुन्दरी
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी
नित्यक्लिन्ना तथा चैव भेरुण्डा वन्हिवासिनी
महाविद्ये (वज्रे) श्वरी रौद्री त्वरिता कुलसुन्दरी
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमंगला
ज्वालामालिनि चिद्रूपा एता नित्यास्तु षोडशा
प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णमास्यन्तमर्चयेत्
एकाभिवृद्ध्याहयान्या च दर्शान्तं देवि विग्रहम्" (वासिष्ठसंहिता)

वासिष्ठ संहिता में वर्णित ईश्वरप्रोक्त इस वचन के अनुसार नित्यादेवियाँ सोलह हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं- त्रिपुरासुन्दरी, कामेश्वरी, भगमालिनि, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी,

महाविद्येश्वरी (महावज्रेश्वरी) रौद्री, (दूतिका पाठभेद) कुलसुन्दरी, नित्या, त्वरिता, नीलपताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनी और चिद्रूपा है। ये देवियाँ तिथिरूपिणियाँ हैं। प्रतिपदा से लेकर अमावास्या तक के पन्द्रह तिथिदेवताओं के साथ ललितादेवी को मिलाकर सोलह नित्यादेवियाँ हैं। श्रीचक्र के अंग देवताओं के रूप में भी इन देवियों का विवरण है। षोडशाक्षरी मंत्र के अक्षरविन्यास में भी इन देवियों को मंत्ररूपिणियों के रूप में माना जाता है। इनसे सम्बन्धित विस्तृत जानकारी गुरुमुख से प्राप्त होनी है।

नाम का अर्थ है- सोलह विद्यादेवियों का रूप जिसका है। तंत्रराज में यह वर्णन है:

"आद्याया ललितायाः स्युरन्याः पंचदशाङ्गगाः
ललिताङ्गित्वरूपेण सर्वासामात्मविग्रहा।"

उक्त वाक्य से यह साबित है कि नित्यादेवियां ललितादेवि के ही अंग हैं।

३९२. श्रीकण्ठार्द्धशरीरिणी

शिव का आधा शरीर अपनाकर रहनेवाली। यह प्रसिद्ध है कि शिव ने अपना आधा शरीर देवी को देकर अर्द्धनारीश्वर बने हुए हैं। इसका तात्पर्य यह है कि देवी शिव से भिन्न नहीं है। एक ही शक्ति है जो अलग अलग होकर शिव और पार्वती (शक्ति) बने रहते हैं।

"तत्र या महाभागा शंकरस्यार्धकायिनी
कायार्धं दक्षिणँ तस्याः शुक्लं वामं तथा सितम्
आत्मानं विभजस्वेति प्रोक्ता देवी स्वयंभुवा
तदेव द्विविधा भूता गौरी कालीति सा द्विजा" (वायुपुराण)

अर्द्धनारीश्वर रूप में आधा नील और आधा शुक्ल वर्ण। श्रीकण्ठ से अभिन्न देवी स्वयं दो रूपों में आकर शुक्ल वर्णा होकर गौरी बनी और कृष्णवर्णा बनकर काली हो गयी। इनमें प्रत्येक रूप श्रीकण्ठ के शरीर हैं। इसलिए देवी चाहे गौरी रूप में हो चाहे काली, श्रीकण्ठ की आधी शरीरवाली हैं। श्रीकण्ठ शब्द अकार का द्योतक है। "अःश्रीकण्ठः सुरेशश्च ललाटं केशवोऽमृते" (मातृकाकोश)। इस अर्थ को स्वीकार करने पर अकार शरीर का अर्द्ध स्वीकार करनेवाली वाग्रूप है। अकार ही नाना रूप धारण करके वैखरी बनकर भाषा का प्रवर्तन करता है।

"अकारो वै सर्ववाक्सेषा स्पर्शोष्मभिर्
व्यज्यमाना बह्वी नानारूपा भवति" (आप्तवाक्य)

इसके अनुसार अनेक वर्णों से स्वर व्यंजन जो प्रत्यक्ष होते हैं वे सब अकार ही है। वह अकार स्वरूप बनी हुई है।

"वागुद्भूता परा शक्तिर्या चिद्रूपा पराभिधा
वन्दे तामनिशं भक्त्या श्रीकण्ठार्धशरीरिणीम्" (सूतसंहिता)

३९३. प्रभावती

प्रभा से युक्त। प्रभा का मुख्य अर्थ है शोभा। किरण भी अर्थ है। वाच्यार्थ है कान्तिमती।

"स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितो
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतो
महा संवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम्" - (सौ.ल. ३०)

अयि नित्यादेवी, आपके शरीर से निकलनेवाली किरण रूपी अणिमादि आवरणदेवताओं से आवृत आपका ध्यान, अभेदबुद्धि के साथ इस भाव से कि आप ही मैं हूँ, करता है उपासक परमेश्वर के प्रताप को निस्सार बना देता है। महासंवर्ताग्नि उसे नीराजन दे देती है।

सौन्दर्यलहरी के इस श्लोक से स्थापित होता है कि अणिमादि सिद्धियाँ देवी के शरीर से उद्भूत रश्मियाँ हैं।

"अरुणां करुणातरंगिताक्षीम्
धृतपाशांकुशपुष्पबाणचापाम्
अणिमादिभिरावृतां मयूखै
रहमित्येव विभावये भवानीम्"

प्रस्तुत ध्यानश्लोक में भी अणिमादियों को देवी के प्रकाशरूप में वर्णित है।

३९४. प्रभारूपा

अणिमादि प्रभाएं स्वयं स्वरूप बनी हुई। उपर्युक्त श्लोकों में यह सूचित किया गया है कि अणिमादि प्रभाएं देवी के शरीर से निकलनेवाली किरणें हैं। सौभाग्यभास्कर ने स्थापित किया है कि प्रकाश गुण है द्रव्य नहीं है। इसी पूर्वपक्ष की स्थापना करते हुए कहा गया है कि गुण और गुणी का अभेदत्व है। यथाः "प्रभारूपा अणिमाद्या देवताः स्वरूपमेव यस्याः"। (जिसका स्वरूप है स्वयं अणिमादि देवता वह)

३९५. प्रसिद्धा

सर्व संसार में मशहूर। सब जानते हैं कि वह 'मैं' साक्षात् देवी है। अतः मशहूर है। सारे जीवों में जीव चेतना देवी है, अतः सब में 'मैं' देवी है। सारे लोग यह नहीं जानते कि मैं ही देवी हूँ। "तामहं प्रत्ययव्याजात् सर्वे जानन्ति जन्तवः" (देवीभागवतं) उसी ग्रंथ में ही अन्यत्र यह भी उक्त है - "सर्व चैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि"

३९६. परमेश्वरी

अर्थात् परमश्रेष्ठ ईश्वरी। परमेश्वर की पत्नी। परमेश्वर शब्द के अर्थ हैं विष्णु, इन्द्र, और परब्रह्म। इन अर्थों के स्थान पर वैष्णवी, इन्द्राणी, इन देवियों का रूप धारण किये हुए। व्याख्या है-परब्रह्म रूपिणी।

३९७. मूलप्रकृतिः

सारी सृष्टि की मूलकारणस्वरूपिणी देवी

"मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता
सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्" - (म.गी. १४-३-५)

अये भारत, महब्रह्म (प्रकृति) मेरी योनि है। उसमें मैं गर्भ का आधान करता हूँ। उससे सारे जीवों की उत्पत्ति होती है। चाहे देव हो, चाहे मनुष विभिन्न वर्गों में पैदा होनेवाले सारे जीवों का उत्पत्तिस्थान प्रकृति है। मैं बीज देनेवाला पितामात्र हूँ। सत्व, रज, तम ये गुण प्रकृति के परिणाम हैं। वे अव्ययी आत्मा को शरीर से संयुक्त करा देते हैं। भगवद्गीता में भगवान की प्रकृति साक्षात् देवी है।

प्रकृति से जो भी उत्पन्न हुआ है वह विकृति है। विकृति रूपी पृथ्वी की प्रकृति जल में और जल उसी की प्रकृति तेज में और तेज उसी की प्रकृति आकाश में और आकाश मूलप्रकृति में कालान्तर में विलीन हो जायेंगी। प्रकृति के लिए अन्य प्रकृति नहीं है, इसलिए उसे मूलप्रकृति कहते हैं। यह सारा जगत उसी से उत्पन्न होता है। सब का मूल है, इसलिए मूलप्रकृति है। पंचरात्रागम में शिवजी का कथन हैः

"प्रादुरासीज्जगन्माता वेदमाता सरस्वती
यस्या न प्रकृतिः सेयं मूलप्रकृतिसंज्ञिता
तस्यामहं समुत्पन्नस्तत्वैस्तैरमहदादिभिः"

इस प्रकार वेदमाता ही सरस्वती है। वही मूलप्रकृति है। शिव उसी मूलप्रकृति से पैदा हुई।

मांत्रिक अर्थ में श्री विद्यामंत्र की प्रकृति। इसका विशद भाव गुरुमुख से जानना है।

तांत्रिक अर्थ में महदादिसप्तकरूपी सुषुम्नानाडी से आवृत कुण्डलिनी ही अष्टप्रकृतिरूपी मूलप्रकृति है।

"महदादिसप्तकरूपसुषुम्नावेष्टिता
कुण्डलिन्येवाष्टप्रकृतिरूपा मूलप्रकृतिरुच्यते।"

यहाँ भी विशद जानकारी गुरुमुख से जानना है।

३९८. अव्यक्ता

जो व्यक्त नहीं दिखाई देती। परा शब्द की व्याख्या में कारणबिन्दु का जो प्रस्ताव है उसे ही अव्यक्ता कहते हैं। उसे ही प्रकृति शब्द से भी अभिहित किया जाता, निर्गुणब्रह्म सृष्टि की

अभिवाञ्छा से माया से आवृत कारणबिन्दु का रूप धारण करता है। सृजित होनेवाला संसार कारण-बिन्दु में माया के स्फुरण रूप में रहता है, फिर भी उसका कोई रूप नहीं है। उसी से अव्यक्त की संज्ञा है। कारणबिन्दु स्वयं देवी है।

३९९. व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी

जिनका स्वरूप व्यक्त एवं अव्यक्त भी है। सभी चराचरों में अन्तर्हित चेतनास्वरूपिणी पराशक्ति अरूप और सामान्यजन के लिए अनभिज्ञ होने से अव्यक्त भी हैं। देवी उन जिज्ञासुओं और सत्यप्रेमी लोगों के लिए जानी जाती हैं, जो ज्ञानी हैं। ज्ञानियों को व्यक्त रूप से और अज्ञानियों के लिए अव्यक्त रूप से जानी जाती है।

जैसे उपर्युक्त नाम की व्याख्या में कहा है कि कारण बिन्दुरूपी मूलप्रकृति को अव्यक्त कहते हैं। उसमें से व्यक्त रूप में महती तत्व बन जाता है। अव्यक्त रूपी कारणबिन्दु और व्यक्त रूपी महती तत्व दोनों देवी स्वरूप हैं, इसलिए व्यक्ताव्यक्तरूपिणी है।

४००. व्यापिनी

सारे जगत में व्याप्त रहनेवाली। सारे प्रपंच का कारणभूत देवी हैं। परब्रह्म एवं ब्रह्म को सृष्टि की ओर प्रेरणा देनेवाली मायाशक्ति भी देवी हैं। इनके संपर्क से होनेवाली कार्यकारण सृष्टियाँ भी देवी हैं। इसलिए सृष्टिकर्ता, सृष्टि की सामग्री, सृजित प्रपंच, सारे जीवों की प्राणशक्ति, सृष्टि के उपर्युक्त पंचभूत, सब देवी ही हैं। सारे प्रपंच में व्याप्त रहनेवाली देवी व्यापिनी हैं।

४०१. विविधाकारा

विविध प्रकार के आकारों से युक्त।

"रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्तिम्
कृत्वांबिके तत् प्रकरोति कान्या"

यही देवी माहात्म्य के एकादश अध्याय में नारायणीस्तुति है। उस स्तोत्र में देवी के विविध रूपों का वर्णन है। प्रपंच में जितने चर और अचर दिखाई देते हैं सब देवीचैतन्य के रूपभेद हैं। इसलिए विविधाकारा नाम है।

४०२. विद्याऽविद्यास्वरूपिणी

जो विद्यास्वरूपिणी और अविद्यास्वरूपिणी दोनों हैं। यहाँ विद्यासात्मज्ञान को और अविद्या परमवृत्तिरूपी अज्ञान को संकेतित करती है।

"विद्याञ्चाविद्यांच यस्तद्वेदोभयं सह
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" (श्रुति)

बृहद्नारण्यकोपनिषद में "तस्य शक्तिः परा विष्णोर्जगत्कार्यपरिक्षमा
भावाभावस्वरूपा सा विद्याविद्येति गीयते" देवीभागवत के इसी वर्णन में विद्या और अविद्या का आरोप है। देवी भागवत में एक अन्य स्थान में निम्न प्रकार का वर्णन है-

"विद्याविद्येति देव्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव
एकया मुच्यते जन्तुरन्यया बध्यते पुनः"

विद्या और अविद्या दोनों देवी के स्वरूप हैं। एक से जीव मोक्ष पाते हैं और दूसरे से जीव कर्मपाश में बन्धित हो जाते हैं। शुद्धविद्यारूपिणी देवी ज्ञानस्वरूप हैं और मायारूपिणी देवी अविद्या है।

४०३. महाकामेशनयनकुमदाह्लादकौमुदी

महेश्वर शिव के नयनरूपी कुमुदों को आह्लाद पहूँचानेवाली चान्दनी। चन्द्रिका स्पर्श से कुमुदों का विकास होता है, यही कविभावना है। चन्द्रिका न होने से कुमुदों का विकसित होना संभव नहीं है। इसी प्रकार देवीरूपी चन्द्रिका का स्पर्श पाकर ही महेश का आह्लाद हो सकता है।

"शिवःशक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि"

सौन्दर्यलहरी के उपर्युक्त पद्य का आशय देखिए। कौमुदी संज्ञक पद का अर्थ चन्द्रिका है। और एक अर्थ है कार्तिक महीने की पौर्णमी। इस अर्थ को भी माना जा सकता है।

४०४. भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसन्तति

भक्तों के हृदय के अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य किरण जैसी। यह सूचित किया जा चुका है कि देवी भक्तों के लिए प्रिय हैं। देवी भक्तजनों के सारे दुःखों को दूर करनेवाली हैं। जीवों के दुःख का कारण तमोरूपी अज्ञान है। जब तक भक्तों के हृदय में अज्ञान रहता है, तब तक उन्हें दुःख सहना पडता है। तापत्रयों से उन्हें बचाने के लिए तम का निवारण करना ही पडता है। हृदय में जो तम निवसित है उसका विपाटन करने के लिए ज्ञानरूपी प्रकाश वहाँ पहूँचना है। तम का अर्थ अन्धकार भी है। तम का विपाटन करने के लिए सूरज की किरण चाहिए। भक्तों के हृदय का तम दूर करने के लिए सूर्य किरण रूपी ज्ञान चाहिए। नाम में प्रयुक्त है भानुमद्भानुसन्तति । भानु याने सूरज की भानुसन्तति याने किरणसमूह अन्धकार को पूर्ण रूप से दूर करेगी। उसी प्रकार देवी स्मृति से भक्त के हृदय का अज्ञान तुरन्त दूर होगा।

"मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्
कथयन्तच मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वताः" (भ.गी. १०. ९-११)

वे लोग जो अपने मन में मुझे प्रतिष्ठित करा लेते हैं, अपने जीवन को मुझे समर्पित करते हैं, मेरी कथाओं को दूसरों को कहकर सुनाते हैं, वे मनही मन प्रसन्न रहते हैं। प्रेम के साथ मेरा

भजन करनेवाले और हमेशा समाधिस्थ चित्त से रहनेवाले उन लोगों को मैं ऐसा बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझे पा सकेंगे। उनकी सहायता करने के लिए मैं उनके अन्तःकरण में प्रकाशरूपी ज्ञान को स्थापित कर उनके मन के अन्धकार रूपी अज्ञान को दूर करता हूँ।

उपर्युक्त भगवान के प्रस्ताव को इस सन्दर्भ में निरूपित किया जा सकता है।

४०५. शिवदूती

जिसके शिव दूत हैं। देवीमाहात्म्य में वर्णित कथा यहाँ लागू है। जब देवी शुंभ और निशुंभ के विरुद्ध युद्ध कर रही थीं तब देवी के शरीर से उत्पन्न चण्डिका नामक शक्ति ने शिव को दूत बनाकर शुंभादि के पास भेजा।

"ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता
दूतत्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं सुम्भनिसुम्भयोः
ब्रूहि सुम्भं निसुम्भं च दानवार्वातगर्वितौः
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः
बलावलेपादथ चेद् भवन्तो युद्धकांक्षिणः
तथा गच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः
यथा नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्
शिवदूतीति लोकेऽस्मिन् ततः सा ख्यातिमागता" (दे.मा.८-२२-२७)

इसके बाद देवी के शरीर से अत्युग्र एवं शिवाशतों के समान अट्टहास करनेवाली चण्डिकाशक्ति का उदय हुआ। उस अपराजिता चण्डिकाशक्ति ने धूमवर्णवर्णी जटाधारी शिव से बोलीः आप मेरा दूत बनकर शुम्भुनिशुम्भों के पास जाइए। गर्विष्ठ शुम्भ-निशुम्भों और अन्य असुरों से कहिए कि इन्द्र को तीनों लोकों का आधिपत्य प्राप्त हो। देव हविर्भुक् होने पावें। अगर तुम जीवित रहना चाहते हो, तो पाताल जाओ। बल पर गर्विष्ठ हो, तो युद्ध करो। तुम्हारे मांस से मैं अपने परिवारों को प्रसन्न करूँगा इस प्रकार देवी ने शिव को ही दूत बनाया, इसलिए देवी शिवदूती बनी, यह संसार में विख्यात है।

पुष्करतीर्थ निवासिनी एक देवीमूर्ति का नाम शिवदूति है। पद्मपुराण में प्रस्तुत देवी के बारे में वर्णन है।

४०६. शिवाराध्या

शिव से आराध्या। ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि शिव ने देवी की आराधना करके उनका अनुग्रह प्राप्त करके ही अर्द्धनारीश्वरत्व प्राप्त किया था।

"शिवोपि यां समाराध्य ध्यानयोगबलेन च
ईश्वरसर्वसिद्धीनामर्द्धनारीश्वरोऽभवत् ।"

४०७. शिवमूर्तिः

शिव की मूर्ति बनी हुई। शिव ही देवी रूप है। इस अर्थ में शिव और देवी में अभेद माना गया है।

एको रुद्रः सर्वभूतेषु गुढो माया रुद्रः सकलो निष्कलश्च
स एव देवी न च तद्विभिन्नाह्ये तत् ज्ञात्वेवामृतत्वं व्रजन्ती (श्रुति)

शिवा का अर्थ है मंगलमयी।

"सर्वमंगलमंगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते"

देवी माहात्म्य के अन्तर्गत नारायणीस्तुति का रत्नभूतात्मक श्लोक दर्शनीय है। मंगलरूपिणी नाम का आशय है। शिवशब्द का आशय मोक्ष भी है। उस पक्ष में देवी को मोक्षरूपिणी कहते हैं।

"अथ मुने स्वरूपं ते प्रवक्ष्यामि समासत"

इत्यादि सौरसंहिता के चौदहवें अध्याय में यह वर्णन है:

"तस्मादात्मस्वरूपैव परामुक्तिरविद्यया
प्रतिबद्धा विशुद्धस्य विद्यया यज्यतेनघा"

इस प्रकार शुद्धविद्या और मोक्ष का सम्बन्ध वर्णित होता है। मोक्ष देवी से सायूज्य प्राप्त करना है। अतः देवी को शिवमूर्ति बतायी गयी है।

४०८. शिवंकरी

शिव (मंगल) को करनेवाली। शिव बनानेवाली, यह भी अर्थ है। भक्तों का अज्ञान देवीप्रसाद से दूर होता है, तब वे शिव रूप बन जाते हैं। ब्रह्मसायुज्य के लिए भक्तों को योग्य बनाकर उन्हें शिवरूप बनानेवाली। प्रथम पक्ष में मंगलदायिनी का अर्थ उचित है। दूसरे पक्ष में वही भाव है, फिर भी लौकिक जनों को ऐहिक सुख देनेवाली यह अर्थ अधिक योग्य है। सामान्यतया यह बताया जा सकता है कि तापत्रयों से भक्तों को बचाकर मंगल दान करनेवाली है देवी।

४०९. शिवप्रिया

शिव की प्रिया। शिवपत्नी। शिव जिसे प्रिय है। व्याख्या-भेद से यह भी कहा जा सकता है कि मंगलों को पसन्द करनेवाली।

४१०. शिवपरा

शिव पर पूरी तरह से तात्पर्य रखनेवाली। देवी शिव की पत्नी और अर्द्धांगिनी है। उन्हें शिव को छोडकर और किसी पर तात्पर्य नहीं है।

1763

शिव से भी श्रेष्ठ, यह अर्थ भी है। सौन्दर्यलहरी में बताया गया है कि शिव शक्ति के अधीन है।:-

"शिवश्शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः
प्रभवितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।"

वामकेश्वर तंत्र में यही कहा है:

"परोपि शक्तिरहितः शक्त्यायुक्तो भवेद्यति
सँष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्त एव हि"

राजकीय संस्कृत पुस्तकालय जयपुर कॉलेज, जयपुर पुस्तकालय क्रमांक 1763

सुभगोदय में भी यही बात सूचित की जाती है:-

"परोपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किंचन,
शक्तस्यात् परमेशानि शक्त्यायुक्तो भवेद्यदि"

४११. शिष्टेष्टा

शिष्टजनों को चाहनेवाली। शिष्ट जनों के लिए प्रिया। शिष्ट शब्द धर्माचरण, यागादि, पूजा, ध्यान इत्यादि को इंगित करता है। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से अथवा कर्म से प्राप्त करनेवाले योग्य स्थान के अनुकूल काम धर्माचरण है। उसे भगवान को, बिना फलापेक्षा से अर्पण करने का तरीका धर्माचरण है। ईश्वरपरक चिन्ता, शास्त्ररीति का ध्यान, मनन, पूजादि कर्म आदि भी उसमें आते हैं। इस प्रकार के अनुष्ठन करनेवाले शिष्ट हैं। शिष्टजनों को चाहनेवाली अथवा शिष्टकर्मों को चाहनेवाली, ये दोनों आशय ठीक है। दोनों अर्थों में कोई भेद नहीं है।

४१२. शिष्टपूजिता

शिष्टजनों से पूजिता। उपर्युक्त नाम में बताया गया है कि शिष्टजन कौन है। उन्हीं शिष्टजनों से विधिपूर्वक पूजा की जानेवाली। केवल शिष्ट जन ही देवी की पूजा-आराधना कर सकते हैं। उन्हें ही वह भाग्य प्राप्त है।

"अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिंचादिभिरपि प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति"

(हरिहरविरिंचादि देवों से आराध्या आपको प्रणाम देना और आपकी स्तुति करना ऐसा आदमी कब कर सकता है, जबकि वह पुण्यवान नहीं है)

श्री शंकर ने सौन्दर्यलहरी में कहा है कि देवी की पूजा शिष्ट जन ही कर सकते हैं। अर्थात् शिष्ट जन ही उसके लिए अधिकारी हो सकते हैं।

४१३. अप्रमेया

जो तोली या प्रमाणित नहीं की जा सकती। देवी की महिमा का मापदंड कैसे किया जा सकता है? उसकी कोई तुलना असंभव है। जो भी तुलनीय वस्तु मिले, वह योग्य नहीं है। वेद और वेदांग के कितने ही प्रमाण हैं, वे सब देवी के माहात्म्य की यथार्थ स्थिति बताने में असमर्थ हैं। देवी की महिमा वाक्, युक्ति और भावना के अतीत है।

४१४. स्वप्रकाशा

स्वयं जो प्रकाशरूप है। स्वयं ज्योतिरूप है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश और अन्य देव भी ज्योतिरूप हैं, फिर भी उनकी ज्योति स्वयं ललिता देवी से प्राप्त है। देवी की ज्योति और कहीं से प्राप्त नहीं है। स्वयं प्राप्त और स्वतः वैसा है। इसलिए स्वप्रकाशा है।

४१५. मनोवाचामगोचरा

मन और वाक् से जो पहचानी नहीं जातीं।

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" (श्रुति)

"यातीत गोचरा वाचां मनसां चाविशेषणा
ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्या वन्दे तामीश्वरीं परां" (विष्णुपुराणम)

किसी भी विषय के सम्बन्ध में मनुष्य को जानकारी प्राप्त होती है, तो दो ही मार्ग उसके लिए है। पहला इन्द्रियों के स्पर्श से याने स्पर्श, शब्द, गन्ध, आदि से। दूसरा उपाय है कि जो ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त हुआ है उन्हें चिन्तन से जानना। प्रथम प्रपंच में जहाँ सब का व्यापार है वहाँ से प्राप्त हैं। एक व्यक्ति की परिचयसीमा में आनेवाली वस्तुओं एवं क्रियाओं का ज्ञान ही इन्द्रियों द्वारा संभव है। इस सम्बन्ध में एक ही अपवाद है। वह यह जो वाग्रूप से प्राप्त होनेवाली जानकारी। स्थलकाल सीमाओं का अतिक्रमण करके वाक् द्वारा जानकारी प्राप्त की जा सकती है। नेत्रों द्वारा (पढ़ने से) और श्रोत्रों द्वारा (सुनकर) प्राप्त करनेवाला ज्ञान दूर रहनेवाले अथवा भूतकाल में जीवित रहे लोगों के दर्शनों एवं अभिमतों का अंश है। और एक मार्ग मनन से प्राप्त होनेवाला ज्ञान है। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही मनन का प्रवर्तन होता है। पराशक्ति के विशेष अनुग्रह न प्राप्त लोगों की दशा इस प्रकार है।

इन्द्रियविषयक ज्ञान में उत्कृष्ट वाक् है। वाक् की अपनी सी परिमिती होती है। वाक् और उसके अर्थ दोनों का सामूहिक सम्बन्ध है। उन परिचित बातों को ही वाक् द्वारा अवतरित किया जा सकता है, जो एक भाषा बोलनेवाले लोगों के समाज में हैं। श्रीललितादेवी आद्यन्तहीन, सर्वव्यापी, सब का उत्पत्तिकारण, रूपरहित और बहुरूपा हैं। इसलिए उन्हें वाक् द्वारा जानना और समझना असम्भव है और वे पराशक्ति हैं। इसलिए मनोवाचामगोचरा नाम है।

४१६. चिच्छक्तिः

चित् शब्द का अर्थ है चैतन्य। सभी प्राणियों में चेतनारूप में बसनेवाली शक्ति।

"चिच्छक्ति परमेश्वरस्य विमला चैतन्यमेवोच्यत"(संक्षेपशारीरक)

"चैतन्यरूपा शक्तिः (गौडपादीयसूत्र)
वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप
शववत शक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा
चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हिः" (देवीभागवत)

चित् शब्द का अर्थ है ज्ञान। नाम का अर्थ है ज्ञानशक्ति।

"अविद्यानिवारकत्वरूपं सामर्थ्यं चैतन्यापरपर्यायं वा चिच्छक्तिः" (सौभाग्य भास्कर)

चित् शब्द का अर्थ है ब्रह्म। यहाँ सर्वप्रपंचकारण्रूपी और शुद्धप्रकाशस्वरूपी पराशक्ति का नाम ही उद्दिष्ट है।

चित् का स्वभाव है प्रकाश। वही चित्स्वरूपिणी विद्या है। (चिन्तारत्नं)

४१७. चेतनारूपा

चेतना जिसका रूप है वही। चैतन्यस्वरूपिणी। चेतना शब्द का अर्थ ज्ञान है। सौन्दर्यलहरी के लक्ष्मीधरव्याख्या में बताया गया है कि चेतना वह शक्तिविशेष है जो मन में पड़नेवाले पदार्थों का यथार्थ ज्ञान पैदा करती है।

"जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिझरी" यही शंकराचार्य की देवी सम्बन्धी स्तुति है। देवी भागवत के प्रारंभ में "सर्व चैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि बुद्धिं या नः प्रचोदयात्" इस प्रकार त्रिपादा गायत्रीरूप में आद्यविद्यारूपिणी देवी को सर्वचैतन्यरूपिणी के रूप में स्तुति है।

४१८. जडशक्तिः

संसार की सृष्टि के लिए योग्य परिमित माया ही जड़शक्ति है। इसे अपराप्रकृति भी कहते हैं। जीवियों की उस जीवशक्ति को पराप्रकृति कहते हैं, जो माया से मिलकर चेतनारूप में रहती है।

"भूमिरापोऽनलो वायुःखं मनो बुद्धिरेव च अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्" (भ.गी. ७-४,५)

जैसे भगवान गीता में कहते हैं, परा प्रकृति, अपराप्रकृति इनमें अपराप्रकृति जड़शक्ति है। वही जड़शक्ति देवी रूप हैं।

४१९. जडात्मिका

यह सारा दृश्यप्रपंच माया से बनता है। वह माया देवी की अपराप्रकृति है, जिसका वर्णन ऊपर के नाम में आया है। जड़ शक्ति-रूपिणी होने से जड़ात्मिका है।

४२०. गायत्री

गायत्री एक प्रसिद्ध वैदिक मंत्र है।

"ओं भूर् भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्"

सविता की स्तुति करनेवाले इस मंत्र को सवित्री नाम भी है। गानेवाले को बचाती हैं, इस आशय से गायत्री नाम है। गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री तेन कथ्यते यह उद्धृत मंत्र सूर्यगायत्री

नाम से मशहूर है। इसके अलावा अन्य देवी देवताओं की स्तुति करनेवाले गायत्री मंत्र भी होते हैं।

गायत्री ब्रह्मपत्नी है। चारों वेद गायत्री से उत्पन्न होने से वेदमाता नाम से प्रसिद्ध है।

"विशेषात् पुष्करे स्नात्वा जपेन्मां वेदमातरम्
अष्टाक्षरा स्थिता चाहं जगद्व्याप्तं मयात्विदम्"

स्वयं देवी पद्मपुराण में कहती है।

"गायनाद् गमनाद् वापि गायत्री त्रिदशार्चिता" (देवीपुराण)

गायत्री के मंत्ररूपी और देवी रूपी होने से गायत्री नाम है। चार पादोंवाले और छे अक्षरों से युक्त एक छन्द को गायत्री नाम है। गायत्री मंत्र की अक्षरसंख्या के कारण यह नाम हुआ होगा। गायत्री छन्द त्रिपादी होता है। कभी कभी द्विपादी भी होता है। चौबीस अक्षरोंवाले इसी छंद में असंख्य प्रसिद्ध मंत्र बने हैं। छंदों में श्रेष्ठ है गायत्री छंद। गायत्री छंदसामहम (गीता में भगवान) गायत्री छंद बनकर रहनेवाली गायत्री।

४२१. व्याहृतिः

उच्चारणरूप में रहनेवाली। अ. उ. म. इन अक्षरों से भूः भुवः स्वः इस प्रकार व्याहृतियाँ बनीं। अ. उ. म. इनको प्रकृतियाँ और भूः भुवः स्वः इनको विकृतियाँ कहते हैं। व्याहृति की विकृति है गायत्री। गायत्री की विकृति हैं वेद। वेदों से प्रजापति ने जो सार दुह लिया वही भूः भुवः स्वः इत्यादि व्याहृतियाँ। नाम का भाव है उच्चारण रूप में रहनेवाली।

व्याहृति मंत्रविशेषों के नाम भी हैं। सविता को पृश्नि से उत्पन्न पुत्रियाँ व्याहृतियाँ हैं। उन मंत्रों के रूपधारण करनेवाली, यह मंत्रपरक अर्थ है। मंत्ररूप गुरुमुख से जानना है।

"मयाभिव्याहृतं यस्मात्वं चैव समुपस्थिता
तेन व्याहृतिरित्येवं नामते सिद्धिमेष्यति" (वायुपुराण)

४२२. सन्ध्या

दिन और रात के बीच की बेला। दो युगों के बीच का काल भी संध्या है। सन्ध्यारूपिणी, यही नाम का भाव है। प्रथम अर्थ का प्रयोग ही सर्वसाधारण है। पर व्याख्या यह है कि आदित्य का अविच्छिन्न चैतन्य और स्वयं जीवात्मा दोनों के बीच का अभेद्यभावना ही सन्ध्या है। 'सम्यग्ध्यायन्त्यस्याम्' इतिव्युत्पत्ति

"सन्ध्येति सूर्यगं ब्रह्म सन्ध्यानादविभागतः
ब्रह्माद्यैः सकलैर्भूतैस्तदंशैः सच्चिदात्मनः

तस्य दासोऽहमस्मीति सोऽहमस्मीति या मतिः
भवेदुपासकस्येति ह्येवं वेदविदो विदु" (महाभारत)

उपर्युक्त श्लोक के अनुसार सूर्य को प्राप्त ब्रह्म ही सन्ध्या है।

ब्रह्मादि सारे भूतों का अंश रूपी वह स्वयं आप हैं अथवा उसका दास है, यही भावना सन्ध्या है।

"ब्रह्माद्याकारभेदेन या भिन्ना कर्मसाक्षिणी
भास्वतीश्वरशक्तिः सा सन्ध्येत्यभिहिता बुधै" (भारद्वाजस्मृति)

सन्ध्याकाल में उपासना करने योग्य! सन्ध्या ब्रह्मा की मानस पुत्री है।

"तदा तन्मनसो जाता चारुरूपा वरांगना
नाम्ना सन्ध्येति विख्याता सायंसन्ध्या जयन्तिका
ब्रह्मणो ध्यायतो यस्मात् सम्यग्जाता वरांगना
अतः सन्ध्येति लोकेऽस्मिन्नस्याः ख्यातिर्भविष्यति" (कालिकापुराण)
"या सा सन्ध्या ब्रह्मसुता मनोजाता पुराऽभवत्
तपस्तप्त्वा तनुं त्यक्त्वा सैव भूताह्यरुन्धती" (भगवतीपुराण)

एक वर्ष की अवस्थावाली कन्यका। इसी का रूप धारण करनेवाली।

"एकवर्षा भवेत् सन्ध्या" (कन्याप्रकरण में धौम्यवचन)

४२३. द्विजवृन्दनिषेविता

द्विजवृन्तों द्वारा सेविता। द्विज ब्राह्मण है। क्षत्रियों एवं वैश्यों को भी उपनयन कर्म के आधार पर द्विज कहते हैं। यहाँ वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों को सूचित करते हैं।

द्विज का अर्थ पक्षी भी है। पक्षियों द्वारा सेविता। सन्ध्या समय जैसे पक्षी अपने घोंसलों में शरण पाते हों उसी प्रकार सारे जीव जीवन के अन्त में देवी में लीन हो जाते हैं।

"तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा
विपरिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव
धियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति
यत्र सुप्तो न कंचन कामंकामयते न कंचन स्वप्नम् पश्यति"
- (बृहदारण्यकोपनिषद्-अ ४.उ ब्रा ३ .म. १९)

४२४. तत्वासना

जिसके तत्वों का आसन हो। तत्वों पर स्थित रहनेवाली। तत्व शब्द का अर्थ है वह तू है । (तत्-वह। त्वं-तू)। प्रपंच में जो कुछ अनेक रूपों में दिखाई देते हैं वे सब अपरिछिन्न और निर्गुण ब्रह्म का प्रतिभास है। संस्कृत के व्यावहारिक अर्थ में सत्य अर्थ में भी प्रयुक्त है।

सन्दर्भ और विषय के अनुसार इस शब्द के कई अर्थ हैं। जीव जगत की सृष्टि के कारणभूत ब्रह्म और माया के सम्बन्ध में, जीवात्मा और परमात्मा के एकत्व अथवा वस्तु के सार के सम्बन्ध में इस शब्द के अर्थ होते हैं।

तत्व का अर्थ है कि वे सब बातें जो वेदान्त पर अधिष्ठित चर्चाओं में प्रपंच के कार्यनिर्वहण के लिए आधारभूत हैं। जैसे ज्ञानेन्द्रिय पांच और कर्मेन्द्रिय पांच और मन इन सबको मिलाकर एकादश तत्व है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, इन्द्रियविषक रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द, पंचप्राण, पंचभूत इन सबको मिलाकर पांचविशंति तत्व हैं। इनके साथ पंचवायु और षड़ आधार मिल कर षड़त्रिंशत् तत्व हैं। इन तत्वों से कर्मेन्द्रिय विषयक वचन, दान, गमन, विसर्ग, आनन्द और पंचकोश, सप्तधातु, मण्डलत्रय, त्रिदोष, एषणत्रय, गुणत्रय, अवस्थात्रय, त्रिमूर्ति, तापत्रय, देहत्रय मिलकर तत्व ९६ हैं। इस प्रकार तत्वों की गणना शास्त्रों में विभिन्न रीति में मिलती है।

इन तत्वों में स्थित रहनेवली-अतः तत्वासना। सर्वतत्वात्मक योगपीठ जिसका आसन है, वही। इस तरह भी व्याख्या दी गयी है कि तत्वों का असन, (माने फेंकनेवाली, नाश करनेवाली) करनेवाली है देवी ललिता।

४२५. तत्

तत् शब्द वह ब्रह्म है, जिनकी खोज में योगियों एवं दार्शनिकों ने निरंतर तप करके मन और वाक् के परे के रूप को पा लिया है। मलयालम में तत् शब्द का अर्थ वह से सिमित नहीं ! काफी व्यापक है। इस सहस्रनाम में सभी नाम स्त्रीलिंग शब्द हैं। लेकिन यह शब्द ब्रह्म को सूचित करता है। इसलिए नपुंसकलिंग है।

"एको नैकः सर्वः कः किम्
यत्तद् पदमनुत्तमं" (विष्णुसहस्रनाम)
"तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपक्रियाः
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः" - (भगवद्गीता)

इन दोनों स्थानों में यह शब्द ब्रह्मवाची होकर प्रयुक्त हुआ है। यहाँ अर्थ परब्रह्म-स्वरूपिणी है।

४२६. त्वं

पदार्थ है तू। तत्वमसि नामक महावाक्य में निर्देशित अर्थ को यहाँ स्मरण करना है। सारे जीवप्रपंच को त्वं शब्द में जानना है। महावाक्य में तद् त्वं इन दोनों शब्दों को अभेदत्व कल्पित किया गया है। इसलिए निर्गुणपरब्रह्म की त्वं शब्द से जानना है। देवी के संबोधन के लिए व्याख्यायित होने पर भी सारे प्रपंच और ब्रह्म के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त है।

४२७. अयी

अयी संबोधनावाचक शब्द है। आदर और स्नेह का द्योतक है। अयि जगत की माता ! महावाक्य के असि शब्द को यहाँ संबोधन बना दिया है। देवी को संबोधित करने से स्त्रीगिं रूप

में प्रयुक्त है। महावाक्य के घटक शब्द तत् और त्वं के साथ अयी संबोधन शब्द भी मिलकर तत्वमयी बना है।

४२८. पंचकोशांतरस्थिता

पांच कोशों के भीतर रहनेवाली। अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश और आनन्दमयकोश। ये पांचों कोश आत्मा का आवरण करने से इन्हें कोश कहते हैं। (अन्नमयकोश माने अन्न से बना स्थूल शरीर। प्राण आदि पांच वायु और पांच कर्मेन्द्रिय मिलकर प्राणमय कोश। यह रजोगुणप्रधान है। पंचभूतों के सत्वगुणी अंशों से बना और ज्ञानेन्द्रियों एवं सन्देहात्मक मन से मिला है मनोमयकोश। ज्ञानेन्द्रियों एवं निश्चयस्वरूपी बुद्धि मिलकर सूक्ष्म देह। कारण देह ही आनन्दमयकोश है) इनमें आनन्दमसकोश ब्रह्मरूपी है। यही आर्षमत्र है। उसके भीतर कारणबिन्दुरूप में स्थित चिच्छक्ति है देवी।

"अन्नप्राणमनःप्रबोधपरमानन्दैः शिरःपक्षयुक्
पुच्छात्मप्रकटैर्महोपनिषदां वाक्यैः प्रसिद्धीकृतैः
कोशैः पंचभिरेभिरेव भवतीमेतत् प्रलीनामिति
ज्योतिः प्रज्वलदुज्जलात्मचपलां यो वेद सः ब्रह्मविद्" (क्रोघ-भट्टारक)

श्रीचक्रपूजा में आराधित पांच मंत्रदेवताओं को सूचित करने के लिए पंचकोश पद का उपयोग हुआ है।

"श्रीविद्या च परंज्योतिः परा निष्कलशांभवी
अजपा मातृका चेति पंचकोशाः प्रकीर्तिताः" (ज्ञानार्णव)

श्रीचक्र के चक्रों में व्यष्टिसमष्टिभेद के साथ ये देवता पूजे जाते हैं। श्रीचक्र के मध्य में बिन्दु रूप से श्रीललितांबिका निवास करती हैं। पंचकोशमंत्रदेवताओं के मध्य में स्थित रहनेवाली। श्रीचक्र का रहस्य गुरुमुख से जानें।

४२९. निस्सीममहिमा

सीमारहित महिमा से युक्त। सीमा शब्द का अर्थ है परिधि। व्यक्तिपरक महिमा की परिधि होती है। वह देवताओं के लिए भी बाध्य है। लेकिन, लोकमाता अपने सौजन्य से वह महिमा बांट देती हैं। देवी के सम्बन्ध में महिमा का उत्पत्तिस्थान ही देवी हैं, इसलिए उनकी महिमा की कोई सीमा नहीं है। इसलिए निस्सीममहिमा।

४३०. नित्ययौवना

नित्ययौवना हमेशा यौवन में रहनेवाली। प्राणी वर्ग जनन, बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य, मृत्यु इन अवस्था क्रमों से गुजरता है। प्रत्येक सन्दर्भ में स्वाभाविक रहनेवाली योग्यताओं को बदलना भी संभव नहीं है। माता पिता और उनकी सन्तान के रूप में जन्म। फिर उनके या दूसरों के संरक्षण में बाल्य। अपनी हैसियन के साथ रहनेवाला यौवन। क्रमशः मन और शरीर को होनेवाले

दौर्बल्य, उसके बाद मरण। इस क्रम से जानेवाला जीवनक्रम देवी को कोई बाध्यता नहीं देता। इसलिए वे नित्ययौवना होकर रहती हैं।

४३१. मदशालिनी

मद से युक्त। मद के कई अर्थ होते हैं। यौवन एक अर्थ है। प्रिय के अनुराग से होनेवाले दंभ का भाव। नित्ययौवना नाम का भी संकेत ले। कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तनी और कामेश के शरीर का आधा अंश प्राप्त, इन कारणों से यह नाम ज़्यादा शोभित होता है।

मद्यपान से उन्मत्त रूप में देवी की कल्पना की जाती है। उस रूप में यह नाम लागू है। देवी माहात्म्य के तीसरे अध्याय में देवी और महिषासुर के बीच के युद्ध वर्णन यों है:

"ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्
गर्ज गर्ज क्षणं मूढ़ मधु यावत् पिबाम्यहम्
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्ज्जिष्यन्ताशु देवताः"

इन पंक्तियों के अनुसार देवी मदोन्मत्त होकर आँखों को रक्तरंजित कर बार-बार मद्यपान करती हैं। मद्यपान से मदोन्मत्त हो गयी।

" विषयान्तर संपर्कशून्य आनन्दैक विषयको
वृत्तिविशेषो मदस्तेन शालते शोभते" (सौभाग्यभास्कर)

इसके अनुसार मद का लक्षण अन्य विषयों के संसर्ग के बिना होनेवाला आनन्द है। नाम का अर्थ है मद से शोभित होनेवाली। अविकल्प्य आनन्द से शोभित। सत्यानन्दस्वरूपिणी।

४३२. मदघूर्णितरक्ताक्षी

मद से घूर्णित एवं रक्तवर्ण बनी अक्षियों सहित। मद शब्द का अर्थ उपर्युक्त नाम की व्याख्या में स्पष्ट कर दिया गया है।

उस अर्थ में व्याख्यायित मद्यपान से होनेवाले मद की यहाँ सूचना है। घूर्णित माने चक्कर काटनेवाला। मद्यपान से आँखें लाल-लाल होंगी। मद से भ्रमित एवं रक्तवर्णी आंखोंवाली, यही इस सन्दर्भ में अर्थ है।

"बाह्य विषय वैमुख्यं घूर्णनं" यही सौभाग्यभास्करं का अभिमत है।

यदि मद का अर्थ इस प्रकार लिया जाय कि मद यौवन और प्रिय का अनुरागमूलक विकार है तो नित्ययौवना और अर्द्धनारीश्वरवाली देवी कामेश के अनुराग से मदोन्मत्त है और देवी

की आंखें कामेश को छोड़कर और किसी को देखने में विमनस्क है, तो यह सर्वथा ठीक है। इस पक्ष में रक्ताक्षी का अर्थ है थोडा सा लालवर्ण का अथवा रक्तरेखाओं से युक्त नयन । थोडा रक्त वर्णी आंखें सौन्दर्यलक्षण हे, सामुद्रिका शास्त्रानुसार। इस प्रकार, देवी का नाम उनके जौवन, सौन्दर्य, पतिप्रेम से प्राप्त दंभ आदि को सूचित करता है।

४३३. मदपाटलगण्डभूः

मद के कारण पाटल बने हुए गम्डस्थल से युक्त। नाम न. ४३१ से बताये गये अर्थ का यहाँ सांगत्य होता है। पाटल माने हलका लाल रंग। 'श्वेतरक्तस्तुपाटलः' (अमरकोश) गण्ड माने गाल।

यौवन और प्रिय के अनुराग से प्राप्त विकार के कारण पाटल बने हुए कपोलवाली। कवियों की कल्पना हे कि प्रिय के सामीप्य स्त्रियों में होनेवाले विकारों की बाहरी अभिव्यक्ति है कपोलों की आरक्तता। नित्ययौवन और सदा प्रिय के सामीप्य के कारण देवी का कपोल हमेशा पाटलवर्ण का है।

मद का अर्थ मद्यजन्य विकार है। इस अर्थ को मानने पर मद्य की उन्मादावस्था से जनित कपोल की पाटलता है। गत नाम में मद से होनेवाले रक्तवर्ण की व्याख्या हो चुकी है।

मद का एक अन्य अर्थ है कस्तूरि । कस्तूरि के रस से निर्मित चन्दन रेखा से और पाटलपुष्प को कानों में अलंकृत करने से शोभित होनेवाले गण्डभूवाली।

४३४. चन्दनद्रवदिग्धांगी

चन्दनद्रव से दिग्ध बने हुए अंगोंवाली। चन्दन के द्रव से बने सुगन्धित द्रव से लिपे अंगोंवाली। चन्दनद्रव शरीर के लिए अत्यंत उत्तम है। पूजा के सन्दर्भों में देवी को चन्दनद्रव लगाने की रीति है। स्थूलरूपवर्णन में देवी की शरीर-कान्ति का वर्णन किया जाता है।

४३५. चाम्पेयकुसुमप्रिया

चाम्पेय कुसुमों को प्यार करनेवाली। चाम्पेय कुसुमों को नागकेसर पुष्प और चंपका फूल भी कहते हैं।

४३६. कुशला

कौशलवाली। समर्था। सृष्टि, रक्षा, संहार आदि में कौशल रखनेवाली। भक्तों को तापत्रयों से बचानेवाली। कुशं लाति इस प्रकार कुशल शब्द का विग्रह करने से जल को दान करनेवाली होता है। जल का मतलब है, पापों का निर्माजन करना। इस प्रकार पापों का नाश करनेवाली।

शला शब्द का अर्थ है चन्द्र। कुत्सित शला इसप्रकार माने तो यह भाव आता है कि देवी के सम्मुख चन्द्र की शोभा कुत्सित हो जाती है। चन्द्रमा से ज़्यादा मुखकान्ति रखनेवाली।

४३७. कोमलाकारा

कोमल आकार से युक्त। स्थूलरूपवर्णन में सौन्दर्य का लक्षण है शोभायमान अंगों से युक्त। सुन्दरी।

४३८. कुरुकुल्ला

ललितोपाख्यान में श्रीपुर का वर्णन है। अहंकारप्राकार और बुद्धिप्राकार दोनों के बीच की जगह विमर्श है। उसे वापी कहते हैं। उस वापी का जल सुषुम्ना का अमृतजल है। (महान योगी जबसमाधि में बैठते हैं तब सुषुम्ना में अमृतवर्षा होती है। विमर्शवापी की अधिपति देवी का नाम है कुरुकुल्ला।

"तत्र नौकेश्वरी देवी कुरुकुल्लेति विश्रुता
तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी
नौकेश्वरीभिरन्याभिः स्वसमानाभिरावृता
रक्तारित्रकरा नित्यमुल्लसन्मदमांसला
प्रियंकरेण संयुक्ता प्रियेण श्रीक्रमोत्सुका
परितो भ्राम्यति मुने मणिनौकाधिरोहिणी" - (ललितोपाख्यान-३१-४१-४३)

विमर्शवापी की नौका पर उत्तरदाइत्व इसको प्राप्त है। अतः इनका नाम नामकेश्वरी बना। नाम का अर्थ है, कुरुकुल्ला रूप में स्थित रहनेवाली।

"कुरुविन्दतरणिनिलयां कुलाचलस्पर्द्धिकुचनमम्मध्याँ
कुंकुमविलिप्तगात्रीं कुरुकुल्लां मनसिकुर्महे सततम्"

४३९. कुलेश्वरी

कुल की ईश्वरी। कुल के अनेक अर्थ हैं। " कुलं जनपदे गोत्रे सजातीय गणेपि च" (मेदिनी निघंटु) जनपद की ईश्वरी। जनपद माने राज्य। जनवास। नगरवासिनी। गोत्रों की ईश्वरी। सजातीय वस्तुओं और व्यक्तियों के समूह को कुल कहते हैं। सौभाग्यभास्कर में कहा गया है कि मातृमानमेयों का समूह कुल है।

कुलेश्वर का अर्थ है शिव। इस अर्थ में शिवस्वरूपिणी।

४४०. कुलकुण्डालया

कुलकुण्ड को आलय बनानेवाली। कुलकुण्ड में रहनेवाली।

"सुधाधारा सारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपंचं सिंचन्ती पुनरपि रसाम्नाय महसः
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयम्
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डेकुहरिणिः" (सौ.ल.-१०)

(अयि लोकमाता, आपके चरणारविन्द से निर्गलित अमृतधाराप्रवाह से उपासक के शरीरान्तर्भाग में स्थित नाडीसमूह को भिगोकर उस चन्द्रमण्डल जो अमृताधिक कान्तियुक्त और सहस्रदल पद्म में श्रीचक्ररूप में विराजनेवाला है, से लौटकर अपने निजी आवास में याने मूलाधार चक्र में पधारकर साढे तीन वलय बनाकर सूक्ष्म रन्ध्रवाले मूलाधार रूपी मूलकन्द कुहर में आप निद्राधीन रहती है।

मूलाधार वह स्थान है जो सुषुम्ना मार्ग के नीचे कमलकन्द की आकृति में रहता है। जैसे कमलकन्द के मध्य में एक सूक्ष्म द्वार है वैसे मूलाधार में एक सूक्ष्म द्वार है। उसमें बिसतन्तुतनीयसी होकर कुण्डलिनीशक्ति अध्युष्टवलयित हो सो रही है। मूलाधार की कर्णिका में होनेवाला द्वार है कुलकुण्ड। उसी कुलकुण्ड में रहनेवाली है कुलकुण्डालया।

४४१. कौलमार्गतत्परसेविता

उन लोगों से सेविता जो कौलमार्ग में तत्पर होते हैं। कौल का अर्थ है कुलसम्बन्धी।

"यस्य यस्य हि या देवी कुलमार्गेण संस्थिता
तेन तेन च सा पूज्या बलिगन्धानुलेपनैः
नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पूजयेत् कुलमार्गतः" (व्रतखण्ड)

कौल पद तंत्र शात्र के अनुसार एक अनुष्ठन पद्धति है। बलि, गन्धानुलेपन, नैवेद्य आदि अंगों से युक्त पूजा की जानेवाली प्रथा है कौल।

कौल शब्द तंत्र शास्त्र के अनुसार एक अनुष्ठन पद्धति होने के कारण शाक्तेयों के बीच में बहुत मशहूर है। श्रीविद्या की उपासना करनेवाले तीन विभिन्न मार्गों का अनुसरण करते हैं। उनके नाम हैं समय, कौल और मिश्र। वेदमार्गीय उपासना और कर्म है समय। वसिष्ठ, सनक, शुक, सनन्द, सनत्कुमार ये पांच महर्षि इनके आचार्य हैं। इस रीति के कर्मों और अनुष्ठनों का वर्णन करनेवाले आगमों को शुभागमपंचक कहते हैं। मिश्र नामक विभाग में चन्द्रकला, ज्योत्स्नावती, कलानिधि, कुळार्ण्णव, कुलेश्वरी, बार्हस्पत्य, दुर्वासमत इसप्रकार आठ तंत्र आते हैं। इन आठ मार्गों में सव्यमार्गी एवं अपसव्यमार्गी दोनों विभागों के अनुष्ठन होते हैं।

इन दोनों के अलावा चौंसठ तंत्रों में फैले हुए अनुष्ठानों को प्रत्येक का परिचय देते हुए कौल पद का प्रयोग किया जाता है। चौंसठ तंत्रों के नाम चतुश्शति में इसप्रकार रेखांकित हैं:

"महामायाशंबरंच योगिनीजालशंबरम्
तत्वशंबरकंचैव भैरवाष्टकमेव च
बहुरूपाष्टकं चैव यामलाष्टकमेव च
चन्द्रज्ञानं मालिनी च महासम्मोहनं तथा
वामजुष्टं महादेवं वातुलं वातुलोत्तरम्
हृद्भेदं तंत्रभेदं च गुह्यतंत्रं च कामिकम

कलावादं कलासारं तथान्यत् कुण्डिकामतम्
मतोत्तरं च वीणाख्यं त्रोतलं त्रोतलोत्तरम्
पंचामृतं रूपभेदं भूतोड्डामरमेव च
कुलसारं कुलोड्डीशं कुलचूडामणिस्तथा
सर्वज्ञानोत्तरंचैव महाकालीमतं तथा
अरुणेशं मोदिनीशं विकुण्ठेश्वरमेव च
पूर्वपश्चिमदक्षं च उत्तरं च निरुत्तरम्
विमलं विमलोत्तं च देवीमतमनुत्तमम्"

इन तंत्रों में अनेक ऐहिक सिद्धियों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। ऐहिक सिद्धियों को पाने पर उससे प्राप्त प्रशस्ति और सिद्धि पर गर्व के कारण ज्ञानी लोग भी उपासना का लक्ष्य भूल जाते हैं। अतः कुछ तपस्वी एवं आचार्य इसे छोड देने का उपदेश देते हैं। "चतुः षष्ट्या तंत्रैः सकलमति सन्धाय भुवनं" (सौन्दर्यलहरी-३१)

प्रस्तुत श्लोक में यह जो कहा गया है कि पशुपति ने जगत को धोखा दिया है, इस अर्थ से है कि कौलतंत्र के अनुष्ठन से प्राप्त सिद्धियों के कारण उपासकों को परमलक्ष्य तक अर्थात् मोक्ष तक पहूँचने में रूकावट हो जाती है। इन सिद्धियों के बल पर उपासकों को वह शक्ति प्राप्त होती है जिससे प्रपंचशक्तियों को उपासक अपने वशवर्तिनी बना सकते हैं। इस प्रकार सिद्धियों का दुरुपयोग वे योग्य गुरुवों को न पाने से अथवा मनोनियंत्रण न होने से करते हैं। कौलमार्गतत्पर उपासना ऐहिक सिद्धियों की उपासना नहीं करते, बल्कि देवी की उपासना ही करते हैं। यही सूचना नाम से व्यक्त होती है।

४४२. कुमारगणनाथाम्बा

कुमार स्कन्द और गणनाथ (गजानन) दोनों की माता।

"कुत्सितो मारगणः स्मरविकारसमूहो येषाम्
तान्नाथानम्बते बध्नातीति वा" (सौभाग्यभास्करम)

इसके अनुसार, कुत्सिति, (निंदा करने योग्य) कामविकारों को रोकनेवाली। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति को बाधा पहूँचानेवाला विकार है कामजन्य विकार।

"काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्" (गीता-३-३७)

इसी काम विकार को रोककर अपने भक्तों को मोक्षमार्ग में पहूँचानेवाली।

सौभाग्यभास्कर के अनुसार कुमार शब्द का अर्थ अहंकार को द्योतित करता है। उसके लिए प्रमाण प्रस्तुत करता है:

"पुरुषो विष्णुरित्युक्तः शिवो वा नाम नामतः
अव्यक्तं तु उमादेवी श्रीर्वा पद्मनिभेक्षणा
तत् संयोगादहंकारः स च सेनापतिर्गुहः" (वराहपुराण)

पुरुष और प्रकृति के संयोग से जनित अहंकार ही गुह है। अहंकारगणों को रोकनेवाली, यही इस पक्ष में अर्थ है।

४४३. तुष्टिः

तुष्टि स्वरूपधारण करनेवाली। या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता नमस्तसै नमस्तस्यै नमस्तसै नमो नमः (देवीमाहात्म्य अध्याय ५)

आग्रहों की पूर्ति होने से जो आनन्द है वही तुष्टि है। सर्वप्राणियों में अभिलाषा की पूर्ति का आनन्द वह देवीरूप है।

पद्मपुराण में देवीमन्दिरों के वर्णनों के साथ प्रत्येक देवी की पूजा की विधि बतायी गयी है। "तुष्टिर्वस्त्रेश्वरे तथा देवदारूवने पुष्टिः धृतिः पिण्डारकक्षेत्रे" जैसे। वस्त्रेश्वर क्षेत्र में पूजी जानेवाली देवी।

४४४. पुष्टिः

जो पैदा हुआ है उसका नाश भी हुआ है । उत्पत्ति और नश के बीच दो प्रकार का भेदभाव है। पहला बढना याने वृद्धि और दूसरा क्षय अथवा दौर्बल्य। सृष्टि की चेतना शक्ति की प्रेरणा से वृद्धि और क्षय होता है। जो अनादि है उसे वृद्धि क्षय और नाश नहीं है। जो पैदा हुआ है अथवा होता है वह पुष्टि रूपिणी होकर रहनेवाली देवी ही है, इसलिए उनका नाम पुष्टि है।

मनुष्य सम्बन्धी पुष्टि निम्न हैः वाक्, ज्ञान, शरीर, इन्द्रिय, क्षेत्र, धनधान्य, प्रजा, गाय, ग्राम, धर्म ये दस हैं। इन रूपों में पोषिता।

उपर्युक्त नाम की व्याख्या के अनुसार जो पद्मपुराण से सम्बन्धित है दारुवन क्षेत्रवासिनी देवी पुष्टि हैं।

४४५. मतिः

बुद्धि। विशेषकर शास्त्रोपस्कृत बुद्धि हे मति। मन, इच्छाशक्ति इत्यादि अर्थों में भी प्रयुक्त है। बुद्धिरूपिणी हे, इसलिए देवी मति है।

४४६. धृतिः

धैर्य। विशेषकर शास्त्र से उपस्कृत बुद्धि। धैर्य देवीरूप है। इसलिए धृतिः है। सोलह माताओं में एक माता का नाम धृति है। उस माता के रूप में रहनेवाली ।

"पिण्डाकार क्षेत्राधिवासिनी देवी"। (पद्मपुराण का उद्धरण देखें)

४४७. शान्तिः

शान्ति वह है जिसमें ज़्यादा या कमी नहीं, और विकारों से तरलित नहीं होता, निस्पन्द एवं समतुलित अवस्था है। इस स्थिति में मन परब्रह्म से मिल जाता है। तापत्रयों से विवश मानव

बिरले ही पा जाने योग्य इस अवस्था को चिदानन्द अथवा ब्रह्मानन्द बताते हैं ऋषि। देवी शान्ति स्वरूपिणी है।

"या देवी सर्वभूर्तेषु शान्ति रूपेणसंस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः" (देवीमाहात्म्य-अध्याय ५)

४४८. स्वस्तिमती

"स्वस्त्याशीः क्षेमनिष्पापपुण्यमंगलवाचकः" इस रत्न कोशवाक्य के अनुसार स्वस्ति शब्द के आशीष, क्षेम, पापहीनता, पुण्य, मंगल आदि अर्थ हैं। क्षेमदारित् निष्पापता, पुण्यरूपिणी, मंगलस्वरूपिणी इस प्रकार इसकी व्याख्या है। 'स्वस्तीत्यविनाशिनामे' यही यास्क का अभिमत है। नाम का अर्थ है नाशरहित।

४४९. कान्तिः

दूसरों को आश्चर्य लगनेवाली शोभा ही कान्ति है। सौन्दर्य, प्रकाश किरण, कामविकार से स्त्रियों में होनेवाली सौन्दर्याधिक्य इन भावों में भी कान्ति का अर्थ है। ये सब अर्थ प्रथमोक्त भाव से मिले-जुले हैं।

इच्छा यह आशय कान्ति का होता है। 'कान्तिशब्देन इच्छाशक्तिर्वोच्यते' (सौभाग्यभास्कर)

इस पक्ष में इच्छशक्तिस्वरूपिणी है देवी।

चन्द्रमा की कलाओं में एक का नाम कान्ति है। चन्द्रमा की पत्नी के रूप में भी कान्ति का वर्णन है। कान्ति का रूपधारण करनेवाली यह अर्थ सार्थक है।

साहित्य शास्त्र में काव्यगुणों में एक का कान्ति नाम है। उज्ज्वल पद, रस दीप्ति ये ही लक्षण हैं। देवी सारी कलाओं में सौन्दर्यांश हैं।

४५०. नन्दिनी

सन्तोष देनेवाली। आनन्द स्वरूपिणी देवी सारे प्राणियों को आनन्द प्रदान करती हैं। भक्तों को आनन्द प्रदान करनेवाली।

कामधेनु नामक गाय की पुत्री। कामधेनु की तरह सारी इच्छाओं की पूर्ति करनेवाली। कामधेनु की तरह नन्दिनी भी सारी इच्छाओं की पूर्ति कर सकती है। नन्दिनी भी देवीस्वरूप है।

गंगा का नन्दिनी नाम भी है। सकल प्राणियों का पाप दूर करनेवाली है गंगा, गंगा भी देवीस्वरूप है।

नन्दिनी का नाम तुलसी का भी होता है। सारे पापों का नाश करनेवाली तो है।

नन्दगोप और यशोदा की पुत्री के रूप में कात्यायनी का अवतार हुआ। भागवत में यह कथा वर्णित है। यह शब्द उसी देवी के लिए भी लागू है।

४५१. विघ्ननाशिनी

विघ्नों का नाश करनेवाली। धर्मार्थ काम मोक्ष जैसे पुरुषार्थों से होनेवाले प्रयत्नों में कई प्रकार के विघ्न होते हैं। इन विघ्नों का नाश करनेवाली।

४५२. तेजोवती

तेज से युक्त। तेज का अर्थ है प्रकाश, शोभा आदि। प्रकाश फैलानेवाली। तेज शब्द से सूरज, चन्द्रमा,अग्नि इन तीनों को भी सूचित किया जाता है। पुराणों का कहना है कि सूर्य,चन्द्र और अग्नि देवता अनेक कालों में तप करके देवी के पादनखों से निकलने वाले प्रकाश से अल्पमात्र को स्वीकार करके ही तेजोरूपी बने हैं। आदित्यादि के आधारभूत होने से देवी तोजोवती है।

बल, स्वर्ग, रेतस, अग्निज्वाला, गरमी, मज्जा इत्यादि अर्थ भी तेजस का है। इन अर्थों के साथ देवी का सम्बन्ध ठीक है। तेजस का एक अन्य अर्थ है सत्वगुण से उत्पन्न लिंगशरीर (सूक्ष्म शरीर)। स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीर देवीरूप होने से वे अर्थ भी सही हैं।

४५३. त्रिनयना

तीन आँखोंवाली। देवी की तीन आँखें हैं सूर्य-चन्द्र और अग्नि। (पुराण)

"अहस्सूते सव्यं तवनयनमर्कात्मकतया
त्रियामां वामं ते सृजति रजनी नायकतया
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलित हेमांबुजरुचि-
स्समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीं" (सौ.ल. ४८)

अयि देवी, आपकी सूर्यरूपी दाहिनी आँख दिन को सूचित करती है। चन्द्ररूप बायीं आंख रात्रि की सूचना है। थोडी खुली अरूणकमल जैसी शोभित तीसरी आँख अग्निरूपी बनी तो सन्ध्या का सृजन करती है। (सौन्दर्य लहरी में, देवी की आँखें कालत्रयों के लिए कारण बनी हैं, यही सूचना है)

मंत्रपारायण में आवर्तनाधीन शब्द 'वौषड' का अर्थ भी त्रिनयना है । नयन शब्द का एक अर्थ है प्रमाण। प्रमाण तीन तरह का होता है। स्वानुभवरूप शब्द, प्रत्यक्ष मनन से जाने जानेवाला शब्द अनुमान, और सुनकर जाननेवाला शब्दरूप है। इन तीनों प्रमाणों को देवीरूप माना जा सकता है।

दक्षिण, उत्तर, ब्राह्म इन तीन मार्गों से जीवों को ले चलनेवाली, इस अर्थ में इस नाम की व्याख्या है।

"दक्षिणं चोत्तरं लोकं तथा ब्रह्मायनं परम्
नयं सन्मार्गवर्गं च नेत्री त्रिनयना मता" (देवीपुराण)

४५४. लोलाक्षीकामरूपिणी

लोलाक्षियों में कामरूपिणी होकर रहनेवाली। स्त्रियों के लिए मन्मथ स्वरूपिणी। प्रथम पक्ष में गीता में भगवान के प्रस्ताव के अनुसार जो काम धर्म विरुद्ध नहीं है वही।

"बलं बलवतां चाहं कामराग विवर्जितम्
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ"

मानव को काम दोष देनेवाला है, पर, धर्मानुसार होनेवाला काम एक अनिवार्य घटक है। खासकर लोलाक्षियों में होनेवाला काम धर्मानुसार है, तो अलंकार भी है। लोलाक्षियों में धर्मानुसृत काम के रूप में रहनेवाली देवी।

पराशक्ति की सेवा में आठ माताएं हैं। योगेश्वरी, माहेश्वरी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कल्याणी, इन्द्राणी, यमदंडधरा, और वाराही। इन्हें जीव चेतनाओं का आवरण करनेवाले कामादि विकारों के रूप में भी मानते हैं।

"काम क्रोधस्तथा लोभो मदो मोहश्च पंचमः
मात्सर्यं षष्ट मित्याहुः पैशून्यं सप्तमं तथा
असूया त्वष्टमी ज्ञेया इत्येता अष्टमातरः
कामं योगीश्वरीं विद्धि क्रोधं महेश्वरीं तथा
लोभस्तु वैष्णवी प्रोक्ता बह्माणी मद एव च
मोहः स्वयंभूः कल्याणी मात्सर्य चेन्द्रजां विदुः
यमदंडधरा देवी पैशून्यं स्वयमेव च
असूया च वराहाख्या इत्येताः परिकीर्त्तिताः"

वराह पुराण में यह वार्ता मिलती है। इस अर्थ में लोलाक्षी रूप को धारण करनेवाली (सौभाग्य भास्कर)

४५५. मालिनी

माला पहनी हुई। अक्षर माला रूपिणी है देवी। मालिनी शब्द के अर्थ है आकाशगंगा और गंगा। इस पक्ष में गंगा रूप में रहनेवाली।

साहित्य शास्त्र में मालिनी का अर्थ एक प्रसिद्ध छन्द से है। वह छन्द रूपधारण किये हुई।

पार्वती देवी की एक सखी का नाम मालिनी है। "सप्तभिर मालिनी सा स्याद" इसप्रकार उक्ति है धौम्य से निर्मित कन्याप्रकरण में। इस अर्थ में सात वर्ष की कन्या। सात वर्ष की कन्या के रूप में रहनेवाली।

४५६. हंसिनी

यतियों में एक विभाग को हंस कहते हैं। हंस पद पर पहुँची हुई। हंसों से आराधिता। हंस का अर्थ एक पक्षी का भी है। हंसों से आवृत रहने से हंसिनी। हंस देवी का वाहन है।

हंस शब्द का अर्थ जीवात्मा भी है। जीवात्मा रूप में सब प्राणियों में रहनेवाली।

हंस नामक अजपा गायत्री मंत्र की अधिष्ठन देवता।

४५७. माता

माँ। प्रथम नाम में श्री के साथ इस नाम का प्रयोग हुआ है। मंत्रार्थ में नित्या देवियों में दसवां देवी को माता कहते हैं। उसी देवी की स्तुति में यह नाम प्रयुक्त है। सभी मंत्रों के लिए माता जो हैं।

मंत्राणां मातृभूता च मातृका परमेश्वरी (स्कन्द पुराण)

लक्ष्मी बीज को माता कहते हैं। उस रूप को धारण करनेवाली।

कायावरोहण क्षेत्र में जो देवी आराधित है वह माता है। उसी देवी को भी यह नाम प्रयुक्त है।

पहले नाम में सूचित मां का संकल्प उपासकों केलिए अपनाने और आराधना करने में सुविधाजनक है। इसलिए वह अर्थ यहाँ भी स्वीकार्य है।

४५८. मलयाचलवासिनी

मलयपर्वत में निवास करनेवाली।

४५९. सुमुखी

सुन्दर एवं सामुद्रिक विधि के अनुसार निर्दोष मुखवाली। ज्ञान से वर्द्धित मुखकान्ति से युक्त देवी।

संगीत शास्त्र के अनुसार एक प्रसिद्ध राग। वह राग स्वरूप धारण करनेवाली।

४६०. नलिनी

कर, पाद, आंख, मुख इत्यादि अंगों की कमनीयता और मृदुता से कमल के साथ उपमा की जाती है। नलिनी शब्द का आकाशगंगा अर्थ भी होता है।

नल नामक राजा ने देवी की उपासना करके उनसे तादात्म्य प्राप्त किया। इसलिए देवी को नलिनी नाम आया।

४६१. सुभ्रूः

मनोहर भौहों से युक्त ।

"भ्रुवौ भुग्ने किंचित् भुवन भयभंगव्यसनिनि
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृत्गुणम
धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतेः
प्रकोष्ठे मुष्ठौ च स्थगयति निगूढ़ान्तरमुमे" (सौ.ल.)

जगद्वासियों के भय को दूर करनेवाली हे उमे, मेरी यही शंका है कि आपकी थोड़ी झुकी हुई भौंहें, भ्रमरों जैसी आँखों रूपी प्रत्व्यंचा और कामदेव के दाहिने हाथ में रहनेवाली नासिका दण्ड स्वरूप प्रकोष्ठमुष्ठियों द्वारा छिपे मध्यभाग रूपी धनुष है।

४६२. शोभना

सौन्दर्य के आधिक्य से शोभित होनेवाली। मंगलस्वरूपिणी।

४६३. सुरनायिका

देवों की नायिका। देवों की नायिका माने सारे जगत् की नायिका।

४६४. कालकण्ठी

काले रंग का कण्ठवाली। शिवपत्नी, शिवरूपिणी।

देवीपुराण में प्रस्तुत शिवक्षेत्रों में "कालंजरे कालकण्ठः" इत्यादि सूचना देनेवाले कालंजर क्षेत्र के अधिष्ठान देवता कालकण्ठी ।

काल शब्द का एक अर्थ मधुर एवं अस्फुट शब्द है। उस पक्ष में मधुर शब्दवाली।

४६५. कान्तिमती

कान्तियुक्त। मनोहरी। ४४९ नाम का सन्दर्भ देखें। वह शब्द कान्ति : है। दोनों में गहरा अर्थांतर नहीं है।

४६६. क्षोभिणी

क्षोभ पैदा करनेवाली। क्षोभ से तात्पर्य है उत्कट स्पन्दन, आन्दोलन। यह मानसिक हल-चल को सूचित किया जाता है। भौतिक वस्तुओं एवं जगत् को ठेस रूप से हिल-डुल जाने की सूचना देता है।

सौभाग्यभास्कर की व्याख्या है कि प्रकृति-पुरुष को सृष्टि के लिए प्रेरित करनेवाली। ऐसा क्षोभ पैदा करनेवाली। उसका तात्पर्य यह है कि प्रकृति और पुरुष दोनों के संयोग के लिए अपेक्षित क्षोभ पैदा करनेवाली पराशक्ति है। "प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरिः क्षोभयामास भगवान सर्गकाले व्यपाश्रितः" (विष्णुपुराण में प्रकृतिपुरुषक्षोभ का वर्णन)

वराह पुराण में बताया गया है कि देवी ने अपने क्षोभ से कुछ गणों को सृजित किया है।

"या मन्दरं गता देवी तपस्तप्तुं तु वैष्णवी
तस्यास्तपन्त्याः कालेन महतः क्षुभितं मनः
तस्मात् क्षोभात्समुत्तस्थुः कुमार्यः सौम्य दर्शनाः
नीलकुंचित केशान्ता बिम्बोष्ठ्या पद्मलोचनाः
इन्दीवर समा दामनूपुराढ्याः सुवर्चसः
एवं विधाः स्त्रियो देव्यः क्षोभिते मनसिद्रुतम्
उत्तस्थुः शतसाहस्राः कोटीशो विविधाननाः"

तपस्या करनेवाली देवी के क्षोभ से अनेक कोटि देवियों का अवतार हुआ। उन्हें जन्म देने से क्षोभिणी नाम है।

४६७. सूक्ष्मरूपिणी

सूक्ष्म रूपवाली। पहले कहा जा चुका है कि देवी के तीन रूप होते हैं, जैसे स्थूल, सूक्ष्म और परम्। उनमें सूक्ष्म रूपवाली। सूक्ष्म होने से दुर्ज्ञेय कहा जाता है। माने, जिसका रूप जाना नहीं जा सकता।

सूक्ष्म शब्द का अर्थ परमात्मा भी है। परमात्म रूपिणी भी है।

प्राणियों के शरीर के भी स्थूल-सूक्ष्म कारण भेद हैं। पंचभूत निर्मित और रक्तास्थिमज्जास्वरूप जो है वही स्थूल है। उसके भीतर काम करनेवाले, जीवात्मा, पंचप्राण, मन, ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय इन सबके मिलकर सूक्ष्मशरीर हैं। सूक्ष्म शरीर में सब प्राणियों में निवास करनेवाली।

एक होमकर्म का नाम सूक्ष्म है। उसी होम का रूप धरनेवाली।

४६८. वज्रेश्वरी

जालन्धर पीठस्था नित्यादेवी का नाम वज्रेश्वरी है। श्रीपुर में अस्त्रचक्र के ऊपर समयेश्वरी नाम से प्रसिद्ध चार देवियों का स्थान चक्र है। उन देवियों में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमाला इन तीनों के अलावा चौथी देवी है सर्वप्रपंच की माता ललिताम्बिका। ये सब देवियाँ ललिता देवी से अभिन्न होने से उनके नाम भी देवी के नाम हैं।

श्रीपुर के द्वादश प्राकारों में ग्यारहवें और बारहवें प्राकारों के बीच वज्रा नामक एक नदी बहती है।

"तत्रैव हीरकक्षोण्यां वज्रा नाम नदी मुने
वज्राकारैर्निबिडितैर्भासमाना तटद्रुमैः
वज्ररत्नैः सिकतिला वज्रद्रवमयोदका
सदा वहति सा सिन्धुः परितस्तत्र पावनी" (ललितो. २९-३१-३२)

सौभाग्य भास्कर के अनुसार देवी उस नदी की अधिनायिका है।

भण्डासुर के साथ जब युद्ध छिडा तब इन्द्र का वज्रायुध हट गया। वज्र के नष्ट होने से इन्द्र उस वज्रा नदी के पास बैठकर वज्रेश्वरी का ध्यान करके तप किया। देवी ने प्रसन्न होकर पानी से ऊपर उठकर वलान्तक को बज्र देकर उसे आश्वस्त किया। (ललितोपाख्यान-२९-अध्याय)

"भाण्डासुरेण गलिते मुक्ते वज्रे शतक्रतुः
तस्यास्तीरे तपस्तेपे वज्रेशींप्रति भक्तिमान्
तज्जलादुदिता देवी वज्रं दत्वा बलद्विषे
पुनरन्तर्दधे सोपि कृतार्थः स्वर्गमेयिवान्" (ललितोपाख्यान २९-३४, ३५)

४६९. वामदेवी

वामदेव माने अर्द्धनारीश्वर भगवान शिव। शिव की पत्नी वामदेवी।

वामा शब्द का अर्थ सुन्दरी भी है। सुन्दरी देवी वामा है।

वाममार्ग की आराधना की अधिष्ठात्री

"वामं विरुद्ध रूपन्तु विपरीतं च गीयते
वामेन सुखदा देवी वामदेवी ततः स्मृता" (देवीपुराण)

४७०. वयोवस्थाविवर्ज्जिता

जीवों के जन्म मरण के बीच में शैशव, बाल्य, कौमार, यौवन, वार्द्धक्य आदि अनेक अवस्थाओं से गुजरना है। लोगमाता देवी के सम्बन्ध में जन्म-मरण और अवस्था का कोई प्रश्न नहीं है। उपासक उन्हें नित्ययौवना, नित्यबालिका अथवा नित्यवृद्धा मान सकते हैं और उसी अनुसार उपासना कर सकते हैं। फिर भी देवी की वयोवस्था नहीं है।

४७१. सिद्धेश्वरी

सिद्धजनों की ईश्वरी। सिद्ध वह है जिसने अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त कर ली हैं। उन सिद्ध जनों के लिए देवी सिद्धेश्वरी है जिन्होंने देवी की तपस्या से सिद्धि प्राप्त की है।

४७२. सिद्धविद्या

सिद्धविद्यारूपिणी। पंचदशीमंत्र का एक नाम सिद्धविद्या है। यह मंत्र रूप धारण करनेवाली। मंत्रोपदेश के पूर्व 'सिद्धारिचक्र शोधन' नामक एक कर्म करना है। गुरु यह देखता है कि शिष्य का लग्न और उसका स्वभाव मंत्रदीक्षा के लिए अनुकूल है कि नहीं। फिर उसे अनुकूल मंत्रोपदेश दिया जाता है, यही सिद्धारिचक्र शोधना है। पंचाक्षरी मंत्र और पंचदशाक्षरी मंत्र इन दोनों के लिए यह परीक्षा अनिवार्य नहीं है।

"नित्यानां सिद्धमंत्रत्वान्नावेक्ष्यास्त्वंशकादयः" यही कादिसिद्धांत है। यही विश्वास किया जाता है कि पंचदशाक्षरी सिद्धविद्या होने से जपनेवाले के दोषों को मिटा देती है और विधि के अनुसार जाप करने से साधक को सिद्धि की ओर ले चलती है।

४७३. सिद्धमाता

सिद्धों की माता। सिद्धों की सिद्धियाँ देवी से प्राप्त होने से उन्हें देवी की सन्तान का पद प्राप्त होता है। देवी सारे चराचर जगत् की मां हैं। फिर भी सिद्ध जन सारे लौकिक बन्धनों से मुक्ति-प्राप्त होने से उनके संरक्षण का दाइत्व देवी को है। अतः उनकी मां हैं।

४७४. यशस्विनी

जिसे यश प्राप्त है। देवी के महत्वपूर्ण प्रभावों एवं करुण स्वभाव से वे यशस्विनी हैं।

४७५. विशुद्धिचक्रनिलया

विशुद्धिचक्र में निवास करनेवाली। (आगे के बासठ नामों में देवी का वर्णन आधारचक्रों में रहनेवाली योगनी के रूप में करते हैं। प्रत्येक चक्र में देवी के रूप, वर्ण, आभरण, आयुध आदि का वर्णन है, साथ ही उन्हें समर्पित किये जानेवाले नैवेद्य की भी सूचना है। षड् आधारों के क्रमानुसार ऊपर को पांचवां आधार है विशुद्धि चक्र। यह चक्र अनाहत चक्र के ऊपर आज्ञाचक्र

के नीचे कण्ठकूप में अवस्थित है। जीवन ब्रह्मपद के निकट पहुँच कर आणवादि मलों का शुद्धीकरण हो जाता है यहाँ। इसलिए इस चक्र का नाम विशुद्धिचक्र है। विशुद्धि चक्र में देवी को डाकिनी रूप में ध्यान किया जाता है।

"ग्रीवाकूपे विशुद्धौ नृपदलकमले श्वेतरक्तां त्रिनेत्राम्
हस्तैः रवट्वांगरवड्गौ त्रिशिखमपि महाचर्य संधारयन्तीम्
वक्त्रेणैकेन युक्तां पशुजनभयदां पायसानैकसक्ताम्
त्वक्स्थां वन्देऽमृताद्यैः परिवृतवपुषं डाकिनीं वीरवन्द्याम्।"

यही डाकिनी ध्यान है। इन ध्यानश्लोकों के अंश ही नामों में आये हैं।

विशुद्धिचक्र सोलह दलोंवाले कमल की आकृति का है। उसकी कर्णिका में डाकिनी रूप में रहनेवाली।

४७६. आरक्तवर्णा

यह नाम सूचित करता है कि विशुद्धिचक्र में डाकिनी रूपधारिणी जो देवी विद्यमान है उनका वर्ण आरक्त है। पाटली कुसुम का आरक्त वर्ण यहाँ देवी का वर्ण है।

४७७. त्रिलोचना

तीन आँखोंवाली।

४७८. खट्वांगादिप्रहरणा

खट्वांग आदि प्रहरणायुधों से युक्त। खाट के पैर के समान एक हथियार है खट्वांग। और एक अर्थ है दण्ड में जोडा हुआ मनुष्यमस्तक। अन्य आयुधों को ध्यानश्लोक में से स्वीकार किया जा सकता है। खड्ग, त्रिशिख, महाचर्म, इत्यादि।

४७९. वदनैकसमन्विता

एक वदनवाली। एकमुखी

४८०. पायसान्नप्रिया

पयोरूपी अन्न है पायसान्न। खीर। खीर को पसन्द करनेवाली।

४८१. त्वक्स्था

त्वक् धातु में रहनेवाली।

४८२. पशुलोकभयंकरी

पशुलोक के लिए भयंकरी। पशु का सामान्य अथ जानवर है। यहाँ पशुसमान मनुष्य की ओर इंगित है। 'विद्याविहीनः पशुः' यह आप्तवाक्य है। विद्याविहीन मनुष्य पशुसमान है। इस सन्दर्भ में विद्या शब्द का अर्थ भी विचारणीय है।

"अद्वैत विद्या विहीनाः पशवस्त एव लोकस्तेषां भयंकरी" (सौभाग्य भास्कर)

अद्वैत विद्या कहती है कि पराशक्ति, जीव और प्रपंच एक है। जिसे यह बोध नहीं होता उसके लिए देवी भयंकरी है।

स्वतः देवी सौम्य हैं और अपूर्व अवसरों में भयानक रूपों को भी धारण करती हैं। पुराणों में इसका वर्णन है। लेकिन उन भयानक रूपों से पशुस्वभावी मनुष्यों को ही भय लगता है। विद्वानों को भय नहीं लगेगा। विद्यावानों को यह धारणा हमोशा बनी रहती है कि देवी जगत की माता है, करुणामयी है, इसलिए जो कोई रूप वे धारण करें, तब भी भक्तजनों को वे करुणामयी हैं। अज्ञानी लोग दुराचारी होते हैं, इसलिए ऐसे लोग ही देवी का भयानक रूप देखकर डरते हैं।

४८३. अमृतादिमहाशक्तिसंवृता

अमृता आदि महाशक्तियों से घिरी हुई। पहले सूचित किया गया है कि सोलह दलोंवाले कमल का रूप है विशुद्धि-चक्र का। उसकी कर्णिका में महादेवी, जैसे ऊपर सूचित किया गया है, आरक्तवर्णा होकर, त्रिलोचना और स्वट्वांग आदि प्रहरणायुधों को धारण कर, एक वदना और खीर पसन्द करनेवाली होकर त्वक् में निवास करनेवाली और पशुलोक केलिए भयंकरी होकर विराजमान हैं। चारों तरफ के सोलह दलों में अमृता आदि सोलह शक्तियाँ देवी की सेवा में खडी हैं।

इन देवियों के नाम सौभाग्य भास्कर में नहीं दीखते । अमृताकारिणी, इन्द्राणी, ईशानी, उमा, ऊर्द्ध्वकेशी, इन पांच देवियों के नाम तमिल व्याख्या में मिलते हैं। इनमें दो नाम भास्कराचार्य ने भी अपनी व्याख्या में जोडा है। श्रीचक्र के भीतर वाले सर्वाशापरिपूरकचक्र के सोलह दलों में सोलह दैवशक्तियाँ हैं, जो आग्रह, बुद्धिशक्ति, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, धैर्य, स्मृति, नाम, बीज, आत्मा, अमृत, शरीर इनको आकर्षित करती रहती हैं।

अमृता, इन्द्राणी, ईशानी, उमा, ऊर्द्ध्वकेशी, रुद्रा ऋकारा, लृकारा, एकपदा, पेखरयात्मिका, ओंकारा, औषधी, अंबिका, अक्षरा, अमृता आदि महाशक्तियों से संवृता।

४८४. डाकिनीश्वरी

डाकिनी नामक ईश्वरी। डाकिनी देवी पैशाचिक वर्ग की देवता है। डाकिनियों को ईश्वरी रूप में भी जाना जाता है। व्याख्याताओं में अधिक लोगों का मत है, डाकिनी नाम की एक देवी है।

४८५. अनाहताब्जनिलया

षड़ आधारों में नीचे से ऊपर को चौथा आधार अनाहत है। मणिपूर के ऊपर और विशुद्धिचक्र के नीचे हृदय के समीप यह रहता है। इसलिए हृदयचक्र भी कहते हैं। इसके बारह दल हैं। उसी कमलाकार अनाहत की कर्णिका में राकिणी नामक लोकमाता ललितांबा का आवास है।

"हृद्पद्मे भानुपत्रे द्विवदनलसितां दम्ष्ट्रिणीं श्यामवर्णा-
मक्षं शूलं कपालं डमरुमपि भुजैर्धारयंतींत्रिनेत्राम्
रक्तस्थां कालरात्रिप्रभृति परिवृतां स्निग्धभक्तैक सक्ताम्
श्रीमद्वीरेन्द्रवंद्यामभिमतफलदां राकिणीं भावयामि"

यही राकिणी ध्यान है। अनाहतचक्र रूपी कमल की कर्णिका में रहनेवाली यही नाम का अर्थ है।

४८६. श्यामाभा

श्याम माने काली आभा से युक्त। कान्तियुक्त। ध्यानश्लोक में राकिणी देवी को श्यामवर्णा विशेषण दिया गया है।

सोलह वर्षोंवाली कन्यका केलिए श्यामा शब्द का प्रयोग है। वह रूप धारण करनेवाली।

४८७. वदनद्वया

दो मुखोंवाली।

४८८. दंष्ट्रोज्वला

दंष्ट्रों से उज्वला या शोभिता।

४८९. अक्षमालादिधरा

जपामाला। इस पक्ष में ध्यानश्लोक का एक आयुध अक्षमाला है। अक्षमाला, शूल, कपाल, डमरू आदि आयुध हैं। ऊपर लिखे ध्यानश्लोक में यह भी पाठभेद है, जैसे चक्र, शूल और कपाल। इस पाठभेद से व्यक्त होता है कि देवी का एक आयुध चक्र है।

सौभाग्य भास्कर का मत इसप्रकार है-

"अक्षस्य रथाङ्गस्य मां शोभां लाति आदत्त इत्यक्षमालं चक्रमित्याख्येयम्"

अक्ष का अर्थ रथांग मानकर उसके चक्र की व्याख्या की जाती है। मा का अर्थ है कान्ति। अक्ष का कान्ति अर्थ माना जाना थोडा क्लिष्ट है। पर आचार्य की व्याख्या होने से मान्य है।

४९०. रुधिरसंस्थिता

रुधिर (रक्त) में रहनेवाली।

४९१. कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृता।

कालरात्री आदि शक्ति समूहों से आवृता।

बारह दलोंवाले अनाहदाब्ज की कर्णिका में राकिणी स्वरूप में रहनेवाली देवी की सेवा करते हुए कालरात्री बगैरह बारह शक्तियाँ हैं। काळरात्री प्रलयस्वरूपिणी सर्वसंहार शक्ति है।

"प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रय विभाविनी
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा" (देवीमाहात्म्य में ब्रह्मा द्वारा देवीस्तुति)
"रौद्री तपोरता देवी तामसी शक्तिरुत्तमा
संहारकारिणी नाम्ना कालरात्रीति तां विदुः" (वराहपुराण)

(कालरात्री के साथ अनाहतचक्र में विराजमान अन्य शक्तियाँ हैं खण्डिता, गायत्री, खण्डाकर्षिणी, नगरणा, चण्डा, डाया, जया, झंकारिणी, ज्ञानरूपा, टंकहक्ता, टडाकारणी)

४९२. स्निग्धौदनप्रिया

स्निग्ध ओदन (घी से बना चावल) पसन्द करनेवाली ।

४९३. महावीरेन्द्रवरदा

महावीर इन्द्र आदि देवताओं को वर देनेवाली। महावीर माने महाविष्णु। विष्णु इन्द्र आदि देवों के लिए जहाँ देवी वरदा हैं वहाँ देवी का स्थान त्रिमूर्तियों से ऊपर है।

महावीर शब्द के दो अर्थ हैं हनुमान जी और गरुड। इस अर्थ में तात्पर्य है कि जिस देवी ने हनुमान को वर दिया है। गरुड को वर दिया है। महान वीर पुरुषों को वर देनेवाली।

वीर शब्द का अर्थ सौभाग्यभास्कर के अनुसार ब्रह्म रसामृतपानशील है। यह लाक्षणिक अर्थ है। इन्द्र शब्द का लाक्षणिकार्थ ब्रह्मवित् है। (ब्रह्मरूपी अमृतपान करनेवाले ज्ञानियों के लिए वरदा)

त्रितया भोक्ता वीरेशः इस शिवसूत्रवाक्य के अनुसार जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में तुरीय अनुसन्धानमग्न योगियों को ही वीरेन्द्र कहते हैं। यही सौभाग्य भास्कर का मत है। इस पक्ष में महा विशेषण श्रेष्ठता को सूचित करता है। और इस पक्ष में अर्थ है देवी महान और जितेन्द्रिय योगियों को वर देनेवाली हैं।

महावीर शब्द प्रह्लाद की सूचना देता है। इस पक्ष में प्रह्लाद और इन्दर को वर देनेवाली। इन्द्र और प्रह्लाद आपस में सौ वर्ष तक युद्ध करते रहे। अन्त में दोनों ने देवी की आराधना की। देवी भागवत के चतुर्थ अध्याय में यह वर्णन है।

४९४. राकिन्यंबास्वरूपिणी

राकिणी नामक देवी के स्वरूप में रहनेवाली।

४९५. मणिपूराब्जनिलया

मणिपूर नामक आधारचक्र में जो कमल आकार का है, अपना निवास बनाकर रहनेवाली। मूलाधार से लेकर ऊपर को तीसरा है मणिपूरक चक्र। स्वाधिष्ठान के ऊपर, अनाहत के नीचे के नाभिस्थल पर दस दलोंवाला यह चक्र रहता है।

"दिकपत्रे नाभिपद्मे त्रिवदनविलसद् दंष्ट्रिणीं रक्तवर्णां
शक्तिं दंभोलिदण्डावभयमपि भुजैर्धारयंतीं महोग्राम
डामर्याद्यैः परीतां पशुजनभयदां मांसधात्वेकनिष्ठाम्
गौडान्नासक्तचित्तां सकलसुखकरीं लाकिनीं भावयामः।" (यह लाकिनीध्यानश्लोक)

मणिपूरकरूपी कमल की कर्णिका में निवास करनेवाली।

४९६. वदनत्रयसंयुता

तीन मुखोंवाली।

४९७. वज्रादिकायुधोपेता

वज्र आदि आयुधों से युक्त। चारों हाथों में व्रज, शक्ति, दण्ड, अभय इन आयुधों को धारण करनेवाली।

४९८. डामर्यादिभिरावृता

डामरी आदि शक्तियों से घिरी हुई। मणिपूरक चक्र को कमल के रूप में चित्रित किया जा चुका है। उस कमल की कर्णिका में त्रिवदना और वज्रादि आयुधधारिणी देवी लाकिनी रूप में निवास करती हैं। मणिपूराब्ज के दस दलों में डामरी आदि दस शक्तियों की सेवा देवी को मिलती है।

४९९. रक्तवर्णा

लाल रंगवाली।

५००. मांसनिष्ठा

मांसधातु में निवास करनेवाली ।

५०१. गुडान्नप्रीतमानसा

गुड से बने अन्न में तत्परा। गुड से बना अन्न गुडान्न माने खीर।

५०२. समस्तभक्तसुखदा

सभी भक्तों को सुख देनेवाली। भक्तों को सभी प्रकार के सुख देनेवाली।

५०३. लाकिन्यम्बास्वरूपिणी

लाकिनी नमक अम्बा का रूप धारण की हुई।

५०४. स्वधिष्ठानाम्बुजगता

जिसने स्वाधिष्ठान पद्म को पा लिया है। स्वाधिष्ठान नामक आधारचक्र में रहनेवाली। मूलाधार के ऊपर और मणिपूरक के नीचे रहनेवाला आधारचक्र है स्वाधिष्ठान चक्र। छे दलोंवाले पद्म में काकिनी रूपी बनकर रहती है जगन्माता देवी।

"स्वाधिष्ठानाख्य पद्मे रसदललसिते वेदवत्क्रां त्रिनेत्राम्
हस्ताभ्यां धारयन्तीं त्रिशिखगुणकपालाभयान्यात्तगवॉम्

मेदोधातुप्रतिष्ठ्मलिमदमुदितां बन्दिनी मुख्ययुक्ताम्
पीतां दद्ध्योदनेष्टामभिमतफलदां काकिनीं भावयामी" (काकिनीध्यानं)

५०५. चतुर्वक्त्रमनोहरा

चार वदनों से सुन्दर बनी हुई।

५०६. शूलाद्यायुधसंपन्ना

शूल आदि आयुधों से सम्पन्ना बनी हुई। त्रिशूल, पाश, कपाल, और अभय इन आयुधों को पाणियों में धारण करनेवाली। पहलेवाले ध्यानश्लोक देखें।

५०७. पीतवर्णा

पीलेवर्णवाली

५०८. अतिगर्विता

अत्यधिक गर्वीली। सौन्दर्य, कुलीनता, सम्पदा अधिकार आदि से पैदा होनेवाला उद्धतभाव है गर्व। इस गर्व से युक्त।

५०९. मेदोनिष्ठा

मेद धातु में स्थित रहनेवाली।

५१०. मधुप्रीता

मधु पसन्द करनेवाली। मधु शब्द का शहद और शराब दो अर्थ है। मद्य पसन्द करनेवाली;

५११. बन्दिन्यादिसमन्विता

बन्दिनी आदियों से मिली हुई। स्वाधिष्ठन पद्म की कर्णिका में महादेवी काकिनी के रूप में निवास करती हैं। पद्म के छे दलों में रहनेवाली बन्दिनी आदि छे देवी शक्तियाँ देवी की सेवा करती रहती हैं। इन शक्तियों के नाम बन्दिनी, भद्रकाळी, महामाया, यशस्विनी, राका, लम्बोष्ठी ये छे शक्तियाँ।

५१२. दध्यन्नासक्तहृदया

दही मिला अन्न पसन्द करनेवाली।

५१३. काकिनीरूपधारिणी

काकिनी नामक देवी का रूप धारण करनेवाली।

५१४. मूलाधारांबुजारूढा

मूलाधार रूपी पद्म में आरूढा। षडाधारों में सबसे नीचे का चक्र है मूलाधार। अन्य आधारों के लिए यह मूल है। कुण्डलिनी के आकार में इस चक्र में पराशक्ति साढ़े तीन वलय में रहती है। इस पद्म के चार दल हैं। उसकी कर्णिका में जगदंबा साकिनी रूप में निवास करती है।

"मूलाधारस्थपद्मे श्रुतिदललासिते पंचवक्त्रां त्रिनेत्राम्
धूम्राभामस्थिसंस्थां सृणिमपि कमलं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्
बिभ्राणां बाहुदण्डैः सुललितवरदापूर्वशक्त्यावृतां ताम्
मुद्गान्नासक्तचित्तां मधुमदमुदितां साकिनीं भावयामः।" (साकिनी ध्यान)

५१५. पंचवक्त्रा

पाँच मुखोंवाली

५१६. अस्थिसंस्थिता

अस्थि में रहनेवाली

५१७. अंकुशादिप्रहरणा

अंकुशादि आयुधों को धारण करनेवाली। अंकुश, कमल, पुस्तक और ज्ञानमुद्रा, इन आयुधों को चार हाथों में धारण करनेवाली।

५१८. वरदादिनिषेविता

वरदा श्री, षण्ड, सरस्वती आदियों से सेविता। भास्कराचार्य के अनुसार वरदा सरस्वती का दूसरा नाम है।

५१९. मुद्गौदनासक्तचित्ता

(मुद्ग माने मूंग; ओदन माने भात)मुद्गौदन में आसक्ति रखनेवाली (मूंग और चावल दोनों को मिलाकर बनाया गया खाना)

५२०. साकिन्यम्बास्वरूपिणी

साकिनी नामक अंबा का रूप धारण करनेवाली

५२१. आज्ञाचक्राब्जनिलया

आज्ञाचक्र रूपी कमलपुष्प में रहनेवाली। षडाधारों में सब से ऊपर का आधार चक्र है आज्ञाचक्र। विशुद्धि चक्र के ऊपर भ्रूमध्य में इसका स्थान है। दो दलोंवाले और पद्म की आकृति वाले इस चक्र के कर्णिका स्थान में हाकिनी नामवाली योगिनी के रूप में निवास करनेवाली महादेवी।

"भ्रूमध्ये बिन्दु पद्मे दलयुग कलिते शुक्लवर्णां कराब्जर्-
विभ्राणां ज्ञान मुद्रां हमरुक ममनामक्षमालां कपालं
षड्चक्राधारमध्यां त्रिनयनलसितां हंसवत्यादि युक्तां
हारिद्रान्नैक सक्तां सकलसुखकरीं हाकिती भावयामः"

५२२. शुक्लवर्णा

सफेद वर्णवाली।

५२३. षडानना

छे मुखोंवाली ।

५२४. मज्जासंस्था

मज्जाधातु में निवास करनेवाली ।

५२५. हंसवतीमुख्यशक्तिसमन्विता

हंसवती और समावती ये दो शक्तियाँ आज्ञाचक्र के दो दलों में देवी की सेवा करते हुए रहती हैं। उनमें हंसवती मुख्य हैं। उन्हीं के साथ रहनेवाली।

५२६. हरिद्रान्नैकरसिका

हरिद्रान्न में मन रमानेवाली। हरिद्रम माने हल्दी। हल्दी मिला हुआ अन्न हरिद्रान्न। उसे पसन्द करनेवाली।

५२७. हाकिनीरूपधारिणी

हाकिनी नामक योगिनी का रूप धारण करनेवाली ।

५२८. सहस्रदलपद्मस्था

सहस्रदल पद्म में निवास करनेवाली। आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्रारपद्म का स्थान है। ब्रह्म रंध्र के नीचे स्थित सहस्रदलपद्म में, जिसके सहस्रदल हैं, याकिनी रूप में जगदम्बा निवास करती हैं।

"मुण्डव्योमस्थपद्मे दशशतदलके कर्णिका चन्द्रसंस्थाम्
रेतोनिष्ठ्र समस्तायुधकलितकरां सर्वतो वक्त्रपद्मां
आदिक्षान्तार्णशक्तिप्रकटपरिवृतां सर्ववर्णां भवानीम्
सर्वान्नासक्तचित्तां परशिवरसिकां याकिनीं भावयामिः" (याकिनी ध्यान)

५२९. सर्ववर्णोपशोभिता

सभी वर्णों द्वारा उपशोभित। वर्णों से तात्पर्य है, सफेद काला आदि रंग। मूलाधार जैसे आधारपद्मों के नानावर्णों के होने का कथन हुआ है। सहस्रार में याकिनी रूप में रहनेवाली माता के किसी निश्चित वर्ण नहीं बताया गया है। वहाँ वे सभी वर्णों द्वारा शोभित हैं। ऐसी प्रभा है जिसमें कौन सा वर्ण प्रमुख है, यह निश्चित नहीं किया जा सकता।

वर्ण शब्द अक्षरों का संकेत भी करता है। ध्याननिरत योगी के मन-चक्षु में उपास्य देवता का बीज मंत्राक्षर वर्ण रूप में प्रत्यक्ष होता है। बाद में व्याकरण शास्त्र में वर्ण शब्द को अक्षर समझा जाने लगा। अ से लेकर क्ष तक अनुलोम रूप में पचास अक्षर हैं। से लेकर अ तक के प्रतिलोम रूप में भी पचास अक्षर हैं। इस प्रकार दस बार का कुल अक्षर हज़ार है।

सर्व-वर्ण-उप-शोभिता इसप्रकार नाम को विभक्त करने से उप अंश का अर्थ दस है।

" उप शब्दस्योक्त परिभाषया दशसंख्या बोधकत्वासंभवात् च " (सौभाग्यभास्कर)

अमृत से क्षमा तक 'अ'कार से लेकर 'क्ष' कार तक के वर्ण का प्रातिनिधि पचास शक्तियों द्वारा है, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वे शक्तियाँ अनुलोम और प्रतिलोम रूप में दस बार देवी का वलय करके रहती हैं। अक्षर शक्यिाँ विविध रंगोंवाली होने से विभिन्न वर्णों का सम्मिश्रित होना और इसप्रकार देवी का ध्यान करनेवाले योगी के मन-नयन में सर्ववर्णों सें शोभित होना स्वाभाविक है। इससे नाम है सर्ववर्णोपशोभिता।

५३०. सर्वायुधधरा

सभी हथियारों को धारण करनेवाली। सबके हथियारों को धारण करनेवाली। हर देवता का अपना निश्चित हथियार है। विष्णु शंख-चक्र-गदा-पद्मपाणी हैं। शिव के आयुध शूलादि हैं। इन्द्र का वज्र। यहाँ नाम का अर्थ है सब देवताओं के आयुधों को धारण करनेवाली। देवी के रूप में सभी देवता विराजमान हैं।

५३१. शुक्लसंस्थिता

शुक्ल धातु में रहनेवाली। अन्य आधारों में रक्त, अस्थि, मज्जा, त्वक् आदि धातुओं में रहनेवाली देवी यहाँ शुक्ल धातु में विराजित है। सृष्टि की ओर संकेत किया जाता है।

५३२. सर्वतोमुखी

सभी दिशाओं में जिसके मुख हों।

"सर्वतः पाणिपादान्ते सर्वतोक्षिशिरोमुखे
सर्वतः श्रवणघ्राणे नारायणी नमोऽस्तुते " (देवीमाहात्म्य)

एकादश अध्याय की नारायणस्तुति। श्वेताश्वतरोपनिषद और भगवद्गीता में समान अर्थवाली पंक्तियाँ हैं।

"सर्वतः पाणिपदं तत् सर्वतोक्षिशिरोमुखं
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति" - (गीता-१३)

यह नाम सूचित करता है कि सर्व प्रपंच में भरी रहनेवाली पराशक्ति का विराट रूप ही सहस्रदल पद्म में याकिनी रूप में निवास करती है।

५३३. सर्वौदनप्रीतचित्ता

सभी ओदनों को पसन्द करनेवाला चित्त जिनका है। षडाधारों में रहनेवाली योगिनी रूपी अलग अलग देवियों के लिए अलग-अलग नैवेद्य समर्पित किया गया है। सहस्रार पद्म में याकिनी देवी सभी नैवेद्यों से संतुष्ट हैं। सर्वायुधधारी और सर्वतोमुखी देवी सर्व ओदनों से सन्तुष्ट भी हैं।

५३४. याकिन्यम्बास्वरूपिणी

याकिनि नामक अम्बाका रूप धारण की हूई ।

५३५. स्वाहा ५३६ स्वधा

(योगिनी रूप में देवी का वर्णन करने के पश्चात् देवी का, विभूति और आराधना मार्ग के भेदों का वर्णन किया जाता है।)

स्वाहा और स्वधा इन दोनों शब्दों को देवताओं को लक्ष्य करके किये जानेवाले द्रव्यों का त्याग सूचित किया जाता है। होम करते हुए मंत्रों के प्रारंभ में ओं लगा दिया जाता है और अंत में स्वाहा शब्द। स्वाहा शब्द से देवताओं का आह्वान इंगित किया जाता है।

"सोमसंस्था हविः संस्थाः पाक संस्थाश्च सप्तः
याः तास्त्वदुच्चारणाद्देवी क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः" (मार्कण्डेयपुराण)
"यस्या समस्त सुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवी
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुः
उच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च" (देवीमाहात्म्य)

प्रस्तुत पंक्तियाँ यह सूचित करती हैं कि स्वाहा शब्द के उच्चारण से देवसमूह और स्वधा शब्द के उच्चारण से पितर प्रसन्न होते हैं। देवी माहात्म्य में बह्मस्तुति के सन्दर्भ में निद्रारूपी देवी की स्तुति करते हुए देवी को स्वाहा और स्वधा के रूप में वर्णित हैं।-

"त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं ही वषट्कारस्वरात्मिका
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता"

ललितोपाख्यान में ललितास्तव राजस्तोत्र यह बताता है कि स्वाहा और स्वधा ये दोनों देवी के जगज्जीवनकारक दो स्तन हैं।-

"स्तनौ स्वाहास्वधाकारौ लोकोज्जीवनकारकौ"

देवयज्ञ और पितृयज्ञ आदि से संसार को उज्जीवन दिया जाता है, इसलिए स्तन कहा गया है।

तैत्तरीयोपनिषद में 'स्वैव ते वागित्यब्रवीत्' की व्याख्या करके स्वीय शब्द की स्थापना स्वाहा शब्द से की गयी है।

"स्वान्स्वकीयान् आजिहीते गच्छति" (अपने उद्देश्य से सम्बन्धित व्यक्ति के पास जाना) इसप्रकार भी स्वाहा शब्द का विश्लेषण किया है। स्वधा शब्द का 'सुष्ठु, आधीयतेऽनया" और "सुष्ठु अं विष्णुं स्वाति आदधाति" इन दो रूपों में विग्रह करके विष्णु को पुष्ट करना यह अर्थ भी माना गया है।

स्वाहा और स्वधा ये दोनों शोडशमाताओं में आती हैं- (गौरी, पद्मा, शचि, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, माता, लोकमाता, शान्ति, पुष्टि, धृति और तुष्टि। यही षोडशाक्षर माताएं हैं।

स्वाहा देवी को अग्नि की पत्नी के रूप में पुराणों में प्रकीर्तित है। लिंगपुराण के अनुसार शिवपत्नी और अग्निमूर्ति स्कन्द की माता है।-

"स्वाहा वह्न्यात्मनस्तस्यप्रोक्ता पशुपतेः प्रिया
षणमुखो भगवान देवो बुधैः पुत्र उदाहतः"

वायवीयपुराण में इसप्रकार दिखाई देता है:-

"नाम्ना पशुपतेर्या तु तनुरग्निर्द्विजैः स्मृता
तस्य पत्नी मृता स्वाहा स्कन्दश्चापि सुतःस्मृतः"

पद्मपुराण क्षेत्र गणना सन्दर्भ में माहेश्वर पीठ की अधिष्ठात्री के रूप में स्वाहा देवी का चित्रण है।-

"स्वाहा माहेश्वरे पुरे"।

पुराणों का कथन है कि स्वधा देवी दक्ष की और प्रसूति की पुत्री है। ब्रह्मा के मानसपुत्र अंगिरस की पत्नी।

स्वाहारूपिणी और स्वधारूपिणी ये ही नामों के अर्थ हैं।

५३७. अमतिः

अविद्यारूपिणी। प्राथमिक सृष्टि अबुद्धिपूर्वक होने से प्राथमिक सृष्टि के लिए कारणभूत अथवा प्राथमिक सृष्टि रूपी।

५३८. मेधा

शब्द का अर्थ है बुद्धि अथवा धारणा शक्ति। बुद्धिरूपी होकर सर्व प्राणियों में निवास करती हैं।

मेधासी देवी विदिताखिल शास्त्रसारा (देवी माहात्म्य चौथा अध्याय देवी स्तोत्र) यहाँ मेधा शब्द का अर्थ है सरस्वती। सरस्वती शब्द बुद्धि और धारणाशक्ति दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

"या देवी सर्वभूतेषु मेधा रूपेण संस्थिता
नमस्तसै नमस्तस्यै नमस्तसै नमोमनः" (देवीमाहात्म्य पंचम अध्याय)

मेधा शब्द का पाठभेद बुद्धि बना है। धीर धारणावती मेधा । इस निर्वचन से बुद्धि के रूप में व्याख्या की जा सकती है।

उपर्युक्त नाम की व्याख्या में उक्त अबुद्धिपूर्वक सृष्टि से अनुक्रम प्राप्त बुद्धिपूर्वक सृष्टि देवी ही है। इसलिए उस अर्थ में भी मेधा नाम है।

पद्मपुराण में प्रस्तावित देवी संकेतों में काश्मीर में पूजित होनेवाली देवी मेधा नामधारी है। 'मेधा काश्मीरमण्डले' (पद्मपुराण) उस देवी के रूप में रहनेवाली।

५३९. श्रुतिः

वेदस्वरूपिणी। श्रुति शब्द का अर्थ है जो सुना गया है। गुरुशिष्य की परम्परा में यह प्रचलित है कि जो गुरु के मुंह से सुने वह शिष्य हृदय में संरक्षित करें। वेद देवी के वर्णात्मक रूप हैं। इसलिए देवी नाम के रूप में श्रुति का प्रयोग है।

"ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया" (कूर्म्मपुराण)

ऋक्,यजुस; साम, अथर्व ये चार वेद नित्या देवी ललितांबिका की अव्यय शक्ति ही हैं।

५४०. स्मृतिः

स्मृतिरूपिणी। वेदों को आधार बनाकर ऋषियों ने जो धर्मशास्त्र रचे हैं वे ही स्मृतियाँ हैं। मनुस्मृति आदि अनेक स्मृतियाँ हैं। नाम का अर्थ है स्मृतिरूप में जो प्रत्यक्ष होती है, वह देवी ही हैं।

स्मृति का अर्थ स्मरण अथवा स्मरणशक्ति भी है। प्राणियों में स्मरण शक्ति के रूप में देवी रहती है। इसलिए यह नाम है।

"या देवी सर्वभूतेषु स्मृति रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः" (देवी.मा. अ. ५)
"मृत्युस्सर्वहरश्चाहं उद्भवश्चभविष्यताम्
कीर्तिः श्रीर्वाक् च नारीणां स्मृतिमेधा धृतिः क्षमा"

इसप्रकार गीता में भगवान स्वयं कहते हैं कि मैं ही स्मृति हूँ।

५४१. अनुत्तमा

अपने से बढ़कर जिसका और कोई नहीं है। सर्वश्रेष्ठ। "यदपेक्षयोत्तममन्न्यद्वस्तु नास्ति सानुत्तमा" अनुत्तमा शब्द को पृथक करके अनुत्त अर्थात् परप्रेरिता न होकर, मा (बुद्धि) युक्त। मा का अर्थ है ऐश्वर्य । तब बात है; दूसरों से न स्वीकार किया हुआ ऐश्वर्य जिसे है। सौभाग्यभास्कर की व्याख्या में स्वतंत्रबुद्धि, सहज ऐश्वर्यादि पदों से अनुत्तमा की व्यंजना है।

५४२. पुण्यकीर्तिः

जिसे पुण्यमय कीर्ति प्राप्त हो। देवी के माहात्म्य और कीर्ति को सुनना और सुनाना पुण्यप्रद है।

५४३. पुण्यलभ्या

पुण्य से प्राप्त होनेवाली। पूर्वपुण्य से ही देवी की स्मृति और आराधना कर सकते हैं। उसके लिए अवसर मिलेगा।

"अतस्त्वामाराध्याम् हरिहरविरिंचादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति"

(हरि-हर-विरिंच आदि देवों द्वारा भी पूजित देवी को प्रणाम करना अथवा उनकी स्तुति करना सुकृती द्वारा ही संभव है। (सौन्दर्य लहरी-प्रथम श्लोक)

"पश्यंति पुण्यपुंजाये ये वेदान्तास्तपस्विनः
रागिणो नैव पश्यन्ति देवीं भगवतीं शिवाम्"

इसप्रकार देवीभागवत भी बताता है कि पुण्य से ही देवी प्राप्त हो सकती हैं।

५४४. पुण्यश्रवणकीर्तना

देवी के कीर्तन को सुननेवालों और करनेवालों को पुण्य दान करनेवाली। पुराणों एवं आगमों की उद्घोषणा यह है कि देवी के अनन्त नामों में से एक का भक्ति भाव से उच्चारण करने से अथवा स्मरण करने से सारे पाप सूरज के सामने अन्धकार जैसे मिट जायेंगे। देवी की महिमाओं का वर्णन करना, उनसे संबन्धित कथाओं को पढ़ना, सुनना, दूसरों को बता देना, देवी स्तोत्रों का पारायण करना और सुनना आदि से जो अपार पुण्य सम्पदा प्राप्त होगी, उसका वर्णन करना असाध्य है।

५४५. पुलोमजार्चिता

पुलोमजा से (इन्द्राणी से) अर्चिता। देवीभागवत के एक कथाभाग की सूचना यह नाम देता है। नहुष नामक राजा ने कुछ समय तक इन्द्र के स्थान पार शासन किया। प्राप्त पद के कारण अहंकारवश नहुष ने चाहा कि इन्द्रपद के साथ इन्द्राणी भी मेरे अधीन होना चाहिए। पतिव्रता इन्द्राणी देवी (शचीदेवी) ने इस विपदा से बचने के लिए ललितादेवी की उपासना की और देवी की कृपा से नहुष से बच गयी। यही नहीं देवी ने इन्द्र को ब्रह्महत्या पाप से भी बचा लिया।

५४६. बन्धमोचिनी

बन्धन से मोचित करनेवाली। बन्धन शब्द का सामान्य अर्थ है गांठ। हरिवंश में यह प्रतिपादन है कि बाणासुर के जेल से अनिरुद्ध को मोचन मिला था देवी कृपा से। इस प्रकार पुराणों और इतिहासों में अनेक प्रतिपादन देवीकृपा से मोचन प्राप्त लोगों के मिलते हैं।

बंधन शब्द का अर्थ यह भी है संसार का बंधन। अविद्यामय संसार में जन्म लेकर और मरकर कर्म के बन्धन से फिर जन्म लेकर तापत्रयों के अधीन होकर कष्ट भोगनेवाले प्राणियों को सच्चा मार्ग दिखाकर मोक्ष के लिए योग्य बनानेवाली करुणामयी देवी है ललितादेवी।

५४७. बर्बरालका (पाठभेद है **बन्धुरालका**)

शब्दार्थ है घंघुराले बाल। ऐसे बालोंवाली। देवी के स्थूल रूप का वर्णन है। अंगों का सौन्दर्य वर्णन। "आनीलस्निग्धबर्बर कचानाम्" (ललितास्तवराज)

बन्धुरालका पाठ से यही अर्थ निकलता है कि मनोहर अलकोंवाली। निम्नोन्नत तरंगोंवाले मनोहर एवं घंघुराले अलकोंवाली।

५४८. विमर्शरूपिणी

जिनका स्वरूप विमर्श है वे। "प्रकाशात्मकस्य परब्रह्मणः स्वाभाविकं स्फुरणं विमर्श इत्युच्यते" इस निर्वचन के अनुसार प्रकाशात्मक परब्रह्म का स्वाभाविक स्फुरण विमर्श है। शिव प्रकाशरूपी परब्रह्म और शक्ति उनकी विमर्श रूपिणी किरण हैं। इनकी परस्पर अपेक्षा है अर्द्ध नारीश्वर। (तमिल व्याख्या) "वागर्थाविवसंपृक्तौ बागर्थ प्रतिपत्तये" वाले कालिदास के प्रसिद्ध श्लोक का वाक्-विमर्श, अर्थ-प्रकाश का अर्थ है।

"स्वाभाविकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य विद्यते शक्तिः
सैव चराचरमखिलं जनयति जगदेतदपि च संहरति"

(विमर्श रूपी शक्ति सारे चराचरों को पैदा करती है और उनका संहार करती है। (सौभाग्यसुधोदय)

वाच्यवाचक शब्दों में विमर्श वाचकशब्दों को इंगित करता है। वाच्यवाचकों में वाचक रूपी यह अर्थ भी निकलता है। इसके समर्थन के लिए मातृका विवेक से यह उद्धरण दिया जाता है:-

"वाचकेन विमर्शेन विना किं वा प्रकाश्यते
वाच्येनापि प्रकाशेन विना किं वा विमृश्यते
तस्माद् विमर्शो विस्फूर्तौ प्रकाशं समपेक्षते
प्रकाशश्चात्मनो ज्ञाने विमर्शं समपेक्षते"

५४९. विद्या

विद्यारूपिणी। मोक्ष देनेवाला ज्ञान जिसका रूप वह। चैतन्यस्वरूपी शक्ति। तेजोनिष्ठ कलाविशेष ही विद्या है। जिसका वही रूप हो वह।

"मायाकार्यविवेकेन वेत्ति विद्यापदं यया
सा कला परमा ज्ञेया विद्याज्ञानक्रियात्मिका।" (शैवतंत्र)
"या मुक्ति हेतुरविचिन्त्य महा व्रतैस्त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रिय सत्वसारैः
मौक्षार्थिभिर्म्मुनिभिरस्तसमस्त दौषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमासि देवी।"

(आप देवी मोक्षहेतुक आत्मविद्या है। उस विद्या की साधना अचिन्त्य और जाति देश काल समय से अविछिन्न महाव्रत है। निर्दोषी और मोक्षकामी मुनियों द्वारा विद्यारूपिणी देवी का अभ्यास किया जाता है। (देवीमाहात्म्य अध्याय चार में देवीस्तुति)

५५०. वियदादिजगत्प्रसू

आकाश आदि जगत की प्रसू (माता) बनी हुई। सृष्टि में पहले आकाश, बाद में अन्य लोक यही है क्रम। 'आत्मनआकाशसंभूत' (श्रुति)।

आकाश और जगत् के सारे गोलकों एवं चराचर और सारे जीवों को पैदा करनेवाली यानी माता जगज्जननी।

५५१. सर्वव्याधिप्रशमनी

व्याधियाँ दो प्रकार की हैं, जैसे आगन्तुक और सांक्रमिक व्याधि का अर्थ रोग भी है। सभी रोगों को दूर करनेवाली।

५५२. सर्वमृत्युनिवारिणी

सब प्रकार की मृत्युओं को दूर करनेवाली। अपमृत्यु, काल मृत्यु आदि सब प्रकार की मृत्युवों की यहाँ सूचना है।

यही विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति के जन्म के समय ही उसकी मृत्यु का भी समय निश्चित किया जाता है। ईश्वर की इच्छा से आपत्तियों का निवारण संभव है, लेकिन मरण का निवारण संभव नहीं है। सारे चराचरों के नियामक नियम मरण समय का निवारण करने नहीं देता। इस सामान्य एवं निश्चित नियम के लिए देवी की उपासना अपवादस्वरूप है। देवीभक्तों को मृत्यु का भय नहीं होगा। मृत्युकाल की परिधि घटाना बढ़ाना देवी कृपा के अधीन है। देवी की अनुमति के बिना अपने प्रिय जनों के पास मृत्यु को भटकने नहीं देती। इसके लिए उदाहरण अनेक मिलेंगे। विस्तारभय से उन उदाहरणों का यहाँ प्रस्ताव नहीं करता।

५५३. अग्रगण्या

सभी जगतों की मूल कारण होने से सब बातों में मुख्य मानी जानेवाली। अन्य देवों एवं त्रिमूर्तियों से मुख्या। त्रिमूर्ती और देव देवी की सेवा करते रहते हैं और देवी से प्राप्त प्रभावों से शोभित हैं, इस कारण से देवी अग्रगण्या हैं।

५५४. अचिन्त्यरूपा

जिसके रूप के बारे में कोई चिन्ता नहीं की जा सकती। मनोवाचामगोचरा नामक नाम की व्याख्या देखें। इस सहस्र नाम कीर्तन में ऐसे नाम हैं, जो देवी को स्थूल रूप में और पराशक्ति के रूप में वर्णित हैं। पुराणों और स्तोत्र में देवी के अंग-प्रत्यंग वर्णन से लोग परिचित हैं। इन वैजात्यों का यही कारण है कि देवी मनोवाचामगोचरी हैं।

५५५. कलिकल्मषनाशिनी

कलियुग के कल्मषों का नाश करनेवाली। काल ही देवी का स्वरूप है। इसलिए कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन युगों को भी देवी रूप मानना है। इनमें कलियुग में धर्म का क्षय और अधर्म का वर्द्धन होता है, जो कलियुग का स्वभाव है। कलि का कल्मष अन्य किसी देव से

टूटता नहीं । इसलिए स्वयं देवी उसे दूर करती हैं। नाम यही सूचित करता है कि देवी के भक्तों को कलि का दोष नहीं व्यापेगा।

"शमायालं जलं व ह्येस्तमसो भास्करोदयः
शान्तै कलेरघौघस्य देवीनामानुकीर्तनम्" (कूर्मपुराण)

५५६. कात्यायनी

केत नामक ऋषि की पुत्री होने से कात्यायनी। कात्यायनी का सुन्दर रूप सभी देवों का चैतन्य एकत्र होकर देवीरूप बना हुआ है। इसका विवरण देवी माहत्म्य में है।

"तच्चापि तेजोवरमुत्तमं महन्नाम्ना पृथिव्यामभवत् प्रसिद्धम्
कात्यायनीत्येव तदा बभौ सा नाम्ना च तेनैव जगत्प्रसिद्धा"(वामनपुराण)

ओढ्याणपीठस्या देवी कात्यायनी है।

"कात्यायनी चोड्ढयाने कामाख्या कामरूपके
पूर्णेश्वरी पूर्णगिरौ चण्डी जालंधरे स्मृता" (कालिकापुराण)

५५७. कालहंत्री

कालहंन्ता माने शिव। शिवपत्नी। काल का संहार करनेवाली। शिवरूपिणी बनकर काल को जिसने मारा।

५५८. कमलाक्षनिषेविता

कमलाक्ष (विष्णु) से सेविता।

"हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीम्
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्" (सै.लहरी ५)

विष्णु ने बहुत पहले प्रणतजनों के लिए सौभाग्यदायिनी माँ की आराधना करके अपनी सिद्धियों के प्रयोग से स्त्री रूप धारण करके त्रिपुरांतक परमेश्वर को भी मानसिक विक्षोभ के पात्र बना दिया (सौ.ल.)

"इन्द्रनीलमयीं देवीं विष्णुरर्चयते सदा
विष्णुत्वं प्राप्तवान् तेन" (पद्मपुराण)

५५९. ताम्बूलपूरितमुखी

ताम्बूल से पूरित मुखवाली। ताम्बूल चबानेवाली।

५६०. दाडिमीकुसुमप्रभा

दाडिम कुसुम की शोभा जैसी अरुण शोभा से युक्त।

५६१. मृगाक्षी

हिरण के नयनों की सी आँखोंवाली।

५६२. मोहिनी

मोह पैदा करनेवाली। माया रूपिणी देवी सब में मोह पैदा करती हैं, इसलिए यह नाम है।

"महामाया हरेश्चैतत्त्या संमोह्यते जगत्
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति" (देवीमाहात्म्य-१)

"यस्मादिदं जगत्सर्वं त्वया सुन्दरि मोहितम्
मोहिनीत्येव ते नाम स्वगुणोत्थं भविष्यति" (लघुनारदीयपुराण)

संसार को मोहित करनेवाली होने से स्वाभाविकतया मोहिनी नाम है।

क्षीर सागर से प्राप्त अमृत को राक्षसों से पा लेने के लिए विष्णुदेव ने मोहिनी रूप को धारम किया है, यह भागवत में प्रसिद्ध है।

५६३. मुख्या

'मुखेसर्वादोभवा मुख्या' यह निर्वचन है। सबसे पूर्व पैदा जो हुई। जिसका कोई आदि नहीं है। "अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य" (श्रुति)

प्रधान। अन्य देवताओं को अपने अंग अथवा आवरण बनाये रहनेवाली। अन्य सभी देवताओं से श्रेष्ठ।

५६४. मृडानी

मृड माने शिव, मृडानी माने शिवपत्नी। मृड शब्द का अर्थ है सुख देनेवाला। सुख देनेवाली मृडानी। मृडसुखेन -व्युत्पत्ति।

५६५. मित्ररूपिणी

मित्रों का रूप धरी हुई। मित्र शब्द का अर्थ है सूर्य। द्वादशादित्यों के रूप में रहनेवाली देवी है।

मित्र शब्द का अर्थ है बन्धु। बन्धुस्वरूपा। लोकबन्धु शब्द का भी अर्थ सूर्य है। सूरज जगत का बन्धु हैं।

५६६. नित्यतृप्ता

हमेशा संतृप्त रहनेवाली। जब चाहत की पूर्ति होती है तब जो अवस्था मन की होती है वही तृप्ति है। अभाव के कारण आग्रह पैद होता है। जिसे पाना है उसके प्रति मोह ही आग्रह है। उसे पा लेने से मनुष्य को जो सन्तोष होता है वह क्षणिक है। एक के बाद दूसरा मोह पैदा होता है। सारे प्रपंच की सृष्टिकर्त्री देवी का कोई अपना मोह नहीं है। वह हमेशा सन्तुष्ट रहती हैं।

नित्यसंतृप्ता। इस पक्ष में अर्थ है कि नित्य स्वरूप हे। उसी स्वरूप से आनन्द। आनन्दरूपिणी होने से नित्य तृप्ता।

५६७. भक्तनिधिः

भक्तों के लिए जो निधिस्वरूप हैं। निधि शब्द सोना, रत्न आदि बहुमूल्य वस्तुवों के शेखर की ओर इंगित किया जाता है। सम्पदा के पर्याय में अक्सर इस शब्द का प्रयोग है। भक्तों की निधि से तात्पर्य है कि भक्तों के लिए सारा ऐश्वर्य देनेवाली। मोक्ष देनेवाली भी अर्थ हो सकता है। सबसे बडा ऐश्वर्य मोक्षप्राप्ति है।

५६८. नियंत्री

निखिल नियामकता के कारण नियंत्री नाम आया। जगत का नियंत्रण करनेवाली। सभी प्रपंचों में चलनेवाले छोटे बडे सभी कार्य-व्यापार देवी के नियंत्रण से चलते हैं। अम्बा के अधीन न होनेवाला कोई कार्य नहीं है।

५६९. निखिलेश्वरी

सारे जगत् की ईश्वरी। ईश्वरी शब्द कुण्डलिनी शक्ति को भी द्योतित करता है। सब प्राणियों में कुण्डलिनी रूप में निवास करनेवाली।

५७०. मैत्र्यादिवासनालभ्या

मैत्री इत्यादि वासनाओं से प्राप्त होनेवाली।

मैत्री, करुणा, मोद, उपेक्षा ये ही वासनाएं हैं। सुखियों से मैत्री (मित्रभावना) दुःखितों से करुणा, पुण्यवानों से मोदभाव (संतोष), पापियों से उपेक्षा, ये वर्णन भागवत् में है।

"मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां
सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां
भावना तश्चित्तप्रसादनम्" (पातंजलयोगसूत्र)

५७१. महाप्रलयसाक्षिणी

जब महाप्रलय होता है, तब सब विनष्ट हो जाते हैं । उस नाश का साक्षी देवी है । सब का नाश होने पर अविनाशी देवी मात्र रक्षित रहती हैं । प्रलय से होनेवाला नाश भी देवी की इच्छा से होता है ।'महेश्वर पहाकल्प महाताण्डव साक्षिणी' उस नाम में यही आशय है।

शिव और पार्वती दोनों प्रलयपर्यंत रह जाते हैं । प्रकृतिपुरुष का रूप धारण करके शक्ति और शिव दोनों अपने संयोग से फिर प्रपंच की सृष्टि करते हैं ।

विरिंचिः पंचत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं
विनाशं कीनाशो भजित धनदो याति निधनम्
वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलित दृशा
महा संसारेस्मिन् विहरति सति त्वत्पतिरसौ (सौ.ल.२६)

५७२. पराशक्तिः

परा (उत्कृष्टा) बनकर, याने सबके ऊपर रहनेवाली, आद्याशक्ति, शक्तिमात्र स्वरूप से उत्कृष्टा, सब में शक्तिस्वरूपिणी बनकर रहनेवाली ।

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदा हता ।
सा सा विश्वेश्वरी देवी शक्तः सर्वो महेश्वरः
(लिंगपुराण)
या देवी सर्व भुतेषु शक्ति रुपेण संस्थिता
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः
(देवीमाहात्म्य)

अन्य सभी शक्तियों से उत्कृष्ट और सारे प्रपंच में व्याप्त नियामक शक्ति रूपिणी ।

५७३. परानिष्ठा

परम (उत्कृष्ट) निष्ठा से युक्त। निष्ठा शब्द का अर्थ समाप्ति भी व्याख्यायित होता है। 'समाप्ति ज्ञानविशेषरूप' इसप्रकार भी व्याख्यायित होता है । समाप्ति ज्ञान विशेष रूपा है (सौभाग्य भास्कर) । सब कर्म और सारा प्रपंच देवी में समापित हो जाने से परानिष्ठा नाम है।

'सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते' (गीता में भगवान का कथन है कि सारे कर्मों की परिसमाप्ति ज्ञान में है।

परा होकर रहनेवाली । आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक आदि सारे पदार्थों एवं कार्यों एवं संकल्पों के परे रहनेवाली ।

निष्ठा का अर्थ है व्रत अथवा दृढ़निश्चय । इस पक्ष में 'मैं' और ब्रह्म एक है । उस ज्ञान के साथ स्थिर-बुद्धि से रहकर ध्यान-मनन आदि करना निष्ठा है ।

"शास्त्राचार्योपदेशेन तर्कैः शास्त्रानुसारिभिः
सर्वसाक्षितयात्मानं सम्यङ् निश्चित्य सुस्थिरः
स्वात्मानोऽन्यतया भातं समस्तमविशेषतः
स्वात्ममात्रतया बुद्ध्वा पुनः स्वात्मानमद्वयम्
शुद्धं ब्रह्मेति निश्चित्य स्वयं स्वानुभवेन च
निश्चयंचा स्वचिन्मात्रे विलाप्याविक्रियेऽद्वये
विलापनं च चिद्रूपं बुद्ध्वा केवलरूपतः
स्वयं निष्ठेदयं साक्षात् ब्रह्मवित् प्रवरो मुनिः
ईदृशीयं परानिष्ठा श्रौती स्वानुभवात्मिकाः" इसप्रकार सूतसंहिता में परानिष्ठा का वर्णन किया जाता है ।

५७४. प्रज्ञानघनरूपिणी

प्रकृष्ट ज्ञान जहाँ घन रूप में है, वह। प्रकृष्ट माने उत्तम श्रेष्ठ । ज्ञान माने प्रज्ञान । घन शब्द से निरन्तरताबोध सूचित किया जाता है। अन्तर अथवा रोक के बिना निरन्तर,

माने अज्ञान रहित घना एवं मूर्त ज्ञान, जिसमें अविद्या का लेश मात्र का भी स्पर्श नहीं है वह जिसका रूप है वही प्रज्ञानघनरूपिणी है ।

५७५. माध्वीपानालसा

माध्वीपान से अलस बनी हूई । शहद से निर्मित एक मद्य है माध्वी । द्राक्षा रस से बना मद्य भी यही है । उसके पान से अलसा। (आगे के पद की व्याख्या से मिलाकर पढ़िये)

५७६. मत्ता

सामान्य अर्थ है, जो उन्मद है । इस अर्थ में पूर्व नाम के अर्थ के साथ व्याख्यायित होना है । माध्वी पान से अलस और उन्मद बनी हूई ।

मच्छब्द् का अर्थ अहम है । उसका भाव भी मत्ता है ।

सौभाग्य भास्कर के अनुसार परमनिष्ठा एवं पराहन्ता को भक्ता कहते हैं । अर्थात् पूर्व पद को मानकर माध्वीपान से बने आलस्य और स्वात्मानन्दस्वरूप माध्वीपान से स्वयं अपने में सीमित निष्ठा को ही सूचित किया जाता है ।

५७७. मातृकावर्णरूपिणी

जिनका शरीर मातृकावर्णों का स्वरूप है । 'अ'कार से लेकर 'क्ष'कार तक के वर्णों को मातृका वर्ण कहते हैं । योगियों को इन वर्णों में एक एक का रंग होता दिखाई देता है । (इसलिए इनको वर्ण कहते हैं ।)

अकाराद्याः स्वराधूम्राः सिन्दूराभास्तु कादयः
टादिफान्ता गौरवर्णा अरुणाः पंच बादयः
लकाराद्याः कांचनाभा हकारान्त्यौ तटित्निभा

सनत् कुमार साहित्य का अभिमत ऊपर का है । वर्णों का विवरण उससे भिन्न रीति में भी मिलता है ।

अकारः प्रथमो देवी क्षकारोंत्यः ततः परम्
अक्षमालेति विख्याता मातृकावर्णरूपिणी
शब्द ब्रह्मस्वरूपेयं शब्दातीतं तु जप्यतः

इसका वर्णन जैसे ज्ञानार्णव में बताया जाता हैं अक्षरमाला स्वरूपिणी शब्दब्रह्म के रूप में व्याख्यायित है । मातृकावर्ण रूपिणी अथवा मातृकावर्णों को जन्म देनेवाली, इस अर्थ में भी व्याख्यायित होती है ।

सनन्दसंहिता में मातृकाओं एवं श्रीचक्र को एक रूप में चित्रित करने की रीति को कैलासप्रस्तार कहते हैं । तांत्रिक व्याख्या है कि कैलासप्रस्तार रूप में आराधिता । श्रीचक्र को चिति नित्यास्वरूप में आराधित होने को मेरुप्रस्तार और वाग्देवता रूप में आराधना को भूप्रस्तार कहते हैं । इसके बारे में ज्यादा जानकारी तत्रग्रंथों से गुरु के निर्देश से जानी जा सकती है ।

५७८. महाकैलासनिलया

महाकैलास निलय जिसका है वह । कैलासपर्वत भगवान शिव का आवासस्थान है। उसमें पार्वतीसमेत धूर्जटि का निवास होता है । शिव का अद्धांग शरीर बनकर देवी हमेशा कैलास में रहती हैं । यहाँ महा शब्द से कैलास की श्रेष्ठता सूचित की जाती है। महान कैलास पर्वत!

कैलास से श्रेष्ठ 'महा कैलास' नामक एक लोक परम शिव का वासस्थान है, ऐसा कहा जाता है । उसी निवास में रहनेवाली।

ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रारपद्मको महाकैलास कहते हैं । सहस्रार पद्म में बिन्दुरूपिणी होकर शिवसमेत रहनेवाली। ''एतत् कैलाससंज्ञं पदकमलपदं बिन्दुरूपी स्वरूपी यत्रास्ते देव देवः'' (त्रिपुरासार में सहस्रार को कैलास कहते हैं ।

तांत्रिक व्याख्या के अनुसार उपर्युक्त नाम में सूचित कैलासप्रस्तार जिसका निलय है इसका विशद स्वरूप गुरुमुख से जानना है।

५७९. मृणालमृदुदोर्लता

मृणाल जैसे मृदुल बाहुलताओं से युक्त । यह स्थूल वर्णन में आता है । देवी के बाहुओं की लता से तुलना की जाती है । मृणाल से ध्वनि है उतनी ही मृदु । बाहुओं का सौन्दर्य और मृदुता व्यंजित की जाती है ।

५८०. महनीया

वन्दनीया, क्षेष्ठा

५८१. दयामूर्तिः

दया मूर्त बनी हूई । अपनी सारी सन्तानों से दया रखनेवाली ।

दक्षप्रजापति की एक पुत्री का नाम दया है । उस रूप को धारण करनेवाली ।

५८२. महासाम्राज्यशालिनी

साम्राज्यों की मालकिन। यहाँ साम्राज्य शब्द से सारे प्रपंच को सूचित किया जाता है।

महाकैलास का आधिपत्य साम्राज्यशालिनी शब्द से इंगित किया जाता है। 'महा' शब्द कैलास का विशेषण है ।

५८३. आत्मविद्या

आत्मज्ञान रूपी विद्या । वह विद्या जिसका स्वरूप है । देवीपरक अष्टाक्षर मंत्र को भी आत्मविद्या कहते हैं । मंत्र को जानिए गुरुमुख से ।

५८४. महाविद्या

'महती च सा विद्या च' इस निर्वचन से अर्थ है, महती और विद्यावती । नवदुर्गाविद्या को भी महाविद्या नाम है । वह विद्या जिसका स्वरूप है वह ।

देवी से सम्बन्धित उपासना को महाविद्या कहते हैं। उन मंत्रों को गुह्यविद्या भी कहते हैं।

नाम का भाव है कि स्वयं उपासना ही देवी है ।

'यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने
आत्मविद्या च देवी त्वं विमुक्तिफलदायिनी
आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ता भण्डनीतिस्त्वमेव च' (विष्णुपुराण)

५८५. श्रीविद्या

देवी सम्बन्धी सभी उपासनाओं को भी श्रीविद्या कहते हैं । फिर भी पंचदशाक्षरी मंत्र के लिए इसका अधिकतम प्रयोग है । 'पंचदशाक्षरीमंत्रस्वरूपिणी'।

५८६. कामसेविता

कामदेव द्वारा सेविता । कामेश्वर शिव द्वारा पूजिता ।

स्मरोपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा
मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ।।

(कामदेव भी आप की उपासना करके रती देवी की आँखों को आस्वाद्य सुभग शरीर पाकर जितेन्द्रिय मुनियों को भी मोहित करने में सफल हो गये । - सौन्दर्य लहरी - 5 -)

एतामेव पूराराध्य विद्यां त्रैलोक्य मोहिनीम्
त्रैलोक्यं मोहयामास कामारीं भगवान हरिः
कामदेवोपि देवेशीं देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्
समाराध्या भवल्लोके सर्वसौभाग्यसुन्दरः (वामकेश्वर मंत्र)

अरुणोपनिषद में बताया जाता है कि पंचदशी मंत्र को पहचाना है कामदेव ने । मन्मथ ने देखा कि पन्द्रह वर्णों में सोलह नित्याओं और सोलह कलाओं का रूप धारण करनेवाला पंचदशीमंत्र अनेक पुराणों में और आगमों में बिखरे पडे हैं । उन मंत्रों को मन्मथ ने पिरो दिया। उन्होंने उसमें पन्द्रह अक्षरों को तीन खण्डों में विभक्त कर त्रिपुर सुन्दरी जैसी सोलह नित्याओं और प्रतिपदा जैसी सोलह तिथियों को सन्निविष्ठ कर दिया । उस मंत्रराज को कण्ठ में धारण कर अनेक काल तक ध्यान से उपासना की । तभी मन्मथ को इस मंत्र का ऋषित्व प्राप्त हुआ। (अरुणोपनिषद्)

५८७. श्रीषोडशाक्षरीविद्या

श्रीषोडशाक्षरी मंत्र जिसका स्वरूप है । श्री से मिला षोड़शाक्षरी मंत्र । श्री विशेषण रूप से लिया जाय तो षोडशाक्षरी मंत्र है। दोनों प्रकार से विद्वानों की व्याख्या है । ऋषियों का मत है कि षोडशाक्षरी मंत्र देवीस्वरूप है और श्रीचक्र से उसका कोई भेद नहीं है ।

पंच दशी मंत्र का व्याख्याभेद यह है कि पन्द्रह अक्षरों से मिलकर सोलहवाँ अक्षर श्री मिलकर शोड़शाक्षरी बना हुआ है । यह उपर्युक्त व्याख्या से मिलता है ।

'वक्त्रकोटि सहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि
वर्णितुं नैवशक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी'

अर्थात् कोटि सहस्र मुंह से और कोटि शत जिह्वा से श्री षोटशाक्षरी विद्या की महिमा वर्णित नहीं हो सकती । उस महनीय षोडशाक्षरी विद्यामंत्र का स्वरूप और प्रयोग गुरु मुख से जानें ।

५८८. त्रिकूटा

त्रिकूट योगशास्त्र सम्बन्धी एक प्रसिद्ध चक्र है । वह चक्र जिसका स्वरूप है वह । त्रय जिनका स्वरूप है वही, यह भी व्याख्या है । तीन का समुदाय जिनका स्वरूप है वही, जैसे ब्रह्मा-विष्णु-महेश,

सत्व-रज-तम, भू-स्वर्ग-पाताल, जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति, भूत-भविष्य-वर्तमान, त्रिवर्णात्मक ओंकार, ऋक्-यजु-साम इत्यादि त्रयसमाज जिनका स्वरूप है वही देवी ।

'प्रणवो हि परं तत्वं त्रिवेदा त्रिगुणात्मकम्
त्रिदेवंच त्रिधामंच त्रिप्रज्ञा त्रिरवस्थितम्
त्रिमात्रं च त्रिकालं च त्रिलिंगं कवयो विदुः
सर्वमेतत् त्रिरूपेण व्याप्तं हि प्रणवेन तु ।' (बृहत्पराशरस्तुति)

वाग्भवादि तीन कूटोंवाले पंचदशाक्षरी मंत्र के रुप में रहनेवाली ।

५८९. कामकोटिका

'कामःपरशिव एव कोटिरेकदेशो यस्याः' (सौभाग्यभास्करम)

कामेश्वर और श्रीदेवी दोनों के सामरस्य को यह नाम सूचित करता है । शिव के बराबर अथवा शिव से भी श्रेष्ठ सूचित करता है।

व्याख्यान भेद यह है कि कामकोटि पीठ पर विराजनेवाली । कांचीपूर में कामाक्षीक्षेत्र का कामकोटि पीठ नाम है । वहाँ रहनेवाली। 'श्री कामकोटिपीठस्था महात्रिपुरसुन्दरी' (ललितोपाख्यान)

५९०. कटाक्षकिंकरीभूतकमलाकोटिसेविता

कटाक्ष से किंकरी बनी हुई कोटि कमलाओं द्वारा सेविता । देवी के एक कटाक्ष से करोडों लक्ष्मी देवियाँ देवी की दासियाँ बन जाती हैं । देवी की परिचर्या करनेवाली आराधिकाओं को असंख्य प्रकार के ऐश्वर्यों का अनुभव होता है ।

५९१. शिरस्थिता

सिर पर रहनेवाली । शिर में ब्रह्मरंध्रमें रहनेवाली । "सहस्रारे पद्मे सहरहसि पत्या विहरसे" (सौन्दर्यलहरी -९) यहाँ से सात नामों में पिंडांडस्थ देवी रुपों का वर्णन है ।

५९२. चन्द्रनिभा

पूर्णचन्द्र जैसे मनोहर मुख से शोभिता । ब्रह्मरंध्र के अधोभाग में विद्यात्रितीयकूटात्मक चन्द्रमा वास करता है। उस चन्द्रमा और देवी दोनों में कान्ति का साम्य है। इसलिए चन्द्रनिभा।

५९३. भालस्था

ललाट में रहनेवाली । भाल में हल्लेखाबिन्दु के ऊपर अर्द्धचन्द्राकार में इन्द्रधनुष की कान्ति से युक्त देवी निवास करती है ।

५९४. इन्द्रधनुःप्रभा:

उपर्युक्त हल्लेखा बिन्दु के ऊपर अर्द्ध चन्द्राकार में इन्द्रधनुष की कान्ति से युक्त देवी विराजमान हैं ।

दीपाकारोऽर्धमात्रंच ललाटे वृत्त इष्यते
अर्धचन्द्रस्तथाकार: पादमात्रस्तदूर्ध्व त: (नित्या हृदयम्)
'मध्ये फालं बिन्दुर्दीप इवाभाति वर्तुलाकार:
तदुपरिमतोर्धचन्द्रोऽन्वर्थ: कान्त्या तथा कृत्या' (वरिवस्यारहस्यम्)

५९५. हृदयस्था

हृदय में निवास करनेवाली । हृदय सारे जगत का बीजस्थान है। उसमें जगदरूप में रहनेवाली । हृदय शब्द से तात्पर्य है परमेश्वर का हृदय (प्रसिद्ध उपनिषदप्रतिपादन) उस उपनिषद् में ज्ञानरूप बनकर रहनेवाली ।

५९६. रविप्रख्या

जो सूरज के समान है । उपर्युक्त नाम की व्याख्या के अनुसार सूर्य जैसी कान्तिमती जो हृदय में निवास करती है । "हृदये तावत् सूर्य मण्डलमस्ति तच्च विद्याद्वितीयकूटमित्याशयेनाह रविप्रख्या" (सौभाग्य भास्कर)

हृदय में सूर्य मण्डल है । वह विद्याद्वितीयकूटरूपी है । उस सूर्यमण्डल के बराबर की कान्ति से अभिन्न हृदय में निवास करनेवाली।

'मध्ये हृदयं मध्ये निटिलं मध्ये शिरोपि वास्तव्याम् चण्डकरकार्मुक चन्द्रसमाभाम्'

इसप्रकार ही मूकपंचशति में हृदयस्था, फालस्था, शिरस्थिता, रविप्रख्या, इन्द्रधनुप्रभा, चन्द्रनिभा इत्यादि नामों का आशाय ठहराया गया है ।

५९७. त्रिकोणान्तर दीपिका

मूलाधार के त्रिकोण में दीपिका रूप में स्थित। मूलाधारपद्म की कर्णिका में एक त्रिकोण है। उस त्रिकोण का मध्यभाग अग्निमण्डल है। वह प्रथम कूटरूप है। उस त्रिकोणान्तर में दीप बनकर देवी उज्ज्वल रहती हैं ।

नित्या नित्योदिते मूलाधारमध्येऽस्तिपावकः :
सर्वेषां प्राणिनां तद्वद्धृदये च प्रभाकरः
मूर्धनि ब्रह्मारन्ध्राधश्चन्द्रमाश्च व्यवस्थितः
ततत्रयात्मकमेव स्यादाद्या नित्या त्रिखण्डकम् (तंत्रराज)

इस नाम का अर्थ आचार्यों ने कई प्रकार कल्पित किया है । उन्हें आधारभूत तत्वों की व्याख्या करके ही समझाया जा सकता है । विस्तरभय से उन व्याख्याओं को यहाँ व्यक्त नहीं करता । गुरूपदेश से जानें ।

५९८. दाक्षायणी

दक्षप्रजापति की पुत्री । दक्षप्रजापति की पुत्री, जो सती नाम से अवतरित होकर यागाग्नि में दग्ध हो गयी, यह कथा प्रसिद्ध है ।

५९९. दैत्यहंत्री

दैत्यों का हनन करनेवाली । भण्डासुर, महिषासुर, सुम्भ-निसुम्भ इत्यादि असुरों का नाश करने केलिए देवी ने अनेक रूपों में अवतार लिया है । यह सब प्रसिद्ध हैं ।

६००. दक्षयज्ञविनाशिनी

दक्षप्रजापति के यज्ञ का नाश देवी ने किया था। यज्ञविनाश तो महेश ने किया । लेकिन उसका कारण बना देवी। इसलिए दक्षयज्ञविनाशिनी ।

सप्तर्षियों के शाप से दक्षप्रजापति दक्ष नाम से प्राचीनवर्हिस के पौत्र और प्रचेतस का पुत्र होकर पैदा हुआ । उस राजा के याग का नाश भी देवी ने किया, यही बायुपुराण में कहा गया है ।

यह साबित होता है कि अपने प्रताप को दिखाने केलिए जो यज्ञ चलाया जाता है, वह देवी को प्रिय नहीं है । धन, अधिकार, स्थान इत्यादि से अहंकारी बने हुए व्यक्ति याग और पूजा आदि कार्य दिखावे के रूप में करते हैं। प्रजापति का यज्ञ सारे देवताओं के समक्ष चला। फिर भी उसका अन्त अच्छा नहीं हुआ। यह उपर्युक्त प्रस्ताव केलिए उदाहरणस्वरूप है।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहंबलवान् सुखी
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशोमया
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम्

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः
मामात्मपरदेहेषुप्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु (गीता १६-१४-१९)

६०१. दरान्दोलितदीर्घाक्षी

मन्द मन्द आन्दोलित और दीर्घ आँखों से युक्त। सामुद्रिक शास्त्रों और भारतीय काव्यसंकल्पों के अनुसार मन्द-मन्द चलनेवाली एवं दीर्घ आँखें सौन्दर्य का लक्षण है । चंचलाक्षी जैसा प्रयोग इसकेलिए उदाहरण है । आकर्णात् दीर्घ नयन भी सुन्दर हैं । आँखों के विशेषणों से देवी का मुखलावण्य बनानेवाला स्थूल रूपवर्णन है ।

'दर' पद का अर्थ है भय..। इस अर्थ में भय से आन्दोलित दीर्घ नयन हैं । देवी के नयन करुणातरंगित होकर जिसके ऊपर पडते हैं वह भय से मुक्त हो जाता है । सभी तरह के भयों से मुक्त करनेवाले हैं देवी के नयन ।

६०२. दरहासोज्ज्वलन्मुखी

दरहास माने मन्दहास । मन्दहास से उज्ज्वल बने मुख से युक्त । यह स्मेर वदन भक्तजनों को प्रहर्षित भी कर देता है ।

६०३. गूरुमूर्तिः

गूरु ही जो मूर्ति बनी हूई है । देवी, मंत्र, गुरू, श्रीचक्र ये चारों एक ही मानना है । गुरू को उपासनाक्रम में देवी के बराबर स्थान दिया जाता है । मंत्र देवी का शब्द शरीर है । श्रीचक्र नामरूपात्मक इस जगत में देवी का स्वरूपचित्रण है । देवी और चक्र के बीच में और मंत्र के बीच में जो सम्बन्ध है वहीं देवी और गुरू के बीच में भी होता है । गूरु को शिव शक्ति के एकीकृत रूप में मानकर उनका ध्यान करना चाहिए । शिव रूपी प्रकाश और शक्ति रूपी विमर्श-विवेचन इन दोनों को मिलाकर मानना है गुरू को ।

स्वप्रकाशशिवमूर्तिरेकिका तद्विमर्शतनुरेकिका तयोः
सामरस्यवपुरिष्यते परा पादुका परशिवात्मनो गुरोः
(स्वच्छन्दतंत्र)

'वन्देगुरूपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम्
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः

उपर्युक्त पंक्तियों में शिव की शुक्लवर्ण की प्रभा और शक्ति का लाल प्रकाश दोनों के मिले हुए उज्ज्वल आलोक के रूप में गूरु पादों को वर्णित है ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुःसाक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवेनमः

यह प्रार्थना गुरु को किसप्रकार का स्थान उपासक दे, इसे व्यक्त करती है। इस नाम में वर्णित है कि देवी ने गुरू की मूर्ति को स्वीकार किया है ।

६०४. गुणनिधिः

गुणों की निधि बनी हुई है । सत्व, रज, तम, उन गुणों का आकर जो है ।

भूतदया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मंगल, अकार्पण्य, अस्पृहा इन आठ गुणों की जो निधि है, वह । वस्तुओं के जो रूप, रस, गन्ध स्वभाव होते हैं उन्हें गुण कहते हैं । वस्तुओं में गुणरूप में देवी ही निवास करती हैं, इसलिए गुणनिधि हैं । साहित्यादि रचनाओं में प्रसाद, श्लेष, प्रसाद, माधुर्य, समता ये गुण कलारूपी देवी हैं ।

गुण शब्द उदारता, धैर्य आदि व्यक्तिनिष्ठ जो गुण हैं उन्हें भी द्योतित करता है । देवी ऐसे गुणों की भी निधि हैं ।

'कालव्यूहः कुलव्यूहो नामव्यूहस्तथैवच
ज्ञानव्यूहस्तथा चित्तव्यूहः स्यात्तदनन्तरम्
नादव्यूहस्तथा बिन्दुव्यूहः स्यात्तदनन्तरम्
कल्पव्यूहस्तथां जीवव्यूह; स्यादिति ते नवाः

इस प्रमाण के अनुसार कालव्यूह, कुलव्यूह, नामव्यूह, ज्ञानव्यूह, जीवव्यूह, नादव्यूह, बिन्दूव्यूह, कल्पव्यूह ये ही नवव्यूह हैं । इन केलिए निधि स्वरूपिणी ।

गुण पद का अर्थ रस्सी भी है । लक्षणव्यापार को मानकर इसका अर्थ है नाम को बांधने का रस्सी। मत्स्यावतार काल में भगवान की आज्ञा मानकर वैवस्वत मनु ने सभी वस्तुओं के बीजों को संकलित कर एक नौका में रखा । ऋषियों को भी उसमें चढ़ा दिया। प्रलय जल में सारा जगत प्लावित हुआ । तब नौका को मत्स्य के शृंग में बाँध दिया । नवयोजना लम्बा और यामत्रय विस्तीर्णवाली उस नौका को खींचकर मत्स्यरुपी महाविष्णु प्रलय जल में क्रीडा करने लगे । चर्म से बनी रसी मत्स्य शृंग से बंधी थी । चर्मनिर्मित रसी ने टूट जाये, उसे मानकर देवी ने उसमें रहते हुए उसे मज़बूत कर दिया । जगदम्बा ने रसी में विराजित होकर, उसे मज़बूत बना दिया, तो 'गुणं धीयते अस्यां' इस विग्रह से गुणनिधि बना।

नवयोजनदीर्घा तु यामत्रयसुविस्तृताम्
कुरुष्व चर्मणा तूर्णं बृहतीं तु वटीरिकाम्
जगद्धात्री महामाया लोकमाता जगन्मयी
दृढयिष्यति तां रज्जुम् न त्रुट्यति यथा तथा ।

यही मत्स्यपुराण में भगवान विष्णु का मनु से कथन है ।

६०५. गोमाता

कामधेनु आदि गौवों की माता । गो शब्द के अनेक अर्थ होते हैं । स्वर्ग, आकाश, वाक्, वज्र, शर, दिक्, रश्मि, भूमि, जल, एक याग, सरस्वती, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, ज्ञानेंद्रिय, कुल, पर्वत, इन अर्थों को स्वीकार करके अपनाकर इनका उत्पत्तिस्थान, अथवा माँ मानकर व्याख्या की जा सकती है ।

६०६. गुहजन्मभू

जो गुह (स्कन्ददेव) की जन्मभू (मां) बनी है । गुह शब्द अविद्या से संवृत जीव को भी द्योतित करता है । इस पक्षमें यहीं अर्थ है कि जीवात्माओं का जन्मस्थान ।

६०७. देवेशी

देवों की ईश्वरी। देवेश की पत्नी। देवेश माने शिव। देवेश ब्रह्मा और इन्द्र आदि अर्थों में भी प्रयुक्त है। इस स्थिति में यथाक्रम पार्वती, सरस्वती, महालक्ष्मी, शचीदेवी ये अर्थ हैं।

६०८. दण्डनीतिस्था

दण्डनीति में स्थित रहनेवाली। नीतिशास्त्र का एक मुख्य भाग है दण्डनीति । अपराधिओं को दण्ड निश्चित करनेवाला नियम दण्डनिति है । अपराध की स्थापना करके दण्ड देना, स्मृति की विधियों का निरीक्षण करना दण्ड के बारे में पण्डितों से परामर्श करना, ये तीन विभाग दण्डनीति में हैं। दण्डनीति को अर्थनीतिशास्त्र की तहत माननेवाले थे कौटिल्य, बृहस्पति आदि। दण्डनीति देवी की आज्ञा ही है, इसलिए देवी उसी में निवास करती हैं।

"दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषिताम्" (भगवद्गीता - 10 - 38)

६०९. दहराकाशरूपिणी

दहराकाशस्वरूपिणी । दहराकाश का अर्थ है हृदय कुहरस्थ अल्पाकाश देवी रूप है। इसलिए दहराकाशरूपिणी ।

६१०. प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डलपूजिता

प्रतिपद जहाँ मूख्य है और राका (पौर्णमी) जहाँ अंत है उस तिथि मण्डल में (पन्द्रह तिथियों में) पूजिता । प्रतिपद से लेकर प्रत्येक तिथि में व्यत्यस्त विधियों द्वारा देवी की पूजा किस प्रकार की जानी चाहिए उसका वर्णन किया जाता है ।

उन विधियों द्वारा पूजिता । पूजाविधियों का विशद स्वरूप तंत्रग्रंथों अथवा गुरू से प्राप्त करें। गुरुमुख से जानना श्रेष्ठ है ।

प्रतिपद से पौर्णमी तक शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष में तिथियों की देवियां मानकर पूजा की जाती है । चन्द्रकला स्वरूपी नित्या देवियों के नाम इसके पहले बताये जा चुके हैं। नित्या देवियों द्वारा पूजिता, यही नामार्थ है ।

६११. कलात्मिका

कला की चेतनास्वरूपिणी । कलारूपिणी । इस नाम का कला शब्द कई प्रकार से प्रयुक्त है । संगीत और साहित्य जैसे ६४ कलाओं की सूचना मिलती है । इस गणना में उन में हरेक कला में चैतन्यरूपिणी बनकर रहनेवाली। ६४ कलाओं का विवरण अन्यत्र दिया गया है । सभी कलाओं में जो कला का अंश है वह देवी स्वयं हैं ।

कलाशब्द से अग्निकला दस, सूर्यकला बारह, चन्द्रकला सोलह, इत्यादि बोध दिया जाता है । इन कलाओं की चेतना शक्ति देवी है।

जाग्रद अवस्था के लिए उत्पत्ति, जागरं, बोध, व्यावृति, इसप्रकार चार पाद हैं और उन्हें कला शब्द के रूप में इंगित किया जाता है।

"उत्पत्तिर्जागरो बोधो व्यावृत्तिर्मनसः सदा
कलाचतुष्टयं जाग्रदवस्थायां व्यवस्थितं
जाग्रत सर्वगुणैः प्रोक्ता केवलं शक्तिरुपिणी"
"मरणं विस्मृति मूंर्च्छा निद्रा च तमसावृता
सुषुप्तेषु कला ज्ञेयास्ताः सर्वाः श्रीकलात्मिकाः"

अपर्युक्त प्रमाण के अनुसार सुषुप्ति के चार अंश होते हैं, जैसे मरण, विस्मृति मूर्च्छा और निद्रा, ये जिनके रूप हैं ।

अभिलाषो भ्रमश्चिन्ता विषयेषु पुनः स्मृति
कलाचतुष्टयं देवी स्वप्नावस्था विधीयते
शिवरूपाः शाक्तिरूपास्ताः कलास्त्रीपूरात्मिकाः

इस आप्तवाक्य के अनुसार स्वप्नावस्था के अभिलाषा, भ्रम, चिन्ता, स्मृति, इसप्रकार चार अंश होते हैं वे शिवशक्ति रूपी त्रिपुरात्मिका देवी ही हैं ।

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं समाधि विमलं मनः
सदसद्वस्तुनिर्धारस्तुर्यावस्थाः कला इमाः

उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार तुर्यकलाएं बैराग्य, मुमुक्षुत्व समाधि, सदसद्वस्तुनिरधारना ये चार हैं। ये देवी रूप हैं। इसलिए कलात्मिका।

इसप्रकार व्यख्याता कलाविभागों का वर्णन इस नाम की व्याख्या के रूप में चित्रित करते हैं। उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं दिया जाता।

६१२. कलानाथा

कलाओं की अधिनायिका । उपर्युक्त सभीकलाओं के लिए जो अधिनायिका है, वह।

६१३. काव्यालापविनोदिनी

काव्यों के आलापन से प्रसन्न होनेवाली । काव्यशब्द से सूचित है पूराण, इतिहास, रूपक, श्लोक इत्यादि सारा साहित्य । उनका आलापन सुनने और अनका आलापन करने में देवी उत्सुक हैं ।

६१४. सचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता

चामरवाहिनी रमा, वाणी इन देवियों द्वारा सव्यदक्षिण पार्शों में सेविता । 'कामाक्षी' नाम के सन्दर्भ में बताया गया है कि देवी के कटाक्ष से कैसे लक्ष्मी और सरस्वती के जन्म हुए हैं। ललितोपाख्यान में लक्ष्मी और सरस्वती का जन्म कैसे हुआ है, यह सूचित किया गया है। और बताया गया है कि उन दोनों ने गंगा और यमुना इन देवियों से चामर लेकर देवी पर विजन किया है ।

तयोः कराभ्यामादाय चामरे भारती श्रियौ
श्रीदेवीमुपतस्थाते वीजयन्तौ यथोचितम्
अनर्घ रत्नखचितकिंकीणीचितदोर्लते । (ललितोः ३५-७१)

उनके (गंगा और यमुना) के हाथों से चामर लेकर अमूल्य रत्नों से अलंकृत किंकिणियोंवाले हाथों से भारती और महालक्षमी ने वीजन करते हुए श्रीदेवी की सेवा की ।

देवी के उपासकों को ऐश्वर्य और कला सिद्धियां प्रप्त होती हैं । ऐश्वर्य देवता श्री महालक्ष्मी और कलादेवता श्री सरस्वती दोनों चामर हस्ता बनकर जगदम्बा का परिचरण करती हैं । अम्बा के कारुण्य के पात्र हुए भक्तों को अम्बा के परिचारकों का अनुग्रह स्वतः प्राप्त होगा।

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् (सौ.ल.९९)

(अयी लोकमाता, आपका उपासक ब्रह्मा देव और विष्णु भगवान से मत्सर करनेवाला होकर सरस्वती और लक्ष्मी के साथ मिलकर विहार करता है । अत्यंत सुन्दर शरीर के कारण रतीदेवी की पातिव्रत्य निष्ठा को दुर्बल बना देता है । जीवात्मा का अविद्या बन्धन त्यागकर अनेक बर्षों तक परानन्दा के सुख से जीवित रहता है ।)

६१५. आदिशक्तिः

सभी प्रपंचों को जन्म देनेवाली होने से आदि शक्ति है । आदि शब्द का अर्थ है मुख्य और कारणभूत ।

चर और अचर सारे जगत में प्रवृत्त होनेवाली शक्ति, होने से और देवी से वे सब पैदा हुए हैं, इस कारण से देवी आदि शक्ति हैं।

६१६. अमेया

जिसे नाप-तोल से जानना संभव नहीं । देवी ने जिन-जिनका निर्माण किया है उन उनका किसी न किसी प्रकार से तो नापना तोलना संभव हैं । वज़न, रूपविस्तार, ऊँचाई-चौडाई इस प्रकार । लेकिन सबसे परे जो शक्ति है वही देवी है, वही अमेय है ।

६१७. आत्मा

जीवात्मा रूप और परमात्मा रूप में रहनेवाली आत्मशब्द ब्रह्म का द्योतक है । जीवात्मा और परमात्मा दोनों रूपों में रहनेवाली। आत्मशब्द शरीर का भी द्योतक है ।

गौरी-रूपाणि सर्वाणि शरीराणि शरीरिणाम्
शरीरिणस्तथा सर्वे शंकरांशा व्यवस्थिता (वासिष्ठरामायण)

आत्मशब्द नानार्थक है (ऊपर बताये गये अर्थों के अलावा निम्न अर्थ भी है । याने अंश, प्रकृति, प्रयत्न, मन, बुद्धि, ज्ञान, धैर्य, सूरज, अग्नि, इत्यादि । प्रपंच का मुख्य अंश, प्रकृतिरूपिणी, प्रयत्नरूपी होकर रहनेवाली, वायु रूप में संसार के प्राण, मनोरूपिणी, बुद्धिरूपिणी, ज्ञानरूपिणी, धैर्यरूपिणी, सूर्याग्निरूपिणी, इन अर्थों में भी व्याख्यायित करने का मत आचार्यों में है।

६१८. परमा

सर्व श्रेष्ठा । सबसे मुख्य । परं-माति इस प्रकार कहने से पर को मापनेवाली यह भी अर्थ है ।

परब्रह्ममहिषि, परब्रह्मस्वरूपिणी, कामेश्वर की पत्नी । परस्म मा इसप्रकार पद छेद करेंगे । पर शब्द ब्रह्मा विष्णु महेशादि द्योतक है । तब लक्ष्मी सरस्वती और गौरी इन नामों को भी लिया जा सकता है ।

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिण गृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयति परब्रह्ममहिषि (सौ.ल.97)

(परब्रह्मरूपी परमेश्वर की धर्मपत्नी अयी देवी, आपको आगमविद्, ऋषि ब्रह्मपत्नी सरस्वती देवी, विष्णुपत्नी लक्ष्मी और हरसहचरी पार्वती कहते हैं । आप तो अज्ञेय महिमाधनी और अपार ऐश्वर्य शालिनी हैं और आप अनिर्वचनोय, त्रिमूर्तियों केलिए मूलकारणस्वरूपिणी एवं महामाया स्वरूपिणी तुरीय शक्ति है । आप इस सारे प्रपंच को गतिनिरत कर देती हैं ।)

६१९. पावनाकृतिः

पावन आकृति से युक्त । पावन शब्द से तात्पर्य है, परिशुद्ध । पापहर भी एक अर्थ है। देवी का रूपध्यान, देवी चरित्रश्रवण, देवी पर ज्ञान सम्पादन ये सब पापहर और ज्ञानप्रद हैं, इसलिए पावनाकृति नाम।

पावन शब्द का अर्थ अग्नि भी है । जल, गाय मल, रुद्राक्ष, आदि अर्थ भी उसके हैं। ये चार वस्तुएं पापों को दूर करने की ताकत रखती हैं । देवी का अंश होने से उन्हें पावन बनाने की शक्ति मिली है । अग्निरूपिणी है देवी । जलरूपिणी है देवी । गायका मल रूपिणी है देवी। रुद्राक्ष रूपिणी है देवी।

पावन शब्द का अर्थ तप है । तपस्वियों में तप बनकर देवी ही रहती है ।

६२०. अनेककोटिब्रह्माण्डजननी

अनेक कोटि ब्रह्माण्डों की जननी । एक सूर्य और उसके चारों ओर परिक्रमा करनेवाले नक्षत्रों को एक साथ ब्रह्माण्ड कहते हैं। ब्रह्माण्ड का एक अल्पमात्र अंश है भूमि। इस प्रकार के अनेक कोटि ब्रह्माण्ड हैं । उन सब की जननी देवी ललितांबिका हैं ।

६२१. दिव्यविग्रहा

दिव्य विग्रहवाली । दिव्य शब्द का अर्थ दिव याने स्वर्ग अथवा आकाश से सम्बन्धित अदभुतपूर्ण प्रकाशमान, खूबसूरत इत्यादि हैं । विग्रह के दो अर्थ हैं शरीर और युद्ध । इनको आधार बनाकर इस नाम की व्याख्या कई प्रकार से की गयी है ।

प्रकाशयुक्त, मनोहर, सर्वांगसुन्दरी इत्यादि स्थूल रूपवर्णनों से देवी की स्तुति है ।

अद्‌भुत पैदा करनेवाला युद्धवैभव आकाश से युद्ध करनेवाली । देवी माहात्म्य में देवी और सुम्भासुर के बीच का युद्ध-वर्णन है।

'उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम्'

कहाजाता है कि देवी निराधार होकर आकाश में खड़ी होकर युद्ध करती हैं ।

६२२. क्लींकारी

क्लींकार (महाकामेश) की पत्नी । क्लीं शब्द कामराजबीजरूपी मंत्राक्षर है । (इसके सम्बन्ध में जानकारी गुरुमुख से जानें) क्लींकारस्वरूपिणी और क्लींकार को करनेवाली इसप्रकार भी व्याख्या की जा सकती है ।

६२३. केवला

अकेली जो है । दूसरों से न मिलनेवाली, पूर्ण रूपिणी। "निखिलधर्मराहित्येनैकाकित्वात् केवला" (सौभाग्य भास्कर) दूसरों का आश्रय न लेनेवाली और स्वरूपगुणकर्मादि धर्मों की अपेक्षा न रखनेवाली ।

केवल शब्द का अर्थ मोक्ष भी है । इस पक्ष में अर्थ है मोक्षदायिनी । आत्मा और प्रकृति इन दोनों को अभेद स्थापित करनेवाले सिद्धांत को केवल मानते हैं । वह सिद्धांत जिसका स्वरुप है, वह । शुद्ध ज्ञान रूपिणी । कवलं ज्ञानभेदे स्यात् केवलश्चैक कृत्स्नयोः। (विश्वनिघण्डु)

क्लींकारी संज्ञक नाम में बताया हुआ कामराजबीज क्लीं शब्द के व्यञ्जनांश 'क' 'ल' इत्यादि के अलावा जो अवस्था है वही रूप जिसका है वह (मंत्रपरक व्याख्या है । केवल कामकला स्वरूपिणी 'ईं' रुपबनी हुई ।

६२४. गुह्या

छिपकर रहनेवाली । "गुहां प्रविष्टा गुह्या" (सौभाग्यभास्कर) छिपाकर रखने योग्य। इस पक्ष में यह ध्वनित होता है कि देवी की उपासना में आनेवाले अनेक कर्म रहस्य रूप से

किया जाना है । देवीतंत्र असंख्य हैं । उनमें कइयों को वैदिक मत में वेदबाह्य माना गया है। परम उत्कृष्ट देवी आराधना को साधारण सिद्धियों केलिए दुरुपयुक्त बना देनेकेलिए तांत्रिक लोग रहस्य रूप धारण करते हैं । रहस्य भाव से चलाये जानेवाले सत्कर्म भी होते हैं । रहस्तर्पण तर्पिता यह नाम इस परंपरा में आया हैं । छिपाकर रखने योग्य यह अर्थ इस सन्दर्भ में उपयुक्त हैं।

६२५. कैवल्यपददायिनी

कैवल्यपद को प्रदान करनेवाली । मोक्ष प्रदान करनेवाली । कैवल्यपद को दान देनेवाली। यहाँ पद शब्द से सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, और सायुज्य इत्यादि पदों की ओर इंगित है। पाँचवाँ कैवल्य भी।

भौतिक अर्थ में, उपासकों को उनके अभिलषित पदों को देकर अंत में कैवल्य प्रदान करनेवाली। लौकिक कार्यों में विरक्ति न पानेवाले उपासक इस आशय से ज्यादा आकृष्ट होंगे।

उत्तम ज्ञान से लब्ध नित्यानन्द ही कैवल्य है । यह तत्व कैवल्य को मुक्ति से अलग करके देखता है।

६२६. त्रिपुरा

त्रिमूर्तियों से भी पुरातन होने से त्रिपुरा । ''मूर्तित्रयस्यापि पुरातनत्वात्तदम्बिकायास्त्रीपुरेतिनाम'' (त्रिपुरार्णवम)

जिसने मन, बुद्धि और चित्त नामक नाडी त्रय को पुर बना दिया है उनमें रहनेवाली । इस व्याख्या में ही, ''नाडी त्रयंतु त्रिपुरा सुषुम्ना पिंगला इडा'' इस त्रिपुरार्णव के वाक्य को अवलम्ब बनाकर सुषुम्ना, पिंगला, इडा इनमें रहनेवाली ऐसा मानें । यहाँ अंत में कोई अर्थातर नहीं है । त्रिपुरार्णव में उपर्युक्त उद्धरण का शेषभाग इसप्रकार हैः ''मनोबुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतं तत्र तत्र वसत्येषा तस्मात् तु त्रिपुरा मता।''

त्रिकूटा नाम की व्याख्या (558) में जैसा कहा गया है कि तीन-तीन के समुदाय में वर्णित सारे देवी के पुर हैं ।

यत्किंचिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकम्

''तत्सर्वं त्रिपुरेतिनाम भगवत्यन्वेति ते तत्वतः'' (लघुस्तव)

इस तरह संसार में तीन-तीन के वर्गों में जो जो हैं उन सब को त्रिपुरा तत्वों में गिना जा सकता है । ''सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरामता,'' (कालिकापुराण)

६२७. त्रिजगद्वन्द्या

तीनों लोकों के द्वारा वन्दिता (त्रिजगत् माने भूमि स्वर्ग और पाताल ।

६२८. त्रिमूर्तिः

ब्रह्मा विष्णु और महेश इन त्रिमूर्तियों का स्वरूप धारण कर विराजमान ।

वामा, ज्येष्ठा, रौद्री इन तीनों रूपों को धारण करनेवाली ।

इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति इन तीनों रूपों को धारण करनेवाली । ब्रह्माणी, वैष्णवी, रुद्राणी इन देवियों का रूप धारण करनेवाली । श्वेत, रक्त, नील (श्यामल) इन तीनों वर्णों को धारण करनेवाली ।

एषा त्रिमूर्तिरुद्दिष्टा नयसिद्धान्त गामिनी
एषा श्वेता पराशक्तिः सात्विकी ब्रह्मसंस्थितिः
एषैव रक्ता रजसि वैष्णवी परिकीर्तिता
एषैव कृष्णा तमसी रौद्री देवी प्रकीर्त्तिता
परमात्मा यथा देव एक एव त्रिधा स्थितः
प्रयोजनवशाच्छक्तिरेकैव त्रिविधा भवेद् (वराहपुराण)

तीन वर्ष की अवस्थावाली कन्यका का रूप धारण की हुई । 'त्रिमूर्तिस्तु त्रिवर्षा स्याद्' (कन्याप्रकरण - धौम्याचार्य)

६२९. त्रिदशेश्वरी

त्रिदेशों की ईश्वरी । तीन दशाओं की ईश्वरी । इन तीन दशाओं का विविध रूपों में वर्णित है जैसे जाग्रद् स्वप्न और सुषुप्ति, बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य इन तीनों दशाओं की ईश्वरी। 'त्रियुक्तदशानाम्' इसप्रकार अलग-अलगा-विशेषण करके तेरह विश्वदेवताओं की ईश्वरी ।

६३०. त्र्यक्षरी

तीन अक्षरों का मंत्ररूप धारण करनेवाली । अ, उ, म, इन तीनों अक्षरों का मिलकर 'ओं' देवी रूप है, इसलिए त्र्यक्षरी है ।

वागबीज, कामबीज, शक्तिबीज, इन तीनों का मिला हुआ रूप ।

वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवे मोक्ष रूपिणी
कामराजे क्रियाशक्तिः कामेशी कामरूपिणी
शक्तिबीजे पराशक्तिरिच्छैव शिवरूपिणी
एवं देवी त्र्यक्षरी तु महात्रिपुर सुन्दरी (वामकेश्वरतंत्र)

६३१. दिव्यगन्धाढ्या

हरिचन्दनादि दिव्य गन्धों के परिमल से आढ्या। दिव्यगन्ध देवी के शरीर का स्वाभाविक गुण है । व्याख्याकारों का मत है कि हरिचन्दनादि सुगन्ध द्रव्यों का मिश्रण देवी अपने भक्तजनों की इच्छा पर धारण करती है । "दिवि भवा दिव्या देवादयश्चेतनाचेतनात्मकपदार्थ समूहाः तेषां गन्धैः संबन्धैराढ्या परिपूर्णा " (सौभाग्यभास्कर)। आकाश में उद्भूत चेतन

और अचेतन पदार्थ समूहों के सम्बन्ध से पूर्ण । आगे के नाम से मिलाकर व्याख्या करेंगे, तो यह साफ व्यक्त होता है कि सुगन्धित दिव्य गन्धों से निर्मित व्यंजनों को धारण करनेवाली ।

६३२. सिन्दूरतिलकांचिता

सिन्दूर तिलक से अलंकृता । सिन्दूर शब्द गोरोचना को भी द्योतित करता है । गोरोचना से बना तिलक ।

सिन्दूर शब्द के अर्थ हाथी और स्त्री ये भी हैं । इस प्रकार श्रेष्ठ हाथियों से आवृता। गजगामिनी स्त्रियों से आवृता । यह भी अर्थ हो सकता है कि गजों वा स्त्रियों से आराधिता।

तिलक शब्द का अलक अर्थ है । इस पक्ष में सिन्दूर और अलक से अलंकृत मुख।

६३३. उमा

पार्वती देवी हिमवान की पुत्री देवी शिव को पति के रूप में प्राप्त करने हेतु तप करने लगी । माता ने उन्हें बालिका होने के कारण तप करने से रोका । उ सम्बोधन और मा निषेध दोनों माता के वाक्य में रहने से, इसप्रकार (उ अयि मा - मत) देवी का नाम उमा हो गया।

"यतो निरस्ता तपसे वनं गन्तुं तु मेनया
उमेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती" (कालीपूराण)

उ का अर्थ है परमेश्वर । मा लक्ष्मी का पर्यायशब्द है । उमा शब्द परमशिव की लक्ष्मी । लक्ष्मणा से परमशिव की पत्नी । शिवशक्ति।

मा का अर्थ है जो मान करता है । उं परंशिव माति परिच्छिनत्ति वा (भास्करायर) । परमशिव का मान करनेवाली ।

उमा का अर्थ अतसि भी है । अतसि का पुष्प शिव लिंग पर अर्चित करना भगवान को प्रिय है । यहाँ यह अर्थ भी है कि देवी अतसि के रूप में रहनेवाली है ।

उमा शब्द के अर्थ हैं प्रकाश, कीर्ति, शान्ति, रात्रि, हल्दी आदि । इस क्रम में प्रकाशरूपिणी, कीर्तिरूपिणी, शान्तिरूपिणी, कालरात्री रूपिणी, हरिद्रावर्ण रूपिणी इत्यादि अर्थ है।

'उ' का अर्थ उत्तम और 'मा' का अर्थ चित्तवृत्ति है । उमा मिलकर अर्थ है उत्तम चित्तवृत्ति।

परानुभूतिं भवपाशनाशिनीं सदाशिवस्याप्यतिशोभनाढ्याम्
उमाभिधामुत्तमचित्तवृत्तिं नमामिनानाविध लोकवैभवाम् (सूतसंहिता)

"आचार्यों का समर्थन है कि देवीप्रणव है उमा।"ओंकारसारशक्तित्वादुमेति परिकीर्तिता" - (महावासिष्ठ । लिंगपुराण में श्रीपरमेश्वर का भगवती से इसप्रकार कहना है।)

''अकारोकारमकारा मदीये प्रणवे स्थिताः
उकारं च मकारं च अकारं च क्रमेरितम
त्वदीयं प्रणवं विद्धि त्रिमात्रं प्लुतमुत्तमम्''

'कौमारीनिगमार्थगोचरकरी ओंकारबीजाक्षरी' (शंकराचार्यकृत अन्नपूर्णास्तोत्र)

तंत्र मंत्र व्याख्यानों में उमा शब्द की अनेक व्याख्याएं दी गयी हैं । संदर्भानुकूल जानने योग्य वे व्याख्याएं गुरुमुख से समझ लेना है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'उमा' नाम का उच्चारण सर्वपापहर, सर्वसिद्धिकर, सर्वमन्त्रोद्धारक्षम है ।

६३४. शैलेन्द्रतनया

शैलेन्द्र याने पर्वतराज हिमवान की पुत्री । दक्षप्रजापति की पुत्री के रूप में जन्मी जगज्जननी दक्षयाग में देहत्याग करके देव कार्यार्थ हिमालय की पुत्री बनकर भूजात हुई, यह कथा विश्रुत है।

६३५. गौरी

गौरवर्ण की शरीरवाली । गौर शब्द लाल, सफेद, पीला, स्वर्ण वर्णों को द्योतित करता है .

''वरुणस्य प्रिया गौरी'' (पद्मपुराण) गौरी नाम से एक पुण्यतीर्थ नदी है। वह नदी रूपिणी देवी । दस वर्ष की कन्या रूपिणी देवी। कन्याकुब्ज मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी।

६३६. गन्धर्वसेविता

देवयोनी का एक वर्ग है गन्धर्व। देवसभा के गायकवृन्द है गन्धर्व। उनके द्वारा सेविता।

गन्धर्व शब्द का अर्थ गायक भी है । गायकों द्वारा स्तोत्र रूप में गानों से आराधिता ।

सुर्य का पर्याय है गन्धर्व। इस पक्ष में सूर्यदेव से आराधिता । सूर्य-चन्द्र अनेक वर्ष तक देवी की आराधना करके और देवी की पाद-पद्मों से निसरित कांति प्रवाह का अल्पांश स्वीकार करके तेजो- रूपी बने हैं।

गन्धर्व शब्द के अर्थ हैं भक्त और ज्ञानी। इस पक्ष में भक्तों द्वारा और ज्ञानियों द्वारा आराधिता।

गन्धर्व याने घोडों द्वारा सेविता। अश्वारुढ़ा देवी की ओर भी इंगित है।

६३७. विश्वगर्भा

विश्व को गर्भ में धारण करनेवाली । सारा विश्व देवी के गर्भ में रहता है, इसलिए विश्व जननी है, इसप्रकार विश्वगर्भा है।

'दृश्यादृश्यप्रभूतवाहनकारी ब्रह्माण्ड भाण्डोदरी'
(शंकराचार्यकृत अन्नपूर्णास्तोत्र)

६३८. स्वर्णगर्भा

जिनके गर्भ में स्वर्ण है, वे । स्वर्ण देवी रूप है । जिनके गर्भ में स्वर्णमय ब्रह्माण्ड है। इस नाम से विश्वगर्भा नाम पूर्वाधिक विशद होता है ।

हिरण्य स्वर्णपर्याय है। हिरण्यगर्भ शब्द के ब्रह्मा और विष्णु ये अर्थ भी हैं। ब्रह्मस्वरूपिणी, विष्णुस्वरूपिणी,

सूक्ष्म शरीरी आत्मा को हिरणमय गर्भ कहा जाता है। उसी रूप में रहनेवाली।

सुवर्ण माने सुअर्ण। सुअर्ण जिसके गर्भ में है वह। अर्ण का अर्थ है अक्षर, वर्ण आदि। सु विशेषण के मिलाने से मंत्राक्षर बना। मंत्राक्षर अथवा मंत्र जिसके गर्भ में हो वह। मंत्र निग्रह और अनुग्रह की शक्ति रखनेवाला है। वे सब देवी से पैदा हुए हैं।

६३९. अवरदा

अवरों का याने दुष्ट जनों का दमन करनेवाली। (द्यति उ खण्डयति) अवर (कान्तिमता) रदोंवाली याने दांतोंवाली। नम्बर २५ में बताया गया है कि देवी के दांत शुद्ध विद्यांकुर रूपी हैं। तब अर्थ निकला कि शुद्ध विद्याप्रकाशयुक्त दंतोंवाली।

६४०. वागधीश्वरी

वाक् के लिए अधीश्वरि। वैखरी रूप में भाषा रूप में रहनेवाली। साहित्य, संगीत एवं कला के रूप में वाक्‌रूपिणी होकर रहनेवाली।

"वाचामीश्वरी भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धिप्रदे
गद्यप्राकृत पद्यजातरचनासर्वस्वसिद्धिप्रदे" (नीलातंत्रान्तर्गत ताराष्टक)

६४१. ध्यानगम्या

ध्यान से समझने लायक। चित्तवृत्तियों का संयम करके एकतानता से चिन्तालीन रहना ही ध्यान है। मन पर नियंत्रण लाकर देवी का ही स्मरण करनेवाले उपासक को देवी का दर्शन प्राप्त होता है और अन्त में सायूज्य-प्राप्ति भी होती है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन देवात्मशक्तिंस्वगुणैर्निगूढां (श्रुति)

६४२. अपरिच्छेद्या

जिसकी परिच्छेद्य से पहचान नहीं हो सकती। अमुक समय, अमुक स्थान में, अमुक रूप में, इस प्रकार काल देश रूपादि उपाधियों से व्यवस्थित कर दिखाने में असमर्थ और अनादि अनन्त अखिलव्याप्त और सर्वरूपी पूर्ण महाशक्ति है देवी।

६४३. ज्ञानदा

ज्ञान प्रदान करनेवाली। ज्ञान कैवल्य-प्राप्ति का मार्ग है। वह ज्ञान उपासकों को देनेवाली है देवी। वह ज्ञानस्वरूपिणी है।

"विद्यारूपा या शिवा वेदवेद्या सत्यानन्दानन्त संवित्स्वरूपा
तस्या वाचः सर्वलोकैकमातु र्भक्त्यैवस्यादंबिकायाः प्रसादात्" (सूतसंहिता)

ज्ञान पद का अर्थ बन्धन है। ज्ञानं 'बन्ध': शिवसूत्र। ज्ञानं दति, खण्डयति अर्थात् ज्ञान को (बन्ध को) खण्डित करनेवाली। बन्धमोचिनी।

६४४. ज्ञानविग्रहा

स्वयं ज्ञान ही विग्रह बनी हुई। (विग्रह-शरीर) । ज्ञानरूपिणी

"ज्ञानमेवपरं ब्रह्मज्ञानं बन्धायचेष्यते
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्
विद्याविद्येति मैत्रेय ज्ञानमेवोपधारय" (विष्णुपुराण)

ज्ञान ही ब्रह्म है। ज्ञान ही विश्व है। इस नीति से देवी शरीर विश्व है और ब्रह्म है।

विग्रह शब्द का विस्तार अर्थ भी है। इस पक्ष में जिस देवी में ज्ञान का विस्तार है वह देवी।

६४५. सर्ववेदान्तसंवेद्या

सभी वेदों द्वारा विश्रुत। वेदान्त शब्द से मतलब है वेदों का अंत याने उपनिषद्। सभी उपनिषद् देवी को खोजते हैं। उपनिषदों का सार भी देवी हैं। उपनिषद देवी की सेवा में खडे हैं यही आचार्यों का मत है।

"नमो देव्यै महालक्ष्मै श्रिये सिद्धै नमोनमः
ब्रह्मविष्णु महेशानवेदकैः पूजितांघ्रये " (वासिष्ठ संहिता)

यहाँ वेदक शब्द से मतलब है, उपनिषद।

"श्रुतीनां मूर्द्धानो दधति तव यौ शेखरतया
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ"

इसप्रकार सौन्दर्यलहरी का वर्णन भी यही बात है।

'श्रुतीनां मूर्द्धानो' यही उपनिषदों की ओर संकेत है।

"एषा त्रिशक्तिरुद्दिष्टा नयसिद्धान्तगामिनी
एषा ज्ञानात्मिका शक्तिः सर्ववेदान्तगामिनी" (वाराहपुराण)

६४६. सत्यानन्दस्वरूपिणी

सत्य और आनन्द जिनका स्वरूप है वे। सच्चा आनन्द याने चिदानन्द जिनका स्वरूप बना हुआ है वे।

६४७. लोपामुद्रार्चिता

लोपामुद्रा से अर्चिता। लोपामुद्रा अगस्त्यमुनि की पत्नी है। लोपामुद्रा पतिदेव की ही तरह योगसिद्धियोंवाली और पतिव्रता है। हादिविद्या की ऋषि भी लोपामुद्रा है। लोपामुद्रा दीर्घकाल तक देवी की उपासना करती थी।

६४८. लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला

जिन्होंने लीला से ब्रह्माण्ड मण्डलों की सृष्टि की वे। प्रपंच की सृष्टि-स्थिति और नाश माता की लीला मात्र है। बायें हाथ का यह खेल है।

"विधिविष्णुमुखामरोदयस्थितिनाशेषु शिवोऽप्यनीश्वरः
जगदम्बतवत्वियं क्रमः क्षणमुद्दालकपुष्पभंजिका" (भास्करायर देवीस्तव)

वे कहते हैं कि उद्दालक पुष्पभंजिका एक खेल है। विधि, विष्णु आदि देवों के उदय, स्थिति और नाश में शिव अनीश्वर है। जो काम शिव भी नहीं कर पाते वह देवी के लिए क्रीड़ासम है।

६४९. अदृश्या

जो दर्शनीय नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि बाहरी आँखों से देवी के दर्शन करना मुश्किल है। "निर्गुणस्य मुने रूपं न भेद दृष्टिगोचरं" (देवीभागवत) अत्यन्त कठोर साधना करने पर किसी न किसी साधक को देवी रूप के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। देवी अन्तर्मन में ही साधारणतः दर्शित होती है।

६५०. दृश्यरहिता

अपने से भिन्न कोई वस्तु न होने के कारण देवी के लिए कोई भी दृश्यवस्तु नहीं है। देवी के प्रभाव से दूसरों को इन्द्रियों से प्रपंच दर्शित होता है। देवी सर्वातीता होने से देवी के लिए कोई दृश्य वस्तु नहीं है।

६५१. विज्ञात्री

विज्ञान देनेवाली। विशेष अनुभव से जानने योग्य। "विशेषेण जानातीति विज्ञात्री" (सौभाग्यभास्कर)

६५२. वेद्यवर्जिता

जिसे कुछ जानने की ज़रूरत नहीं है। अर्थात् सबकुछ जाननेवाली। सर्वज्ञा।

६५३. योगिनी

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" यही पातंजलीसूत्र का निर्देशन है। मंत्र, लय, हठ, राज इन चार विधियों से यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है, शास्त्रों का यही अभिमत है। इन चारों को योग कहते हैं, और ये देवी के अंश हैं, इसलिए इन को प्राप्त, इस अर्थ में योगिनी नाम है।

मंत्रों में शास्त्रप्रसिद्ध डाकिनी आदि योगिनियाँ अनेक हैं। 'महाचतुष्टि कोटियोगिनी गणसेविता' नामक एक नाम और है। ये योगिनियाँ देवी शक्तियों का मूर्तीभाव हैं। डाकिनियों का रूप धारण करनेवाली।

"योगो विषयसंगोभोग" इस वचन के अनुसार विषय संग अथवा मार्ग को भी योग में व्यख्यायित किया जा सकता है। लौकिक सुखों को भोगने का जिसे भाग्य है वह योगिनी।

६५४. योगदा

चित्तवृत्ति का निरोध करके योग-प्रयत्न करने पर भी देवी की दया से ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

योगविद्यायें गोपनीय हैं और रहस्यमय। उनको और उनमें से सिद्धि प्रदान करनेवाली।

६५५. योग्या

योग के लिए काबिल। योगसाधना से देवी को प्राप्त कर सकेंगे। देवी प्रीति के लिए योग साधना करना व्यर्थ नहीं है। शाश्वत परमानन्दप्राप्ति के लिए ही यह प्रयत्न है। क्लेशपूर्ण साधनाओं से प्राप्त होनेवाली है देवी।

"ज्ञानेन्द्रियाणि सर्वाणि निगृह्य मनसा सह
एकत्वभावनायोगः क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः" (विष्णुपुराण)

योगिनी योगदा योग्या इन तीनों नामों को भोक्ता, भोगप्रदा, भोग्या इनको सूचित करते हैं। "योगो विषयसंगो भोगः" इस पूर्वोद्धृत वचन से यह आशय सिद्ध होता है। सौभाग्यभास्कर में लगायी गयी व्याख्या का यही संग्रह है।

श्वेताश्वतरोपनिषद में "भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतद्" इस प्रकार कहा गया है। सांख्यमत बताता है कि माया तीन प्रकार की होती है।

सत्व, रज, तम ये तीन गुण। इन तीनों का मिलकर तीन प्रकारों में पर्यवसित होते हैं। रजोगुण और तमोगुण का अधिक संपर्क न होकर शुद्ध सत्वात्मक मायारूप। रज और तम का मिश्रित थोडा कलंकित सत्वावस्था दूसरा। रज और तम का मिश्रण पाकर तमोगुण की प्रधानता मिला हुआ तीसरा प्रकार। त्रिगुणों में सबका स्पर्श आपस में थोडा-बहुत होता है। इसलिए सब के वर्णन में अंश का विवरण दिया गया है। इनमें प्रथम ईश्वरी और योगप्रदा हैं, इसलिए योगदा है। दूसरा जीवात्मा रूपिणी और भोक्ती होने से योगिनी है। तीसरा जडवस्तु रूप होने से भोग्या है, जिसे योग्या कहते हैं।

६५६. योगानन्दा

योग में जिसे आनन्द है। शिवशक्ति योगरूपी आनन्द का अनुभव करनेवाली। योग निद्रा में लीन। "याप्यानन्दघना योगनिद्रेति जगति स्थिता" (हरिवंशं) योग और योगनिद्रा में आनन्द अनुभव करनेवाली (तमिलव्याख्या) योगी द्वारा की जानेवाली योगचर्या की आनुषंग उपासना में प्रसन्न होनेवाली।

जीवात्मा और परमात्मा दोनों के संयोग को योग कहते हैं।

योग से जीव को चिदानन्द प्रदान करनेवाली है देवी! योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठकरी (शंकराचार्यकृत अन्नपूर्णस्तोत्र)

विष्णु के अवतार नृसिंह को पर्यायरूप में योगानन्द कहते हैं। नरसिंह रूपिणी नाम इस अर्थ में लागू है। (अयोगा, आनन्दा इन दो नामों में कुछ व्याख्याकारों ने विभक्त किया है। वे मोहिनी मुख्या इन दोनों नामों को मोहिनीमुख्या याने एक ही नाम में लाते हैं। अयोगा का निर्वचन किया गया है- "योग संगो न विद्यते यस्या" । किसी एक वस्तु से भी योग न करनेवाली या योग न होनेवाली। 'अय-उ-ग' इस प्रकार पदविपर्यय करके अयं (शुभावह विधि) शुभावह विधि के अनुसार परमशिव को प्राप्त करनेवाली याने अयं से उ (परमशिव) को प्राप्त करनेवली) शिव-पत्नी।

आनन्दा शब्द को आनन्दस्वरूपिणी अर्थ है । आयोगा-नन्दा इस प्रकार पद छेद करके भी व्याख्या की जाती है। इस पक्ष में नन्दा पद गंगास्वरूपिणी अलकनन्दा का द्योतक है। प्रतिपद, षष्ठि, एकादशी इत्यादि तिथियों को सूचित करने के लिए भी नन्दा पद का प्रयोग होता है। जहाँ ये तिथियाँ स्वयं देवी हैं।

ओर भी अर्थ इन दोनों को लक्ष्य करके विद्वानों ने कहा है। अक्सर व्याख्याकारों ने योगानन्दा शब्द को एक साथ ही बताया है। और मोहिनीमुख्या को दो शब्दों में। केरल में यही ज्यादा प्रचरित है। यहाँ इस ग्रंथ का व्याख्याकार भी गोगानन्दा को एकशब्द ही मानता है।

६५७. युगन्धरा

युगों को धारण करनेवाली। युग चार हैं यथा कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। उनको धारनेवाली। कलारूपिणी, कालपरिणाम और परिणामों का नियंत्रण करनेवाली। युग्म युगलं युगं इस प्रमाण के अनुसार जो युगल हैं वे युग हैं। ताप और शीत, अन्धकार और प्रकाश, सुख और दुःख, इत्यादि युगल सब देवी रूप हैं। द्वंद्व भाव धार करने से युगंधरा नाम है।

"रथांगरूपी योक" युग का यह भी अर्थ है। युक को धारण करनेवाला युगंधरा । (बलराम सीरायुध रूप में वर्णित है, देखें)

६५८. इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी

इच्छ्रशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति इन तीनों को वेदान्त के अनुसार परमात्मा (ईश्वर) के शक्तित्रय मानते हैं। ईश्वर की इच्छ्रशक्ति से प्रथमसृष्टि चलती है। कर्म-बन्धन से जीवात्मा को मुक्ति देनेवाली ज्ञानशक्ति है। प्रपंच की स्थिति के लिए अपेक्षित स्पन्दन (कर्म) क्रियाशक्ति है। ये तीनों शक्तियाँ जीवों में भिन्न रूपों में रहती हैं । इच्छा रूप में, ज्ञान रूप में क्रिया रूप में जीवों में सृष्टि, स्थिति, लय रूप में प्रपंच में जो कुछ होता है वह देवी शक्ति से है।

इन्हें देवी के शरीर के अंग ही आचार्य मानते हैं।-

"इच्छ शिरः प्रदेशश्च ज्ञाना च तदधोगता
क्रिया पदगताह्यस्या एवं शक्तित्रयं वपुः" (संकेतपद्धति)

"त्रिपुरात्रिविधा देवी ब्रह्मविष्णवीशरूपिणी
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरिच्छशक्त्यात्मिका प्रिये" (वामकेश्वरतंत्र)

देवी का सिर इच्छशक्ति, उसके नीचे का शरीर ज्ञानशक्ति और पाँव क्रियाशक्ति है। यह शक्तित्रय ही देवी शरीर है। ब्रह्माविष्णु शिवात्मक देवी शरीर में ब्रह्मा ज्ञानशक्ति, विष्णु क्रिया शक्ति और शिव इच्छाशक्ति हैं, यही आचार्य मत है।

इनमें प्रत्येक के बारे में विस्तार से व्याख्या की जा सकती है। अन्य नामों की चर्चा में यह बात अन्तर्लीन होने से यह व्याख्या यहाँ समाप्त है।

६५९. सर्वाधारा

सब का आधारस्वरूप रहनेवाली। सभी प्रपंच देवी में आवासित रहते हैं, इसलिए सर्वाधारा। प्रपंच में आधार और आधेय रूप में वस्तुएं हैं। आधार रूप में सब देवी में से पैदा हुआ है, इसलिए सर्वाधारा नाम है। जब वस्तुओं और आशयों का परस्पर सम्बन्ध विचाराधीन आता है तब उन सबका आधार आधेय भाव आपेक्षिक लगते हैं। जो आधार स्वरूप है उसे और एक आधार होना है। इस प्रकार जब आधाराधेय की खोज करते जायेंगे, तब सब का आधार कहाँ है, इसका पता लग जायेगा। उस शक्ति को पराशक्ति कहते हैं। उस पराशक्ति के लिए अन्य आधार की ज़रूरत नहीं है, इसलिए उन्हें निराधार कहते हैं।

६६०. सुप्रतिष्ठा।

श्रेष्ठ प्रतिष्ठा से युक्त। प्रष्ठिा शब्द का अर्थ है स्थिति। अन्य सारी स्थिति काल के साथ नष्ट हो जायेगी। सुस्थिति किसी की नहीं। प्रलय काल में भी विचलित न होनेवाली स्थिति देवी ललिताम्बिका की ही होती है। सारे जगत को अपने भीतर प्रतिष्ठित करनेवाली। मन्दिरों में तंत्रविधि के अनुसार उचित रूप से प्रतिष्ठिता।

६६१. सदसद्रूपधारिणी

सत् और असत् रूप धारण करनेवाली। प्रपंच के पातिभासों को पारमार्थिक सत्ता और व्यावहारिक सत्ता इस प्रकार दो भागों में बताया जाता है। सब के लिए आधार एवं नित्य जो है वह पारमार्थिक सत्ता, उसे ब्रह्म कहते हैं, आचार्य। जो वस्तु उसकी अवस्थिति में भासित होती है और अनित्य एवं आधाराधिष्ठित है वह व्यावहारिक सत्ता। माया, जो सत्ता में अधिष्ठित होने पर भी वह उससे भिन्न होने से असत् है। इन दोनों रूपों को धारण करनेवाली।

लौकिक व्यवहार में सत् असत् इन दोनों तरह में भी व्याख्यायित हो सकते हैं। धर्मानुसार जो है, वही सत् है और धर्मविरुद्ध जो है वही असत् है। सत् वह है जिसका अथवा देश का अनुसरण करना चाहिए और जिसका समय अथवा देश के कारण कोई परिवर्तन नहीं आता वही नियम है। उसके विपरीत जो है वह असत् है। धर्मनियमों के अतीत देवी चेतना सत् और असत का रूप धारण करती है। इसलिए सदसद्रूपधारिणी।

६६२. अष्टमूर्तिः

आठ मूर्तियों सहित। आचार्य वृन्द अष्टमूर्ति की व्याख्या कई प्रकार से करता है।

"लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभाधृतिः
एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वती" (मत्स्यपुराण)

उक्त वाक्य के अनुसार देवी की आठ मूर्तियाँ हैं, जैसे लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा और धृति। मंत्रलिंग रूपी ये आठ मूर्तियोंवाली।

"गुणभेदादात्ममूर्तिरष्टधा परिकीर्तिता
जीवात्मा च अन्तरात्मा च परमात्मा च निर्म्मलः
शुद्धात्मा ज्ञानरूपात्मा महात्मा सप्तमः स्मृतः
अष्टमस्तेषु भूतात्मेत्यष्टात्मानः प्रकीर्तिताः" (योगशास्त्र)

योग शास्त्र के अनुसार आत्मा के अष्ट मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं, जैसे जीवात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, निर्मलात्मा, शुद्धात्मा, ज्ञानरूपात्मा, महात्मा, और भूतात्मा। आत्मा की ये आठ मूर्तियाँ देवी रूप होने से देवी अष्टमूर्ति हैं।

भूतानि पुष्पवन्तौ स्वरिति देव्यष्टमूर्त्तयः (शक्तिरहस्य)

इस प्रकार पंचभूत पुष्पवन्त (सूर्य और चन्द्र) स्वर्ग ये देवी की आठ मूर्तियाँ हैं। (शक्ति रहस्य स्वरिति का प्रयोग जो है उसके जीवात्मा, स्वर्ग, दीक्षित इन तीनों में जो भी चाहे लागू है। ये आठ मूर्तियोंवाली हैं देवी।

पंचभूत, मन, बुद्धि, अहंकार ये आठ मूर्तियाँ हैं, यह व्याख्या भी स्वीकार की जा सकती है।

"भूमिरापोऽनलोवायुः खं मनोबुद्धिरेव च
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा (भगवद्गीता ७-४)
गणिका शौंडिकी चैव कैवर्त्ती रजकी तथा
तंत्रकारी चर्मकारी मातंगी पुंश्चली तथा"

उपर्युक्त प्रकार से समयाचार स्मृति में वर्णित कुलाष्टकं जिनका रूप है वे।

अष्टमूर्ति-शिवः शिव से अभिन्न जो है वह देवी।

६६३. अजाजैत्री

अजा पर विजयप्राप्त। अज अविद्यारूपिणी माया है। माया पर विजय-प्राप्त देवी। "अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णा" इसप्रकार श्रुति में वर्णन है। अपने भक्तों को माया पर विजय प्राप्त करने की शक्ति देनेवाली। स्वयं देवी ही माया रूपिणी है, इसलिये माया पर जय पाने का प्रस्ताव अर्थहीन है। माया पर विजय प्राप्त करने का अधिकारी उपासक है।

६६४. लोकयात्राविधायिनी

संसार यात्रा को नियंत्रित करनेवाली। संसारयात्रा से तात्पर्य है चौदहों लोकों का संरक्षण। लोक अपने लिए नियत धर्मों के अनुसार चलते हैं। उनकी जनयित्री देवी उनके अस्तित्व के लिए योग्य विधान भी करती हैं।

लोकों की यात्रा (याने प्रलय और नाश) का विधान करनेवाली। सृष्टि और स्थिति के समान लय का भी विधान करती हैं देवी।

६६५. एकाकिनी

जो अकेली है। जिनके अलावा दूसरी कोई नहीं। सारे प्रपंच में अभिन्न जो है। सारे पदार्थ, सारे प्राणी, सारे शास्त्र, सारी विद्या, सारे लोक और सारा काल सब देवीस्वरूप हैं। देवी से अलग कुछ भी नहीं है। ''एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा'' । इस जगत् में मैं सिर्फ मैं हूँ। मुझे छोडकर अन्य कौन है?)-देवी माहात्म्य में देवी सुंभ से पूछती हैं।

''एकैव लोकान् ग्रसति एकैव स्थापयत्यपि
एकैव सृजते विश्वं तस्मादेकाकिनी मता'' (देवी पुराण)

६६६. भूमरूपा

ब्रह्मरूपिणी। सौभाग्यभास्कर बताता है कि भूमा ब्रह्म ही है। यह भूमाधिकरण में निर्णीत है।

भूमा शब्द का बहु अर्थ भी है। ऊपर के नाम की व्याख्या से जोड़कर देखें, तो अर्थ निकलता है कि एकाकिनी होने पर भी बहुरूपा हैं।

''एकाप्युपाधितोभूमा शिवा सर्वत्र विश्रुता
यथानुरज्यते वर्णैर् विचित्रैः रफटिकोमणिः
तथा गुणवशाद्देवी भूमानामेति वर्ण्यते
एको भूत्वा यथा मेधः पृथक्त्वेन च तिष्ठति
वर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशादुमा
नभसः पतितं तोयं यथा नानारसं भवेत्
भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशादुमा
यथा द्रव्य विशेषेण वायुरेकः पृथक भवेत्
दुर्गन्धो वा सुगंधो वा तथा गुणवशादुमा
यथा वा गार्हपत्योऽग्निरन्य संज्ञान्तरं व्रजेत्
दक्षिणाहवनीयादि ब्रह्मादिषु तथैव सा
एकत्वेन च भूम्ना च प्रोक्ता देवी निदर्शनैः'' (देवीपुराण)

एकाकी परमेश्वरी उपाधिता होकर जानी जाती हैं। अतः बहुरूपा का वर्णन है।

६६७. निर्द्वैता **६६८-द्वैतवर्जिता**

निर्गत द्वैत निर्द्वैत है। जिसे द्वैतभाव नहीं है वही निर्द्वैता है। द्वैतभाव को जिसने वर्जित किया वही द्वैतवर्जिता है। जीव और ईश्वर दोनों दो हैं, वही द्वैतसिद्धांत है। आचार्यों ने वेदांत शास्त्र में द्वैत को भी अद्वैत के समान माना है।

मध्वाचार्य ने और अन्य आचार्यों ने द्वैतवाद को एक प्रस्थान के रूप में विकसित किया था। वह सिद्धांत चर्चा इस नाम से संबन्धित नहीं है। एकाकिनी, भूमरूपा इत्यादि अनेक नामों से इंगित देवी की सर्वव्यापिता और प्रपंच से अभिन्न स्वरूप का यहाँ संकेत है। पुरुष और प्रकृति और शिव और शक्ति एक का ही भेदभावना रूप है। यदि भिन्न दिखाई देता है, तो वह देवी की चेतना से है। प्राणियों में जो जीवशक्ति है वह और पराशक्ति दोनों दो नहीं हैं। द्वैत दृष्टि का अंत होकर अद्वैत भावना का बनना देवी के कटाक्ष से ही संभव है। अतः देवी निर्द्वैता है। अपने से भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है, यही अद्वैता है।

द्वैत को वर्जित करनेवाली इसप्रकार विछेदार्थ अगर मानें, तो पहले द्वैत में थी का आशय आता है। इसलिए सौभाग्य भास्कर बताता है ''न पुनर्द्वैतं पूर्वं स्थितं पश्चान्निर्गतं मूलत नास्तीत्याह द्वैतवर्जिता'' । प्रपंच माता एक ही हैं। उनसे प्रतिभासित प्रपंच का प्रत्येक अणु देवी से अभिन्न है। द्वैतभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए द्वैत वर्जिता नाम है। ये दोनों नाम सूचित करते हैं कि भेदभावना अनित्य है और प्राणियों की शरीरजन्य वासना से उत्पन्न हैं, जो मिथ्या है। इसलिए वह भावना नहीं होती देवी के सम्बन्ध में।

६६९. अन्नदा

अन्नदान करनेवाली। प्राणी के लिए अन्न चाहिए क्योंकि उसे शरीर का संधारण करना है। बिना आहार के शरीर का नाश होता है। सारे प्राणियों को अन्नदान करनेवाली अन्नदा है देवी।

''अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्'' (भ.गी.३-१४-१५)

इसप्रकार गीता में भगवान् ने भूतों एवं अन्न, अन्न एवं पर्जन्य, पर्जन्य एवं यज्ञ, यज्ञ एवं कर्म, कर्म एवं ब्रह्म के बीच के सम्बन्ध का विवरण देते हैं। एक दूसरे केलिए आधार बना रहता है, फिर भी इस चक्र में सब एक ही से उत्पन्न है। जैसे प्रपंच के सभी तत्व है, उसी प्रकार सभी प्राणियों को देवी ही अन्न देती हैं।

देवी को अन्नपूर्णा के रूप में भी भक्तों का संकल्प है। जैसे काशी और केरल के चेरुकुन्नु और अन्य अनेक मंदिरों में देवी का वह रूप, जो हाथ में अन्नपात्र लिए करुणापूर्ण मुखभाव के साथ अन्न परोसनेवाली है, चित्रित किया गया है। उन क्षेत्रों की अधिष्ठात्री भी है। यह व्याख्या

उपर्युक्त शक्ति से भिन्न नहीं है। उसका साक्षात् रूप है ''अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकर प्राण वल्लभे ज्ञान वैराग्य सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वती'' (शंकराचार्य-अन्नपूर्ण स्तोत्र)

६७०. वसुदा

जो वसु को दान देती है। वसु माने सुवर्णरत्नादि सम्पत्ति। पहलेवाले नाम में अन्नदान करनेवाली बताया गया है। अन्न तो सभी प्राणियों के लिए ज़रूरी चीज़ है। सम्पत्ति मनुष्य और देवताओं के लिए चाहिए। यहाँ मनुष्यों को कहना ही उचित है। सम्पत्ति दान में देनेवाली।

वसु का अर्थ है जल। उपर्युक्त नाम से जोड़कर देखें। अन्न जितना ज़रूरी है उतना जल भी। उसे दान देनेवाली।

वसु का अर्थ है प्रकाश, कान्ति। प्रकाश देनेवाली। सूर्यचन्द्राग्नि के रूप में प्रकाश देनेवाली।

६७१. वृद्धा

जो बूढ़ी हो गयी है। अनादि देवी है, तो सब से पुरातनी है, इसलिए वृद्धा है। वृद्धा शब्द का अर्थ वर्द्धिता भी है। जगत्रूप में अभिवृद्ध। जगत की वृद्धि करनेवाली।

६७२. ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिणी

जीवन और ब्रह्म दोनों के बीच के ऐक्य स्वरूप बनी हुई। ब्रह्म शब्द को शिव मानकर शिव और जीवात्माओं के ऐक्य का प्रतिपादन करनेवाला हंसमंत्र स्वरूपिणी। (सौभाग्यभास्कर) इस के लिए आधार प्रमाण नीचे दिये गये हैं स्कान्दपुराण में:

''अथवा जीवमंत्रोऽयं जीवात्म प्रतिपादकः
अहं शब्दस्य रूढत्वाल्लोके जीवात्मवस्तुनि।
शक्तिमंत्रः सकाराख्यः परमेश्वर वाचकः
प्रकृतार्थे प्रसिद्धत्वाद् प्रसिद्धः परमेश्वरः
महदाद्यणुपर्यंतं जगत्सर्वं चराचरम्
जायते वर्ततेचैव लीयते परमेश्वरे
संसारित्वेन भातोऽहं स एव परमेश्वरः
सोऽहमेव न संदेहः स्वानुभूति प्रमाणतः''

यह भाग उस कृति का उद्धरण करता है। हंसमंत्र का रूप और उसकी व्याख्या गुरु मुख से जानें।

६७३. बृहती

महत्व से युक्त। ''महतो महीयस्त्वाद् बृहती'' (सौभाग्यभास्कर) जो महीयस है उससे महान।

सामवेदान्तर्गत नामों में सब से श्रेष्ठ स्तोत्र को बृहत् साम और ज्येष्ठसाम कहते हैं।

''बृहत् साम तथा साम्नां गायत्री च्छन्द सामहं '' इसप्रकार भगवान भगवद्गीता में बृहत्साम की महत्ता की उद्घोषणा करते हैं। इस सन्दर्भ में बृहत्साम रूपिणी।

प्रतिपद में नौ अक्षरवाला एक छन्द का नाम है बृहति। छन्दशास्त्र में प्रसिद्ध उस छन्द का रूप धारण करनेवाली।

६७४. ब्राह्मणी

ब्रह्म को जाननेवाला ब्राह्मण। स्त्रीलिंग में देवी परक प्रयोग ब्राह्मणी है। ब्रह्मस्वरूपी होने से भी ब्राह्मणी। ब्राह्मण की पत्नी ब्राह्मणी। द्विजस्त्री रूपिणी।

देवों में ब्राह्मण है शिव। शिव पत्नी होने से ब्राह्मणी। ''ब्राह्मणो भगवान सांबो'' (वासिष्ठ)

६७५. ब्राह्मी

ब्रह्मशक्ति। वाग्देवता स्वरूपिणी। सरस्वती। सुंभ और निशुंभ को मारते समय देवी की सहायता करने कोलिए सभी देवी देवताओं की शक्तियाँ उन देवताओं के रूप धारण करके और उनके आयुध, बल इत्यादि से युक्त होकर युद्ध में भाग लेते थे। ब्रह्म शक्ति ने उस युद्ध में भाग लिया है।

''कमण्डलु जलाक्षेप हतवीर्यान् हतौजसः
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति''

बताया गया है कि कमण्डलु का जल डालकर असुरों को ब्रह्माणी हतवीर्य और हताजस बनाती हैं। उस देवी के दो नाम हैं, जैसे ब्रह्माणि और ब्राह्मी। इस पक्ष में यह अर्थ है कि ब्राह्मी रूपधारण किये हुए।

६७६. ब्रह्मानन्दा

जिसका स्वरूप ही ब्रह्मानन्द है। आनन्द से तात्पर्य है तृप्ति से मन में होनेवाला मानसिक सुख। वह कार्य और कारण के बल पर कई तलों से बनता है। जैसे, रोगी जब रोग मुक्त हो जाता है, निर्धन जब धनी बनता है, पराजित जब जय प्राप्त करता है, सुन्दर दृश्य देखने पर और शब्द सुनने पर तृप्ति होती है। लेकिन इस प्रकार के आनन्दानुभव क्षणिक हैं। अनुभूति के आधार के बदलने पर आनन्द भी नष्ट होता है। ऋषियों ने आनन्दानुभूतियों के प्रभेद दिखाये हैं जैसे ज़्यादा आनन्दानुभूति और शाश्वत आनन्दानुभूति ऐसे। विषयानन्द, वासनानन्द, निजानन्द, मुख्यानन्द, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, ज्ञानानन्द, ब्रह्मानन्द इस प्रकार आनन्द को आठ रूपों में विभक्त किया है। ब्रह्मानन्द वह अवस्था है, जहाँ ब्रह्म और जीवन दोनों एक बन जाते हैं। वह ब्रह्मानन्द देवी को प्राप्त है, ऐसी व्याख्या करने की कोई ज़रूरत नहीं है। देवी स्वयं ब्रह्मानन्द है।

तब जो भिन्न नहीं है उससे अभेद संकल्प करना ही उचित नहीं है। ब्रह्मसाक्षात्कार प्राप्त करनेवाला जीव एक प्रकार का आनन्द प्राप्त करता है वह स्वयं देवी स्वरूप है। गूढ़ार्थ है कि भक्तों को ब्रह्मानन्द के मार्ग को पहुँचानेवाली।

६७७. बलिप्रिया

बलियों में प्रियता रखनेवाली। शत्रुओं को पराजित करने लायक शक्ति जिसे होती है वही बली है। प्रत्यक्ष में अविद्या को निरासित करनेवाली। कामादि शत्रुओं को जीतने में जो विजयी होगा उनसे प्रियता रखनेवाली।

शरीरबल और अभ्यासपटुता से शत्रुओं को युद्ध में हरानेवाले वीर को बलि कहते हैं। उस प्रकार के वीरों को प्रिय माननेवाली। पढ़कर और मनन करके ज्ञानबल प्राप्त करनेवाले पण्डित वाद-विवाद में विपक्षियों को हराते हैं, उनसे प्रियता रखनेवाली।

दानपरता और धर्मनिष्ठा से प्रसिद्ध महाबलि नामक असुर राजा को वामनरूपधारी विष्णु ने भौतिक राजाधिकार से मुक्त करके शाश्वत पद प्रदान किया था। वामनरूपी विष्णु से अभिन्न देवी।

पूजादि कर्मों के अवसर पर देवता को अर्पित उपचार को बलि कहते हैं। अपने ऊपर भक्तिपूर्वक बलि अर्पित करनेवाले बलिदायकों से प्रियता रखनेवाली।

६७८. भाषारूपा

जिस का रूप भाषा का है। पहले सूचित किया गया है कि परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी इस प्रकार शब्द ब्रह्म का परिणाम कैसे है। देश, काल, समूह, इनके अनुसार वैखरी वर्णों, अक्षरों, अक्षर संघातों, पदों, पदसंघातों, वाक्यों और वाक्यों के मिलने पर काव्य, नाटक आदि साहित्य रूपों का परिणाम होता है। वाक् और अर्थ दोनों मिलकर पार्वती परमेश्वर संयोग स्वरूप में देवी चेतना ही प्रकट होती है, इसलिए भाषा रूपा है।

भाषाओं द्वारा निरूपित होनेवाली। सभी भाषाएं आशय की अभिव्यक्ति करती हैं। आशय सर्व प्रपंच में व्याप्त और सभी व्यापारों का स्वरूप है। वह विश्वचेतना का अंश है। अतः सभी भाषाएं देवी का निरूपण ही करती हैं।

"संस्कृतेनैव केप्याहूः केचित्म्लेच्छादि भाषया
साधारण्येन केऽचित्वां प्राकृते नैव केचन"

इसप्रकार भाषा, प्राकृत भाषा, म्लेच्छ भाषा इस प्रकार अलग अलग करके देखना नहीं चाहिए। सब शब्द-ब्रह्म स्वरूपी हैं। उन सब को देवी का ही विषय गाना है।

६७९. बृहत्सेना

बृहत् सेना से युक्त। देवी माहात्म्य और ललितोपाख्यान में देवी की सेनाओं की विपुलता का वर्णन हुआ है। उसे देखें। देवसेनानी स्कन्ददेव देवी के पुत्र हैं, यह भी स्मरणीय है।

६८०. भावाभावविवर्जिता

जिसे भाव और अभाव स्पर्श नहीं करते। भाव का अर्थ है उत्पत्ति। अभाव नाश। जिसे उत्पत्ति और नाश नहीं है वही।

भाव शब्द का आशय है वस्तुओं के गुण। रूप, रस, गन्ध, व्याप्ति, भार, काठिन्य, मार्दव इत्यादि गुण और उन गुणों का अभाव यह जिसे व्यापता नहीं, वही भावाभाव विवर्जिता है।

६८१. सुखाराध्या

सुखपूर्वक आराधना करने योग्या। अन्य देवों की आराधना करने में अनेक नियम हैं। उपवासादि क्लेशपूर्ण अनुष्ठानों का निर्वाह करना है। कठिन तप, आदि आराधनामूर्ति के स्वभाव के अनुसार अनेक चर्यायें होती हैं। देवी के प्रसाद के लिए अनेक प्रकार के कष्ट अनुभव करनेवाले भी होते हैं। वे अनुष्ठान देवी के प्रिय नहीं हैं, ऐसा अर्थ भी नहीं है। पूजा और उपासना में शक्तिहीनता, अज्ञता, अथवा एकाग्रता न होने पर भी उन्हें माफी देकर अपनी ओर फिर भी आकर्षित करने का सौमनस्य देवी दिखाती है, इस कारुण्यभाव के कारण सुखाराध्या कहा गया है। प्रथम नाम में सूचित मातृभाव ही मां को सुखाराध्या बना देता है। पुत्रों की गलतियों को माफी देकर उन्हें अनुग्रह प्रदान करनेवाली मां ही देवी है।

६८२. शुभकरी

शुभ को प्रदान करनेवाली। आराधना में अपर्याप्तता होने पर भी सन्तुष्ट होनेवाली और शुभ देनेवाली है देवी। देवी भक्तों का अनुभव इह और पर दोनों जगहों में सुख और समृद्धि का ही रहेगा। ''सर्व मंगलमंगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके शरण्ये त्रैंबके देवी नारायणि नमोस्तुते'' (देवी माहात्म्य अध्याय ग्यारह) यह मंत्रभूत श्लोक प्रस्तुत आशय धारण करता है गुरु के उपदेश के बिना भी अनुष्ठनों के अलावा भी यह श्लोक-पाठ किया जा सकता है। इससे देवी की प्रीति अवश्य होगी।

६८३. शोभनासुलभागतिः

शोभना, सुलभा, और गति वाली। शोभना शब्द से मतलब पुरुषार्थचतुष्टयरूपा है। सुलभा से मतलब जल्दी से प्रसन्न होनेवाली। गति का अर्थ है उपासक को देवी प्राप्त हो सकती है, इस स्थिति में रहनेवाली।

शोभन और सुलभ गतिवाली। यहाँ गति से मतलब सुदुर्लभ गति है। अर्थात् जनन मरण के दुःख जिस गति में नहीं हो, वही गति अथवा मोक्ष देनेवाली।

६८४. राजराजेश्वरी

राजराजाओं की ईश्वरी। राजा के भी जो राजा है वह राजराजा है। यहाँ देवेन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु तथा शिव की ओर संकेत है। इन सबकी ईश्वरी।

राजराज का अर्थ कुबेर भी है। कुबेर की भी ईश्वरी है, तो कुबेर की धनाढ्यता देवी से प्राप्त है, यह ध्वनि है। देवी की कृपा से कुबेरतुल्य बनेगा, यह व्यंग्यार्थ है।

देवी संकल्पों में राजराजेश्वरी का रूप उपासक सर्वप्रधान मानते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा देवेन्द्रादि देवताओं द्वारा परिसेविता होकर, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों द्वारा परिचारित

होकर ऋषियों सिद्धों किन्नरों आदियों से स्तुत्या होकर, अखिल प्रपंचों की शासनकारिणी के रूप में सिंहासनस्था देवी राजराजेश्वरी पूजी जाती हैं। उसी रूप में रहनेवाली।

६८५. राज्यदायिनी

राज्य को प्रदान करनेवाली। राज्य शब्द का तात्पर्य ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास, देवलोक आदि से है। देवी का वासस्थान श्रीपुर भी इस नाम से सूचित किया जाता है। अपने भक्तों को इन लोकों को प्रदान करनेवाली।

उपासकों को भूमि में राज्य देनेवाली। लौकिक जीवन में देवी की कृपा से ऐश्वर्य, पद, भरणाधिकार आदि प्राप्त होंगे।

६८६. राज्यवल्लभा

राज्यों के लिए वल्लभा। वल्लभा शब्द का प्रकृत अर्थ है मालकिन अथवा यजमाननी। इस पक्ष में सूचना यह है कि राज्य देवी का है। उपर्युक्त नामों में जैसे बताया गया है कि राज्यों को देनेवाली देवी, यह सार्थक होता है।

वल्लभा शब्द का अर्थ प्रियता रखनेवाली भी है। (देवी के कटाक्ष से राज्य प्राप्त होता है)। वैकुण्ठादि राज्यों को पसन्द करनेवाली।

इन राज्यों का शासन करनेवालों से प्रियता रखनेवाली।

देवी के करुणाकटाक्ष से राज्यप्राप्ति होती है। उनसे देवी प्रसन्न है।

६८७. राजत्कृपा

शोभायमान कारुण्य रखनेवाली। मां का कारुण्य सारे चराचरों में प्रवृत्त होता है। इसलिए राजत् विशेषण अणु से भी छोटी वस्तु और महत् से महत् वस्तु पर समान रूप से प्रवृत्त होनेवाला है। उस कृपा वैभव से शोभित होनेवाली।

६८८. राजपीठनिवेशितनिजाश्रिता

अपने आश्रितों को राजपीठ में बिठनेवाली। देवी के आश्रितों के नीचे है, यह सारा प्रपंच। सारा चराचर प्रपंच मां के कटाक्ष-पात से बनता है, रहता है और नष्ट होता है और यह क्रम चलता है। यदि मां प्रसन्न है तो राजपीठ, चक्रवर्ती की त्रैलोक्याधिपत्य प्राप्त होना आसान है। फिर भी शरीरस्थित मनुष्य वासना बल से और साहचर्य से जीवन में उच्च पद, धन, अधिकार की कामना करता होगा। उन भक्तों को भी राजपीठ पर बैठनेवाली और उनकी कामनाओं की पूर्ति करनेवाली।

महिषासुर, सुंभोपसुंम और भण्डासुर आदि के पराक्रम से सिंहासनच्युत देवों को पुनः राजपीठ पर आसीन करनेवाली।

६८९. राज्यलक्ष्मीः

राज्य की लक्ष्मी। सैन्य, भण्डार, धनधान्य, आयुध, पूजा की संतृप्ति, शासन व्यवस्था आदि राज्यलक्ष्मी है। ये सब जब सुव्यवस्थित रहे, तभी राज्य की लक्ष्मी है। इनकी सफलता का द्योतन करने के लिए लक्ष्मी का प्रयोग है। राज्य में ऐश्वर्य रूप में रहनेवाली।

तंत्रराजान्तर्गत एक मंत्र को राज्यलक्ष्मी नाम है। वह मंत्र जिस देवी का स्वरूप है वह।

६९०. कोशनाथा

कोशों की नाथा। कोश का अर्थ भण्डागार है। राज्यलक्ष्मी का भाग भण्डागार है और उसकी मालिकिन, धन और सम्पत्ति की नायिका है।

जीवात्मा को पांच प्रकार के कोश आवृत रहते हैं। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, ज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश ये ही पंचकोश हैं। ये कोश जीवात्मा को परमात्मा से अलग कर रखते हैं। देवी ही इन कोशों के भीतर जीवात्मा को बांध रखती हैं और उनमें से मोचित करके ब्रह्म के साथ जोड देती हैं। इसी कारण से देवी को कोशनाथा कहते हैं।

६९१. चतुरंगबलेश्वरी

चतुरंग सेना की अधीश्वरी। हाथी, घोडा, रथ और साधारण सैनिक इन चारों के मिलने पर चतुरंग होता है। बल का अर्थ है सैन्य। कोशनाथा और चतुरंग बलेश्वरी दोनों होने से साम्राज्यदायिनी भी हैं।

६९२. साम्राज्यदाइनी

साम्राज्य प्रदान करनेवाली। राज्यदायिनी नाम यहाँ ज़्यादा व्यापक अर्थ रखता है। एक राजा के अधीन रहनेवाला प्रदेश है राज्य। राजाओं के ऊपर स्थान रखनेवाला सम्राट है। सम्राट के अधीन में अनेक राज्य होते हैं। वही साम्राज्य है। उसी साम्राज्य को देनेवाली। अपने भक्तों को साम्राज्य देनेवाली। सम्राट का भाव है साम्राज्य का अधिप।

६९३. सत्यसन्धा

सत्य का पालन करनेवाली। सत्य से निष्ठा रखनेवाली। देवी ने ब्रह्मादि देवताओं को वचन दिया है कि जब जब जगत में विपत्ति पडेगी, धर्म की च्युति होगी, देवों को विपत्ति पडती है, तब तब धर्म की स्थापना के लिए मैं अवतार लूँगी। उस वचन-पूर्त्ति के कारण देवी ने कई सन्दर्भों में भूमि पर कई रूपों में अवतरित होकर वचन पूर्ति की है।

"इत्थं यदा यदाबाधा जगतोस्य भविष्यति
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयं।" (देवीमाहात्म्य एकदशाध्याय)

सत्यसन्धा शब्द पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी का पर्याय माना गया है। भूभार दूर करने के लिए दुष्ट राजाओं के हनन की कारणभूता बनकर देवी ही स्वयं अवतरित हुई हे, यह भी एक पक्ष है।

६९४. सागरमेखला

समुद्र जिसकी मेखला बनी हुई है, याने भूमि। भूमि का रूप धारण करनेवाली।

६९५. दीक्षिता

जो दीक्षित हुई है। दीक्षा माने किसी कार्य की पूर्ति को मानकर निष्ठासहित प्रवर्तन तथा श्रम। यम और नियम के साथ सन्यास स्वीकार करने के लिए किये जानेवाले आचरण को दीक्षा

कहते हैं। माता पिता के मरणानन्तर कर्मों के लिए जो व्रतानुष्ठान किया जाता है वह भी दीक्षा है। यहाँ यह अर्थ साफ है कि देवी ने अपने भक्तजनों के अनुग्रह दान और दुष्टजनों के निग्रह के लिए दीक्षा ली है।

"दीयते कृपया शिष्ये क्षीयते पाप संचयः
तेन दीक्षेति कथिता" (परानन्दतंत्र)

शिष्यों पर कृपा करके उन्हें मंत्रोपदेश देकर उनका पाप दूर करने के लिए कटिबद्ध गुरु ही दीक्षिता हैं। उस गुरु से अभिन्न है देवी।

"धिय ज्ञानं क्षिणोति प्रापयतीति दीक्षा" इस निर्वचन के अनुसार ज्ञान को प्रदान करना ही दीक्षा है। इस पक्ष में अर्थ है कि भक्तों को ज्ञान देनेवाली।

६९६. दैत्यशमनी

दैत्यों का नाश करनेवाली। भण्डासुर, महिषासुर, सुम्भोपसुंम आदि दैत्यों का नाश देवी ने जो किया वह प्रसिद्ध है। दुष्ट दैत्यों का नाश करनेवाली है देवी।

६९७. सर्वलोकवशंकरी

सारे संसार को अपने वश में करनेवाली। अपने भक्तों के अधीन सारे जगत को करा देनेवाली, यह भी अर्थ हो सकता है।

६९८. सर्वार्थदात्री

सारे अर्थों को प्रदान करनेवाली। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को देनेवाली।

"धर्मादींश्चिन्तितानर्थान् सर्वलोकेषु यच्छति
यतो देवी समाख्याता सर्वैः सर्वार्थसाधनी" (देवीपुराण)

६९९. सावित्री

सविता से सम्बन्धित। सविता को जो प्रकाश प्राप्त है वह देवी से मिला है, इसलिए सावित्री नाम है।

"सवित्प्रकाशकरणात्सावित्रीत्यभिधा भवेत्
जगतः प्रसवित्रीति हेतुनानेन वापि च" (भरद्वाजस्मृति)
"स्रवणं स्यन्दनार्थे च धातुरेष निपात्यते
स्रवणे तेजसोत्पत्तिः सावित्री तेन कथ्यते" (देवीभागवत)

जगत के लिए प्रसवित्री इसलिए सावित्रि। जगत्प्रसूति शिव की पत्नी होने से भी सावित्री।

पुष्कर तीर्थ की अधिष्ठात्री देवी का नाम है सावित्री । वह देवी जिसका स्वरूप है वह।
"सावित्री पुष्करा नाम्ना तीर्थानाम प्रवरे शुभा" (पद्मपुराण)

७००. सच्चिदानन्दरूपिणी

सत् चित् आनन्द ये तीनों जिनका रूप बना हुआ है । शाश्वत एवं चेतना स्वरूपिणी आनन्द आचार्यों के समर्थन में ईश्वर की सत्ता है ।

७०१. देशकालापरिच्छिन्ना

देश और काल से अलग नहीं किया जा सकता जिसे, वह। अनादि देवी शाश्वता हैं। कब पैदा हुई, और कब उनका नाश होगा, यह प्रश्न नहीं उठता। देवी सर्वव्यापी है, इसलिए यह प्रश्न भी नहीं उठता कि देवी किस देश में पैदा हुई। इस प्रकार देश और काल के परे हैं देवी। इसलिए देशकालापरिच्छिन्ना ।

७०२. सर्वगा

सब कहीं व्याप्त रहनेवाली। सर्वान्तर्यामिनी। चर-अचर; महीयस-अणीयस सब देवी चेतना रूप भेद हैं। वस्तुओं के व्यतिरिक्त करनेवाले रूप, रस, गन्धादि गुण भी देवी स्वरूप हैं। सब पर जानेवाली, सब के कारणभूत, प्रपंच के विविध वस्तुओं, गुणों, चर्चाओं में व्यापृत और काम करनेवाली।

"देव्या वा एष सिद्धान्तः परमार्थो महामते
एषा वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गच्छैव न संशयः
देव्या व्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्
ईड्यते पूज्यते देवी अन्नपानात्मिका च सा
सर्वत्रशांकरी देवी तनुभिर्नाम भिश्च सा
वृक्षेषुर्व्यां तथा वायौ व्योम्नप्स्वग्नौ च सर्वगा
एवं विधा ह्यसौ देवी सदा पूज्या विधानतः
ईदृशीं वेत्ति यस्त्वेनां स तस्यामेव लीयते" (देवीपुराण)

७०३. सर्वमोहिनी

सब को मोहित करनेवाली। मायास्वरूपिणी।

"तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातितः
महामायाप्रभावेन संसारस्थिति कारणा
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः
महामाया हरेश्चैतत्तया संमोह्यते जगत्
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति"

ज्ञानी लोग भी ममत्व के आवर्त से मोहगर्त में पड़कर महामाया के प्रभाव से संसार से संबन्धिता कार्य करते हैं। जगन्नाथ श्री हरि की यह महामाया, जो योगनिद्रास्वरूपिणि है, सारे प्रपंच

को मोह में डाल देती है। ये देवी ज्ञानियों के मन को भी बलात् आकर्षित करके अधीन में लेती हैं। देवी माहात्म्य प्रथम अध्याय में यही बताया गया है।-

"अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः" भगवद्गीता में भगवान माया की सर्वमोहिनी शक्ति को व्यक्त करते हैं।

देवी, जो जगत् का आधार स्वरूप, शाश्वत, निर्विकार एवं परमात्म चैतन्य है, स्वयं महामाया स्वरूपिणी बनकर काम-क्रोध-मात्सर्यादि रूप में जीवों को आकर्षित करती हैं और प्रपंच की अवस्थिति के लिए प्रेरित करती हैं। माया की शक्ति से ब्रह्मा आदि देव भी मुक्त नहीं हैं। इसलिए सर्वमोहिनी नाम है।

७०४. सरस्वती

ज्ञानस्वरूपिणी एवं सर्वकलारूपिणी वाग्देवता सरस्वती देवी। सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी के रूप में प्रसिद्ध है। कला और वाक् की अधिष्ठान देवता होने से ज्ञान रूपिणी।

अन्तर्वाहिनी बनकर बहनेवाली एक पुण्य नदी। यह नवतीर्थों में एक है। पापों को धो डालनेवाली इस नदी का रूपधारण करनेवाली।

दो वर्ष की एक बालिका के लिए भी सरस्वती नाम है। 'द्विवर्षातु सरस्वती' -यह धौम्याचार्य का प्रस्ताव है। दो वर्ष की अवस्था में रहनेवाली देवी।

७०५. शास्त्रमयी

शास्त्र रूपी अवयवों से युक्त। पुराणों का कहना है कि देवी के अवयव विविध शास्त्र हैं।

"निश्वास मारुतैर्वेदानृचं साम यजुस्तथा
अथर्वणमहामंत्रानभिमानेन चासृजत्
काव्यनाट्याद्यलंकारानसृजन्मधुरोक्तिभिः
सरस्वती च जिह्वायाः ससर्ज सकलप्रसुः
चुलुकेन चकोराक्षि वेदांगानि-ससर्ज षट्
मीमांसां न्यायशास्त्रंच पुराणं धर्मसंहितां
कण्ठेर्ध्वरेखातंत्रेण ससर्ज सकलांबिका
आयुर्वेदं धनुर्वेदं कण्ठमध्यस्थ रेखया
चतुष्षष्टिं च विद्यानां कण्ठकूपभुवासृजत्
तंत्राणिनिखिलांगेभ्यो दोर्मूलान्मदनागमं ।" (ब्रह्माण्डपुराण)

इस प्रकार विश्व माता के निश्वास से वेद, देवी की मधुर उक्तियों से काव्यनाटकादि, देवी की जिह्वा से सरस्वति, चुलुक से छे वेद, कण्ठ की रेखाओं से मीमांसा, न्यायशास्त्र, धर्मसंहिताएं, आयुर्वेद, इत्यादि, कण्ठकूप से तंत्र, दोर्मूल से मदनागम पैदा हुए हैं।

७०६. गुहांबा

गुह (कार्तिकेय) की माता। तारकासुर का वध देवताओं के हितार्थ हुआ। उस कार्य के निर्वहण के लिए पार्वती और परमेश्वर के पुत्र का जन्म प्राप्त हुआ। यह कथा पुराणादि ग्रंथों और कुमारसंभव में प्रसिद्ध है। षडानन के स्वरूप का वर्णन भी प्रसिद्ध है कि शिव से प्राप्त भ्रूण पार्वती से अग्नि और गंगा में पडने पडे और शरस्तंभ से छे कृत्तिकाओं द्वारा निकला हुआ शिशु षडानन बने हुए थे। देव सेनानी होकर तारक का वध कर और स्कन्द तथा सुब्रह्मण्य नामों से विराजित देव की माता श्रीपार्वती हैं।

'गुहांबा गुहायां स्थितांबा' (सौभाग्यभास्करं) गुह नाम इस पक्ष में हृलेखा का है। ह्री मंत्रबीज में रहनेवाली। गुह यह शब्द हृदय को सूचित करने से जीवों के हृदय में रहनेवाली यह अर्थ भी होता है।

७०७. गुह्यरूपिणी

जिसका गुह्य रूप होता है। इस नाम को ऊपर के नाम के अर्थ के साथ समझना चाहिए। गुहा में जो रहता है वही गुह्य। यहाँ नाम का अर्थ है हृदयगुहा में रहनेवाली। याने ह्रींकार रूपी गुहा में।

हृदय गुहा में जगदीश्वरी के दर्शन अन्तर्मुखी योगी ही कर सकते हैं। व्यावहारिक दृष्टि का अगोचर और परम रहस्यमयी ज्ञान जिसका रूप बना हुआ है।

"गुरु मूर्तिधरां गुह्यां गुह्यविज्ञानरूपिणीं
गुह्यभक्तजनप्रीतां गुहायां निहितां नुमः" (सूतसंहिता)
"श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा
श्चर्या ज्ञाता कुशलानुशिष्टः (कठोपनिषद्)
उपर्युक्त आशय भगवद्गीता में निम्नप्रकार हैः
आश्चर्यवद् पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः
आश्चर्यच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्"

(कोई कोई इसे आश्चर्य वस्तु जैसा देखता है। और कोई इसे आश्चर्य वस्तु के रूप में बताता है। और एक आश्चर्य वस्तु के रूप में सुनता है। कोई भी इसे ठीक तरह से नहीं समझता है।

"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः"

(सहस्र मनुष्यों में एक ही सिद्धि के लिए यत्न करता है। यत्न करनेवालों में एक ही मुझे जानता है। मन और वाक् दोनों को अगोचर होने से मैं गुह्य रूपिणी हूँ।

७०८. सर्वोपाधिविनिर्मुक्ता

सारी उपाधियों से विशेष रूप से मुक्त जो हुई हैं। उपाधि शब्द का अर्थ आचार्यों ने धर्म माना है। तब सब धर्मों से जो मुक्त है। याने देवी के लिए मानने योग्य कोई धर्म या उपाधि नहीं हैं। समान धर्मी लोगों के जगत में व्यवहार संहिता की अपेक्षा है। वह नियम कतिपय समाजनीति के आधार पर बनाया जाता है। देश, काल इत्यादि धर्मनीति के लिए नियामक होंगे। जो सत्य सनातन हैं उनको छोडकर अन्य उपाधियाँ देश और काल के कारण बदलते होंगे। देश काल से परे देवी के लिए कोई धर्मोपाधि बाधक नहीं है। न्यायशास्त्र में प्रतिपादित उपाधियाँ देवी केलिए अप्रसक्त है।

७०९. सदाशिवपतिव्रता

सदाशिव की पतिव्रता पत्नी। हमेशा (सर्वदा) शिव (ब्रह्म) की पत्नी रहे, इस व्रत से रहनेवाली।

अनादि परब्रह्म को सदाशिव नाम से जाने जाते हैं। उसी प्रकार सदाशिव की पतिव्रता पत्नी भी शक्तिस्वरूपिणी भी अनादि एवं अनन्त हैं। त्रिपुर सुन्दरी श्री ललितांबिका का कोई स्वभाव नहीं है, रूप नहीं है, गुण भी नहीं है। यदि इन गुणों का भाव अनुभव होता है, तो केवल कल्पित है। धर्म कल्पित हैं, फिर भी शिव और शक्ति कल्पित नहीं हैं। शक्ति शिवरूपी ब्रह्म का आश्रय लेती है। उसे मात्र उसे ही आश्रय में लेती है। इसलिए सदाशिवपतिव्रता है।

७१०. सम्प्रदायेश्वरी

सम्प्रदायों की ईश्वरी। गुरु शिष्यपरम्परा में जो आचार है उसे सम्प्रदाय कहते हैं। प्रकृत में आराधनाक्रम को सूचित किया जाता है। उसमें मंत्रतंत्रादि स्थूल रूप के अनुसार याने करचरणादि आयुधधारी का संकल्प है। सम्यक् शिष्येभ्यः प्रदीयत इति संप्रदायः याने सम्यक् रूप से गुरु का शिष्य को प्रदान करना है। इसकेलिए जो ईश्वरी बनी हुई है वही संप्रदायेश्वरी है।

सभी सम्प्रदायों में अपेक्षाकृत एक हद तक धर्मरहित पराशक्ति के धर्मों का आरोप करना पडता है। आचार्य मत के अनुसार, जब धर्मी और धर्म एक ही शक्ति पर आरोपित होना है, तब धर्मी शिव और धर्म शक्ति बनी हैं। सदाशिवपतिव्रता इस उपर्युक्त नाम में यह तत्व अन्तर्हित है। सदाशिव और पतिव्रता रूप में देवी का वर्णन करते समय दोनों में भेदभाव है। सत्य में एक ही परब्रह्म चैतन्य को अनेकों के रूप में आराधना और पूजादि विधियों का निर्वहण किया जाता है। जहाँ इस सम्प्रदाय के अलावा आराधना असाध्य होने से देशभेद और कालभेद के अनुसार असंख्य दर्शनों एवं देव संकल्पों का आविर्भाव हुआ और उन सब के अलग अलग सम्प्रदाय बने। इसलिए सम्प्रदायेश्वरी नाम है "जन्य जनक योर्भेदाभावाद् वाच्यस्य वाचके, नापि ब्रह्मणि जगतो

जगति च विद्या भेतस्तु सम्प्रदायार्थः" (वरिवस्या रहस्यं) सम्प्रदायं नामक प्रसिद्ध मंत्र की ईश्वरी हैं।

७११. साधुः

पदार्थ है उचित । जो उचित है वह। धर्मी होकर सदाशिव पर धर्मारोपण करनेवाला सम्प्रदाय उचित है, यही व्याख्या है। यहाँ सूचित किया जाता है कि संप्रदायेश्वरी होकर सदाशिव और शक्ति में भेदभाव और अभेदभाव ये दोनों एक ही समय आरोपित किये जाने पर, स्वष्टतः पृथकता मालूम पड़ती है, फिर भी वह कल्पना उचित है, यही सूचना दी जाती है।

यह नाम पुल्लिंग होने से नामावली में 'ओं साधुने नमः' ऐसा प्रयुक्त है।

७१२. ई

ई अक्षर जिसका स्वरूप है वह देवी। ई कामकला रूप है; इस एकाक्षर को याने मंत्रबीज को विष्णुपरक अकार की बहिन मानते हैं आचार्य। 'नारायणी सहचराय नमः शिवाय' इस शिवस्तुति में नारायणभगिनी नारायणी है। एकमात्र ब्रह्म ही धर्मी और धर्म इन दो रूपों में हैं। उनमें धर्म पुरुष और स्त्री ये दो आये। उनमें स्त्री परमशिव महिषी शक्ति बनी, पुमान सारे जगत् के संरक्षक विष्णु हैं। इस प्रकार एक परब्रह्म धर्मी शिव, धर्मांगी शक्ति, विष्णु इस प्रकार तीन बने। अविछिन्न गुरुपरम्परा क्रम के अनुसार गुरु से शिष्य को प्राप्त होनेवाला यह रहस्य-याने कामकला रहस्य-इससे स्पष्ट रूप से ग्रन्थ में प्रतिपादित करना नहीं चाहिए (सौभाग्यभास्कर) कामकलारूपी ई का रहस्य गुरुमुख से जानें।

७१३. गुरुमण्डलरूपिणी

गुरुमण्डल के रूप में रहनेवाली। उपर्युक्त नाम में सूचित ब्रह्मस्वरूप ग्रंन्थों में वर्णित नहीं हो सकता। गुरु से शिष्य को प्राप्त होने का है। ऐसे योग्य गुरुजन कम हैं। अगर योग्य गुरुजन हैं तो उन्हें देवी सदृश्य मानते हैं। गुरुमण्डल (याने परमशिव से लेकर गुरुरूप में सब अत्यंत गूढ गुरु और ब्रह्म में भेद नहीं है।

"गुरुःब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वराः
गुरुः साक्षात्परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः"

इसप्रकार गुरु को साक्षात् परब्रह्म के रूप में चित्रित करके यह सत्य साफ व्यक्त कर देता है।

७१४. कुलोत्तीर्णा

कुल का (इन्द्रिय समूह का) अतिक्रमण करके रहनेवाली। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय से जानने में असमर्थ मनोवाचामगोचरा यह नाम इस आशय को प्रकारान्तर से समझाना है।

७१५. भगाराध्या

भग द्वारा आराध्या। भग शब्द का अर्थ है आदित्य, चन्द्र और शिव। इनसे आराध्या।

सूर्यमण्डल पर देवी का आरोप करके आराधना करने से भगाराध्या और चन्द्रमण्डल पर भी देवी का आरोप करने से भगाराध्या कहते हैं।

भग शब्द को ए कार भी अर्थ है, जो मंत्र व्याख्या है। ए कार में आराधिता।

७१६. माया

मायास्वरूपिणि। जो मिथ्या है वही माया है। ' या मा सा माया'। जो नहीं है, वही माया है। इस निर्वचन को मानकर अर्थ है जिसका कोई रूप नहीं है,.उसका रूप धारण करनेवाली। जो नहीं है उसके रूप और गुण तो नहीं हैं। रूप, गुण, उत्पत्ति और लय जिसका नहीं होता। वेदांतियों का कथन है कि दृश्य और गुण युक्त प्रपंच माया से बने हैं। इस पक्ष में अर्थ है जगत् की माया। सांख्यवाद में माया प्रकृति है। यह वाद वेदांतियों के मत से मिलता है। शैव सिद्धांत में माया नामक शब्द जीवात्मा को बन्धन देनेवाले चार पाशों में एक है। वही रूप धारण किये हुए। वैष्णव सिद्धांतों में माया विष्णु की नव शक्तियों में एक है। इनमें किसी भी अर्थ को स्वीकार करें, तब भी वही देवी हैं।

''प्रसिद्ध तरस्याप्यप्रकटीकरणानुकूला शक्तिमार्या'' (सौभाग्य भास्कर) प्रसिद्धतर वस्तु को भी प्रकटित न करने में जो अनुकूल शक्ति है, वही माया है।

''विचित्र कार्य करणा अचिन्तित फलप्रदा स्वप्नेन्द्रजालवल्लोके माया तेन प्रकीर्तिता'' (देवीपुराण) ''तच्छक्तिर्माया जनसामान्या'' इस भक्तितंत्र सूत्र के अनुसार शक्ति ही माया है। प्रकृत में सब से उचित व्याख्या भी यही है।

७१७. मधुमती

मधुसहित देवी। मधु शब्द का अर्थ है मद्य और शहद। मद्य और शहद से पूजित। देवी की पूजा केलिए सम्प्रदायभेद के अनुसार शहद और मद्य निवेदित होते हैं।

योगशास्त्र के अनुसार एक योगी को अपनी साधना में सात सन्दर्भों को पार करना है। उनमें अंतिम सन्दर्भ को मधुमति कहते हैं।

तीर्थभूता एक पुण्य नदी को मधुमति कहते हैं। उस तीर्थ रूप में रहनेवाली।

७१८. मही

मही का अर्थ भूमि। भूरूप बनकर अपनी प्रजा को आश्रय देनेवाली। उसका आधार बना रहकर उसे आहार और शरीर देनेवाली।

मही शब्द का अर्थ बुद्धि भी है। इस पक्ष में बुद्धिरूपिणी बनकर सभी जीवों में रहनेवाली।

मही शब्द का गाय अर्थ है। इस पक्ष में गोरूपिणी। मही शब्द का अर्थ जब वह बहुवचन होता है तब जल और जलस्राव अर्थ है। जीवों का जीवन जल है और जल रूप में बहनेवाली नदी भी ये सब देवी हैं।

७१९. गणांबा

गणों की माता। प्रमथगण की माँ। गण शब्द से गणपति भी भाव है। गणेश की माँ।

एक सेनाविभाग को गण कहते हैं। २७ हाथी, २७ रथ, ८१ घोडे, १३५ पैदल सेना ये मिलकर एक गण है। इस गण की माता। युद्ध-सन्दर्भ में गणों को मातृसदृश्य अभय देनेवाली।

नक्षत्र समूह को भी गण कहते हैं। प्रपंच की जननी है देवी, तब इस अर्थ में भी व्याख्या की जा सकती है।

७२०. गुह्यकाराध्या

गुह्यकों के द्वारा आराध्या। गुह्यक देव-योनी का एक वर्ग है। कुबेर का धन ये गुह्यकों द्वारा संरक्षित है। उनसे आराध्या।

रहस्यस्थान में आराधिता। कतिपय सम्प्रदायों में यह विधि है कि देवी की आराधना रहस्यस्थानों में होनी चाहिए। ऐसी आराधनाविधि की यहाँ सूचना है। रहत्स्तर्पणतर्पिता यह नाम देखें।

७२१. कोमलांगी

कोमल अंगोंवाली। सुन्दरी

७२२. गुरुप्रिया

जगद्गुरु श्री परमशिव की पत्नी। गुरु शब्द बृहस्पति को भी सूचित करते हैं। देवगुरु बृहस्पति को पसन्द करनेवाली।

गुरुशिष्यपरम्परा में यह नियम है कि शिष्य गुरु को ब्रह्मरूप में मानना है। अपने पतिदेव के शिष्यों का संरक्षण अपने ऊपर है, यह मानकर गुरुपत्नीरूप में संरक्षण देनेवाली।

गुरु शब्द का अर्थ परमात्मा भी है। इस पक्ष में गुरुपत्नी माया, मायास्वरूपिणी इत्यादि अर्थ हैं।

७२३. स्वतंत्रा

और किसी के नियंत्रण में न रहनेवाली। सब पर नियंत्रण रखनेवाली। देवी पर कोई भी नियंत्रण नहीं रखता। इसलिए देवी को स्वतंत्रा कहते हैं।

शैव, वैष्णव, गाणपत्य इत्यादि तंत्र कई होते हैं। देव जो भी हो और तंत्र भी जो भी हो, पर उनका प्रतिपाद्य देवी स्वयं होने से सारे तंत्र को अपना मान लेती हैं। अतः देवी का नाम स्वतंत्रा बना है।

चन्द्रकलाष्टक नाम से व्यवहृत चन्द्रकला , ज्योत्स्नावती , कलानिधि , कुलार्णव , कुलेश्वरी , भुवनेश्वरी , बार्हस्पत्य , दुर्वासमत इन आठ तंत्रों को देवी तंत्र कहते हैं। उनसे सम्बन्धित सत्य और अपसत्य अनुष्ठान भी हैं। वैदिकमार्ग के अनुसरण में वसिष्ठ, सनक, शुक, सनन्द, सनत्कुमार इन पांच महर्षियों द्वारा निबंधित समयाचारसंहिता को ही स्वतंत्र

शब्द से जाना जाता है। चन्द्रकलाष्टक में जो तंत्र हैं वे कुल धर्म और समयधर्म के आश्रय में रहने से उन्हें मिश्रक कहते हैं। वेदानुयायी उपासक उन्हें मान्यता नहीं देते। वैदिक और अवैदिक इन फर्कों का त्याग करने पर चन्द्रकलाष्टक में आये हुए मंत्रों को भी देवी पक्ष में स्वतंत्र मान सकते हैं। देवी के सम्बन्ध में वैदिक अवैदिक के लिए स्थान नहीं है। आगे का नाम तो सर्व तंत्रेशी हैं।

७२४. सर्वतंत्रेशी

सभी तंत्रों की ईश्वरी। सभी तंत्र देवी रूप हैं, यह आशय पूर्व नाम में सूचित किया गया है। देवीपरक तंत्र असंख्य है, फिर भी उनमें ६४ मुख्य हैं। शैव-वैष्णव-गाणपत्यादि, तंत्र अलग हैं। इन सबकी ईश्वरी देवी हैं। सर्वतंत्ररूपा नामक २०६वां नाम देखें।

७२५. दक्षिणामूर्तिरूपिणी

परमशिव की एक मूर्ति है दक्षिणामूर्ति। बरगद के नीचे योगासनस्थ होकर दक्खिन की ओर मुख करके बैठने से दक्षिणामूर्ति हैं। ब्रह्मा, नारायण आदियों को सभी वेद वेदांत तत्वों का उपदेश देने से सारे प्रपंच के गुरु हैं दक्षिणामूर्ति। देवी ही दक्षिणामूर्ति का रूप धारण करके संसार के गुरु बनी है।

७२६. सनकादिसमाराध्या

सनक आदि मुनिजनों से सम्यक रूप से आराध्या। नाम ७२३ में व्याख्यायित हुआ कि वासिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन, सनत्कुमार इन पांच ऋषियों ने समयाचार संहिता को नियमित किया है। ब्रह्मा का मानसपुत्र है सनक। देवी तंत्र की गुरुपरम्परा में इन पांचों ऋषियों को मुख्य स्थान कल्पित किया गया है।

"त्वमेवानादिरखिला कार्यकारणरूपिणी
त्वमेवहि विचिन्वन्ति योगिनः सनकादयः" (ब्रह्माण्डपुराण)

७२७. शिवज्ञानप्रदायिनी

शिव (शुभ) ज्ञान को प्रदान करनेवाली। शिव शब्द ज्ञान केलिए विशेषण रूप से रखा गया है, इसलिए उसका तात्पर्य सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है।

शिव का ज्ञान शिव संबन्धीज्ञान प्रदान करनेवाली। शिव तत्व को संसार के लिए प्रदान करनेवाली।

"स्पन्देन लभ्यते वायुर्वह्निरौष्ण्येन लभ्यते
चिन्मात्रममलं शांन्तं शिव इत्युदितं तु यत्
यत्स्पन्दमयशक्तैव लक्ष्यते नान्यथा किल"

इसप्रकार वासिष्ठरामायण में बताया गया है कि शक्ति के साथ ही चिन्मात्र, अमल, एवं शान्त शिवरूप जाना जाता है, अन्यथा नहीं।

७२८. चित्कला

चित्कला रूप में रहनेवाली। जीवों के अन्तःकरण में प्रकाश रूप में रहनेवाली ब्रह्मचेतना ही चित्कला है। ब्रह्मचैतन्य रूपिणी जगदम्बा ही चित्कला है। यह सभी जीवों में रहती है। ''ममैवांशं जीवलोके जीवभूतः सनातनः'' (स्मृति)

''चित्तेषु चित्कलानामशक्तिः सर्वशरीरिणां'' (पद्मपुराण)

७२९. आनन्दकलिका

पदार्थ है आनन्दरूपी कलिका। मुकुल जैसे विकसित होकर सौरभ्य और कान्ति बिखेर देते हैं उसी प्रकार उपासक के हृदय में रहनेवाली। देवी चैतन्य उसके भक्ति और अनुष्ठान से संफुल्ल होकर नित्यानन्द कर कैवल्य की ओर ले चलता है, तभी आनन्दकलिका कहते हैं।

जीवों में आनन्द की अंशकलिका के रूप में रहनेवाली। यह व्याख्या अंतिम विश्लेषण में प्रथम व्याख्या से मिलायी जा सकती है।

७३०. प्रेमरूपा

जिसका स्वरूप ही प्रेम है। ''प्रेम स्नेहो भक्तिरेव स्वरूपं यस्या'' (सौभाग्यभास्कर)। उपासक की देवी के प्रति भक्ति और देवी का उपासक के प्रति स्नेह एवं कारुण्य जो है वह देवी स्वरूप ही है।

७३१. प्रियंकरी

प्रिय करनेवाली। भक्तों उपासकों की इच्छा की पूर्ति कर देनेवाली। इस नाम में प्रिय शब्द को आशापूर्ति करनेवाली न कहकर तृप्ति कर देनेवाली कहना अधिक उचित है। अपने लिए क्या है उचित, यह निश्चित करते समय भक्तों को गलती हो सकती है। इसलिए अपने उपासकों को जो अपेक्षित है, उसकी पूर्ति कर देना ही ठीक है। प्रथम नाम की व्याख्या में यह आशय भी अनुकूल है। माता बच्चे की सारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं करके उसकी जो सही इच्छा है उसकी पूर्ति करती है। इस प्रकार उसका प्रिय करती हैं।

७३२. नामपारायणप्रीता

नामपारायण से प्रसन्न होनेवाली। देवीनाम का पारायण करने से देवी की प्रीति हो जाती है। देवी नाम सभी पारायणयोग्य है। फिर भी यहाँ ललिता सहस्रनाम की ओर संकेत है। ''मामर्चयतुवा मा वा विद्यां जपतु वा कीर्तयेन्नामसहस्रमिदं मत्प्रीतये'' और ''इदं नामसाहस्रं मे यो भक्तः पठते सकृत् स मे प्रियतमो ज्ञेयः तस्मै काम्यान ददाम्यहम्'' देवी का यही कथन है।

नामपारायण का एक मंत्रपरक अर्थ है। मंत्रशास्त्र में कहा गया है कि अकार और ककारादि ३५ व्यंजन मिलकर मासाक्षर बताया जाता है। इनमें हरेक अक्षर के साथ १६ स्वरों से आ. ई पल्लवी को मिलाकर हंसमंत्र अजपायुक्त उच्चारण के सन्दर्भ में प्रत्येक अक्षर के ५७६ मंत्ररूप सिद्ध होता है। जब ३६ अक्षरों का जाप पूरा होगा तब मंत्रसंख्या २०७३६ बनेगी।

मंत्रशास्त्र में इसे नामपारायण कहते हैं। मंत्रोच्चारण की रीति गुरुमुख से जाने। इस प्रकार के मंत्रपारायण से प्रसन्न होनेवाली।

"आ ई पल्लवीतैः परस्परयुतर्द्वित्रि क्रमाद्यक्षरैः
कादिक्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षांतैश्च तैः सस्वरः
नामानि त्रिपुरेभवन्ति खलु यान्यत्यंन्त गोप्यानिते
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशति सहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः (लघुस्तव)
आकारादिक्षकारान्तैः स्वरैर्वर्णैस्तुयोजितैः
असंख्येयानि नामानि भवंति रघुनन्दन (देवीभागवत)"

७३३. नंदिविद्या

नंदिकेश्वर ने देवी की उपासना करने के लिए जो अनुष्ठान स्वीकार किया था उसे नन्दिविद्या कहते हैं। उस विद्या का रूप धारण करनेवाली। नन्दिकेश्वर द्वारा उपासित विद्या।

नन्दि शब्द का अर्थ विष्णु भी है। और शिव भी। विष्णुरूपिणी विद्या, शिवरूपिणी विद्या ये अर्थ हैं।

७३४. नटेश्वरी

नृत्त करनेवाले नटेश शिव है। वही रूप धारण करनेवाली नटेश्वरी। नटेश की पत्नी। नटराज शिव का अनुकरण करके नाचनेवाली।

"जंघाकाण्डोरुनालो नखकिरणलसत्केसरालीकरालः
प्रत्यग्रालक्तकाभाप्रसरकिसलयो मज्जुमंजीरभृंगः
भर्तुर्नृत्तानुकारे जयति निजतनुस्वच्छ लावण्य वापी-
संभूतांभोजशोभां विदधदभिनवोद्दण्डपादो भवान्याः"

इस श्लोक में कहते हैं कि पति का अनुकरण करके उद्दण्डपाद होकर देवी नृत्य करती हैं।

७३५. मिथ्याजगदधिष्ठाना

मिथ्यापूर्ण जगत के लिए अधिष्ठानरूपिणी। इस नाम की व्याख्या तभी संभव है जबकि अनेक भारतीय दर्शन ग्रंथों का मार्ग अवलंब करें। उस प्रकार की एक व्याख्या के लिए यहाँ अवसर नहीं है। लगेगा कि जब जगत् मिथ्या है, तो जगत की मिथ्या का अधिष्ठान है देवी, यह मानने में अर्थ नहीं है।

देवी जगद्रूपिणी है। सारे प्रपंच देवीरूप हैं। तब जगत् को पराशक्ति से भिन्न देखना मिथ्या है। वह प्रतीति देवी की माया शक्ति के कारण होती है। ब्रह्म ही जगत्रूप है, यही तांत्रिक मत है। इसलिए जगत् और पराशक्ति दोनों पर आधार आधेय भाव की कल्पना करना ही मिथ्या है।

''सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्'' (देवीभागवत में देवी ही बोलती है।)

''त्रिपुरा परमाशक्तिराद्यजाता महेश्वरी
स्थूलसूक्ष्म विभागेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका
कबलीकृतनिश्शेषतत्वग्रामस्वरूपिणी
यस्यां परिणतायां तु न किंचित् परमिष्यते''

(त्रिपुरा नामक पराशक्ति आद्या है। वह शक्ति स्थूल-सूक्ष्म विभाग द्वारा संसार की उत्पत्ति के लिए दृष्टांत बन गयी। वही शक्ति सारे तत्वों को स्वयं ग्रसनेवाली भी बनती है। जब तक वह शक्ति परिणता बनी रहती है, तब तक अन्य कुछ भी नहीं चलती। (चतुश्शति)

''मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन बिभृषे'' (सौ.लहरी ३५)

(हे देवी, मन, व्योम, हवा, मरुतसारथी, अग्नि, जल, भूमि सब आप ही हैं। देवी इस प्रकार हैं तो देवी से अन्य कुछ भी नहीं है। प्रपंच रूप में परिणत होने के लिए देवी परमेश्वर की पत्नी भाव में चिदानन्दाकार स्वरूप को धारण किये हुए रहती हैं।) इस श्लोक का अर्थ मात्र ही यहाँ दिया गया है) इस प्रकार सौन्दर्य लहरी में भगवत्पाद भी इस आशय को स्पष्ट करते हैं।

७३६. मुक्तिदा

मुक्ति का दान करनेवाली। भक्तजनों को मुक्ति प्रदान करनेवाली।

''तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीं
आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम्'' (कूर्मपुराण)
''येऽर्चयन्ति परांशक्तिं विधिनाऽविधिनापि वा
न ते संसारिणो नूनं मुक्ता एव न संशयः''

इस प्रकार ब्रह्माण्डपुराण में भी देवी को मुक्तिदायिनी बताते हैं।

७३७. मुक्तिरूपिणी

मुक्ति ही जिसका रूप बना हुआ है। आचार्यों का मत है कि अविद्यानाश से जो परमानन्द है वही मुक्ति है। और वह आनन्द देवी रूप होने से मुक्तिरूपिणी।

७३८. लास्यप्रिया

जिसे लास्य प्रिय है। नृत्त के लास्य और तांडव ये दो विभाग हैं। वेगता और सशक्त अंगचलनों से युक्त नृत्त तांडव है। सामान्य ताण्डवसमेत नृत्त को लास्य कहते हैं। देवी के ऊर्द्ध ताण्डव नटन का विवरण नटेश्वरी नाम के अर्थ में जोड़ा हुआ है।

७३९. लयकरी

लय को करनेवाली। लय से मतलब है ध्यान की अस्वस्थाओं में एक। उपासना विषयक चैतन्य में उपासक का मन विलीन जो होता है, वही लय है। इस ध्यानावस्था में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों थम जायेंगे और मन और ईश्वरीय चेतना दोनों में ऐक्य स्थापित होता है। इस विषम ऐक्य में सुगमता लाने का कारुण्य देवी प्रकट करती है, इसलिए लयकरी है।

ताल, नृत्त, गीत इनके परस्पर मिलन से होनेवाले ब्रह्मानन्द सहोदर अनुभूति विशेष को लय कहते हैं। कलारूपिणि देवी ही लयकारिणि है। स्वरं माता लयं पिता यही संगीत शास्त्र में बताया गया है।

७४०. लज्जा

लज्जारूप में रहनेवाली। कामविकार, आत्मनिन्दा आदि से मनको और फिर शरीर को होनेवाला संकोच ही लज्जा है। स्त्रियों के सम्बन्ध में लज्जा भूषण मानी जाती है। सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार लज्जा से होनेवाला मुस्कान, स्तंभ, रोमांच इत्यादि व्यभिचारी भाव स्त्री सौन्दर्य की वृद्धि चौगुनी कर देते हैं। शास्त्र सम्मति है कि देवी कुलस्त्रियों में लज्जा रूप में रहती हैं।

"या श्री स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः
श्रद्धा सतां, कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म, परिपालय देवि विश्वम्"

और

"या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः"

देवीमाहात्म्य में देवी को लज्जा रूपिणि के रूप में वर्णित किया जाता है।

ह्रींकार नामक बीजाक्षर का उल्लेख करने के लिए लज्जा पद का प्रयोग मंत्रशास्त्र में इस्तेमाल किया गया है। ह्रींकार रूपिणि यही मंत्रार्थ है। लज्जापद समाराध्या (त्रिशति)

७४१. रंभादिवन्दिता

रंभा आदि देवस्त्रियों द्वारा वन्दिता।

७४२. भवदावसुधावृष्टिः

भवस्वरूप (संसार रूपी) जंगली आग केलिए सुधा वृष्टि। संसार दुःख जंगली अग्नि की तरह आत्मनाशक है। जंगली आग लगकर जले हुए वन को अमृतवर्ष प्राप्त हुआ हो, इस प्रकार संसार दुःख का नाश करती है देवी। सांसारिक जीवन को बिताते हुए भौतिक सुखों के साथ मुक्ति भी देवीभक्तों को प्राप्त होगी, यही व्यंग्य है।

वृष्टि जैसे भवदा और वसुधा है। इस प्रकार तीन पदों में विभक्त करके व्याख्या की जा सकती है। भव अर्थात् शिव। भवदा माने शिव को देनेवाली। वृष्टि-वर्षा। शिवपद दान देनेवाली और धन को धारण करनेवाली वृष्टि स्वयं देवी हैं। देवी प्रसाद से इह में सुख एवं समृद्धि और मरण के पश्चात् शिवपद प्राप्त होगा।

"यत्रास्ति भोगो न तु तत्र मोक्षः
यत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोगः
श्रीसुन्दरीसाधकपुंगवानाम्
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव"

जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं। जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं। त्रिपुरसुन्दरी श्री ललितांबिका की सेवा करनेवालों को मोक्ष और भोग दोनों है। (रुद्रयामल)

७४३. पापारण्यदवानला

पापरूपी अरण्य के लिए दावालन (जंगली अग्नि) स्वरूपिणी देवी की कृपा से सारा पाप नष्ट हो जाता है, जैसे जंगली आग से जंगल जल जाता है।

"रहस्यनामसाहस्रे नामैकमपि यः पठेत्
तस्य पापानि नश्यन्ति महान्त्यपि न संशयः
नित्यकर्मानुष्ठानान्निषिद्धकरणादपि
यत्पापं जायते पुंसां तत् सर्वं नश्यति द्रुतम्"

ललिता सहस्रनाम की फलस्रुति में यह उपर्युक्त श्लोक मिलता है। सहस्रनाम में एक नाम का उच्चारण करें, तो सारा पाप छूट जाता है। तब नाम सहस्र से देवी की आराधना करनेवाले को कहाँ पाप है? पापविमोचिनी माता को पापारण्यदवानला कहकर ठीक ही कहा है।

"कृतस्याखिल पापस्य ज्ञानतो ऽ ज्ञानतोपिवा
प्रायश्चित्तं परं प्रोक्तं पराशक्तेः पदस्मृतिः" (ब्रह्माण्डपुराण)

७४४. दौर्भाग्यतूलवातूला

दौर्भाग्य रूपी तुल (रूई) को वातूल जो (बवण्डर) है। बवण्डर रूई को जिसप्रकार हटा देता है उसी प्रकार देवीस्मरण दौर्भाग्य को दूर कर देता है। विधिवश अथवा कर्मवश होनेवाले भाग्यदोषों का कोई परिहार नहीं होता, ऐसा मानना ठीक नहीं है। देवी स्मरण से विधिवश होनेवाले दोष भी नष्ट हो जाते हैं। विधाता ब्रह्मदेव भी देवी के आज्ञानुवर्ती हैं।

७४५. जराध्वान्तरविप्रभा

जरारूपी अन्धकार के लिए सूर्यप्रकाश रूपिणी। जरा शब्द से यहाँ प्रलोकात्मक अर्थ है कि वार्धक्य, और वार्धक्य से होनेवाला कष्ट, प्रकृति का विपर्यय आदि अर्थ है। योवन के चलने पर मन और शरीर क्षीणित हो जायेंगे। शरीर में सिकुडन होने लगेंगे। मन का चैतन्य फीका

७३९. लयकरी

लय को करनेवाली। लय से मतलब है ध्यान की अस्वस्थाओं में एक। उपासना विषयक चैतन्य में उपासक का मन विलीन जो होता है, वही लय है। इस ध्यानावस्था में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों थम जायेंगे और मन और ईश्वरीय चेतना दोनों में ऐक्य स्थापित होता है। इस विषम ऐक्य में सुगमता लाने का कारुण्य देवी प्रकट करती है, इसलिए लयकरी है।

ताल, नृत्त, गीत इनके परस्पर मिलन से होनेवाले ब्रह्मानन्द सहोदर अनुभूति विशेष को लय कहते हैं। कलारूपिणि देवी ही लयकारिणि है। स्वरं माता लयं पिता यही संगीत शास्त्र में बताया गया है।

७४०. लज्जा

लज्जारूप में रहनेवाली। कामविकार, आत्मनिन्दा आदि से मनको और फिर शरीर को होनेवाला संकोच ही लज्जा है। स्त्रियों के सम्बन्ध में लज्जा भूषण मानी जाती है। सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार लज्जा से होनेवाला मुस्कान, स्तंभ, रोमांच इत्यादि व्यभिचारी भाव स्त्री सौन्दर्य की वृद्धि चौगुनी कर देते हैं। शास्त्र सम्मति है कि देवी कुलस्त्रियों में लज्जा रूप में रहती हैं।

"या श्री स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः
श्रद्धा सतां, कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म, परिपालय देवि विश्वम्"

और

"या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः"

देवीमाहात्म्य में देवी को लज्जा रूपिणि के रूप में वर्णित किया जाता है।

ह्रींकार नामक बीजाक्षर का उल्लेख करने के लिए लज्जा पद का प्रयोग मंत्रशास्त्र में इस्तेमाल किया गया है। ह्रींकार रूपिणि यही मंत्रार्थ है। लज्जापद समाराध्या (त्रिशति)

७४१. रंभादिवन्दिता

रंभा आदि देवस्त्रियों द्वारा वन्दिता।

७४२. भवदावसुधावृष्टिः

भवस्वरूप (संसार रूपी) जंगली आग केलिए सुधा वृष्टि। संसार दुःख जंगली अग्नि की तरह आत्मनाशक है। जंगली आग लगकर जले हुए वन को अमृतवर्ष प्राप्त हुआ हो, इस प्रकार संसार दुःख का नाश करती है देवी। सांसारिक जीवन को बिताते हुए भौतिक सुखों के साथ मुक्ति भी देवीभक्तों को प्राप्त होगी, यही व्यंग्य है।

वृष्टि जैसे भवदा और वसुधा है। इस प्रकार तीन पदों में विभक्त करके व्याख्या की जा सकती है। भव अर्थात् शिव। भवदा माने शिव को देनेवाली। वृष्टि-वर्षा। शिवपद दान देनेवाली और धन को धारण करनेवाली वृष्टि स्वयं देवी हैं। देवी प्रसाद से इह में सुख एवं समृद्धि और मरण के पश्चात् शिवपद प्राप्त होगा।

"यत्रास्ति भोगो न तु तत्र मोक्षः
यत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोगः
श्रीसुन्दरीसाधकपुंगवानाम्
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव"

जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं। जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं। त्रिपुरसुन्दरी श्री ललितांबिका की सेवा करनेवालों को मोक्ष और भोग दोनों है। (रुद्रयामल)

७४३. पापारण्यदवानला

पापरूपी अरण्य के लिए दावालन (जंगली अग्नि) स्वरूपिणी देवी की कृपा से सारा पाप नष्ट हो जाता है, जैसे जंगली आग से जंगल जल जाता है।

"रहस्यनामसाहस्रे नामैकमपि यः पठेत्
तस्य पापानि नश्यन्ति महान्त्यपि न संशयः
नित्यकर्मानुष्ठानान्निषिद्धकरणादपि
यत्पापं जायते पुंसां तत् सर्वं नश्यति द्रुतम्"

ललिता सहस्रनाम की फलस्रुति में यह उपर्युक्त श्लोक मिलता है। सहस्रनाम में एक नाम का उच्चारण करें, तो सारा पाप छूट जाता है। तब नाम सहस्र से देवी की आराधना करनेवाले को कहाँ पाप है? पापविमोचिनी माता को पापारण्यदवानला कहकर ठीक ही कहा है।

"कृतस्याखिल पापस्य ज्ञानतो ऽ ज्ञानतोपिवा
प्रायश्चित्तं परं प्रोक्तं पराशक्तेः पदस्मृतिः" (ब्रह्माण्डपुराण)

७४४. दौर्भाग्यतूलवातूला

दौर्भाग्य रूपी तुल (रूई) को वातूल जो (बवण्डर) है। बवण्डर रूई को जिसप्रकार हटा देता है उसी प्रकार देवीस्मरण दौर्भाग्य को दूर कर देता है। विधिवश अथवा कर्मवश होनेवाले भाग्यदोषों का कोई परिहार नहीं होता, ऐसा मानना ठीक नहीं है। देवी स्मरण से विधिवश होनेवाले दोष भी नष्ट हो जाते हैं। विधाता ब्रह्मदेव भी देवी के आज्ञानुवर्ती हैं।

७४५. जराध्वान्तरविप्रभा

जरारूपी अन्धकार के लिए सूर्यप्रकाश रूपिणी। जरा शब्द से यहाँ प्रलोकात्मक अर्थ है कि वार्धक्य, और वार्धक्य से होनेवाला कष्ट, प्रकृति का विपर्यय आदि अर्थ है। योवन के चलने पर मन और शरीर क्षीणित हो जायेंगे। शरीर में सिकुडन होने लगेंगे। मन का चैतन्य फीका

७३९. लयकरी

लय को करनेवाली। लय से मतलब है ध्यान की अस्वस्थाओं में एक। उपासना विषयक चैतन्य में उपासक का मन विलीन जो होता है, वही लय है। इस ध्यानावस्था में ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों थम जायेंगे और मन और ईश्वरीय चेतना दोनों में ऐक्य स्थापित होता है। इस विषम ऐक्य में सुगमता लाने का कारुण्य देवी प्रकट करती है, इसलिए लयकरी है।

ताल, नृत्त, गीत इनके परस्पर मिलन से होनेवाले ब्रह्मानन्द सहोदर अनुभूति विशेष को लय कहते हैं। कलारूपिणि देवी ही लयकारिणि है। स्वरं माता लयं पिता यही संगीत शास्त्र में बताया गया है।

७४०. लज्जा

लज्जारूप में रहनेवाली। कामविकार, आत्मनिन्दा आदि से मनको और फिर शरीर को होनेवाला संकोच ही लज्जा है। स्त्रियों के सम्बन्ध में लज्जा भूषण मानी जाती है। सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार लज्जा से होनेवाला मुस्कान, स्तंभ, रोमांच इत्यादि व्यभिचारी भाव स्त्री सौन्दर्य की वृद्धि चौगुनी कर देते हैं। शास्त्र सम्मति है कि देवी कुलस्त्रियों में लज्जा रूप में रहती हैं।

"या श्री स्वयं सुकृतिनां भवनेष्व लक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः
श्रद्धा सतां, कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म, परिपालय देवि विश्वम्"

और

"या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः"

देवीमाहात्म्य में देवी को लज्जा रूपिणि के रूप में वर्णित किया जाता है।

ह्रींकार नामक बीजाक्षर का उल्लेख करने के लिए लज्जा पद का प्रयोग मंत्रशास्त्र में इस्तेमाल किया गया है। ह्रींकार रूपिणि यही मंत्रार्थ है। लज्जापद समाराध्या (त्रिशति)

७४१. रंभादिवन्दिता

रंभा आदि देवस्त्रियों द्वारा वन्दिता।

७४२. भवदावसुधावृष्टिः

भवस्वरूप (संसार रूपी) जंगली आग केलिए सुधा वृष्टि। संसार दुःख जंगली अग्नि की तरह आत्मनाशक है। जंगली आग लगकर जले हुए वन को अमृतवर्ष प्राप्त हुआ हो, इस प्रकार संसार दुःख का नाश करती है देवी। सांसारिक जीवन को बिताते हुए भौतिक सुखों के साथ मुक्ति भी देवीभक्तों को प्राप्त होगी, यही व्यंग्य है।

वृष्टि जैसे भवदा और वसुधा है। इस प्रकार तीन पदों में विभक्त करके व्याख्या की जा सकती है। भव अर्थात् शिव। भवदा माने शिव को देनेवाली। वृष्टि-वर्षा। शिवपद दान देनेवाली और धन को धारण करनेवाली वृष्टि स्वयं देवी हैं। देवी प्रसाद से इह में सुख एवं समृद्धि और मरण के पश्चात् शिवपद प्राप्त होगा।

"यत्रास्ति भोगो न तु तत्र मोक्षः
यत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोगः
श्रीसुन्दरीसाधकपुंगवानाम्
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव"

जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं। जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं। त्रिपुरसुन्दरी श्री ललितांबिका की सेवा करनेवालों को मोक्ष और भोग दोनों है। (रुद्रयामल)

७४३. पापारण्यदवानला

पापरूपी अरण्य के लिए दावालन (जंगली अग्नि) स्वरूपिणी देवी की कृपा से सारा पाप नष्ट हो जाता है, जैसे जंगली आग से जंगल जल जाता है।

"रहस्यनामसाहस्रे नामैकमपि यः पठेत्
तस्य पापानि नश्यन्ति महान्त्यपि न संशयः
नित्यकर्मानुष्ठानान्निषिद्धकरणादपि
यत्पापं जायते पुंसां तत् सर्वं नश्यति द्रुतम्"

ललिता सहस्रनाम की फलस्रुति में यह उपर्योक्त श्लोक मिलता है। सहस्रनाम में एक नाम का उच्चारण करें, तो सारा पाप छूट जाता है। तब नाम सहस्र से देवी की आराधना करनेवाले को कहाँ पाप है? पापविमोचिनी माता को पापारण्यदवानला कहकर ठीक ही कहा है।

"कृतस्याखिल पापस्य ज्ञानतो ऽ ज्ञानतोपिवा
प्रायश्चित्तं परं प्रोक्तं पराशक्तेः पदस्मृतिः" (ब्रह्माण्डपुराण)

७४४. दौर्भाग्यतूलवातूला

दौर्भाग्य रूपी तुल (रूई) को वातूल जो (बवण्डर) है। बवण्डर रूई को जिसप्रकार हटा देता है उसी प्रकार देवीस्मरण दौर्भाग्य को दूर कर देता है। विधिवश अथवा कर्मवश होनेवाले भाग्यदोषों का कोई परिहार नहीं होता, ऐसा मानना ठीक नहीं है। देवी स्मरण से विधिवश होनेवाले दोष भी नष्ट हो जाते हैं। विधाता ब्रह्मदेव भी देवी के आज्ञानुवर्ती हैं।

७४५. जराध्वान्तरविप्रभा

जरारूपी अन्धकार के लिए सूर्यप्रकाश रूपिणी। जरा शब्द से यही प्रतीकात्मक अर्थ है कि वार्धक्य, और वार्धक्य से होनेवाला कष्ट, प्रकृति का विपर्यय आदि अर्थ है। यौवन के चलने पर मन और शरीर क्षीणित हो जायेंगे। शरीर में सिकुडन होने लगेंगे। मन का चैतन्य फीका

पड़ते लगेगा। यह इसका लक्षण है कि धीरे-धीरे शरीर नष्ट होने जा रहा है। इस नाम में यह भी व्यंजना है कि जरा को अंधकार मानें और उस अंधकार को दूर करनेवाली प्रकाश किरण देवी हैं। जिसपर देवी प्रसन्न है उसे वार्द्धक्य की पीडा नहीं सतायेगी।

७४६. भाग्याब्धिचन्द्रिका

भाग्य रूपी समुद्र के लिए चन्द्रिका स्वरूपिणी। पूर्णचन्द्र के उदित होने पर समुद्र में उभार आता है, यह प्रकृति तत्व है। देवी क़ी कृपा से भाग्यरूपी समुद्र में उभार होता है। देवी के कटाक्ष से उपासक के भाग्य में वृद्धि होती है। जीवन में व्यक्ति का सुख दुःख प्रकृति तत्व के आधार पर ही होता है। लेकिन देवी के उपासक के लिए वह बाध्य नहीं है। विधि देवी प्रसाद के सामने से रास्ता छोड देगी। जो भाग्य विधि द्वारा उपासक को प्राप्त नहीं होनेवाला था वही भाग्य उपासक के पास देवी कृपा से पहुँच जायेगा।

७४७. भक्तचित्तकेकिघनाघना

भक्तों के चित रूपी मयूरों को मेघरूपिणि। मेघ जब आकाश में छा जाते हैं तब मयूर पंख फैलाकर नाचते हैं। भक्तों के चित रूपी मयूर देवी के नामश्रवण, कथाश्रवण, आराधना, उपासना इत्यादि से आनन्दित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि देवी अपने भक्तों को आनन्द देनेवाली है।

७४८. रोगपर्वतदंभोलिः

रोग रूपी पर्वतों के लिए दंभोलि याने वज्रायुद्ध है देवी। रोगजन्य पीडा जीवियों के लिए अत्यंत दुःखप्रद है। अनेक प्रकार के रोग जीवों पर आक्रमण कर अत्यधिक विवश करते हैं, इसलिए रोग पर्वत कहने से उसका भाव साफ मूर्त हो जाता है। रोगरूपी पर्वत का नाश दंभोली ही कर सकता है। इन्द्र ने वज्रायुध से पर्वतों के पंख काट दिये, यह कथा विश्रुत है। जिस प्रकार वज्र पर्वतों को चीर देता है उसी प्रकार देवी का कारुण्य रोगों का उन्मूलन करता है। देवी के उपासकों को रोगों से डरने की ज़रूरत नहीं पडेगी।

७४९. मृत्युदारुकुठारिका

मृत्युरूपी लकडी के लिए कुल्हाडी जो बनी हुई है। कुल्हाडी से जैसे लकडी कट जाती है उसी प्रकार देवी कृपा से मृत्युभय दूर हो जायेगा। काल के भी काल श्री परमेश्वर का रूप धारण करनेवाली देवी की उपासना करनेवाले भक्त को लौकिक जीवन को बढ़ाने में अक्सर कोई आशा नहीं है। अगर आशा है तो मृत्यु उसका स्पर्श नहीं करेगी। शरीर की जीर्णता से और रोग बाधा से बचाकर रखती है।

७५०. महेश्वरी

महेश्वरस्वरूपिणी। उपर्युक्त आठ नामों के लिए भी यह नाम आधारभूत है। इश्वरों के लिए भी ईश्वरी है, क्योंकि अन्य देवों केलिए भी असाध्य सिद्धियाँ देवी में हैं।

७५१. महाकाळी

देवी का शत्रुसंहार रूप है काळी रूप। काले वर्ण की होने से अथवा काल को नियंत्रण करनेवाली होने से काळी है। देवी माहात्म्य में बताया जाता है कि देवी के चण्डमुण्डासुरों के साथ युद्ध के सन्दर्भ में देवी के ललाट से निकली है महाकाळी।

"ततः कोपं चकारोच्चैरंबिका तानरीन प्रति
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतं
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासि पाशिनी
विचित्रखट्वांगधरा नरमालाविभूषणा
द्वीपी चर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा
अतिविस्तार वदना जिह्वाचलनभीषणा
निमग्नारक्तनयना नादापूरित दिंग्मुखा"

कहा जाता है कि शतमुख रावण का वध करने के लिए सीता देवी ने काली का रूप धारण किया था। यह भी सुनते हैं कि महेश की तीसरी आंख से काली का जनम हुआ है।

पदनिष्पत्ति के अनुसार अर्थ है कालन करनेवाली काली।

मृत्यु का नाश करनेवाली।

"एतदम्ब सदिदं तु नेति नः शंकया हदि विकल्पलक्षणः
यो यमः स खलु काल्यते त्वया भूतसंयमन केलिकोविदः" (कालिदास)

उज्जैनी के महाकालक्षेत्र की अधिष्ठात्री देवता का नाम महाकाली है। उस देवी का रूप धारण करनेवाली।

७५२. महाग्रासा

महती ग्रास से युक्त। ग्रास शब्द का अर्थ है निगलना। उपर्युक्त नाम में बताया गया है कि चण्डमुण्डासुरों से लडते समय देवी के ललाट से काली पैदा हुई है। उस काली ने सेना को रथतुरगों के साथ खा लिया, ऐसा ही वर्णन है।

"सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तत्बलं
पार्ष्णीग्राहांकुशग्राहयोधघण्डासमन्वितान्
सामादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयत्यतिभैरवं"

उस प्रकार, काली के असुरसेनाग्राह का वर्णन है। उपर्युक्त नाम को आगे बढाते हैं इस व्याख्या से।

प्रपंच की सृष्टि करके उसे बनाए रखनेवाली देवी जगदंबा सारे प्रपंच का ग्रास करके उसका नाश भी करती है इसलिए सर्वग्रासा है 'अत्रचराचरग्रहणाद् ' (ब्रह्मसूत्र)

देवी के पराहन्ता स्वरूप में छत्तीस तत्वों के खा जाने से महाग्रासा नाम है।

७५३. महाशना

महती अशना से युक्त। सर्व चराचरों को ग्रसनेवाली। वही सब को खा जाती है। सारे चराचरों को अपने भीतर से पैदा करनेवाली जो है वही सब का ग्रास भी करती है। इन्धन में लगी अग्नि इन्धन का नाश करती है और उसका अनुभव भी करती है, उसी प्रकार देवी प्रपंच का अनुभव करती है उसका नाश भी करती हैं।

७५४. अपर्णा

अपर्णा होकर रहनेवाली। यह सूचित किया जाता है कि देवी हिमवान की पुत्री होकर अवतीर्ण हुई और शिव को पतिरूप में पाने के लिए तप करती हैं। सूखा पत्ता भी न खाकर तप करने से अपर्णा बनी।

"आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद् हिमवतः सुता
तेन देवैरपर्णोतिकथिता पृथ्वी तले (कालिका पुराण)

अपत्रृणा इस प्रकार पदछेद करेंगे, तो अर्थ है जिसका कोई ऋण न हो। इससे साबित है कि देवी को किसी वस्तु से बाध्यता न हो।

७५५. चण्डिका

दुष्टों से क्रुद्ध। चण्डि कोपे ।

चण्डिका का यह अर्थ भी है कि सात बर्स की कन्यका। वही रूप धारण करनेवाली। चण्डिका सप्तवर्षास्थात् (देवीभागवत)

७५६. चंडमुंडासुरनिषूदिनी

देवी ने चन्ड और मुंडों का निग्रह कर दिया है।

देवीमाहात्म्य में वर्णित एक कथा का नामस्मरण दिलाता है। नाम ७५१ में बताया है कि सुंभनिसुंभ निग्रह के सन्दर्भ में देवी के ललाट से महाकाली का जन्म हुआ था। सुंभनिसुंभ के सेनानायक चण्डमुंडों का काली देवी ने निग्रह किया था और उनके सिर देवी के सामने रख लिये। चण्ड और मुण्ड का निग्रह करने से देवी ने काली को चामुण्डा नाम देकर अनुगृहीत किया।

"यस्माच्चंडं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वामुपागता
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि

इस प्रकार देवी महाकाली को आशिर्वाद देती है। (देवी माहात्म्य-७)

७५७. क्षराक्षरात्मिका

जिसका स्वरूप क्षर और अक्षर सब मिला हुआ है। क्षर माने जिसका नाश हो, और अक्षर, जिसका नाश न हो। जिसका नाश नहीं होता वह देवी ही है। शेष सब किसी न किसी समय नष्ट हो जानेवाले हैं। अक्षर रूपी देवी ही नाशवान प्रपंच रूप में दिखाई देती है। जो क्षर वस्तुएं हैं उनमें कतिपय दूसरों से ज़्यादा काल तक टिकी रहती हैं । आपेक्षिक रूप से उन्हें अक्षर कहते हैं। भूमि में रहनेवाली वस्तुओं और प्राणियों की अपेक्षा भूमि अक्षर है।

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके
क्षरश्चाक्षरएव च
क्षरः सर्वाणि भूतानि
कूटस्थोऽक्षर उच्यते" (भगवद्गीता-१५-१६)

क्षर शब्द से जीवात्मा और अक्षर शब्द से परमात्मा का द्योतन किया जाता है, यही जीवात्मा और परमात्मा स्वयं देवी है, इसलिए क्षराक्षरात्मिका है। क्षरा शब्द अज्ञान को और अक्षरा शब्द ज्ञान को द्योतित करता है। देवी क्षरा अक्षरा दोनों हैं। इसलिए क्षराक्षरात्मिका है। क्षर शब्द शरीर को संकेतित करता है और अक्षर शब्द आत्मा को। इस पक्ष में पंचभूतात्मक शरीर और शरीरस्थ जीवन दोनों देवी ही हैं।

क्षर शब्द से नियत संख्याहीन और अक्षर शब्द से वर्णों को सूचित किया जाता है। यहाँ मंत्रों पर विचार किया जाता है। मंत्र एकाक्षर, द्वयाक्षर, त्रयाक्षर और बह्वक्षर हैं। उनमें अक्षर संख्या क्षर होने पर भी सभी मंत्र देवी स्वरूप हैं। क्षररूपी अक्षर की स्वरूपिणी यही मंत्रव्याख्या है।

"एकाक्षरेति विख्याता सर्वाक्षरमयी शुभा,
सैव विश्वेश्वरी देवी सैव क्वाप्यमिताक्षरा" (वराहपुराण)

७५८. सर्वलोकेशी

सारे संसार की ईश्वरी

७५९. विश्वधारिणी

विश्व को धारण करनेवाली। सृष्टिस्थिति कारिणी।

७६०. त्रिवर्गदात्री

त्रिवर्गों को देनेवाली। पुरुषार्थ में मोक्ष को छोडकर शेष तीन हैं त्रिवर्ग, याने धर्म, अर्थ, काम। मोक्ष अन्यत्र सूचित किया गया है। जीवनकाल में अनुभव करने के हैं ये तीनों।

७६१. सुभगा

शोभन भगवाली। भग शब्द से अनेकार्थ हैं, जैसे ऐश्वर्य, काम, माहात्म्य, वीर्य, यत्न, कीर्ति इत्यादि।

'सु' का उपसर्ग इनको अधिक श्रेष्ठतर बनाता है।

''भगमैश्वर्य माहात्म्यज्ञानवैराग्ययोनिषु
यशोवीर्यप्रयत्नेच्छाश्रीधर्मरविमुक्तिषु'' (विश्वकोश)

जिसके अनुग्रह से भग (सूर्य) शोभायुक्त रहता हो वही। सूर्य और चन्द्र देवी की उपासना करके देवी के पाव के नख की ज्योति का अंश स्वीकार कर तेजोरूपी रहते हैं। सुभगा शब्द का व्यावहारिक अर्थ है सुन्दरी, पतिप्रिया आदि। त्रिपुर सुन्दरी सौन्दर्य का प्रभव है। पति का शरीरार्द्ध भाग भी है। इन अर्थों में देवी व्ववहृत होती हैं।

पाँच वर्ष की कन्यका का नाम है सुभगा। उसी कन्यका के रूप में रहनेवाली। 'सुभगा पंचवर्षा स्यात्' (धौम्याचार्य)

७६२. त्र्यैंबका

तीन आँखों से युक्त। सूर्य, चन्द्र और अग्नि तीनों देवी की आँखें हैं।

''सोमसूर्यानलास्त्रीणियन्नेत्राण्यंबकानि सा
तेन देवी त्र्यैंबकेति मुनिभिः परिकीर्तिता'' (देवीपुराण)

ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन त्रिमूर्तियों की भी माँ होने से देवी को त्र्यैंबका नाम आया।

''त्रयाणाम् ब्रह्मा विष्णुरुद्राणामंबिका माता वा'' -सौभाग्यभास्करम

७६३. त्रिगुणात्मिका

सत्व, रज, तम ये त्रिगुण हैं। वे तीनों गुणात्मरूप जिसे हैं वह। (अपवर्ग माने नित्य सुख अथवा मोक्ष। स्वर्गीय सुख प्रदान करने और नित्यानन्द प्रदान करनेवाली देवी हैं, इसलिए स्वर्ग और अपवर्ग दोनों देनेवाली।)

तीन गुणों के अनुसार देवी के तीन रूप होते हैं। तमो गुण से काली, रजोगुण से दुर्गा, सत्वगुण से पार्वती इसप्रकार तीन गुणों के तीन भिन्न रूप भी देवी के हैं। तीनों रूपों का सामरस्य देती है।

७६४. स्वर्गापवर्गदा

स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली। स्वर्ग क्षयिष्णु है। नित्य सुख ही अपवर्ग है अथवा मोक्ष है। स्वर्ग सुख और मोक्ष दोनों देती हैं देवी; अतः स्वर्गापवर्गदा)

७६५. शुद्धा

अविद्यारूपी मैल जिसे नहीं व्यापती वही शुद्धा।

७६६. जपापुष्पनिभाकृति

जपासून जैसे आकार से युक्त। आकृति शब्द इस सन्दर्भ में वर्ण सादृश्य को द्योतित करता है। पाटल वर्ण का स्थूल रूपध्यान प्रसिद्ध है। ''सिन्दूरारुणविग्रहा

और जपाकुसुमभासुरा'' इन वर्णनों की संख्या ज़्यादा है। इन नामावलियों में निजारुणप्रभापूरमज्जत्ब्रह्माण्डमण्डला नाम की व्याख्या पर भी ध्यान दें।

अजपा और पुष्पनिभाकृति इन दो नामों में अलग करके पाठ है। तब नाम की संख्या में अन्तर आ सकता है, इसलिए धरा धरसुता इन नामों को मिलाकर एक ही शब्द याने धराधरसुता इसप्रकार व्याख्या की जाती है। इस व्याख्या में जपापुष्प निभाकृति एक ही पद में स्वीकृत हुआ है।

(अजपा शब्द का विश्लेषण करने पर अजपा मंत्र रूपिणी अर्थ है। जाप किये बिना ही सिद्धि देनेवाली है अजपामंत्र।

''विना जपेन देवेशि जपो भवति मंत्रिणः
अजपेयं ततः प्रोक्ता भवपाशनिकृन्तनी'' (दक्षिणामूर्तिसंहिता)

पुष्पनिभाकृति शब्द का फूल जैसा सुकुमार एवं मृदुल कान्तियुक्त शरीरवाली। पुष्प का अर्थ भी है पुष्यराग। देवी की पाटलकांति पुष्यराग में भी होने से पुष्पनिभाकृति प्रयोग ठीक है।

७६७. ओजोवती

ओजस से युक्त। ''ओजो बले च दीप्तौ च'' (विश्वकोश) बल और दीप्ति ओज है। पंचभूतात्मक शरीर में कान्ति और बल दोनों जब प्रत्यक्ष होता है तभी चैतन्य है, वह चैतन्य स्वयं देवी है, इसलिए देवी ओजोवती है।

प्रपंच की समग्र वस्तुओं में और काव्य, नाटक, संगीत, नृत्य आदि सभी में आकर्षणीयता जो है वही चैतन्य ओज है। वही चैतन्यस्वरूप देवीस्वरूप है।

७६८. द्युतिधरा

द्युति को धारण करनेवाली। द्युति शब्द का अर्थ है कांति, शोभा। कान्ति को धारण करनेवाली। द्युति का रश्मि अर्थ भी है। प्रभाकिरणोंवाली, यह पूर्व कथन से भिन्न नहीं है। वह अर्थ पूर्वनाम का आवर्तन होने से इस सन्दर्भ में उसे स्वीकृत नहीं करना है।

द्युतिधर पद का अर्थ विष्णु भी है। स्त्रीलिंग में लिया जाय तो विष्णुरूपिणी, विष्णुमाया, महालक्ष्मी, इस प्रकार भी व्याख्या की जा सकती है।

७६९. यज्ञरूपा

यज्ञ जिसका रूप है। 'यज्ञो वै विष्णु': इस श्रुति वाक्य के अनुसार विष्णुरूपिणी। आचार्यों ने अनेक सम्प्रदायों को ईश्वर की आराधना के लिए बना रखा है। इन सबको स्वयं पराशक्ति ने उन्हें समझा दिया है। परम एवं अति प्रधान शुद्ध विद्याओं की स्फुरणों से जनित आराधनारीतियों में होम, याग, पूजा इत्यादि सब हैं। ये सब देवी रूप हैं, यही नाम सूचित करते हैं।

७७०. प्रियव्रता

व्रतों को पसन्द करनेवाली। व्रत शब्द से मतलब सभी व्रतों से है। व्रत जो भी हो और जिस किसी देव के लिए भी इंगित हो, देवी को वह प्रिय है।

सारे व्रत अर्चन यागादि कर्म पराशक्ति जगदम्बा के पादपद्मों में ही समर्पित होते हैं।

"देवीं देवीं च वोद्दिश्य यत्करोति व्रतं नरः
तत्सर्वं शिवयोस्तुष्टै जगज्जननशीलयोः
न भेदस्तत्र मंतव्यः शिवशक्तिमयं जगद्" (भविष्यत्पुराणं)

इस पुराण तत्व के अनुसार सारे देवों के आराधना-क्रमों में यह लागू है।

७७१. दुराराध्या

जिसकी आराधना कठिनता के साथ ही की जा सकती है। शंका हो सकती है कि जो अर्थ नाम ६८१ में सूचित है उसके विरुद्ध नहीं है, यह व्याख्या। यहाँ चंचल प्रकृति के लोगों के लिए दुराराध्या है।

"पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः
सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा"

सौन्दर्य लहरी में देवीपादों की सपर्या तरलकरणों के लिए असुलभा है देवी यही आचार्य पाद का संमर्थन है।

७७२. दुराधर्षा

जिसे हराया नहीं जा सकता।

७७३. पाटलीकुसुमप्रिया

पाटलीपुष्प जिसे प्रिय है।

७७४. महती

पूजिता। 'महपुजायां' इस वचन के अनुसार पूजिता और श्रेष्ठा। सब से बडी जो है। सर्व प्रपंच देवी में निवसित होने से देवी प्रपंच के समूह से बडी है। इसलिए महती।

दृश्यादृश्य प्रभूतवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी (अन्नपूर्णस्तोत्र)

नारद की वीणा का नाम है महती । वह जिसका स्वरूप है वही।

७७५. मेरुनिलया

महा मेरु पर्वत जिसका निवास स्थान है वह। सुमेरुमध्य श्रृंगस्था इस नाम (५५) की व्याख्या देखिए। और पराकाशा नामक नाम (७८२) भी देखें।

श्रीचक्र के तीन प्रकार के प्रस्तार आचार्यों द्वारा कल्पित है। यदि चक्र का वशिन्यादि वाक्देवताओं के साथ तादात्म्य लाया जाता है, तो वह भू प्रस्तार है। मातृकाक्षरों से तादात्म्य

लाया जाता है तो वह कैलास प्रस्तार है। सोलह नित्यादेवतों के साथ तादाम्य लाया जाता है तो वह मेरुप्रस्तार है। प्रस्तार रूपी श्रीचक्र जिसका वासस्थान है।

मेरु नामक प्रसिद्ध नवाक्षरमंत्र जिनका निलय है वे। यह मंत्र सर्व मंत्रों का उद्भवस्थान है, यही आचार्यों का मत है। ''महात्रिपुरसुन्दर्या मंत्रा मेरुसमुद्भवा'' (सौभाग्य भास्करम) मंत्रपरक अर्थ और मंत्ररूप गुरुमुख से जानें।

७७६. मन्दारकुसुमप्रिया

मन्दारपुष्पों को पसन्द करनेवाली। मन्दार स्वर्ग का एक वृक्ष है। कल्पक वृक्षों में एक। उसके फूल को पसन्द करनेवाली। मन्दार नामक भूमि का वृक्ष भी हो सकता है। मन्दार सफेद अर्कपुष्प है।

७७७. वीराराध्या

वीरों द्वारा आराध्या। धीर और पराक्रमी योद्धा वीर कहलाता है। उनसे आराध्या। देवीप्रसाद से योद्धा वीर बना रहेगा।

वीर शब्द का अर्थ नट भी है। नटन वैभव देवी की कृपा से होता है, इसलिए वीराराध्या। वीर शब्द के और भी अर्थ हैं, जैसे अग्नि, विष्णु, भीष्म, वीरभद्र। इस पक्ष में इनके द्वारा आराध्या।

७७८. विराट्रूपा

सारे प्रपंच में व्याप्त एवं सर्वकारणस्वरूप परब्रह्म को विराट् कहते हैं। विराट् का रूप धारण करनेवाली।

७७९. विरजा

विगत रज से युक्त। रज का अर्थ पाप है। तब निष्पापा। भक्तजनों का पाप दूर करनेवाली भी होता है।

उत्कल देश के विरजाक्षेत्र की अधिष्ठात्री।

७८०. विश्वतोमुखी

सब कहीं मुख रखनेवाली। सब प्रपंचों में शरीर होनेवाली।

''सर्वतः पाणिपादान्ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखे
सर्वतः श्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तुते'' (देवीमाहात्म्य में नारायणीस्तुति)
''सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखं'' (गीता)

भगवान का विश्वरूप का वर्णन है। सारे विश्व में देवी व्याप्त रहती है । इस आर्थ में उपासक जिस ओर मुंह करके देवी का ध्यान करे देवी उसे देखेंगी। अतः विश्वतोमुखी है।

७८१. प्रत्यग्रूपा

प्रत्यक रूपधारिणी। ''प्रतिकूल मंजतीति प्रत्यक् तदृशं रूपं यस्यः'' (सौभाग्य भास्करं)

इन्द्रियाँ स्वभावतः बहुर्मुखी हैं। उन्हें अन्तर्मुखी बनाकर प्रवर्तित करने को प्रत्यक्प्रवर्तन कहते हैं। अपने को ही देखना सुनना और जानना प्रत्यक्प्रवर्तन है। प्रत्यगालोक्यमानस्वरूपा यही नाम का अर्थ है। देवी से अलग और कुछ भी नहीं है। इसलिए विराटरूपा हे। और विश्वतोमुखी है। ऐसी देवी का सब व्यापार अन्तरमुख है।

७८२. पराकाशा

पराकाश में रहनेवाली। सप्तसमुद्रों के उस पार पराकाश है। पुराणों का कहना है कि वहाँ ललिता देवी सोलह वर्षीया कन्यका के रूप में निवास करती है।

"कृतादिवर्षादारभ्य प्रतिवर्षमिति स्थिताः
द्वितीयादिषु वर्षेषु क्रमात्ताः परिवृत्तिभिः
षोडशेऽब्दे परे व्योम्नि ललिता सलिलांबुधौ
चित्र च भवतीथं हि भजन्ते परिवर्तनम् (कादिमत)"

मेरुपर्वत, सप्तद्वीप, सप्तसमुद्र, पराकाश इन सोलह स्थानों में ललिता देवी सोलह नित्याओं के रूप में वास करती हैं।

परा और आकाश रूपों में रहनेवाली। अर्थात् ब्रह्मस्वरूपिणी। ब्रह्माण्ड और जीवों के शरीर रूप पिण्डांड में भी आकाश ब्रह्माभिव्यक्तिस्थान है। आकाशरूपिणी।

"हृत्क्रियात्मशशिभानुमध्यगः खे चरन्त्यनलदृष्टिधाम यः
यत्तदूर्ध्वशिखरं परं नभस्तत्र दर्शय शिवं त्वमंबिके" (चिद्गगनचन्द्रिका)
"द्वादशान्तं ललाटोर्ध्वं कपालोर्ध्वावसानकम"
द्व्यंगुलोर्ध्वं शिरोदेशात्परं व्योम प्रकीर्तितं (स्वच्छन्द संग्रह में पराकाश का वर्णन)

पराक–आशा इस प्रकार पदविछेद करके भी व्याख्या की गयी है। पराकं एक कष्टसाध्य व्रत है। बारह दिनों के उपवास से अनुष्ठेय उस व्रत का प्रयोग कर देवी को प्रसन्न करना है। जिसका रूप तपोगम्य मार्ग रहा। पर अ अक को मिटानेवाली। परम पाप का नाश करनेवाली।

७८३. प्राणदा

प्राणों को देनेवाली। शरीर पांच वायुओं से स्थिर रहता है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ये ही वे पांच वायु हैं। इन पंचप्राणों को प्रदान करनेवाली।

प्राण शब्द परमात्मा को भी इंगित करता है। इस पक्ष में इस का अर्थ है कि जीव परमात्मा को जानें और वे परमात्मा में लय लीन हो जावें, इस अर्थ प्रेरणा और कार्य करने देने और चलानेवाली।

प्राण शब्द के शक्ति, पराक्रम आदि अर्थ भी हैं। शक्ति देनेवाली, पराक्रम प्रदान करनेवाली, यही इनका अर्थ है।

प्राण शब्द कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन इनको मिलाकर ग्यारह इन्द्रियों की ओर इंगित करता है। उन्हें देनेवाली। उन इन्द्रियों का खण्डन करनेवाली, याने उनका नाश करनेवाली।

७८४. प्राणरूपिणी

प्राण रूप में रहनेवाली। ऊपर के नाम की व्याख्या में प्राण के लिए उक्त अर्थ इस नाम के लिए भी अनुयोज्य है।

७८५ मार्ताण्डभैरवाराध्या

मार्ताण्डभैरव द्वारा पूजिता। ललितोपाख्यान ३१-अध्याय में त्रिपुरवर्णन में सूर्य-बिम्ब-साल वर्णित होता है। वहाँ तीव्र तप करके सूरज ने अपना प्रकाश पा लिया।

"तत्र बालातपोत्गारे ललितापरमेश्वरीं
प्रति तीव्रं तपस्तप्त्वा सूर्यों लभत तां द्युतिं
ग्रहराशिगणाः सर्वे नक्षत्राण्यपि तारकाः
तत्रैवहि तपस्तप्त्वा लोकभास्वरतां गताः।
मार्ताण्ड भैरवस्तत्र भिन्नों द्वादशधा मुने!
शक्तिभिस्तैजसीभिश्च कोटिसंख्याभिरन्वितः
महाप्रकाशरूपश्च मदारूणविलोचनः
कंकेलीतरुषण्डेषु नित्यं क्रीडारसोत्सुकः
वर्त्तते विंध्यदर्पारे पारे यस्तमसि स्थितः"

उस बालातप के प्रवाह में ललिता परमेश्वरी के प्रति घोर तप करके सूर्य ने उस शोभा को पा लिया। ग्रह राशि गणों ने भी वहाँ तप करके लोकभास्वरता को पा लिया। मार्ताण्ड भैरव (सूरज) बारह अदित्यों मूर्तियों में विभक्त होकर (द्वादश के रूप में) तेजोरूपिणी कोटि-कोटि शक्तियों से अन्वित होकर मद से रक्त नेत्र के साथ रक्ताशोकवाटिकाओं में क्रीडासक्त होकर विराजमान हैं। वे तम के उस पार रहनेवाले हैं। (ललितोपाख्यान-३१-४८-५१)

मार्ताण्ड एवं भैरव द्वारा पूजिता ऐसी व्याख्या भी हो सकती है। भैरव शिव की अष्ट मूर्त्तियों में एक हैं।

७८६. मंत्रिणीन्यस्तराज्यधूः

मंत्रिणी देवी पर समर्पित राज्यभार से युक्त। संगीत योगिनी अथवा श्यामला नाम की देवी ललिता देवी की मंत्रिणी है। सारे प्रपंच का अपने साम्राज्य का शासन भार देवी ने श्यामलांबिका पर अर्पित कर रखा है। देवादि और इन्द्र जैसे देव अपनी कार्यसिद्धि के लिए श्यामला देवी द्वारा ही ललिता देवी से प्रार्थना करते हैं। सीधे देवी से प्रार्थना करने का सामर्थ्य उन्हें नहीं है।

"सा हि संगीतविद्येशी श्रीदेव्या अतिवल्लभा
नातिलंघयति क्वापि तदुक्तं कार्यसिद्धिषु

श्रीदेव्याश्शक्ति साम्राज्ये सर्वकर्माणि मंत्रिणी
अकर्तुमन्यथाकर्तुंकर्तुं चैवप्रगल्भ्यते
तस्मात् सर्वेपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जय कांक्षिणः
तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते।"

(संगीत विद्या की अधीश देवता श्यामला देवी से ललितादेवी अत्यंत प्रसन्न हैं। मंत्रिणी देवी के कथन को ललिता देवी ठुकरा नहीं देती। श्रीदेवी के साम्राज्य में मंत्रिणी देवी जो चाहे कर सकती है। इसलिए सभी दिक्पालक देवी कृपा केलिए प्रथमतः मंत्रिणी देवी याने श्यामला देवी को प्रसन्न करना चाहते हैं। (ललितोपाख्यान-१२-९२-९४)

मंत्रों से युक्त मंत्रि। उन्हें श्रीदेवी के साथ मिलानेवाला प्रयत्नविशेष ही मंत्रिणी है। उसमें समर्पित साम्राज्य रूपी ऐक्यरहस्य के धर्मसहित रहनेवाली।

यह व्याख्या क्लिष्ट है। फिर भी अनेक आचार्य सन्दर्भानुसार इसे अपनाते रहते हैं।

७८७. त्रिपुरेशी

सर्वाशापरिपूरण चक्र की अधीश्वरी। श्रीचक्र में नौ चक्र हैं। बाहर से भीतर की ओर क्रमशः त्रैलोक्यमोहनचक्र, सर्वाशापरिपूरकचक्र, सर्वसंक्षोभणचक्र, सर्वसौभाग्य दायकचक्र, सर्वार्थसाधक चक्र, सर्वरक्षाकरचक्र, सर्वरोगहरचक्र, सर्वसिद्धिप्रदचक्र और सर्वानन्दमयचक्र। उनमें दूसरे चक्र की अधिष्ठात्री देवी है त्रिपुरेशी

७८८. जयत्सेना

विजय प्राप्त होनेवाली सेना से युक्त। शुत्रुओं पर विजय पानेवाली सेना रखनेवाली।

७८९. निस्त्रैगुण्या

निर्गत त्रैगुण्य से युक्त। सत्व, रज और तम ये ही त्रिगुण हैं। भगवद्गीता चौदहवें अध्याय में इन गुणों के स्वभाव को व्यक्त करते हैं भगवान।

"सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययं
तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवं
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनं
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत
सत्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत" (भगवद्गीता-१४-५-९)

(सत्व, रज, तम ये तीनों गुण प्रकृति की संभावना है। वे अव्यय आत्मा को शरीर में बांध देते हैं। गुणों में सत्व निर्मल होने से प्रकाशात्मक और अनामय है। वह सुख के प्रति आसक्ति और ज्ञान के संगम से जुडता है। रजोगुण रागात्मक है। तृष्णा और कर्मों के प्रति आसक्ति पैदा करके बन्धन में डालता है। तमोगुण अज्ञान से पैदा होता है। वह सभी जीवों को मोह में डाल देता है। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा इत्यादि से जीवों को बन्धन में डालता है। रज से कर्मों में निमग्न किया जाता है। तम तो जीवों को तम से आवृत करके प्रमाद में फंसा लेता है।) इन गुणों से देवी अतीत है। गुणत्रय देवी की संकल्पना है, यही देवी माहात्म्य का कथन है।

"प्रकृतिस्त्वं हि सर्वस्य गुणत्रय विभावनी"। गुणों का विभजन करके प्रपंच को स्थाई बनाये रखनेवाली तू ही है। वह देवी त्रिगुणों से रहित है।

७९०. परापरा

परा और अपरा दोनों रूपों में रहनेवाली। परं से तात्पर्य अन्य है। अपरं इसके विपरीत है याने स्वकीय अथवा स्वीयं। पर शब्द उत्कृष्टता का द्योतक है और अपर निकृष्टता का। इनके अर्थों में कई भेद हैं, जैसे पर शब्द को वैरी, और अपर शब्द को मित्र। परा शब्द दूर का और अपरा को पासवाला कहा जाता है। इस प्रकार परा अपरा पदों की अर्थव्याप्ति का निरीक्षण करने पर अपना, पराया, उत्कृष्ट, निकृष्ट, शत्रु, मित्र, पासवाला और दूरवाला सब देवी हैं।

पर शब्द और अपर शब्द दोनों ब्रह्मवाची होने से ब्रह्मस्वरूपिणी अर्थ है। पर शब्द शक्ति को और अपर शब्द शिवजी को इंगित करते हैं। इस प्रकार शिवशक्तिस्वरूप को परापरा नाम से अभिहित किया जाता है।

पराविद्या और अपराविद्या दोनों आत्मस्वरूप है देवी केलिए।

आचार्यों ने प्रणव, वाक्, होम इत्यादियों के लिए परा और अपरा इस फर्क को माना है। (प्रत्येक को विभक्त करके सौभाग्यभास्कर कहता है) इसी प्रकार ज्ञान, पूजा इत्यादि को पर, अपर, परापर इन तीन रूपों में विभक्त कर वर्णन हुआ है। उन तीनों रूपों में रहनेवाली।

मंत्रपरायण में एक मंत्र परापरा । जो उस मंत्र का रूप धारण किये हुए है।

देवी को परा, अपरा, परापरा इन तीनों रूपों में आचार्य लोग मानकर उनकी उपासना करते हैं।

"तत्र सृष्टिः परा प्रोक्ता श्वेतवर्णस्वरूपिणी
या वैष्णवी विशालाक्षी रक्तवर्णस्वरूपिणी
अपरा सा समाख्याता रौद्री चैव परापरा" (वराहपुराण)

इन तीनों रूपों में निवसिता।

७९१. सत्यज्ञानानन्दरूपा

सत्य ज्ञान और आनन्द के रूपोंवाली।

श्रीदेव्याश्शक्ति साम्राज्ये सर्वकर्माणि मंत्रिणी
अकर्तुमन्यथाकर्तुंकर्तुं चैवप्रगल्भ्यते
तस्मात् सर्वेपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जय कांक्षिणः
तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते।"

(संगीत विद्या की अधीश देवता श्यामला देवी से ललितादेवी अत्यंत प्रसन्न हैं। मंत्रिणी देवी के कथन को ललिता देवी ठुकरा नहीं देती। श्रीदेवी के साम्राज्य में मंत्रिणी देवी जो चाहे कर सकती है। इसलिए सभी दिक्पालक देवी कृपा केलिए प्रथमतः मंत्रिणी देवी याने श्यामला देवी को प्रसन्न करना चाहते हैं। (ललितोपाख्यान-१२-९२-९४)

मंत्रों से युक्त मंत्रि। उन्हें श्रीदेवी के साथ मिलानेवाला प्रयत्नविशेष ही मंत्रिणी है। उसमें समर्पित साम्राज्य रूपी ऐक्यरहस्य के धर्मसहित रहनेवाली।

यह व्याख्या क्लिष्ट है। फिर भी अनेक आचार्य सन्दर्भानुसार इसे अपनाते रहते हैं।

७८७. त्रिपुरेशी

सर्वाशापरिपूरण चक्र की अधीश्वरी। श्रीचक्र में नौ चक्र हैं। बाहर से भीतर की ओर क्रमशः त्रैलोक्यमोहनचक्र, सर्वाशापरिपूरकचक्र, सर्वसंक्षोभणचक्र, सर्वसौभाग्य दायकचक्र, सर्वार्थसाधक चक्र, सर्वरक्षाकरचक्र, सर्वरोगहरचक्र, सर्वसिद्धिप्रदचक्र और सर्वानन्दमयचक्र। उनमें दूसरे चक्र की अधिष्ठत्री देवी है त्रिपुरेशी

७८८. जयत्सेना

विजय प्राप्त होनेवाली सेना से युक्त। शुत्रुओं पर विजय पानेवाली सेना रखनेवाली।

७८९. निस्त्रैगुण्या

निर्गत त्रैगुण्य से युक्त। सत्व, रज और तम ये ही त्रिगुण हैं। भगवद्गीता चौदहवें अध्याय में इन गुणों के स्वभाव को व्यक्त करते हैं भगवान।

"सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययं
तत्र सत्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवं
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनं
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत
सत्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत" (भगवद्गीता-१४-५-९)

(सत्व, रज, तम ये तीनों गुण प्रकृति की संभावना है। वे अव्यय आत्मा को शरीर में बांध देते हैं। गुणों में सत्व निर्मल होने से प्रकाशात्मक और अनामय है। वह सुख के प्रति आसक्ति और ज्ञान के संगम से जुडता है। रजोगुण रागात्मक है। तृष्णा और कर्मों के प्रति आसक्ति पैदा करके बन्धन में डालता है। तमोगुण अज्ञान से पैदा होता है। वह सभी जीवों को मोह में डाल देता है। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा इत्यादि से जीवों को बन्धन में डालता है। रज से कर्मों में निमग्न किया जाता है। तम तो जीवों को तम से आवृत करके प्रमाद में फंसा लेता है।) इन गुणों से देवी अतीत है। गुणत्रय देवी की संकल्पना है, यही देवी माहात्म्य का कथन है।

"प्रकृतिस्त्वं हि सर्वस्य गुणत्रय विभावनी"। गुणों का विभजन करके प्रपंच को स्थाई बनाये रखनेवाली तू ही है। वह देवी त्रिगुणों से रहित है।

७९०. परापरा

परा और अपरा दोनों रूपों में रहनेवाली। परं से तात्पर्य अन्य है। अपरं इसके विपरीत है याने स्वकीय अथवा स्वीयं। पर शब्द उत्कृष्टता का द्योतक है और अपर निकृष्टता का। इनके अर्थों में कई भेद हैं, जैसे पर शब्द को वैरी, और अपर शब्द को मित्र। परा शब्द दूर का और अपरा को पासवाला कहा जाता है। इस प्रकार परा अपरा पदों की अर्थव्याप्ति का निरीक्षण करने पर अपना, पराया, उत्कृष्ट, निकृष्ट, शत्रु, मित्र, पासवाला और दूरवाला सब देवी हैं।

पर शब्द और अपर शब्द दोनों ब्रह्मवाची होने से ब्रह्मस्वरूपिणी अर्थ है। पर शब्द शक्ति को और अपर शब्द शिवजी को इंगित करते हैं। इस प्रकार शिवशक्तिस्वरूप को परापरा नाम से अभिहित किया जाता है।

पराविद्या और अपराविद्या दोनों आत्मस्वरूप है देवी केलिए।

आचार्यों ने प्रणव, वाक्, होम इत्यादियों के लिए परा और अपरा इस फर्क को माना है। (प्रत्येक को विभक्त करके सौभाग्यभास्कर कहता है) इसी प्रकार ज्ञान, पूजा इत्यादि को पर, अपर, परापर इन तीन रूपों में विभक्त कर वर्णन हुआ है। उन तीनों रूपों में रहनेवाली।

मंत्रपरायण में एक मंत्र परापरा । जो उस मंत्र का रूप धारण किये हुए है।

देवी को परा, अपरा, परापरा इन तीनों रूपों में आचार्य लोग मानकर उनकी उपासना करते हैं।

"तत्र सृष्टिः परा प्रोक्ता श्वेतवर्णस्वरूपिणी
या वैष्णवी विशालाक्षी रक्तवर्णस्वरूपिणी
अपरा सा समाख्याता रौद्री चैव परापरा" (वराहपुराण)

इन तीनों रूपों में निवसिता।

७९१. सत्यज्ञानानन्दरूपा

सत्य ज्ञान और आनन्द के रूपोंवाली।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' और 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' ये दोनों श्रुति हैं।

सति-अज्ञा-अनानन्दा ऐसे पद विश्लेषित करके भी दिखाया गया है। (सति-सद्विद्या) सद्विद्या में अज्ञ लोगों को दुःख देनेवाली।

"अंधंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते" (बृहदारण्य और ईशावास्य)

७९२. सामरस्यपरायणा

सामरस्य माने समरस भाव। वह तो जितना अयन है वही। अति और न्यून जहाँ नहीं है वही सामरस्य है। शिव और शक्ति को सामरस्य यहाँ प्रस्तुत है। जिनको शिवशक्ति सामरस्यता रूप श्रेष्ठ अयन है। जो शिव और शक्ति दोनों रूपों में हैं, तब भी न्यूनातिरिक्त भेद के बिना सर्वश्रेष्ठ स्थिति में रहते हुए सृष्टि स्थिति संहार का कर्म करनेवाली।

"परस्पर तपः सम्पत्फलायित परस्परौ
प्रपंचमातापितरौ प्राज्ञौ जायापती स्तुमः" (शिवशक्ति सामरस्य)

स-अमरस्य-परायणा इस प्रकार पदविछेद करके अमरसहित जगत (स्वर्ग) के लिए तत्पर अर्थ भी बताया जाता है।

सामवेद रस्य (गान) में परायणा, तत्परा यह भी व्याख्या है।

७९३. कपर्दिनी

कपर्दी माने शिव है। कपर्द माने जडाचूड धारण करनेवाली।

७९४. कलामाला

कलाओं की माला पहननेवाली।

कला की परंपरा जिसका स्वयंस्वरूप है। आचार्य मत के अनुसार कलाएं ६४ प्रकार की हैं। वे देवीरूप हैं इसलिए कलामाला है।

७९५. कामधुक्

कामों को देनेवाली। कामरूपी दूध भक्तों को देनेवाली। कामधेनु की तरह हर चाहत की पूर्ति करनेवाली।

७९६. कामरूपिणी

काम (परमेश्वर) का रूप धारण की हुई। या कामदेव का रूप धारण करनेवाली। जैसा रूप धरना है, वैसा कर सकनेवाली।

७९७. कलानिधि

कलाओं का आधारस्वरूप देवता। सारी कलाएं देवी में निवसित हैं, इसलिए कलानिधि। यहाँ संगीत साहित्य आदि कलाओं की ओर इंगित किया गया है।

चन्द्र की कलाओं के लिए आधारस्वरूप रहनेवाली। चन्द्रमंडलस्वरूपिणी। कला शब्द के लिए 'एक काल की अवधि' अर्थ भी है।

"कलाकाष्ठादि रूपेण परिणामप्रदायिनी
विश्वस्योपरतौशक्ते नारायणि नमोऽस्तुते"

यह देवीमाहात्म्य के अन्दरवाले नारायणस्तुति है। काल तो देवी में अवस्थित है, यही इस उक्ति से तात्पर्य है।

आयुर्वेद शास्त्र का कहना है कि शरीर धातुओं का आधारभूत तत्व है कला। उसके अनुसार मांसधरकला, रक्तधारिणी कला, मेदोधरकला, श्लेष्मधारिणी कला, मलधारिणीकला, पित्ताधारकला और रेतोधर कला। इन्हें सप्तकलाएं कहते हैं। ये सातों देवी में आसीन होने से कलाओं का शरीर रूप में निवसित कहते हैं।

कला शब्द का अर्थ तेज भी है। इस पक्ष में तोजोरूपिणी अर्थ है। तेज का आधार

भ्रूण के लिए भी कला शब्द का प्रयोग होता है। इस अर्थ में तात्पर्य है कि सारे ब्रह्माण्ड को भ्रूण रूप में वहन करनेवाली।

७९८. काव्यकला

काव्यों में कलारूपी बनकर रहनेवाली। काव्य शब्द से मतलब है लघुकाव्य महाकाव्य, नाटकादि साहित्य रूप जिसमें रसप्रद रचनाएं हैं। श्रृंगारादि नवरस कलाओं की रसनीयता के लिए कारण हैं। अगर ये सब कलाएं हैं, तो सहृदयों में रसानुभूति पैदा करने योग्य चैतन्यप्रसरण उनमें होना चाहिए। यदि वह नहीं है तो वे शुष्क काव्य प्रयोग ही है। रचना को काव्यत्व देनेवाला चैतन्य देवी है, इसलिए देवी काव्यकला है।

देवी कृपा से काव्यरचना में कोई समर्थ हो सकता है।

"तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव
दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्
कवीनां प्रौढ़ानामजनि कमनीयः कवयिता" (सौ.ल. ७५)

(हे पर्वतपुत्री क्या आपका स्तन्य अमृतसमुद्र है? या सरस वाक्यों को निर्मित करनेवाली सारस्वतविद्या है? मुझे ऐसा लगता है कि हृदय से ऐसा प्रवहित होता है। करुणानिधि आप के द्वारा दान दिये गये दुग्ध को पीकर द्राविड शिशु मनोहर कविताएं रचने काबिल हो गया है।)

कालिदास कवि का कवित्व काली प्रसाद से प्राप्त हुआ है, ऐसी कथा प्रसिद्ध है। देवी की कृपा के बिना श्रेष्ठ कविता कोई भी लिख नहीं सकता। यही नहीं कविता के द्वारा प्रकट होनेवाला दैवी कलांश देवी चैतन्य ही है। काव्य निर्माण प्रतिभारूपिणी।

काव्य शुक्राचार्य। शुक्राचार्य की कला मृतसंजीवनी। मृतकों को जीवित करनेवाली विद्या। मृतसंजीवनीमंत्र रूपिणी।

७९९. रसज्ञा

रस को जाननेाली। कलाओं में रस लेनेवाली। श्रृंगारादि नवरस कलाओं की रसनीयता के लिए कारण बनते हैं। श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शांत इन रसों के यथाक्रम रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शम स्थाईभाव हैं। रसास्वादन इनके कार्यकलापों के ज्ञान पर आश्रित रहता है। एक व्यक्ति तभी सच्चा सहृदय बनता है, जब वह रसास्वादन में निपुण होता है। रसज्ञा शब्द से यह अर्थ भी लिया जा सकता है कि देवी अपने भक्तों को रसज्ञान प्रदान करनेवाली है।

रस के और अर्थ है मधुर, कटु अम्ल आदि जो जीभ से जानने लायक है। इस पक्ष में अर्थ है कि वह, जो भोजनवस्तुओं का सच्चा रस जाननेवाली। रसना स्वरूपिणी।

८००. रसशेवधिः

रस के लिए आधार (रसनिधि) उपर्युक्त नामों में सूचित काव्यादि रसों एवं भोज्यादि रसों की चेतना देवी स्वयं है, इसलिए सभी रसों का उद्भवस्थान है देवी।

रस का अर्थ ब्रह्मानन्द भी है। रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वान्दी भवति (श्रुति)

"रस एव परं ब्रह्म रस एव परागतिः
रसोहि कांतिदः पुंसाम् रसो रेत इतिस्मृतः
रसौ वै रससंलब्ध्या ह्यानन्दी भगवत्यपि
वेदप्रामाण्यसंसिध्या रसः प्राणतया स्थितः" (ब्रह्माण्डपुराण)

ब्रह्मानन्द के लिए निधि।

८०१. पुष्टा

पोषिता। असंख्य मुनियों, ब्रह्मज्ञों और उपासकों की आराधना से पोषिता। 'ब्राह्मणैः पोषितं ब्रह्म': (श्रुति) छत्तीस तत्वों से पोषित विग्रहवाली। (शरीरवाली)

पुष्ट शब्द विष्णु का द्योतक है। इस पक्ष में विष्णुरूपिणी अथवा महालक्ष्मी है।

८०२. पुरातना

सब से ज्यादा अवस्थावाली। सारा प्रपंच देवी से उद्भूत हुआ। इसलिए सबसे पहले देवी का जन्म हुआ है। इसलिए और किसी से भी देवी पुरातना है।

८०३. पूज्या

पूजनीया। पूज्य शब्द का प्रयोग गुरु के लिए किया जाता है। इस पक्ष में गुरुरूप में रहनेवाली अर्थ है। देव गुरु बृहस्पति के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त है। बृहस्पति रूप में याने देवगुरु के रूप में रहनेवाली।

८०४. पुष्करा

पोषण करनेवाली। "पुष्कं पोषणं राति आदत्ते असौ पुष्करा" (सौभाग्यभास्करम)

17631
17631

पुष्कला शब्द रलयोरभेतत्व से र.ल. इन्हें कतिपय जगहों में अभेदत्व आता है। अतः पुष्करा भी माना जाता है। पुष्कला शब्द के ये अर्थ हैं- प्रधान, पूर्ण, मनोहर, शोभन आदि। पुष्करा शब्द स्त्रीलिंग है, इसलिए प्रधानभूता अर्थ है। पूर्णा, मनोहरी, शोभना इत्यादि अर्थ भी हैं।

पुष्करा शब्द का अर्थ कमल, पानी, आकाश, एक प्रलय-मेघ, सप्तद्वीपों की नृत्तकला ये अर्थ भी हैं। इन अर्थों के साथ भी देवीपरक व्याख्या है। पुष्करं नामक एक प्रसिद्ध पुण्यतीर्थ भी है। उस तीर्थ रूप में रहनेवाली।

८०५. पुष्करेक्षणा

पद्मदलों की तरह मनोहर अक्षियों से युक्त। पुष्कर शब्द भूमि का द्योतक है। क्षण शब्द के अर्थ हैं, उत्सव और निर्व्यापारस्थिति। पुष्करेक्षणा शब्द का विश्लेषण करके निम्नप्रकार भी अर्थ कल्पित किया गया है:-

भूमि आदि संसार में उत्सव रूपिणी होकर रहनेवाली अथवा भूमि में निर्व्यापार होकर रहनेवाली।

पुष्कर शब्द से यह व्याख्या भी मिलती है, जैसे पुष्कर (वट वृक्ष) के पते में प्रलयकाल में शयन करनेवाले विष्णु का लक्षणा से स्मरण किया जाता है। और सारे प्रपंच को उदर में भरकर शिशुरूप में लेटनेवाले विष्णु को कृपार्द्र होकर देखनेवाली देवी को पुष्करेक्षणा कहते हैं।

पुष्कर शब्द का अर्थ आकाश भी है। आकाश जिसका ईक्षण बना है, वही।

८०६. परंज्योतिः

परब्रह्म। सूरज, चन्द्र और अग्नि तथा नक्षत्र जिस ज्योति के सम्मुख निष्प्रभ होते हैं, वही ज्योति परंज्योति है। सूर्य चन्द्र आदि जिस ज्योति के अल्प मात्र प्रतिस्फुरण से प्रकाशित होते हैं उसे सर्वज्योति का आधार परंज्योति कहते हैं।

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्
तस्यभासा सर्वमिदं विभाति" (कठोपनिषद)

मंत्रपरक व्याख्या यह है कि परंज्योतिः नामक प्रसिद्ध अष्टाक्षर मंत्रस्वरूपिणी। मंत्रस्वरूप को गुरुमुख से जानना है।

८०७. परंधाम

परम (उत्कृष्ट) धाम (वासस्थान) स्वरूपी । धाम शब्द का तेज अर्थ है। और भी अर्थ हैं जैसे शोभा, रश्मि, परम ज्योति, परम शोभा इत्यादि। परम तेज जिसका स्वरूप है वह।

"न तत् भासयते सूर्यो न शशांको न पावक
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" (भगवद्गीता १५-६)

उपर्युक्त श्लोक में भगवान का कथन है कि सूर्य और चन्द्र जैसे भौतिक आलोक जहाँ प्रकाशित नहीं कर सकते वह परम पद मैं हूँ। और वे यह भी समझा देते हैं कि उस पद की प्राप्ति हो जाने पर फिर संसार की ओर वापस नहीं आता। यही आशय उपर्युक्त नाम की व्याख्या से प्रकट होता है जो कठोपनिषद् से उद्धृत है। तेजोरूपी परम पद का प्रकाशलेश ही सूर्य-चन्द्रादि का प्रकाश। (कठोपनिषद् का यह मंत्र मुण्डकोपनिषद् और श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी दिखाई देता है)

धाम शब्द का अर्थ पद भी है। परम धाम से मतलब परमपद है।

"सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरंजना
शान्ता सत्या सदानन्दा परं पदं" (कूर्मपुराण)
"अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम" (भगवद्गीता-८-२१)

जो अव्यक्त एवं अक्षर कहा जाता है उसे परम प्राप्यस्थान कहते हैं। जिसे प्राप्त कर फिर संसार को लौट आना नहीं पडता वही परम पद है। भगवद्गीता का यह आशय भी एक ही अर्थ का द्योतन है। परम पद स्वरूपिणी।

८०८. परमाणुः

अणु से भी अणु। परमाणु स्वरूपिणि। 'अणोरणीयान' यह श्रुति कहती है। इस पद की व्याख्या करते हुए सौभाग्यभास्कर के रचयिता ने यही कहा 'दुज्ञेयेत्यर्थ': । अणु से भी अणु रूपी रहते हुए संसार का संहार करने योग्य शक्ति और तेज कैसे समाहित कर सकती हैं, यह रहस्यमयी व्याख्या आचार्य की बातें सुनकर जन उन्हें समझने में कष्ट अनुभव करता होगा। आज अणुशक्ति वैद्युति और संहारक रूपधारण करके बम के रूप में परिणत होता है। अतः व्याख्या में कोई तकलीफ नहीं आती।

मंत्रपरक अर्थ है- अणु संज्ञक उत्कृष्ट मंत्र का स्वरूप धारण करनेवाली।

८०९. परात्परा

परों से परा माने श्रेष्ठ। परों से मतलब ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि से है।

ब्रह्मा की आयु के माप को परम कहते हैं। उसके भी परे रहनेवाली। अर्थात् ब्रह्मा भी अपनी आयु के अधीन है, लेकिन देवी इस परिधि से भी परे हैं। इस प्रकार की सीमा भी देवी के लिए लागू नहीं है।

परंधाम, परमाणु इत्यादि नाम से देवी के रूप का वर्णन है याने अणु से भी अणु और स्थूल से भी भूमा। इन दोनों रूपों से भी परे रहनेवाली।

८१०. पाशहस्ता

पाश नामक हथियार हाथ में रखनेवाली। रागस्वरूप पाशाड्या यह जो आठवां नाम है, उसकी व्याख्या पर धान दें। 'पाशान हस्तयते हस्तेन निरस्ययतिवा' (सौभाग्यभास्करम)। रागस्वरूप पाश को हाथ में लेकर उसका निरसन करनेवाली।

८११. पाशहन्त्री

पाश का नाश करनेवाली। पाश का मतलब है आशा अविद्या और बन्धन। उन दोनों का नाश करनेवाली। हरिवंश में यह कथा है कि बाण के नागपाश से बंधित अनिरुद्ध ने आर्यास्तव से देवी को प्रसन्न किया और देवीप्रसाद से बन्धन-मुक्त हो गया। आशापाशों का नाश करके मोक्ष देनेवाली,यह अर्थ भी हो सकता है।

८१२. परमंत्रविभेदिनी

परों के (शत्रुओं के) मंत्रों का भेदन करनेवाली। परमंत्र को याने सर्वश्रेष्ठ पंचदशीमंत्र को उपासकों केलिए अनेकों में विभक्त जिन्होंने किया वे। मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य नन्दिकेश्वरन, स्कन्द, शिव, क्रोधभटारक, इन पन्द्रह पंचदशाक्षरी मंत्रों को और उसके प्रयोग को बारह रूपों में विभाजित किया। उनकेलिए परमंत्र का विभजन करनेवाली। परमंत्र (पंचदशाक्षरीमंत्र) से उपासकों का पाप दूर करनेवाली।

८१३. मूर्ता ८१४ अमूर्ता

रूपधारी, अरूपी। रूपधारीवस्तुएं मूर्त जैसे शिला, वृक्ष, जल, शरीर इत्यादि। वैसे ही जिनका रूप नहीं हैं वे अमूर्त, जैसे वायु, आकाश इत्यादि। दो नामों का यही अर्थ.है कि मूर्त और अमूर्त सभी देवी हैं।

संसार के सभी वस्तुएं याने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पंचभूतों से निर्मित है। इनका सूक्ष्म अंश स्थूलभूत बन जाते हैं । इसी कारण उनके मिलन से उसे पंचीकरण कहते हैं। पंचीकृत महाभूतों को मूर्त और अपंचीकृत सूक्ष्मअंशों को अमूर्त कहते हैं। द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च (श्रुति) । प्रपंच रूपात्मक ब्रह्म के भी दो रूप हैं।

"द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्तं चामूर्तमेव च
क्षराक्षर स्वरूपे ते सर्वभूतेष्ववस्थिते
अक्षरं बह्म कूटस्थं क्षरं सर्वमिदं जगत्" (विष्णुपुराण)

नाम का अर्थ है महाभूतों के सूक्षरूपों में और स्थूल रूप में अवस्थित आदि कारण स्वरूप परम चेतना।

८१५. अनित्यतृप्ता

अनित्य वस्तुओं से किये गये उपचारों से तृप्त होनेवाली। पूजा, याग, होम इत्यादि के सन्दर्भों में हम अक्सर साधारण वस्तुओं का अर्पण किया करते हैं। नैवेद्य और वस्त्रादि चीज़ें सारे जगत के स्वामी परम चेतना स्वरूप एवं अनादि अरूप एवं सर्वशक्तिमान परम चेतना को ज़रूरत नहीं हैं। लेकिन भक्तों के प्रिति-कारुण्य से देवी उन्हें स्वीकार करती हैं और तृप्त बनती हैं। समर्पित वस्तुओं का अनित्यत्व नहीं, बल्कि भक्तों की भक्ति देवी के लिए प्रिय है।

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः" (भगवद्गीता ९-२६)

जो पुष्प तोय और फल मुझे भक्तिसहित देता है उसकी भक्तिपूर्वक प्राप्त भेंट मैं स्वीकार करता हूँ।

८१६. मुनिमानसहंसिका

मुनियों के मन रूपी मानसरोवर की हंसिनी। मानस शब्द में श्लेष है। मन और मानस सरोवर। मानसरोवर कैलास के प्रांतप्रदेश में स्थित है। वह पुण्यस्थान, कहा जाता है, ब्रह्मा के मन से पैदा हुआ है। हंसों का उस सरोवर में रहते हुए कल्पित होता है। मान सरोवर में जैसे हंस रहते हैं वैसे मुनिजनों के दिल में देवी निवास करती हैं।

"समुन्मीलत्संवित् कमलमकरन्दैकरसिकम्
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्
यादालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणति
र्यदादत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्भ्यः पय इव" (सौ. ल)

अयी भगवती, मैं उस हंसमिथुन को नमस्कार करता हूँ जो विकसित ज्ञान रूपी कमलकुसुम का मधुपान करने में उत्सुक हैं, महात्माओं के मन रूपी मानसरोवर में विहार करना जिनका स्वभाव है और जिनका स्वरूप वर्णन करने में असमर्थता है।

जिस हंस मिथुन का भाषण अठारह विद्याओं में परिणत होता है, जो हंसमिथुन जल में से क्षीर की तरह, दोष सम्मिश्रित वस्तु से सारे गुणों को स्वीकार करता है उस हंस मिथुन को , यही सौन्दर्य लहरि में, भवगद्पाद शिवशक्ति की महत्मानसचर हंसमिथुन के रूप में कल्पना करते हैं।

मुनियों के प्रति आदर के कारण सहंसिका रहनेवाली यह व्याख्या भी है। मुनि-मान-सहंसिका, इस प्रकार पदछेद करके व्याख्या की जाती है। हंसक के माने पादकटक। पादकटक पहनकर नृत्य करनेवाली। भक्तों के प्रति उतना ही प्यार करनेवाली।

८१७. सत्यव्रता

सत्य पर व्रत रखनेवाली। सत्य बोलने और सत्यमार्ग से जीवन निर्वाह करनेवालों पर ध्यान रखनेवाली। सत्यरूपी व्रतों से युक्त देवी। सौभाग्यभास्कर में इसकी व्याख्या इस प्रकार है कि शीघ्र फलदायक व्रत।

सत्य शब्द ब्रह्म को द्योतित करता है। उससे प्रियता रखनेवाली देवीभागवत में एक कथा है कि सत्यव्रत नामक एक निरक्षर ब्राह्मण सूकर के भय से ऐ ऐ बोलता गया। ऐकार से सन्तुष्ट होकर देवी ने उसे कवित्व शक्ति प्रदान की। सत्यव्रत भक्ति के कारण बाद में देवी से अभिन्न रह गया, इसलिए सत्यव्रत नाम उसे मिला।

"अनक्षरो महामूर्खो नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः
श्रुत्वाऽक्षरं कोलमुखात् समुच्चार्य स्वयं ततः
बिन्दुहीनं प्रसंगेन जातोऽसौविबुधोत्तमः
ऐकारोच्चरणादेव तुष्टा भगवती तदा
चकार कविराजं तं दयार्दा परमेश्वश्वरी" (देवी भागवतम)

८१८. सत्यरूपा

सत्य ही जिसका रूप है। सत्यस्वरूपिणी। भूत-वर्तमान-भविष्य कालों में जिसका कोई रूपपरिवर्तन नहीं होता।

८१९. सर्वान्तर्यामिनी

सब जीवों के अंतःकरणों का नियंत्रण करनेवाली। चैतन्य रूपी होकर सब जीवों के भीतर रहनेवाली।

८२०. सती

पतिव्रता। शिव के साथ शक्तिरूप में रहनेवाली देवी। पुराणों के अनुसार देवी अर्द्धनारीश्वर बनने का कारण देवी का पतिव्रता धर्म है।

सती नाम भी देवी का है। दक्षप्रजापति की पुत्री के रूप में जब देवी का जन्म हुआ था, तब पिता ने पुत्री को सती नाम प्रदान किया था। शिवपत्नी होने के बाद दक्ष और शिव दोनों में वैर हो गया। शिवनिन्दा करने केलिए दक्ष ने याग आरंभित किया। बिना बुलायें पहुँची हुई सती देवी का दक्ष द्वारा तिरस्कार करने पर शिव ने कोप के कारण दक्षयाग का विघ्न किया। ये सारी बातें संसार में प्रसिद्ध हैं।

८२१. बह्माणी

ब्रह्मशक्तिस्वरूपिणी। देवी माहात्म्य में वर्णन है कि शुम्भ और निशुंभ के विरुद्ध-युद्ध के सन्दर्भ में सभी देवी देवताओं ने अपनी अपनी शक्ति का सृजन करके देवी को सहयोग दिया। हर देव अपने बलवीर्यों के साथ अवतीर्ण हुए और युद्ध में भाग लिया था और देवी की सहायता की।

"ब्रह्मेश गुहविष्णूनां तथैवेन्द्रस्य शक्तयः
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकांययुः
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान योद्धुमाययौ
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः
आयाता ब्रह्मणः शक्तिः बह्माणी साभिधीयते"

(हंसयुक्ता विमान में जपमाला, जलपात्र इत्यादि के साथ आये हुए ब्रह्मा की शक्ति को ब्रह्माणी कहते हैं) ब्रह्माणी का रूप धारण किए हुए।

ब्रह्म का अंश इस अर्थ में व्याख्या है। आनन्दमय कोश के भीतर अंश रूप में विराजनेवाली।

और एक व्याख्या है ब्रह्मा की जनयित्री । ''ब्रह्माणि बह्मजननाद्ब्रह्मणो जीवनेनवा ।'' (देवीपुराण)

और यह भी व्याख्या है कि देवी ब्रह्मपत्नी है।

८२२. ब्रह्म

ब्रह्म शब्द से यही सूचित किया जाता है कि मुक्तजनों का ही प्राप्यस्थान और स्व आत्मा से जनित ज्ञान।

वह आत्मा जो वाक् से अथवा शब्द से जानी नहीं जाती और भेदभाव के लिए गुंजाइश नहीं है तथा सत्तामात्र रूपी ज्ञान को स्वयं जानती है वही अन्तर्मुखी आत्मा मुक्त होती है।

आत्मा और परमात्मा में भेद नहीं है, यह ज्ञान वेदों के पारायण अथवा युक्तिपूर्वक चिन्तन से; अथवा मनन से लभ्य नहीं है। प्रत्युतः वह ज्ञान जो अविद्या आवृत रहती है उसके हट जाने से स्वयं उदित होता है। ज्योतिस्वरूप उस ज्ञान को ब्रह्म कहते हैं।

''प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरं वचसा-
मात्मसंवेद्यं तद्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्'' (विष्णुपुराणं)

८२३. जननी

सारे प्रपंच को जिसने जन्म दिया है वही जननी है। ८२२, ८२३ इन दोनों को मिलाकर एक ही नाम मानते है कतिपय विद्वान। ब्रह्मा की जननी अथवा ब्रह्म की जननी यह नामार्थ है। नामसंख्या में अन्तर न हो इस उद्देश्य से सर्वान्तर्यामी शब्द को सर्वा अन्तर्यामिनी इन दोनों शब्दों में विभक्त करते हैं। सहज व्याख्यानुसार सर्वान्तर्यामिनी एक नाम और ब्रह्मजननी इसे दो नामों में विभक्त किया है।

८२४. बहुरूपा

अनेक रूपोंवाली। पुराणों का कथन है कि देवी अरूपी और परब्रह्मस्वरूप होने पर भी अनेक कार्यों के निर्वहण हेतु असंख्य रूपों में अवतरित हुई हैं। महिषासुर, शुम्भोपशुंभ, भण्डासुर इत्यादि दुष्टों का निग्रह करने के लिए और भक्तों को अनुग्रह देने केलिए देवी ने अनेक स्वरूपों को धारण किया था।

पराशक्ति देवी ही चराचर स्वरूप में प्रपंच रूपधारण कर प्रकट हो रहे हैं। अनन्त प्रपंच के सब से छोटे घटक से लेकर प्रपंच घटक भूमि जैसे सभी गोलक लोक देवी रूप हैं। इसलिए भी देवी का नाम बहुरूपा है।

शब्दब्रह्म स्वरूपी याने स्वर और व्यंजन मिलकर जो बनी हुई है। स्वर और व्यंजन मिलकर अक्षर समुच्चय और अक्षरों के मिलने पर पद एवं वाक्य बनते हैं। इस प्रकार शब्द ब्रह्म विविध भाषाओं में रूपायित होनेवाले रूप वैविध्य का अनुमान करना असाध्य है।

सभी वर्णरूप देवीरूप है। इस अर्थ में बहुरूपा नाम अन्वर्थ है।

"विश्वं बहुविधं ज्ञेयं सा च सर्वत्र वर्तते
तस्मात्सा बहुरूपत्वाद् बहुरूपा शिवा मता" (वामनपुराण)

अनेक सहस्र रुद्र-पत्नियों के रूप में रहनेवाली।

"या रौद्री तामसी शक्तिः सा चामुण्डा प्रकीर्तिता
नव कोट्यस्तु चामुण्डाभेदभिन्ना व्यवस्थिताः
या सा तु राजसी शक्तिः पालनी चैव वैष्णवी
अष्टादश तथा कोट्यस्तस्या भेदाः प्रकीर्तिताः
या ब्रह्मशक्तिः सत्वस्था अनन्तास्ताः प्रकीर्तिताः
एतासां सर्वभेदेषु पृथगेकैकशो घरे
सर्वासां भगवान् रुद्रः सर्वगत्वात् पतिर्भवेत्
यावन्त्यस्ता महाशक्त्यस्तावद्रूपाणि शंकरः
कृतवांस्ताश्च भजते पतिरूपेण सर्वदा
यश्चाराधयते तास्तु तस्य रुद्रः प्रसीदति" (वाराहपुराण)

८२५. बुधार्चिता

ज्ञानियों द्वारा आराधना की जानेवाली। जैसे भगवान गीता में कहा है कि ज्ञानियों द्वारा मेरी आराधना मुझे बहुत प्रिय है, वैसे वहाँ भी शुभ है और ठीक है।

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्ज्जुन
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी चभरतर्षभ
तेषां ज्ञानी नित्युयुक्त एक-भक्तिर्विशिष्य ते
प्रियोहिज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमांगतिम्
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः" (भगवद्गीत-७-१६-१९)

उपासकों को आर्त, जिज्ञासु, आर्थार्थी, ज्ञानी इस प्रकार चार विभागों में मानते हैं। उनमें फलेच्छा के बिना ईश्वर की उपासना करनेवाले सब से श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार के ज्ञानियों को भगवान सब से ज़्यादा पसन्द करते हैं। असंख्य जन्मों के अन्त में ज्ञानप्राप्ति के बाद अन्तर्यामी भगवान मैं स्वयं हूँ इसप्रकार मानकर ईश्वर की उपासना करनेवाले उपासक दुर्लभ हैं।

गीता में भगवान के द्वारा वर्णित ज्ञानियों द्वारा उपासना की जानेवाली।

८२६. प्रसवित्री

ब्रह्मा से लेकर अणुपर्यंत सब को जन्म देनेवाली। सब की माता।

"ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च यस्या एव समुद्गताः
महदादि विशेषान्तं जगद्यस्याः समुद्गतम
तमेव सकलार्थानां प्रसवित्रीं परां नुमः" (देवीपुराण)

८२७. प्रचण्डा

कोपिष्ठा। क्रोधी सेवकों के साथ रहनेवाली। वायु, अग्नि आदि कोपशील प्रपंच के कार्यकर्ताओं से युक्त। उग्र प्रताप से युक्त।

८२८. आज्ञा

वेद रूप में रहनेवाली। 'आज्ञावेदे' यही निर्वचन है। 'भगवदिच्छारूपा' -शिव के इच्छारूप में रहनेवाली (सौभाग्यभास्कर)

"नह्येषा प्रकृतिर्जीवो विकृतिर्वा विचारतः
पुरा ममाज्ञा मद्वक्त्रात्समुत्पन्ना सनातनी
पंचवक्त्रा महाभागा जगदामभयप्रदा" (लिंगपुराण में शिववचन)

८२९. प्रतिष्ठा

सारा संसार देवी में प्रतिष्ठित होने से देवी प्रतिष्ठा है। "प्रतिष्ठा सर्ववस्तूनां प्रज्ञैषा परमेश्वरी" (ब्रह्मगीत)

पादों में चार अक्षरोंवाले छन्द को प्रतिष्ठा कहते हैं। उस छन्द का रूप धारण की हुई है।

प्रतिष्ठा शब्द भूमि को द्योतित करता है। भूरूप में स्थावर और जंगम के आधार स्वरूपी है वही स्वरूप। प्रतिष्ठा शब्द का कीर्ति अर्थ भी है। कीर्ति रूप में व्यवहृत होनेवाली।

८३०. प्रकटाकृतिः

स्पष्ट आकृति से युक्त। संसार के सभी पदार्थों एवं कार्य-व्यापारों में सर्वदा व्याप्त देवीचेतना सर्वविदित है। आँखों के होते हुए भी बहुत से लोग उसे नहीं देखते। जो देख नहीं पाते वह भी देवी माया से संभव है। अपने चारों ओर यही नहीं अपने भीतर जो अनन्त सहस्र रूपों में और व्यापारों में प्रकट होनेवाले देवीरूपों पर मनुष्य ध्यान नहीं देता। मनुष्य अथवा भक्तों को आवृत रहनेवाला मायाप्रभाव जब हट जाता है तब देवी स्वरूप को चाहे अन्तरनयन से अथवा नयनों से ही देख सकते हैं।

"तमहं प्रत्ययव्याजात् सर्वे जानन्ति जन्तवः
तथापि शिवरूपेण न विजानन्ति मायया" (सूतसंहिता)

श्रीचक्र के प्रथम आवरण रूपी त्रैलोक्य मोहन चक्र में प्रकट योगिनी के रूप में विराजनेवाली; यह व्याख्या भी है।

(अप्रकटा पदविच्छेद भी है। इस प्रकार पदच्छेद के सन्दर्भ में अर्थ है रहस्यरूपिणी। साधारणतया 'प्रकटा' शब्द ही प्रयुक्त है।)

८३१. प्राणेश्वरी

प्राणों की ईश्वरी। प्राणों से यही अर्थ है; प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ये पांच वायु। शरीर में प्राण की अवस्थिति इन वायुओं के कारण है। जीवों के ज़िन्दा रहने के लिए आधारस्वरूप प्राणों की अधिष्ठात्री देवी हैं।

प्राण शब्द परमात्मा के लिए भी प्रयुक्त है। परमात्मा के रूप में ईश्वरी होकर विराजनेवाली।

शक्ति, पराक्रम इत्यादि को भी प्राण शब्द द्योतित करता है। इस पक्ष में शक्ति और पराक्रम की अधीश्वरी।

प्राणानामिन्द्रियाणामधिष्ठातृत्वादीश्वरी (भस्कराचार्य) याने इन्द्रियों की अधिठात्री होने से प्राणेश्वरी।

८३२. प्राणदात्री

प्राणों को देनेवाली। ऊपर के नाम के साथ प्राणों के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह यहाँ भी लागू है। प्राणों को प्रदान करनेवाली।

८३३. पंचाशत्पीठरूपिणी

पचास पीठों के रूप में विराजनेवाली। पंचशत् शब्द का अर्थ पचास है। फिर भी आचार्यों ने इकावन माना है। भूमि पर वाराणसि, नेपाल, केदार, उज्जैनी, प्रयाग, कामकोटि इत्यादि ५१ देवी पीठ हैं। इन पीठों में देवी की विशेष निकटता होने से उन्हें शक्तिपीठ कहते हैं। इन्हीं पीठों के रूपों में विराजनेवाली।

८३४. विशृंखला

शब्दार्थ है जंजीर से बाहर। श्रृंखल शब्द से सूचित किया जाता है कि बन्धनों से युक्त, याने किसी प्रकार के कर्मबन्धन से युक्त। देवी के लिए कोई कर्म-बन्धन तो नहीं, यही नहीं, देवी भक्तों का कर्म-बन्धन मुक्त कर देती भी हैं।

यह भी व्याख्या है कि कर्मों और वासनाओं के द्वारा जीवों को बन्धन में डालकर प्रपंच की गति-विधि का वे निर्वहण करती हैं।

८३५. विविक्तस्था

विजन में याने एकांत में रहनेवाली। ''विविक्तौ पूतविजना'' यही निर्वचन है। पूत एवं विजन स्थान ही विविक्त है। जनवास के होने से भी पवित्र स्थल विविक्त है। पवित्र स्थानों में रहनेवाली।

विविक्त शब्द का यह भी संकेत है कि ज्ञानी भक्त जनों के हृदय की आत्मा की ओर उन्मुखता। उनके हृदय में देवी के लिए ही जगह है। इसलिए पवित्र और विजन शब्द का प्रयोग सही है। विवेकी भक्तों के हृदय में रमनेवाली।

८३६. वीरमाता

वीरों की माता। वीर शब्द का अर्थ धैर्यशाली योद्धा। युद्ध में वीरता के साथ मृत्यु तक लडनेवाले को देवी माँ उसे पुत्रवत् प्यार करती हैं। युद्ध की अधिष्ठात्री देवी के रूप में यह नाम द्योतित करता है।

नटों के चित्रण में भी वीर शब्द का प्रयोग होता है। अभिनयक्षम नटों के लिए माता बनी हुई है जो। यहाँ नट शब्द से सारे अभिनेताओं को गिनती है। याने कलाकारों की माँ। कलाओं की देवता, यही ठीक है।

वीर शब्द का अर्थ अग्नि भी होता है। सर्वदाहक एवं ज्योतिस्वरूपी अग्नि को सर्व संसार में व्याप्त बनाकर सृजित किया है देवी ने।

वीर शब्द का अर्थ विष्णु भी है। इस से यह अर्थ द्योतित होता है कि मूर्तित्रयों की माता है।

महाभारत के प्रसिद्ध भीष्म को भी वीर कहते हैं। भीष्म तो गंगापुत्र है। भीष्म की माता होने से गंगारूपिणी। सर्वपापहर गंगानदी के रूप में रहनेवाली।

वीरभद्र नामक गणेश का नाम वीर है। वीरभद्र को माता गौरी ने अपना पुत्र माना। इसलिए भी देवी का नाम वीरमाता बन गयी।

८३७. वियत्प्रसूः

जिन्होंने आकाश को जन्म दिया वे। ''आत्मन आकाशः संभूत'' (तैतरीयोपनिषद्)

८३८. मुकुन्दा

मुक्ति को दान में देनेवाली। विष्णु मुक्ति देनेवाले हैं अतः वे मुकुन्द हैं। विष्णुरूपा होने से देवी भी मुकुन्दा है।

कुबेर की नवनिधि में एक का नाम मुकुन्दा है। उस रत्ननिधि का रूप धारण करनेवाली।

८३९. मुक्तिनिलया

सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायूज्य और निर्वाण इन पांचों प्रकार की मुक्ति देनेवाली। मुक्ति का आकर।

८४०. मूलविग्रहरूपिणी

देवी के अनेक रूप और तदनुसार विग्रह भी होते हैं। देवी के शक्तिरूपों की संख्या अनन्त है। उन सब के मूलरूप में राजराजेश्वरी मुख्य है। उसी रूप में विराजनेवाली।

८४१. भावज्ञा

भाव को जाननेवाली। उपासक के मन के भावों को और उसके आग्रहों को जाननेवाली। जानकर उन आग्रहों की पूर्ति कर देनेवाली।

भाव शब्द का अर्थ उत्पत्ति भी है। सबकी उत्पत्ति को जाननेवाली। आद्या और सर्वकारणमूर्ति और सर्वसाक्षिणी होने से सबकी उत्पत्ति जाननेवाली।

भाव का अर्थ धर्म है। इस पक्ष में धर्म को जाननेवाली। धर्माधर्म विवेचन की अधिकारिणी।

''धात्वर्थः केवलः शुद्धो भाव इत्यभिदीयते'' (पदों का धात्वर्थ है भाव) उसे जाननेवाली। पदों में अर्थरूपी बनकर विराजनेवाली।

भव माने संसार। उससे सम्बन्धित भाव। संसार बन्धन में डूबे हुए भाव। उनके दुःखों को जाननेवाली।

भव माने शिव। शिवभक्त भाव है। उन्हें जाननेवाली या भावज्ञ।

८४२. भवरोगघ्नी

संसार रूपी रोग का नाश करनेवाली।

''पिरविप्पिणियैत्तीर्प्पवळ'' (तमिल)

संसार रूपी रोग का नाश करनेवाली और देवी को उस रोग का हरन करनेवाली के रूप में संकल्प किया गया है।

८४३. भवचक्रप्रवर्त्तिनी

संसार रूपी चक्र को चलानेवाली। मरण जनन के आवर्तन से संसार एक चक्र जैसा है। उस चक्र के भ्रमण की बागडोर देवी के हाथ में होने से भवचक्रप्रवर्तिनी। भवचक्र माने अनाहतचक्र। शिव का स्थान होने से अनाहतचक्र भवचक्र है। मनोरूपी भवचक्र को चलानेवाली। चैतन्यरूपिणी होकर शिवचक्र में रहनेवाली।

८४४. छन्दःसारा

छन्दों का (वेदों का) साररूप। वेदसार माने उपनिषद। उपनिषदों के रूप में विराजमान। वेदों का सार माने गायत्री मंत्रों की ओर भी इंगित है। गायत्री-सार पंचदशी मंत्र की ओर इंगित किया जाता है। गायत्री रूप और पंचदशी मंत्ररूपों में रहनेवाली।

''तत्ज्ञानार्थमुपाया विद्या लोके चतुर्दशप्रोक्ताः
तेष्वपि च सारभूता वेदास्तत्रापि गायत्री
तस्या रूपद्वितयं तत्र्यैकं यत् प्रपठ्यते स्पष्टम्
वेदेषु चतुर्षपि परमत्यन्तं गोपनीयतरम्'' (यह वरिवस्यारहस्य में वर्णित है।)

इस प्रकार चतुर्दश विद्याओं से सारभूत है वेद। वेद से बढ़कर सारभूत है गायत्री। गायत्री के दो रूप, एक (जो चौबीस अक्षरोंवाली) वह स्पष्ट है। दूसरी पन्द्रह अक्षरोंवाली और अत्यंत रहस्यमयी (पंचदशी मंत्र)

छन्द शब्द का अर्थ स्वच्छन्द आचरण, अभिलाषा इत्यादि अर्थ भी हैं। उपासक केलिए आग्रह कौनसा है वही धर्म है। जो अनुष्ठेय नहीं वही अधर्म है। श्रेष्ठ उपासक के मन में अधर्म-व्यापार नहीं होता।

"सतां हि सन्देह पदेषु बस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः"

इस प्रकार कालिदास ने यह आशय शाकुन्तल में प्रकट किया है। इसप्रकार के स्वतंत्र आचरण अथवा उपासनादि के लिए सारस्वरूपी होकर रहनेवाली।

८४५. शास्त्रसारा

शास्त्रों के लिए जो सारस्वरूप है। शास्त्रशब्द से इंगित है, वेदों और वेदानुसारी मीमांसादि। उनका जो सारस्वरूप है वही। सर्ववेदांतसंवेद्या इस नाम से देवी की स्तुति अन्यत्र की जाती है।

८४६. मंत्रसारा

मंत्रों का जो सार है वह। सभी मंत्र, जो जिस किसी भी देवी के लिए प्रयुक्त हों, अंतिम अवस्था में ललिता देवी के पास जाते हैं। सभी मंत्रों का सार देवी हैं, इसलिए मंत्रसारा। अन्यत्र सूचित किया गया है कि देवी मंत्ररूपिणी हैं।

८४७. तलोदरी

करतल जैसे सम एवं कृश उदरवाली। सुन्दरी। कृश उदरवाली सामुद्रिक शास्त्रानुसार सुन्दरी मानी जाती है। यहाँ देवी का स्थूल वर्णन।

अतलोदरी शब्द को पृथक करके भी अर्थ लिया जाता है। उस पक्ष में अतल लोक जिसका उदर है वही। विराट्रूपा।

८४८. उदारकीर्तिः

उदार कीर्तिवाली। उदार का अर्थ है श्रेष्ठ या महत्तर। देवी से सम्बन्धित ग्रंथों को पढने से, अथवा सुनने से चर्चा करने से अमंगल नष्ट हो जायेगा। मंगल अथवा ऐश्वर्य वर्द्धित हो जायेगा।

८४९. उद्दामवैभवा

दामहीन वैभवों से युक्त। अनियंत्रित वैभवों से युक्ता। वैभव शब्द के अर्थ हैं-सामर्थ्य, महत्व, गरिमा, शक्ति, सम्पदा इसप्रकार श्रेष्ठता सम्बन्धी अनेकार्थ। दूसरों की शक्ति के लिए विधेयता स्वीकार न करनेवाली। उस योग्य महत्व को धारण करनेवाली।

जीवों को संसार से बंधित करनेवाली वासना है दाम शब्द से इंगित है। उसे छेद देने योग्य वैभव धारण करनेवाली। मोक्ष की ओर ले चलनेवाली। संसार का बन्धन छुडानेवाली।

८५०. वर्णरूपिणी

वर्णों के रूप में विराजनेवाली। भाषण के शब्द भी वर्ण हैं। स्वर और व्यंजनों के रूप में भाषा के व्यवहार के लिए उच्चरित शब्द परंपरा के द्वारा ही आशय का विनिमय होता है। परा,

पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी इन चार विधों में अक्षरों का ब्रह्मस्वरूप है। इनमें चौथा वैखरी वर्णों और अक्षरों में प्रवृत्त होते हैं। वे वर्ण संघात जो सर्व आशयों का वहन करते हैं, और वर्ण रूपों में प्रपंच शक्तियों पर नियंत्रण डालते हैं तथा सर्व देवता रूपों में रहनेवाले हैं, वे देवीस्वरूप हैं।

वर्ण शब्द के निम्न अर्थ हैं जैसे रंग, याने सफेद काला आदि। रंग ऐसी एक चेतना है जो सारे प्रपंच में व्याप्त है और दृष्टि से जाना जाता है। उस चैतन्य के रूप में वस्तुओं में विराजनेवाली।

वर्ण के और भीअनेक अर्थ हैं, जैसे वस्तुों और जीवियों के असंख्य भेद, आकृति, गुण, कान्ति, कीर्ति, कुंकुम इत्यादि। उन अर्थों को आधार बनाकर कहना है, तो उन सबके रूपों में विराजनेवाली।

८५१. जन्ममृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिनी

जन्म, मृत्यु, जरा आदि से जनित ताप का अनुभव करनेवाले लोगों को आश्वासन देनेवाली। जन्म, मृत्यु, जरा इन तीन तत्वों को दिखाकर संसार चक्र की सूचना दी गयी है।

जन्म लेना, बडा होना, बडे होते ही जरा, बाल का सफेद होना, रोग आदि से क्लेश अनुभव करना, मरना, फिर से मां के गर्भ में पैदा होना इत्यादि क्लेश जैसे शंकराचार्य ने कहा है पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनं को निरंतर सहनेवाले लोगों का दुखित होंना सहज है। बीच-बीच में सुखी रहने का अनुभव होने पर भी दुःख ही स्थायी है। इस प्रकार संसार दुःख को भोगनेवाले को स्थाई विश्रान्ति देनेवाली। मोक्ष देनेवाली।

८५२. सर्वोपनिषदुद्घुष्टा

सभी उपनिषदों द्वारा उद्घोषिता। वेदों का सार उद्घोषित करनेवाले उपनिषदों को वेदशिर, वेदान्त पुकारते हैं। कुल मिलाकर १०८ उपनिषद हैं। भगवद्गीता जैसे उपनिषद समान और भी ग्रंथ हैं। सभी उपनिषद देवी की महत्ता की घोषणा करते हैं। सर्ववेदान्तसंवेद्या यह नाम भी प्रस्तुत आशय का वहन करता है। सभी उपनिषद शक्ति का रहस्य उद्घोषित करते हैं। देवी शक्तिस्वरूपिणी हैं।

८५३. शान्त्यतीतकलात्मिका

सर्वसंग निवृत्त मन की अवस्था शान्ति है। राग और द्वेष जैसे विकारों के स्पर्श से अलग अविकारी स्थिति। उससे भी अतीत कलास्वरूप से युक्त।

"आकाश निष्ठा कला शान्त्यतीतेत्युच्यते" (सौभाग्यभास्करम) शान्त्यतीत कलाद्वैतनिर्वाणानन्दबोधदा इस प्रकार शैवागम में उसका वर्णन है।

आकाश सब में निवसित है और सबको समाहित है। वह विकार और गुणों से रहित है। उसके स्वभाव को शान्त्यतीत कला कहते हैं। निर्वाणसुख एवं चिदानन्द बताये जानेवाली शान्ति के भी अतीत है। वह कला आकाशनिष्ठ है। उसे स्वरूप बनाकर रखनेवाली।

८५४. गंभीरा

अपरिमेय महाह्रद जैसा अगाथ। समुद्रादि महाह्रद जैसा स्वभावी गुण ही गांभीर्य है। देवी की महिमामयी शक्तियाँ अविदित हैं।

"महाह्रदानुसन्धानान्मन्त्र वीर्यानुभव :"
"महा ह्रद इतिप्रोक्ता शक्तिर्भगवती परा"
अनुसन्धानमित्युक्तम् तत्तादात्म्यविमर्शनम्
मंत्रवीर्यमिति प्रोक्तं पूर्णाहन्ता विमर्शमनम्
तदीयोऽनुभवस्तस्यस्फुरणं स्वात्मनः स्फुटम्" (शिवसूत्रम्)

'गं' गणपति बीज। इसलिए गणेश जी को द्योतित किया जाता है। इस पक्ष में अर्थ है कि गणपति के भय को दूर करनेवाली। मां होने से गणेश को भयमुक्त करनेवाली यह अर्थ भी कि गणपति विघ्नहर होने से विघ्नों से भयमुक्त रहने देनेवाली। देवी के भक्तों को गणेश की प्रीति स्वाभाविकेन प्राप्त होगी।

८५५. गगनान्तस्था

गगनान्तों में विराजनेवाली। गगन माने आकाश। गगनान्त संज्ञा से भूताकाश, दहराकाश, पराकाश इन की ओर इंगित करते हैं। इन तीनों में विराजनेवाली। आकाश की सर्वव्याप्तस्थिति के कारण सर्वव्याप्ता है।

आकाश के विनष्ट होने पर भी नाशरहित रहनेवाली निर्नाशा यह भी व्याख्या है।

गगन शब्द 'आ' कार को सूचित करता है। अन्तस्थ शब्द से य, र, ल, व इन वर्णों को सूचित है। यह नाम पंचभूत बीजों को प्रकट करता है और उनका उद्धार करता है। यही मंत्रपरक व्याख्या है। इस सम्बन्ध में और कोई जानकारी प्राप्त करनी है, तो गुरु मुख से प्राप्त करनी है।

८५६. गर्विता

गर्व रखनेवाली। विश्वसृष्टि के लिए सन्नद्ध पराहन्तास्वरूपिणी। शून्यता से दृश्यादृश्यविभूतियों से सम्पन्न प्रपंच का निर्माण करनेवाली चिच्छक्ति को सृष्टि और स्रष्टा इन दो धर्मों में द्वंद्व भाव अपनाना पड़ता है। स्वयं सृष्टि और स्रष्टा दोनों बनते हुए अपनत्व भाव पैदा होता है। उसे पराहंता कहते हैं। यहाँ उसे गर्व बताया गया है।

गर्विता शब्द का यह भी अर्थ बताया जाता है कि परमेश्वर की पत्नी होते हुए अपने सौन्दर्य आदि गुणों से पतिदेव को वश में लाकर अर्द्धनारीश्वर बनाया, तो उससे जो गर्व हो सकता है वह, यही यहाँ इंगित है।

स्वाधीन वल्लभा यह नाम भी मिलता है।

८५७. गानलोलुपा

संगीत में प्रियता रखनेवाली। गान शब्द से विविध वाद्यों का प्रयोग भी सूचित किया जाता है। गीत ही नहीं, प्रत्युत वीणा आदि तंत्रीवाद्यों, मुरजादि चर्मवाद्यों, वेणु जैसे शुषिरवाद्यों के साथ ही सभी वाद्यों को और उनके प्रयोगों को देवी पसन्द करती हैं।

८५८. कल्पनारहिता

जिसे कोई कल्पना नहीं व्यापती। कल्पना शब्द के अर्थ हैं रूप, आकृति, छाया इत्यादि। तब यही अर्थ है कि जिसके कोई रूप, आकृति अथवा छाया नहीं हैं। "कल्पना वासनामय्यो दृश्य वीचयस्ताभि रहिता" (सौभाग्य भास्करम) वासनामयी अदृश्य वीचियों से रहित। वासनाबद्धा नहीं है जो।

कल्प-नार-हिता इस प्रकार पदविच्छेद करके व्याख्या करने पर यही व्याख्यायित है- सर्वनाश से ग्रसित प्रलयकालं में नारों को (जीवों को) अपने भीतर वासना रूप में संरक्षित करके हित करनेवाली। प्रलय काल में भी जीवों पर दया करनेवाली है, तो अन्य कालों में कितनी दयालू हो सकती है देवी!

८५९. काष्ठा

परम सीमा स्वरूपिणी। प्रपंच रहस्य के बारे में चिन्ता करनेवाले साधक अपने सोच, मनन और उपासना से जहाँ तक पहूँच सकता है वह देवी के निकट तक है। देवी के प्रसाद से त्रिविध मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। फिर भी देवी को ठीक समझ नहीं सकता। इसलिए ज्ञान की सीमा देवी ही है। 'साकाष्ठा सा परागति' (कठोपनिषद)। काष्ठा, अठारह निमिषों की एक काल परिधि।

"कलाकाष्ठादि रूपेण परिणामप्रदायिनी
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोस्तुते" (देवीमाहात्म्य)
"वेदांतवाक्यार्थ तत्व निष्कर्षा काष्ठा शब्द की व्याख्या
प्रतीतमप्रतीतं वा सदसंच परः शिवः
इति वेदान्तवाक्यानां निष्ठा काष्ठेति कथ्यते" (सूतसंहिता)

गगनात्मक भीमा नामक परमेश्वर की पत्नी और स्वर्ग की माता देवी दिक्‌रूपी होने के कारण काष्ठा नाम से जानी जाती है।

चन्द्रमा की एक कला को काष्ठा नाम है। उसी रूप में विराजनेवाली। काष्ठा शब्द के ये अर्थ भी होते हैं जैसे श्रेष्ठ देवी और भाग्यरूपिणी। श्रेष्ठा होने से भाग्यरूप में जीवों को अनुग्रह देनेवाली।

८६०. अकान्ता

अक का अन्त करनेवाली। "अकं पापेच दुःखे च"। इस निर्वचन से अक के पाप और दुःख दो अर्थ हैं। पाप का अंत करनेवाली और दुःख दूर करनेवाली।

८६१. कान्तार्द्धविग्रहा

पति का आधा विग्रह जो बनी है। पति परमेश्वर के शरीर का आधा भाग देवी है, यह मशहूर है।

शिव को अर्द्धनारीश्वर बनानेवाली कथा प्रसिद्ध है। उसी प्रभाव के लिए योग्या।

८६२. कार्यकारणनिर्मुक्ता

कार्य, कारण ये जिन्हें नहीं हैं। प्रपंच में सबके लिए कार्य-कारण सम्बन्ध है। लेकिन प्रपंच की जननी देवी ललितांबिका के लिए कार्य-कारण बन्धन नहीं है।

कार्य शब्द महत्तत्वादि को बताता है और कारण शब्द मूलप्रकृति को सूचित करता है। इन दोनों से मुक्ता है दैवी।

''न तस्य कार्यं कारणं च विद्यते'' (श्रुति)

८६३. कामकेळितरंगिता

काम की (कामेश्वर श्री परमेश्वर की) लीलाओं के लिए तरंगिता। कामेश्वरनुटैय लीलैकळ्ळकिन अलैकल् तोण्टुंकटल (तमिल व्याख्या)? कामेश्वर की लीला परम्परा देवी रूपी समुद्र की तरंगें हैं।

यदि शक्ति से न मिले तो परमेश्वर भी निस्पन्द हैं, यही सौन्दर्यलहरी में कहा गया है। शिव की लीला के लिए शक्ति अवश्य चाहिए। शिवलीला के सागर की तरंगों के रूप में देवी का वर्णन है। कामकेलि का अर्थ सामान्य मैथुन हैं। कामकेलि में तरंगिता। तरंगों से समुद्र का हिलना-डुलना इस भाव में लिया जा सकता है। यह प्रयोग महासंगम को मानकर भी है। आगमों का कथन है कि शिवशक्ति संयोग ही महासंगम है। प्रपंचसृष्टि के लिए उद्यत चिद्च्छक्ति का प्रवर्तन।

८६४. कनत्कनकताटंका

भारी, दीप्त, प्रकाशमान, स्वर्गताटंक से युक्त देवी का स्थूलवर्णन है। तो कर्णों में स्वर्णाभूषण का संकेत है। विराट्रूप वर्णन के अंश रूप में ''ताटंकयुगलीभूतत-पनोडुपमण्डला'' नाम के अनुसार सूर्यचन्द्रमण्डल रूपी कनकाभूषण मान सकते हैं।

८६५. लीलाविग्रहधारिणी

लीला के लिए विग्रह धारण करनेवाली। यही सूचना है कि देवी ने भक्तों के रक्षार्थ और देवकार्य से अनेक बार अवतार लिया है। अनेक अवतारों में देवी अतीव सौम्य भाव से और कभी-कभी उग्र रूप से प्रत्यक्ष हुई हैं। देवी अनायास ही असंख्य रूपों में प्रत्यक्ष होती है, जैसे त्रिमूर्तियों, देवों, असुरों, मनुष्यों,करोडों खगोलों, वायु, अग्नि, प्रकाश, अन्धकार इत्यादि अनेक रूपों में।

८६६. अजा

जन्मरहित, अनादि। 'अजामेकाम' 'नजातो न जनिष्यते' (श्रुति)। जो जन्मता है वह मरता है। ''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च (भगवद्गीता) जो जन्मता नहीं उसका

नाश भी नहीं है। देवी का जन्म हुआ नहीं है, अर्थात् मरण भी नहीं। आगे का नाम इसका समर्थन करता है।

८६७. क्षयविनिर्मुक्ता

क्षय से मुक्ता। क्षय से तात्पर्य है नाश अथवा मरण

''क्षये गृह एव विशिष्य निर्मुक्ता ययेति वा'' यह और एक व्याख्या है। सौभाग्य भास्कर में व्याख्यायित रूप पर विशेष ध्यान करना है। याने गृहादि में विरक्ति ही क्षय है। संसार सम्बन्धी क्षय मुमुक्षुओं का लक्षण है।

विषय सम्बन्धों से विछेद करने केलिए वे गृहत्याग करके सन्यास स्वीकारते हैं। त्रिपुरसुन्दरी ललिताम्बिका के उपासकों के लिए गृहत्याग करना जरूरी नहीं है। उन्हें गृहजीवन के सुख के साथ मोक्षप्राप्ति भी होगी।

''यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः
श्री सुन्दरीसेवनतत्पराणाम
मोक्षश्च भोगश्च करस्थ एव''

जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं है। जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं (यही सामान्य लोकगति है)। लेकिन त्रिपुरसुन्दरी की सेवा में रत भक्तों को मोक्ष भी है भोग भी। यह मशहूर सत्य है।

८६८. मुग्धा

सौन्दर्यवती। ''मुग्धः सुन्दर मूढयोः'' (विश्वकोश) दूसरे अर्थ के लिए यहाँ स्थान नहीं। (मुग्धा मोहिता अर्थ भी, याने परम शिव से मोहिता। अथवा भक्तों से मोहिता।

८६९. क्षिप्रप्रसादिनी

जल्दी प्रसन्न होनेवाली। प्रथम नाम याने श्रीमाता से ही देवी की क्षिप्रप्रसादिनी का बोध स्पष्ट होता है। माता और बच्चा यह सम्बन्ध जगदंबा और उपासक दोनों में हो गया तो वात्सल्यमयी माता की तरह देवी उपासक की रक्षा करेगी ही। उपासनाक्रम, दीर्घ तपस्याधन, अमित खर्चा, आराधनारीतियाँ, इनकी ज़रूरत नहीं। जब बच्चा रोता है, तब माँ न सोचती है कि रोने दे। इसी प्रकार देवी भी नहीं चाहती है कि उपासक थोडा कष्ट सहें। वे स्मरणमात्र से प्रसन्न हो जायेंगी।

''भवानीत्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणा
मिति स्तोतुं वांस्छन् कथयति भवानित्वमिति यः
तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायूज्य पदवीं
मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुटनीराजितपदां'' (सौन्दर्यलहरी)

अयि भवानी, आप मुझ दास को करुणापूर्ण दृष्टि प्रदान करें यह कहनेवाले उपासक को भवानीत्वं कह चुकने पर वह साफल्य पद जो मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुट नीराजित है, वह सायुज्य प्रदान करती है।

८७०. अन्तर्मुखसमाराध्या

अन्तर्मुख भाव से आराधना करने योग्या। अन्तर्मुख स्वभाव वाले भक्तों द्वारा आराध्या। अन्तर्मुख से तात्पर्य है कि भीतर की ओर मुख किये हुए।

भीतर आत्मरूप में रहनेवाली । परमचेतना की ओर ध्यान देना है अन्तर्मुख होना। अपने को जानना है अन्तर्मुखता। अन्तर्मुखता के फलस्वरूप यही ज्ञान अथवा पहचान है कि अपने भीतर रहनेवाले प्राण और शरीर के अंशभूत पंचभूत और पंचभूत जन्य ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय द्वारा होनेवाले क्रिया कलाप और अनुभूत सुख-दुःख सब देवीमय है। जब यह बोध होता है तब उपासक को अपने भीतर रहनेवाली देवी की बाहरी पूजा नहीं करनी है। इस प्रकार अन्तर्मुख रूप से आराधनीया अथवा अन्तर्मुखी उपासकों द्वारा पूजिता।

साथ ही एक मुख्य अभिमत यह भी है: पिण्डाण्डस्थ कुण्डलिनी शक्ति को देवी ही मानकर उसे जगाकर उस शक्ति को आधार चक्रों में से पार कराकर अन्त में सहस्रार पद्म में पहूँचाकर वहाँ अमृतपान कराकर आनन्दनिर्वृति में लीन होनेवाले उपासक भी अन्तर्मुखी है और उन अन्तर्मुखी योगियों द्वारा आराध्या।

८७१. बहिर्मुखसुदुर्लभा

बहिर्मुखों को बहुत ही कम मिलनेवाली। अन्तर्मुखता का विपरीत भाव है बहिर्मुखता। वह विषयासक्त मन को सूचित किया जाता है। इन्द्रियविषयों में लीन रहनेवाले हैं बहिर्मुखवाले। बहिर्मुखी आराधनाओं से जलदी प्रसन्न होनेवाली नहीं है देवी।

"पुरारातेरन्तः-पुरमसि ततस्त्वच्चरणयो
स्सपर्या मर्यादा तरलकरणानामसुलभा"

(अयि भगवती ! आप परमेश्वर शिव की अन्तःपुर की नायिका है। आपकी पूजारीति तरल याने चंचल दिलवालों से सुकर नहीं है, (यही शंकराचार्य अपनी सौन्दर्यलहरी में कहते हैं। क्षिप्रप्रसादिनी होने पर भी एकाग्रतापूर्ण निष्ठा और अन्तर्मुखता देवी प्रीति के लिए अत्यंत ज़रूरी है।)

८७२. त्रयी

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद इन तीन वेदों का स्वरूप बनी रहनेवाली।

ऋग्वेद अ कार से यजुर्वेद इ कार से और सामवेद अ से प्रारंभ होते हैं। अ-इ-अ इन अक्षरों के मिलन से वाग्भवकूट के बीज मंत्रोद्धारण होता है। वाग्भवकूट त्रयी नामक पद से जाना जाता है। वाग्भवकूट के बारे में गुरुमुख से ज्यादा जानकारी प्राप्त करें।

८७३. त्रिवर्गनिलया

धर्म, अर्थ, काम, इनके याने पुरुषार्थ का आलयस्वरूप रहनेवाली। धर्मार्थकाम जहाँ देवी में अवस्थित है वहाँ इन पुरुषार्थों की प्राप्ति में बाधा उपस्थित नहीं होगी। पुरुषार्थ की प्राप्ति सुनिश्चित है।

८७४. त्रिस्था

तीन में विराजनेवाली। तीन-तीन में कल्पित सब में देवी का निवास माना जाता है।

ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय इन तीनों में, भूत-भावि-वर्तमान जैसे कालत्रयों में, अकारों-ओकार-मकार नामक वर्णत्रयों में, त्रिमूर्तियों में, सत्व-रज-तम जैसे त्रिगुणों में, धर्म, अर्थ, काम इन तीनों में, सूर्य-चन्द्र-अग्नि जैसे ज्योतियों में, वाद-पित्त-कफ जैसे वैद्यशास्त्रों के प्रसिद्ध त्रिगुणों में, दिन, रात्रि-सन्ध्या जैसे काल विभागत्रयों में और इसप्रकार के असंख्य त्रयों में विराजनेवाली।

८७५. त्रिपुरमालिनी

श्रीचक्र के छठे चक्र के आवरण स्वरूप सर्वरक्षाकर चक्र की अधिष्ठान देवता ही त्रिपुरमालिनी है। त्रिपुर मालिनी रूप में जगदंबा सर्वरक्षाचक्रस्था बनकर विराजित होती है।

८७६. निरामया

दुःख अथवा रोग से मुक्ति-प्राप्त। अपने भक्तों को निरामय कर देनेवाली।

८७७. निरालम्बा

जिसका कोई आलम्ब नहीं है। सबका आश्रय जगदंबा ललिता देवी हैं। उस देवी के लिए अन्य आलंब नहीं है। इसलिए निरालम्बा।

८७८. स्वात्मारामा

स्वात्मा में ही रमनेवाली। अपने ही भीतर आनन्दित रहनेवाली। एक मात्र परमचेतना स्वयं दो होकर शिव और शक्ति के रूप में रमने से पति-पत्नी भाव में रहनेवाले शिव और शक्ति दोनों अभिन्न है। एक ही शक्ति प्रपंच के सृष्टि-स्थिति-लय के लिए कारणस्वरूप होकर द्वैतभाव में क्रीडारत हैं।

स्वात्मरूपी जगत् और ब्रह्म दोनों के लिए आराम (क्रीडास्थान) बनी हुई। ब्रह्म और जगत दोनों आराम रूपी क्रीडास्थान में विराजित है। दोनों देवी में निवसित हैं।

"त्वमक्षरं परं देवी यच्च सर्वं प्रतिष्ठितम
अक्षरं ब्रह्म परमं जगचैतत् क्षरात्मकम्
दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः" (मार्कण्डेयपुराण)

जग के निर्माण समय और संहार समय में और कुछ भी न हो, उस हालत में देवी अपने में विराजमान है।

८७९. सुधासृतिः

अमृत की सृति। सृति माने प्रवाह। सुधासाराभिवर्षिणी नामक नंबर १०६- का नाम देखें। पिण्डाण्डस्थाकुण्डलिनीशक्ति जब आधार चक्रों को पार कर सहस्रारपद्म में पहूँचती है तब उपासक परमानन्द का अनुभव प्राप्त करता है। वही सुधा प्रवाह देवी रूप है, इसलिए सुधासृति है। जिसके कारण सुधासृति होती है वही।

८८०. संसारपंकनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डिता

संसार रूपी पंक में निमग्न जनों का उद्धार कराने में समर्था

"येतु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्
भवामि न चिरात् पार्थ, मय्यावेशित चेतसां" (भ.गी. १२-६-७)

संसार रूपी कीचड में फंसकर दुःख अनुभव करनेवालों को देवी के स्मरण से मोचन मिलेगा।

"ये मनागपि शर्वाणीं स्मरन्ति शरणार्थिनः
दुस्तरापारसंसारसागरे न पतन्ति ते" (कौर्मपुराण)

८८१. यज्ञप्रिया

जिसे यज्ञ प्रिय है। यज्ञो वै विष्णुः (श्रुति)

यज्ञ पांच प्रकार से। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, ये यथाक्रम (पाठ) (स्वाध्याय), होम, (अग्निहोत्रम) अतिथि सत्कारं, पितृतर्पण, भूतबलि है। गृहस्थ को पंचयज्ञानुष्ठन करना है, यही स्मृति का अनुशासन है।

८८२. यज्ञकर्त्री

यज्ञों को करनेवाली।

८८३. यजमानस्वरूपिणी

याग करानेवाला यजमान है। सभी यज्ञ देवी की कृपा से चलते हैं, इसलिए यजमान के रूप में सभी यज्ञों के कारणभूत होती है देवी। यजमान की पत्नी यह अर्थ भी है। जब यज्ञ चलता है तब यजमान के साथ पत्नी भी उनके साथ रहती है। सभी यागादि यज्ञों के यजमान के रूप में भगवान शिव का संकल्प किया जाय तो यजमान की पत्नी बनकर देवी दीक्षित मूर्त्ति की स्थिति में रहती है।

"यजमानात्मको देवो महादेवो बुधैः प्रभुः
उग्र इत्युच्यते सद्भिरीशानश्चेति चापरैः
उग्राह्वयस्य देवस्य यजमानात्मनः प्रभोः
दीक्षापत्नी बुधैरुक्ता संतानाख्यस्तदात्मजः" (लिंगपुराण)

यजमानपत्नी रूप में रहनेवाली। शिव का नाम यजमान भी है जबकि मूर्तिभेद व
होता है।

८८४. धर्माधारा

धर्मों के लिए जो आधारस्वरूप है। धर्म शब्द का उद्धरण करके पुरुषार्थों में प्रथम मे
सदाचारपरक नियमों की ओर इंगित करता है। लौकिक धर्म का आधार वेद, श्रुतियाँ, स
आचार्यवचन, देश परंपरासिद्ध नियम आदि है। प्रपंच की अवस्थिति धर्म पर अवलंबित है
धर्म का आधार तो देवी है।

"यस्मिन् देशे यः आचारः पारम्पर्यक्रमागतः
आम्नायैरविरुद्धश्च स धर्मः परिकीर्तितः" (संवर्त्तस्मृति का धर्म-निर्व
है।)

८८५. धनाध्यक्षा

धन की अध्यक्षा। (स्वामिनी) ऐश्वर्यदेवता। धन के अधिष्ठित कुबेर के
रहनेवाली।

८८६. धनधान्यविवर्द्धिनी

धन और धान्यों को विशेष रूप से बढ़ानेवाली। सम्पत्कारिणि

८८७. विप्रप्रिया

ज्ञानी ब्रह्मणों पर प्रियता रखनेवाली।

"जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते" (ब्रह्मवैवर्तो)

इस प्रकार जन्म से ब्राह्मणत्व, संस्कृति से (जनेउ आदि क्रिया से) द्विजत्व औ
से विप्रत्व प्राप्त होता है। विद्याधारियों और ज्ञानियों की ओर इंगित है।

८८८. विप्ररूपा

उपर्युक्त नाम में उल्लिखित विप्रों को रूप देनेवाली। अथवा देव्युपासक विप्र को ह
कमियों को दूर करके उनकी रक्षा करनेवाली।

८८९. विश्वभ्रमणकारिणी

विश्व के भ्रमण के लिए जो कारणस्वरूप है। विश्व को घुमानेवाली। यहाँ वि
का सारे ब्रह्माण्ड का संकेत करता है। अनेक कोटि ब्रह्माण्ड बनते हैं और वे थोडे दिनों

रहते हैं फिर उनका नाश होता है । सृष्टि, स्थिति और लय के पुनरावर्तन को अथवा निरंतरता को भ्रमण कहते हैं।

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया" (भ.गीता. १८-६१)

(घूमनेवाले यंत्र में लगाये गये पदार्थों का यंत्रसमेत घूमना जैसे स्वाभाविक है, वैसे ही भगवान सब के हृदय में रहते हुए सब को घुमाते रहते हैं।)

"स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथाऽन्ये परिमुह्यमानाः
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्" (श्रुति)

यह सूचना है कि महिमा देव में निष्ठ है और शक्ति भ्रामिका है। विश्व शब्द का प्रयोग विष्णु के लिए प्रयोग में लाया जाता है। विश्वं विष्णुर्वषट्कार (विष्णुसहस्रनाम)

विष्णु को भ्रमित करनेवाली। यह नाम कालिका पुराण की एक कथा की सूचना ही देता है। एक बार विष्णु गरुडारूढ होकर आकाश मार्ग से जा रहे थे। कामरूप की नीलाचल वासिनी एवं कामाख्या देवी के मंदिर के समीप से जा रहे थे। देवी का आदर किये बिना चले विष्णु देवी कोप से समुद्र में पड गये। समुद्र के भंवर में पडकर वहाँ से न बच पाकर घूम रहे थे। नारद से यह बात जब लक्ष्मी देवी ने जानी तब उन्होंने कामाख्या देवजननी को प्रसन्न करके विष्णु को भंवर से बचा लिया। लक्ष्मीसहित भगवान ने देवी की वन्दना करके वैकुण्ठ पहूँच गये। यहाँ विष्णु के भ्रमण के कारण विश्वभ्रमणकारिणी नाम पड़ गया।

८९०. विश्वग्रासा

विश्व को ग्रसनेवाली। विश्व को, याने चराचर सब को ग्रसनेवाली। चराचरों का संहार करनेवाली।

यस्यब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः (कठोपनिषद)

विश्व देवी से पैदा होता है। उत्पत्ति, स्थिति, संहार इन तीनों प्रक्रियाओं में संहार को यह नाम द्योतित करता है।

८९१. विद्रुमाभा

विद्रुम की आभा से युक्त। स्थूल रूप वर्णन में देवी की पाटलकान्ति का वर्णन है।

वित् अ द्रुम- आभा- (वित् उ ज्ञान) ज्ञानरूपी वृक्ष के रूप में रहनेवाली।

८९२. वैष्णवी

विष्णुशक्तिरूप में रहनेवाली।

"शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोस्तुते" (देवी माहात्म्य के भीतर की स्तुति)
"शंखचक्रगदा धत्ते विष्णुमाता तथारिहा
विष्णुरूपाथवा देवी वैष्णवी तेनगीयते" (देवीपुराण)

८९३. विष्णुरूपिणी

विष्णु के रूप को धारण किये हुए। उपर्युक्त नाम के साथ मिलाकर व्याख्या करें। विष्णुरूपवाली। अर्थात् विष्णु और देवी दोनों में भेद नहीं है। "ममैव पौरुषं रूपं गोपिकाजनमोहनं" (गोपिका जनमोहन मेरा पुरुषरूप) देवी का कथन ललितोपाख्यान में है।

"आद्याशक्तिर्महेशस्य चतुर्धा भिन्नविग्रहा
भोगे भवानीरूपा सा दुर्गारूपा च संगरे
कोपे च कालिका रूपा पूंरूपा च मदात्मिके" (उसी कृति में विष्णु का कथन)

(आद्या महेशशक्ति चार रूपों में विभिन्न विग्रह धारण करती हैं। भोग में भवानी है। युद्ध में दुर्गा हैं। कोप में काली हैं। पुरुष रूप में विष्णु हैं।

कूर्मपुराण में हिमवान देवी की स्तुति करते हैं...

"सहस्र मूर्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्
शयानमब्धौ ललिते तवैव नारायणाख्यं प्रणतोस्मि रूपम्"

(हे, सहस्र मूर्धाओंवाले और अनन्त शक्तिशाली एवं सहस्रवाहु एवं पुराण पुरुष रूपी क्षीरसागरवासी हे नारायण रूपधारी ललिते मेरा प्रणाम स्वीकार करो।

८९४. अयोनिः

जिसका जन्मस्थान ही नहीं है वह। अनादि। योनि शब्द के अर्थ हैं स्थान, पीठ इत्यादि। स्थानरहित। अर्थात् यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि कहाँ स्थान बनाये रहती हैं। अ अक्षर का अर्थ है विष्णु। यहाँ यही अर्थ है, कि जो विष्णु का उद्भवस्थान बनी हुई है। अर्थात् विष्णु की माता जो बनी है।

८९५. योनिनिलया

योनि (उत्पत्तिस्थान) और निलय (वासस्थान) जो हैं। सारा प्रपंच देवी से उत्पन्न होता है। देवी में स्थित रहता है। संसार की उत्पत्ति ब्रह्मा से है। इसलिए ब्रह्मा और प्रजापति योनि शब्द से सूचित होते हैं। इस पक्ष में योनि - नि - लया इस प्रकार पृथक करना है। ब्रह्मादि नितरां (निश्चय ही) लयलीन रहनेवाली। ब्रह्मादि जहाँ लयीभूत होते हैं वहाँ याने वह। अर्थात् ब्रह्मादियों के लिए भी लयस्थान होनेवाली।

श्रीचक्र के केन्द्र त्रिकोण को योनि शब्द बताते हैं। उसके केन्द्र में बिन्दुरूप में रहनेवाली।

८९६. कूटस्था

कूट में रहनेवाली। कूट शब्द अज्ञान को द्योतित करता है। "कूटमज्ञानं तदध्यक्षतया तत्रतिष्ठति" यही सौभाग्य भास्कर का कथन है। आत्मा का आवरण करके जीवियों को प्रापंचिक बन्धन से वलयित करके मायाकार्यों में रहनेवाली।

कूट शब्द का अर्थ है चोटी। उससे सादृश्य होने से गोपुर अर्थ भी है। चोटी और गोपुर की तरह निष्क्रिय रहनेवाली।

पत्थर तोडने के लिए लोहे से बने हथौडे को कूट कहते हैं। इस सन्दर्भ में कूट जैसे कठोर और निर्विकार है देवी।

कूट का विश्वसमूह अर्थ भी है। इस पक्ष में विश्व में रहनेवाली।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवं) (भ.गीता १२-३)

सर्वव्यापी मूलप्रकृति कूटस्थ शब्द का प्रयोग देखें।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते (१५-१६)

यह भी व्याख्या है- वाग्भवकूट में रहनेवाली। श्रीचक्रान्तस्थित त्रिकोण में रहनेवाली। (इनमें श्रीचक्रान्तस्थित त्रिकोण में रहनेवाली, यह अर्थ पूर्व नाम में भी आया है।

८९७. कुलरूपिणी

कुल जिसका रूप है वह। कुल शब्द के निम्न अर्थ हैं- वंश, बाह्यपूजा, मूलाधार-चक्र, कौल संज्ञक प्रसिद्ध आराधना रीति, इत्यादि। ये सब जिसके रूप हैं वह। (इन अर्थों में अन्यत्र वर्णन है)

८९८. वीरगोष्ठिप्रिया

वीरों की गोष्ठी पसन्द करनेवाली। वीर शब्द का संकेत युद्ध और अन्य वीरोचित सामर्थ्य दिखानेवालों से है । ज्ञानवृद्धों की सभा में देवी का सान्निध्य होता है। अपने उपासक ज्ञानी एवं पंडित लोगों को देवी वीरताभाव अर्पित करती हैं।

८९९. वीरा

वीर्यवती। वीर पति और वीरपुत्रों वाली।

९००. नैष्कर्म्या

कर्मरहित अवस्था है नैष्कर्म्या । ऐसी अवस्था में रहने वाली। जिसे कर्म-बन्धन नहीं है। संसार के सारे कर्मों में देवी की चेतना व्याप्त रहती है। फिर भी कोई कर्म देवी को बाधा नहीं पहूँचाता।

"अनादित्वान्निर्गुणत्वात् परमात्मायमव्ययः
शरीरस्थोपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते" (गीता-१३-३१-३२)

आत्मा जो अनादि और निर्गुण एवं अविनाशी है । वह शरीर में रहने पर भी कोई काम नहीं करती। कर्मफल उसे स्पर्श नहीं करता। सारे जगत में व्याप्त आकाश अत्यंत सूक्ष्म है, इसलिए अन्य वस्तुओं से बाधित नहीं होता। उसी प्रकार सभी देहों में विराजनेवाली आत्मा भी कर्मों से बाधित नहीं होती ।

९०१. नादरूपिणी

नाद जिसका रूप है वह। नाद शब्द से शब्द-ब्रह्म की ओर संकेत किया गया है। परा पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी इन रूपों में विराजनेवाली है नादब्रह्म। प्रणव के अंत का नाद। वह रूप धारण करनेवाली।

"आनन्द लक्षणमनाहतनाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तवरूपमीशे
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानम्
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्चधन्याः" (कालिदासकृत अंबास्तुति)

९०२. विज्ञानकलना

विज्ञान को बनानेवाली। विज्ञान से मतलब है ब्रह्मसाक्षात्कार। उसका कलना माने स्वात्मसाक्षात्कार

"चतुर्दशानाम् विद्यानां धारणं हि यथार्थतः

विज्ञानमिति तद्विद्यात्" यही कौर्मपुराणवाक्य है। इसके अनुसार विज्ञान चतुर्विद्याओं को द्योतित करता है। चतुर्दश विद्यायेंः-

(चार वेद, छे शास्त्र, मीमांसा, न्यायशास्त्र, पुराण, धर्मशात्र, ये ही चतुर्दश विद्याएं) उन्हें बनानेवाली।

९०३. कल्या

कलाविद्याओं में निपुणा। सरस्वती रूप में कलाविद्याओं की अधिष्ठात्री। "कल्यं सर्गे प्रभाते च कल्यो नीरोगदक्षयोः कल्या कल्याणवाची स्यात् कादम्बर्यामपि स्मृता" (विश्वनिघण्टु)

इस प्रकार कल्याण शब्द का एक अर्थ प्रभात भी है उषः कालरूपिणी है।

सृष्टि अर्थ भी उसका है। इसलिए सृष्टिरूपिणी सृष्टिकर्त्री। विविध अर्थों में आचार्यों ने कल्य शब्द का अर्थ माना है, जैसे रोगावस्था होने से उपासकों को अरोगता प्रदान करनेवाली; सामर्थ्य अर्थ होने से सामर्थ्य देनेवाली; मंगलवाची होने से मंगलरूपिणी इत्यादि।

९०४. विदग्धा

समर्था। जिसका रूप वैदग्ध्य स्वयं है वह। जीवों में जो भी सामर्थ्य दिखाई देता है वह चैतन्य देवी कृपा से है। इसलिए देवी रूप है।

९०५. बैन्दवासना

बिन्दु से सम्बन्धित बैन्दव। जिसका आसन बैन्दव है। आज्ञाचक्र के ऊपर सहस्रार पद्म के मध्यबिन्दु में विराजनेवाली।

श्रीचक्र के केन्द्र त्रिकोण मध्य में रहनेवाला सर्वानन्दमय चक्र जिसका आसन है वह (तंत्रविधि)

बिन्दुओं का समूह बेंदव है । बिन्दुसमूह जिसका आसन है वह (यह मंत्रपरक व्याख्या है)

"बिन्दुव्यूहं प्रवक्ष्यामि बीजरूपं वरानने
हकारं बिन्दुरूपेण ब्रह्माणं विद्धि पार्वति
सकारं बिन्दु सर्गाभ्यां हरिश्चाहं सुरेश्वरी
अविनाभावसंबन्धौ लोके हरिहाविति" (ज्ञानार्णवं)

बिन्दुव्यूह से मतलब है मंत्रबीज अक्षर। उनमें शक्ति रूप में विराजनेवाली।

९०६. तत्वाधिका

तत्वों से आगे बढ़ी हुई। प्रलयकाल तक रहनेवाले हैं तत्व। वे २५ हैं, अथवा ३६ हैं, या ९६ हैं, ऐसा मत है।

आचार्यों के अनुसार उपर्युक्त तत्वों के, प्रलयकाल में, नाश होने पर भी न मिटनेवाली है देवी। इसलिए तत्वाधिका है।

ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय विषयक रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इत्यादि पंचेन्द्रिय विषय है। पंचप्राण, पंचभूत, पंचवायु षडाधार ये हैं ३६ तत्व। इनके नाश होने पर भी न नाश होनेवाली।

तत्व शब्द शिवतत्व को द्योतित करता है। उससे श्रेष्ठ चित्‌रूप है देवी।

९०७. तत्वमयी

तत्वों के रूप में रहनेवाली। उपर्युक्त नाम में बताये गये सभी तत्वों के स्वरूप में रहनेवाली। सत् रूपी आत्मतत्व, चित्‌रूपी विद्यातत्व और आनन्द रूपी शिवतत्व तीनों स्वरूप हैं जिनके।

९०८. तत्वमर्थस्वरूपिणी

तत्-त्वं-असि यह महावाक्य है। महावाक्य के तत् , त्वं इन पदों का अर्थ याने शिवजीव का ऐक्य जिसका स्वरूप है वही।

नाम ९०६ में प्रतिपादित अर्थ स्वरूपधारण करनेवाली। तत्वों की चेतना के रूप में रहनेवाली।

तत्व का अर्थ व्यावहारिक भाषा में सत्य, सार, यथार्थ धर्म इसप्रकार है। सत्वरजस्तमोगुण भी है। नृत्य की एक करणव्यापार रीति यह अर्थ भी है। इन सब के अर्थ जैसे रूपोंवाली।

९०९. सामगानप्रिया

सामवेदगान को पसन्द करनेवाली।

९१०. सौम्या

सोम से सम्बन्धित सौम्य। सौम्य स्वभाववाली। शान्त स्वभावी। शुभरूपिणि, प्रकाशवती। शान्तता, शुभता और प्रकाश ये तीनों गुण सोम के हैं। "अति सौम्यातिरौद्रायै

नतास्तस्यै नमोनमः।" (देवीमाहात्म्य) उसी रचना में "एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितं पातु नः सर्वभीतिभ्यः नारायणि नमोस्तुते" और "सौम्या सौम्यतराशेष सौम्येभ्यस्त्वति सुन्दरी परापराणां परमत्वमेव परमेश्वरी" इस प्रकार मिलता है। देवी भहात्म्य के तीन स्तोत्रों में देवी को सौम्या सम्बोधित करते हैं।

इस नाम को सौम्या का पाठभेद है। तब भी कोई अर्थभेद नहीं है।

"सोममर्हिति यः" इस सूत्र से सोमयाग के लिए योग्या। सौम्या प्रयोग सौभाग्य भास्कर का है।

स-उमा इस प्रकार प्रयुक्त होने पर उमासहित शिव अर्थ हो सकता है। अद्धनारीश्वर का प्रयोग इसको ठीक स्थापित करता है। उमासहित शिव, लक्ष्मीसहित विष्णु और सरस्वती सहित ब्रह्मा जिस देवी के अंग हैं वे ही ललिता हैं।

९११. सदाशिवकुटुंबिनी

सदाशिव (भगवान शंकर) की पत्नी। श्यामला, शुद्धविद्या आदि रूपों में विराजनेवाली।

९१२. सव्यापसव्यमार्गस्था

सव्यं, अपसव्यं, मार्ग इत्यादि में रहनेवाली। सव्यं अपसव्यं इन मार्गों में विराजनेवाली यह अर्थ भी। सव्यं सृष्टि को, अपसव्यं लय को और मार्ग स्थिति को सूचित करते हैं। सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी।

सूर्यमण्डल को उत्तर दक्षिण और मध्यम इन तीन भागों में विभक्त किया गया है। इन तीन मार्गों से ग्रहों एवं नवग्रहगों का संचार होता है। उत्तर मार्ग को सव्य, दक्षिण मर्ग को अपसव्य, मध्य मार्ग को मार्ग कहते हैं। इन तीन मार्गों में विराजनेवाली सव्यं माने इडा नामक नाडी। अपसव्यं पिंगला मार्ग सुषुम्ना इस पक्ष में इडा पिंगला और सुषुम्ना इन नाडियों में विराजनेवाली।

सव्य और अपसव्य दो उपासनामार्ग। उनमें सव्य वैदिकमार्ग और वामाचार तंत्रों के अनुसार किये जानेवाला उपासनामार्ग अपसव्यमार्ग। दोनों मार्ग देवी प्राप्ति के लिए हैं। इन दोनों मार्गों से देवी-प्राप्ति हो सकती है। इसलिए इन दोनों मार्गों में देवी विराजमान है, यही नामव्याख्या है।

९१३. सर्वापद्विनिवारिणी

सभी विपत्तियों का निवारण करनेवाली.

"अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः
श्रोष्यंति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्
न तेषां दुष्कृतं किंचिदुष्कृतोथा नचापदः
न भविष्यति दारिद्र्यं चैवेष्टवियोजनं
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः
न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचित्संभविष्यति"

(मेरा माहात्म्य एकाग्रता के साथ अष्टमि, चतुर्दशी, नवमि इन तिथियों में पढनेवाले अथवा सुननेवाले भक्तजनों को दुष्कृत अथवा दुष्कृतजन्य विपत्तियाँ भोगनी नहीं पडेंगी।

शत्रुओं, डाकुओं, राजाओं से अथवा आयुधों, अग्नि, जल इत्यादि से कभी डरना नहीं पडेगा। इस प्रकार देवी माहात्म्य में बताया गया है।

९१४. स्वस्था

अपने में रमनेवाली। "दुःख कृत चांचल्यावाभात् स्वस्था" (सौभाग्यभास्कर) स्वर्ग की अध्यक्षा यह भी अर्थ हे।

९१५. स्वभावमधुरा

मधुर स्वभाववाली। सारे अभिलषणीय भावों से युक्त। मधुरापुरि में मीनाक्षी बनकर विराजनेवाली। इस नाम को अनेक रूपों में व्याख्यायित किया गया है। आचार्यों द्वारा दी गयी उन व्याख्याओं को क्लिष्ट मानकर उनका उद्धरण यहाँ नहीं दिया जाता।

९१६. धीरा

पण्डिता, धैर्यवती, धीको देनेवाली। (धैर्यदेनेवाली)

"ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैतवासना" (स्मृति) पांडित्य, धैर्य और अद्वैतबुद्धि उपासकों को देनेवाली।

९१७. धीरसमर्चिता

धीर जनों द्वारा सम्यक रूप से समर्चिता। यहाँ धीर शब्द से तात्पर्य है पण्डित और धैर्यशाली। विज्ञ लोग पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए देवी की पूजा करते हैं।

"पातय वा पाताले स्थापय वा निखिललोक साम्राज्ये
मातस्तव पदयुगुलं नाहं मुंचामि नैव मुंचामि"

यही विज्ञलोगों का स्वभाव है और विक्रमी लोगों का ध्यान विक्रम एवं चातुर्य के लिए देवी का ध्यान करना है।

९१८. चैतन्यार्घ्यसमाराध्या

चैतन्य रूपी अर्घ्य से आराधनीया। पूजा के लिए मंत्रपूत जल को अर्घ्य कहते हैं। यहाँ ज्ञान रूपी चेतना को अर्घ्य मानते हैं। ज्ञान से आराधनीया। ज्ञानमर्घ्यम् यह तो श्रुति है।

"स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात् स्वात्मभूतां महेश्वरीं
पूजयेदादरेण्यैव पूजा सा पुरुषार्थदा" (स्कान्दपुराण)

चैतन्य शब्द से भुवनेश्वरी मंत्र सूचित होता है, यही मंत्र पर व्याख्या है। दशसहस्र आवृत्ति में चैतन्यमंत्र का जाप करके उस पवित्र जल से दशोपचारों में एक से याने अर्घ्यसमर्पण से देवी की उपासना की जाय तो उससे सारे पापों का नाश होगा, यह शास्त्रसम्मत है।

९१९. चैतन्यकुसुमप्रिया

चैतन्यरूपी कुसुम को चाहनेवाली। चैतन्य माने चित्‌रूपी ज्ञान। उसे काव्यरूपेण कुसुम माना गया है। ज्ञान रूपी कुसुम को चाहनेवाली।

"अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिझरि
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवति" (सौ.ल)

अयि भगवती, आपकी पादधूलि अविद्यावानों के हृदय के अज्ञानरूपी अन्धकार को निर्मूल करनेवाले ज्ञानसूर्य की उदयस्थान मिहिरद्वीपनगरि है। मन्दबुद्धि लोगों के लिए चैतन्य रूपी पुष्पगुच्छे से बहनेवाली मधुधारा है। निर्धनों के लिए मनचाहे की चिन्तामणिमाला है। जन्म जलधि में डुबे रहनेवालों केलिए वराहरूपी विष्णु का दंत है। सौन्दर्य लहरी में वर्णित यह अलंकार भावना पण्डितों ने भी माना है। वे ज्ञान को पुष्प मानते हैं।

"अहिंसा प्रथमं पुष्पमिन्द्रियाणां च निग्रहः
क्षान्तिः पुष्पं, दयापुष्पं ज्ञानपुष्पं परं मतम्
तपःपुष्पं सत्यपुष्पं भावपुष्पमथाष्टमम्" (आप्तवाक्य)

इसमें अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, क्षान्ति, दया, ज्ञान, तप, सत्य, भाव ये आठ पुष्प माने गये हैं। ईश्वर की अर्चना के लिए योग्य पुष्प।

सत् माने कलि, चित् तो पुष्प, आनन्द माने फल। इस प्रकार ही सत् चित् आनन्द को कलिका, फूल और फल के रूप में आचार्यों की कल्पना है।

९२०. सदोदिता

सदा उदिता। ऐसी ज्योति की तरह, जो कभी फीकी नहीं होती । सज्जनों में हमेशा प्रकाशित होनेवाली। ज्ञानरूपी प्रकाश बनकर सज्जनों में उदित होनेवाली।

९२१. सदातुष्टा

हमेशा प्रसन्न रहनेवाली। सज्जनों में सन्तोष रूपिणी बनकर रहनेवाली।

९२२. तरुणादित्यपाटला

तरुण सूर्य की तरह अरुण और सफेद रंगों से मिश्रित वर्णोंवाली। स्थूल वर्णन में आनेवाला यह नाम स्त्रीवश्यं, राजवश्यं जनवश्यं इनकी संकल्पनाओं में आता है। उपासकों की इच्छा के अनुसार देवीरूपों में अंतर लाया जाता है।

"शान्ता धवल वर्णाभा मोक्षधर्म प्रकल्पने
स्त्रीवश्ये राजवश्ये च जनवश्ये च पाटला
पीता धनस्य संपत्तौ कृष्णा मारणकर्मणि
बभ्रुर्विद्वेषणे प्रोक्ता श्रृंगारे पाटलाकृति"

देवी संकल्प के रंगों में विभिन्न सन्दर्भ के अनुसार कतिपय नियम है, जो इसप्रकार है- मोक्षधर्मप्रकल्पना में शान्ता और धवल वर्णा हैं। स्त्रीवश्य, राजवश्य, जनवश्य इनके लिए

पाटलवर्ण है। धन और संपत्ति के लिए पीतवर्ण है। मारण कर्मों में कृष्ण वर्ण है। विद्वेषण में भूरा वर्ण, श्रृंगार में पाटलवर्ण।

९२३. दक्षिणादक्षिणाराध्या

दक्षिणों द्वारा, माने पंडितों द्वारा और अदक्षिणों द्वारा याने पामरों द्वारा आराध्या।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुना

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ

इसप्रकार भगवान भक्तों को चार विभागों में विभक्त बताते हैं। उनमें जिज्ञासु और ज्ञानी दोनों दक्षिणी हैं और आर्त और अर्थार्थी अदक्षिणी हैं।

दक्षिणमार्ग और वाममार्ग में आराधना की जाने वाली। वैदिक आचारक्रमों से आराधना की जानेवाली।

९२४. दरस्मेरमुखांबुजा

मन्दहास से शोभित मुखवाली। नाम २८ की व्याख्या देखिए। दर शब्द को भय अर्थ है। भय के सन्दर्भ में भी मन्दस्मित से रहनेवाली। ऐसा शोभायमान कमलवदन। भयसन्दर्भ की व्याख्या में स्वयं देवी मात्र बची रहनेवाली है, उसी प्रलय की सूचना है। प्रलयकाल में भी देवी को भय लगता है यह सूचना और व्याख्या उचित नहीं है। उपासक भय सन्दर्भों में देवी की प्रार्थना करेंगे। उन सन्दर्भों में देवी दरस्मेरमुखांबुजा होकर उपासक का अनुग्रह करेंगी, यही व्याख्या उचित होगी।

९२५. कौलिनीकेवला

केवलस्वरूपी कौलधर्म में निवास करनेवाली। कौलधर्म और केवलज्ञान दोनों जिनका रूप है वे। अकेला और अविद्या से किसी प्रकार का सम्बन्ध न होनेवाला ज्ञान याने केवल ज्ञान कौल (कौळ्म) संज्ञा से कौल तंत्र को सूचित करता है। केवल ज्ञान और कौल तंत्र दोनों रूपों में रहनेवाली।

'कालिनीकेवला' इस पाठ को स्वीकार कर कालदेवता केवल देवता, माने नगण्य देवता बनी रहती हैं जिन देवि के कारण वे।

९२६. अनर्घ्यकैवल्यपददायिनी

अतिश्रेष्ठ कैवल्यपद प्रदान करनेवाली। शरीर से उत्पन्न और इंद्रियों से संजात वासनाओं से मोचित जीवन परम चैतन्य के साथ एकीभाव में आ जाता है। इसे कैवल्य कहते हैं। अत्यंत श्रेष्ठ वह पद भक्तजनों को देनेवाली।

९२७. स्तोत्रप्रिया

स्तोत्रों से प्रियता माननेवाली। स्तोत्र से मतलब आराध्य देव अथवा व्यक्ति के गुण, प्रभाव, इत्यादि का वर्णन करना और उनकी कृपा की अभ्यर्थना करना है। इसे छे प्रकार मानते

हैं। ''नमस्कारस्तथाशीश्च सिद्धांतोक्तिः पराक्रमः विभूतिः प्रार्थना चेति षड्विधं स्तोत्र लक्षणं।'' नाम का अर्थ है कि इन लक्षणों से युक्त स्तोत्र देवी को पसन्द है।

स्वतः इन सहस्रनाम स्तोत्र को पसन्द करनेवाली भी हैं, यह भी तात्पर्य है।

९२८. स्तुतिमती

स्तोत्रों में वर्णित कर्मों को किये हुए और उनके गुणों से समन्वित देवी, इसलिए स्तुतिमती। स्तुति में देवी के किसी गुण अथवा किसी घटना से सम्बन्धित वर्णन ही संभव है। सभी स्तोत्रों को ले तब भी देवी के माहात्म्य का थोडा अंश ही उनमें आ सकता है। फिर भी स्तोत्रों से ही हम देवी के बारे में जान सकते हैं इसलिए स्तोत्रों के सार रूप में यह नाम यहाँ दिया जाता है।

९२९. श्रुतिसंस्तुतवैभवा

श्रुतियों में (वेदों में) समुचित रूप से कीर्तित वैभव से युक्त। वेदों और वेदांतों का वर्णन देवी की स्तुति है। 'श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिका' इस नाम में सूचित वेदों का वर्णन देवी के प्रभाव का अल्प मात्रवर्णन है।

९३०. मनस्विनी

स्वतंत्र मन रखनेवाली। दूसरों पर आधारित मन जिसका न हो वह। देवी पर किसी की रोक नहीं, सब से अतीत शक्ति देवी हैं।

९३१. मानवती

ऊँची मानसिकता को मान कहते हैं। उसे प्राप्त देवी। मान का अर्थ कीर्ति भी है। कीर्तित।

मान का अर्थ माप भी है। जिसे माप है वही। भक्तों के गुणदोषों को मापनेवाली। धर्म और अधर्म का विवेचन करके उसके अनुरूप फल प्रदान करनेवाली।

प्रणयकोप भी मान का अर्थ है। प्रणय कोप धारण करके परमेश्वर से कभी-कभी लडनेवाली।

९३२. महेशी

महेश की पत्नी। महती ईश्वरी

९३३. मंगलाकृतिः

मंगल ही जिसकी आकृति है। शुभकारिणी, भक्तों को सुख एवं ऐश्वर्य देनेवाली।

सर्व मंगलमंगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके शरण्ये
त्र्यंबके गौरि नारायणि नमस्तुते

देखें, देवी माहात्म्य में नारायणीस्तुति।

९३४. विश्वमाता

विश्व के लिए माता बनी हुई। जगज्जननी । विश्व शब्द का अर्थ विष्णु भी है। विष्णु की भी माता बनी हुई।

९३५. जगद्धात्री

जगत के लिए धात्री। संसार को स्थाइत्व देनेवाली। जगत को धारण करनेवाली।

"यस्माद्धारयते लोकान् वृत्तिमेषां ददातिच
डुधात्र्धारणे धातुरजगद्धात्रीमता बुधैः" (देवीपुराण)

९३६. विशालाक्षी

दीर्घ नयनोंवाली। विशाल अक्षियोंवाली स्त्री सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार सुन्दरी मानी जाती है। सुन्दरी।

वारणासी के मन्दिर की अधिष्ठात्री देवी। वाराणस्याम् विशालाक्षी (पद्मपुराण)

विशाला शब्द बदरिकाश्रम के लिए भी कहते हैं। यह नगरी देवी का नेत्र माना जाता है। जिसके नेत्र का नाम विशाला है वह।

९३७. विरागिणी

वैराग्यशालिनी। विरक्ता। किसी वस्तु से राग न रखनेवाली।

९३८. प्रगल्भा

सृष्टि आदि कार्यों में समर्था।

९३९. परमोदारा

परम औदार्यमयी। परमा और उदारा। उदार शब्द से तात्पर्य है कि भक्तजनों की इच्छापूर्ति करनेवाली। परम औदार्यवती से मतलब है कि धर्मार्थकाम ही नहीं अपितु मोक्ष भी देनेवाली है।

९४०. परामोदा

परम आमोद प्रदान करनेवाली। परमानन्दस्वरूपा। आमोद शब्द के अर्थ हैं परिमल एवं कीर्ति। उत्कृष्टकीर्ति से युक्त।

९४१. मनोमयी

मन ही जिसका रूप है। शुद्ध ब्रह्म का मन बनकर रहनेवाली।

"स भैरवश्चिदाकाशः शिव इत्यभिधीयते
अनन्यां तस्य तां विद्धि स्पन्दशक्तिर्मनोमयी" (वासिष्ठरामायण) जीवों का मन देवीचेतना है, इसलिए मनोमयी है।

९४२. व्योमकेशी

जिसका केश आकाश है उस शिव की पत्नी। व्योमकेशी शिव विराटपुरुष हैं। विराट् रूप में रहनेवाली, यह अर्थ भी है।

९४३. विमानस्था

विमान में रहनेवाली। जिस देवी ने विमान में बैठे हुए त्रिमूर्तियों को सृष्टि आदि कर्मों के दृष्टांत रूप में माया रूपी ब्रह्माण्ड को दिखाया है वह।

विमानस्था इस शब्द को वि-मान-स्था इसप्रकार पदविछेद करके उसकी व्याख्या करें तो, विशेषमान में रहनेवाली है। और एक विगतमान से रहनेवाली (याने विगत मान याने परिमाण से रहनेवाली है। अपरिमेय ब्रह्म में रहनेवाली।)

विमानस्था- वि-मा-अन-स्था इसप्रकार अलग करके देखें, तो विशिष्ट कान्ति से युक्त शकट में रहनेवाली अर्थ मिलता है। किरि चक्रादि रथों में विराजनेवाली।

९४४. वज्रिणी

वज्रायुध को धारण करनेवाली। इन्द्रवज्र धारण करके शुम्भा निशुम्भों से लडाई की। यही वर्णन देवी माहात्म्य में है। वज्र निर्मित आभरणों को धारण करनेवाली यह अर्थ भी है।

९४५. वामकेश्वरी

वाममार्ग में देवी की उपासना करनेवालों की ईश्वरी। वामकेश्वर तंत्र प्रसिद्ध देवी उपासनातंत्र है, उस तंत्र का रूप धारण किये हुए।

जगत् को अपने से सृजित करनेवाली (वमन करनेवाली) वामक। वामक ईश्वरी वामकेश्वरी।

जगत् की उत्पत्ति की कारणभूता। वामकों की याने प्रजापतियों की याने दक्षादियों की ईश्वरी।

९४६. पंचयज्ञप्रिया

पंचयज्ञों में प्रियता रखनेवाली। (अध्ययन, तर्पण, होम, बलि, अतिथिपूजा, ये ही पंचयज्ञ हैं।

पंचयज्ञ शब्द के और भी अर्थ हैं। जैसे अग्निहोत्र, दशपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, सोमयाग ये हैं, यह श्रुति बताती है।

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, ये स्मृतियों का कथन है। पंचरात्रागम के अनुसार अभिगमन, उपादान, इज्य, स्वाध्याय, योग ये पांच यज्ञ हैं। कुलागम के अनुसार केवल, यामल, मिश्र, चक्रयुक्, वीरसंकर इस प्रकार पांच हैं इस पूजा को भी पंचयज्ञ कहते हैं। और भी अनेक प्रकार पंचयज्ञ माने जाते हैं।

९४७. पंचप्रेतमंचाधिशायिनी

पंचब्रह्मासनस्थिता नामक ५८वें नाम की व्याख्या देखें। पंचब्रह्मासन को ही पंचप्रेतमंच कहते हैं। पंचप्रेतमंच पर शयन करनेवाली। पुनरुक्ति दोष से बचने के लिए पंच माने विस्तृत प्रेत रूपी याने शक्ति तत्व के समीप रहनेवाले सदाशिव रूप मंच पर शयन करनेवाली

"शिवात्मिके महामंचे महेशानोपबर्हणे
मृतकाश्च चतुष्पादाः कशिपुश्च सदाशिवः
तत्र शेते महेशानी महात्रिपुरसुन्दरी" (भैरवयामल)

सौन्दर्य लहरी के ९५ वें पद्य में भी यह आशय साफ प्रकट हुआ है । ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर, रुद्र और सदाशिव ये जब शक्तियुक्त रहते हैं तब वे पंचब्रह्म कहे जाते हैं और जब, शक्तिरहति रहते हैं तब पंचप्रेत हैं। शक्तिरहित अवस्था का यहाँ वर्णन है।

९४८. पंचमी

पंचम सदाशिव की पत्नी। (ब्रह्मा; विष्णु, रुद्र, ईश्वरन, सदाशिव, इनमें पांचवाँ देव हैं सदाशिव।

"त्रिषु रुद्रोवरिष्ठः स्यात्तेषु मायीपरः शिवः
माया विशिष्ठात्सर्वज्ञात्सांबः सत्यादि लक्षणः
सदाशिवो वरिष्ठः स्यान्नात्र कार्या विचारणा" (सूतगीता)

वाराही देवी को पंचमी शब्द से जाना जाता है। ब्रह्मादि से पाँचवीं है वाराही । इसलिए यह नाम दक्षिणामूर्ति संहिता में "घटं स्पृष्ट्वा, हृदि ध्यात्वा पंचमीं परमेश्वरीं पंचमीशकटं यंत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभं " है, जो वाराही पूजाविधि है।

पंचमशब्द मकार को द्योतित करता है। मंत्रवर्ण व्याख्या के अनुसार मकार तो आनन्दरूप है। अतः पंचमकारों का समाहार रूपिणी है। आनन्दस्वरूप मकार में विराजनेवाली है देवी।

९४९. पंचभूतेशी

पंचभूतों की ईश्वरी। पंचभूतों का संयुक्त रूप है यह सारा प्रपंच। उनकी अधीश्वरी होने से भूतात्मक प्रपंच को बनाती है और विनाश भी करती है। सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी।

९५०. पंचसंख्योपचारिणी

पांच उपचारों से पूजिता। (गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य से पूजिता)

९५१. शाश्वती

नित्या। कभी विनष्ट न होनेवाली। शाश्वत् शब्द का बार-बार आवर्तित यह अर्थ है। बार बार आराधिता।

९५२. शाश्वतैश्वर्या

चिर ऐश्वर्य से युक्त। पंचप्रेतों के मंच पर सदाशिव रूपी फलक पर शाश्वत अवस्था में विाजनेवाली। पांच ईश्वरों के आधार पर शोभित होनेवाली।

९५३. शर्मदा

शर्म माने सुख। उसका दान करनेवाली।

९५४. शंम्भुमोहिनी

शंभु को मोहित करनेवाली। शम्भु शब्द को ब्रह्मा और विष्णु अर्थ भी हैं। इसलिए ब्रह्मा और विष्णु को मोहित करनेवाली। विष्णु के पक्ष में विष्णु के मोहिनी रूप ने शंभु को मोहित किया है। उसकी सूचना मिलती है।

शंभु शब्द का मुनि अर्थ भी है। इस पक्ष में मुनियों को भी मोहित करनेवाली।

९५५. धरा

भूदेवी के रूप में सब को धारण करनेवाली। 'ल' कार जिसका स्वरूप है वह, यह मंत्र-व्याख्या है। लकारः पृथ्वी देवी स शैल वनकानना। ''पंचाशत्पीठ संपन्ना सर्वतीर्थमयी परा'' (ज्ञानार्णव)

९५६. धरसुता

धर (हिमवान) की पुत्री हैमवती। हिमवान की पुत्री बनकर देवी रही, यह कथा मशहूर है।

९५७. धन्या

धनवाली। सारी सम्पत्ति की अधिष्ठात्री होने से धन अपने उपासकों को प्रदान करनेवाली। भाग्यवती। महत्ववती।

कृतकृत्या यही वाच्यार्थ है। मंगला-पिंगला, धन्या इन तीन योगियों के नाम धन्या के रूप में विराजमान हैं।

मरणासन्न काल में चार विध चिन्ताएं मनुष्य को व्यापती हैं। आर्त, रौद्र, धन्य और शुक्ल।

''राज्योपभोगशयनासनसाधनेषु
स्त्रीगन्धमाल्यमणिवस्त्रविभूषणेषु
इच्छाभिलाषमतिमात्रमुदेतिमोह-
ध्यानं तदार्तमिति संप्रवदन्ति तज्ञाः
संच्छेदनैर्दहनताडनपीडनैश्च
गात्रप्रहारदमनैर्विनिकृन्तनैश्च
यस्येह राग उपयायति न चानुकंपा
ध्यानं तु रौद्रमिति तस्य वदन्ति संतः
सूत्रार्थमार्गणमहाव्रतभावनानि
निर्बन्धमोक्षगमनागतिहेतुचिन्ता
पंचेन्द्रियाद्युपशमश्चदया च भूते
ध्यानं तु धन्यमिति तद्प्रवदन्ति संतः
यस्येन्द्रियाणि विषयैर न विचर्चितानि

संकल्पनाशनविकल्पविकासयोगैः
तत्तैक निष्ठधृतियोगभृतांतरात्मा
ध्यानं तु शुक्लमिति तत् प्रवदन्ति सिद्धाः" (भविष्यत्पुराण)

इस प्रकार, आर्त-चिन्ता, भोगों से ममत्व और जगत से बिदा होने की विमुखता है वे चिन्ताएं। इस चिन्ता के साथ मरनेवाला आगे हीनयोनि में पैदा होगा। रोद्र चिन्तन यह है कि मैं अभी तक जो जीवन जीया है वह नष्ट होगा और उसे जलाया जायेगा, काटेगा, गाडेगा, इसप्रकार की चिन्ता से विव्रस्त नहीं होगा। शरीर के प्रति ममता छोडे हुए और उसी मानसिकता से मरनेवालों को आगे का जन्म ऊँचा होगा। धन्या की चिन्ता, दया, संयम, सफाई इत्यादि से युक्त है। इस चिन्तन से मरनेवाले देव बनकर पैदा होते हैं। शुक्ला चिन्तन तत्व निष्ठपरक है। उस चिन्तन से मरनेवालों को पूनर्जन्म नहीं मिलता। इनमें धन्या नामक चिन्तन रूप धरकर रहनेवाली। अपने भक्तों को देवजनन के लिए प्रेरणा देनेवाली। कैवल्य के लिए योग्यता जिन्हें नहीं है उन्हें देवत्व प्रदान करके अनुगृहीत करनेवाली।

९५८. धर्मिणी

धर्मशीलता से युक्त। आनन्दानुभव, नित्यत्व, सर्वश्रेष्ठता, सर्वव्यापी होने की स्थिति इत्यादि विशिष्ट धर्मों से युक्त। प्रपंच के आधारस्वरूप धर्मों को नियमित रखनेवाली होने पर भी उन धर्मों को स्वीकरनेवाली। धर्म-संस्थापना के लिए बार-बार भिन्न रूपों में अवतार लेनेवाली।

९५९. धर्मवर्द्धिनी

धर्मों को वर्द्धित करनेवाली। वामनपुराण में कहा गया है कि जितेन्द्रियत्व, शौच, मंगल्य, भक्ति इत्यादि है धर्म। धर्म के नाम पर माने जानेवाले तत्व वे हैं, जो कालगति में समूह या समाज के अस्तित्व के लिए मनुष्य द्वारा नियोजित सदाचार एवं कालातीत रहनेवाले जीवनतत्व हैं। फिर भी दूसरे पर हम ध्यान देते हैं। इन धर्मों की अभिवृद्धि करनेवाली।

९६०. लोकातीता

लोकों के परे की शक्ति। भूलोक, इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक विष्णुलोक, इत्यादि के अतीत के शिवलोक याने महाकैलास में याने शिवपुर में विराजनेवाली।

लोगों के लिए अपरिज्ञेय अथवा लौकिक जन के लिए अज्ञाता।

९६१. गुणातीता

गुणों के परे की। गुणों से भी ऊपर रहनेवाली। गुण शब्द से तात्पर्य है कि वस्तुओं से आश्रित रहनेवाले रूप-रस-गंध इत्यादि और व्यक्तियों से आश्रित औदार्य, शौर्य, धर्मनिष्ठ इत्यादि। याने सत्व रज तम ये गुण। काव्य के उत्कर्ष में व्यक्तियों और आशयों में भी गुण कल्पित किये जा सकते हैं। गुण के कारण एक वस्तु की पहचान होती है। लेकिन सभी गुणों के उत्पत्तिस्थान है देवी। इसलिए देवी के गुण अमुक है, यह निर्णय करके कहना संगत नहीं है।

देवी से उत्पन्न मनुष्य इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान से गुणों का स्थाननिर्णय किया जाता है। मनुष्य की बुद्धि देवी का विवेचन करने में असमर्थ है। गुणों के संकल्प से परे हैं देवी। इसलिए गुणातीता ।

९६२. सर्वातीता

सब के परे रहनेवाली। ऊपर कहा जा चुका है कि लोक और गुणों से परे हैं देवी। इसका आगे भी समर्थन किया जाता है। प्रत्येक को लेकर कहने से बढ़कर सब के परे कहना ठीक है। वाक्, मन और चिन्तन से वहाँ तक पहूँच नहीं पाता। उतना ही माहात्म्य है देवी का।

''सर्वशब्दानतीता '' (सौभाग्यभास्करम) शब्दों को उल्लंखित करके आत्मरूपिणी होकर विराजनेवाली। सर्वस्व के ऊपर स्थित है देवी, यह कहकर फिर शब्द के ऊपर कहने की ज़रूरत नहीं है। शब्द प्रयोग में आता है।

''शब्दादिदम परं ब्रह्म गणनारहितं सदा आत्मस्वरूपं जानीहि'' इस ज्ञानार्णव वाक्य को आधार मानकर यह व्याख्या है।

९६३. शमात्मिका

जिसका स्वरूप शान्तता स्वयं है। जिसमें इन्द्रियजन्य विकारों का अभाव है उस स्थिति को शम कहते हैं। जहाँ व्यक्ति से प्रपंच को लेकर कहना है यह अर्थ है अविकारी दशा। वही शम है, जिसे रूप धरकर रहती है।

चलनस्वभावी विश्व देवी में लयीभूत हो जायेगा, तो अविकारी हो जाता है। प्रपंच का उपशमन जिसकी आत्मा है, वह। जो प्रपंच को अपने में रख लेती है वह।

९६४. बन्धूककुसुमप्रख्या

बन्धूक के और भी नाम हैं (उच्चमलरि, चेंपरत्ति) बंगदेश का एक वृक्ष (सौभाग्यभास्कर) लाल वर्ण के पुष्पोंवाला एक वृक्ष । बन्धूक पुष्प की कांति जैसी कान्तिवाली। आरक्तवर्णा।

९६५. बाला

बाला देवी का रूप धारण किया जिसने वह। 'भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रम नन्दिता' इस नाम की (७४) व्याख्या देखें। कन्याकुमारी की देवी बाला है, यही अन्ना तमिळ् व्याख्या में बताते हैं।

९६६. लीलाविनोदिनी

लीला करते हुए विनोद करनेवाली। प्रपंच सृष्टि, रक्षा, संहार इत्यादि लीलाएं विनोद के रूप में करनेवाली। उस लीला में रमनेवाली।

९६७. सुमंगली

शोभन मंगल्य पहननेवाली। नित्यसुमंगली। अपने पतिदेव के साथ हमेशा रहनेवाली।

सुमंगली शब्द का अर्थ पतिव्रता के लिए प्रयुक्त है। स्त्री की मंगल्य शक्ति पति की भलाई लाती है। देवी की पतिव्रतामहिमा से भगवान के विषपान पर भी आपत्ति नहीं हूई।

पतिव्रता सुमंगलियाँ देवी का अवतार मानी जाती हैं। सुमंगली का रूप धरनेवाली। ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी। मंगल शब्द का अर्थ ब्रह्म भी है।

"अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिं
श्रुति मात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं विदु" (विष्णुपुराण)

९६८. सुखकरी

सुख देनेवाली। सुख से मतलब है प्रापंचिक और पारत्रिक। धर्मार्थ काम मोक्ष चारों को पाने का सुख।

९६९. सुवेषाढ्या

आछे वेषधारण से आढ्या बनी हुई। अच्छे ढंग से अलंकृता। शोभनवस्त्रों, आभरणों एवं अंगराग से सुसज्जित एवं अलंकृत।

९७०. सुवासिनी

भर्तृमती, सु विशेषण से सूचना है, चिरकाल तक जिनके रहनेवाले पति और उसके साथ रहनेवाली। आनादि और अन्तहीन परमेश्वर जिनके पति हैं, वे ही सुवासिनी हैं।

भर्तृम्ती के अर्थ में सुवासिनी रूप में रहनेवाली। सुमंगली नाम देखें।

सुवेष से आढ्या बनी हुई सुमंगली को सुवासिनी कहते हैं। विधवा स्त्री अलंकार वस्त्र नहीं पहनती। श्री परमेश्वर नित्य हैं इसलिए पार्वती को शाश्वत रूप से अलंकृत रहना है। इसलिए सुवासिनी।

९७१. सुवासिन्यर्चनप्रीता

सुवासिनियों के द्वारा की जानेवाली अर्चना पसन्द करनेवाली। सुवासिनियों की अर्चना को आनन्द माननेवाली। देवी की पूजारीतियों में सुमंगली पूजा भी आती है। सुमंगली स्त्री को देवी मानकर उनकी पूजा करना ही यह आचार है। ऐसी पूजा से प्रसन्न होनेवाली।

९७२. आशोभना

शुद्ध प्रकाशरूपिणी। शोभना शब्द का अर्थ है मंगलकर। मंगल रूप धारण करनेवाली। सर्वमंगलमंगल्या वही।

९७३. शुद्धमानसा

शुद्ध मन रखनेवाली। उपासाक का मन शुद्ध बनाये रखनेवाली देवी।

९७४. बिन्दुतर्पणसन्तुष्टा

बिन्दु पर दिये गये तर्पण पर प्रसन्न रहनेवाली। यह नाम चक्रपूजा विधियों में एक आचरण को सूचित करता है। श्रीचक्र के केन्द्र में रहनेवाले सर्वानन्दमय चक्र की विध्यनुसार की जानेवाली पूजा से प्रसन्न रहनेवाली। विधि यह है कि ब्राह्मण दूध से, क्षत्रिय घी से, वैश्य शहद से और शेष लोग मधु से बिन्दुतर्पण करें। श्रीचक्र पूजा का रहस्य इस व्याख्या की परिधि में नहीं आता। इसे जानने केलिए गुरु का निर्देश स्वीकार करना है।

९७५. पूर्वजा

सब से पूर्व जिसने जन्म लिया है वह। देवी अजा है। जिसका जन्म नहीं है। सभी अन्य जन्म लेनेवाले हैं। सब से पूर्व जात आकाश भी देवी से जनित है। ''अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य'' (तैत्तर्योपनिषद)

९७६. त्रिपुरांबिका

त्रिपुरांबिका के रूप में रहनेवाली। त्रिपुर शब्द से जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं की ओर संकेत है। उनकी जनयित्री होने से त्रिपुराम्बिका।

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन्हें त्रिपुर कहते हैं। इन की जनयित्री एवं अधिष्ठात्री होने से त्रिपुरांबिका। पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवः (श्रुति)

वाम, दक्षिण और मिश्र इन तीन उपासनाक्रमों के अनुसार त्रिपुर हैं और उनकी अम्बिका होने से त्रिपुरांबिका।

श्रीचक्र के आठवें आवरण सर्वसिद्धिप्रद चक्र की अधिष्ठात्री देवता (चक्रेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमालिनी इन तीन देवी मूर्तियोंके अधिवास से युक्त इस चक्र को त्रिपुरा कहते हैं। उसकी भी अधीश्वरी त्रिपुरांबिका।

९७७. दशमुद्रासमाराध्या

दशों मुद्राओं द्वारा सम्यक् रूप से आराधना की जानेवाली। उपासक के मन में भक्ति और समर्पण भाव जो होते हैं,ये ही उपासना का मुख्य अंश है। फिर आचार्यों ने कतिपय आचारों का क्रम आराधना के लिए बनाये रखा है। लगेगा कि आचारों में केवल कर्म का आभास है। उन सबके अर्थ और प्रयोजन हैं। मन की भक्ति के कारण शरीर से करनेवाली प्रवृत्तियां भी उसके अनुयोज्य हैं। इन्हें मुद्रायें कहते हैं। हाथ और ऊंगलियों से की जानेवाली ये मुद्रायें आराधक के मन के भावों को बल देती हैं। उपासना देवता के चैतन्य को आवर्तन सेआवाहन कर प्रतिष्ठित करती हैं। ये मुद्रायें उपासकों को देवता के साथ बातें करने की भाषा हैं। इतने से मुद्राओं का आन्तरार्थ साफ होता है।

ऊँगलियों एवं हाथों के प्रयोग से मुद्रा की अभिव्यक्ति होती है। पाँचों ऊँगलियाँ पंचभूतों एवं पंचतंत्रियों को द्योति करती हैं। दाहिना हाथ प्रकाशरूपी शिव और बायें हाथ विमर्शरूपी शक्ति को इंगित करता है। दोनों हाथों की ऊँगलियों को पक़डने की रीति और उनके चलन के अनुसार विविध मुद्राओं की अभिव्यक्ति मंत्रोच्चारण के साथ साधक प्रकट करते हैं। प्रत्येक मुद्रा के अधिष्ठन देवता भी होते हैं।

श्रीचक्र के नव चक्रों की अधिष्ठन देवियों की नौ मुद्रादेवियाँ भी होती हैं। उनकी उपासना श्रीचक्र पूजा में उपासक नौ मुद्राओं से करता है। नौ चक्रों के मुद्रादेवताओं और मुद्राओं के अलावा दसवां मुद्रा सर्वत्रिखण्डा मुद्रा है, जो श्रीचक्र को समग्रतः प्रतिनिधान करते हैं। ये सब मिलकर है दश मुद्रा।

श्रीचक्र के बाहर स्थित त्रैलोक्यमोहनचक्र की मुद्रादेवी का नाम सर्वसंक्षोभिणि है। दूसरा चक्र है सर्वाशापरिपूरकचक्र। उसकी मुद्रादेवी है सर्व विद्राविणि। तीसरा चक्र है सर्वसंक्षोभणचक्र। उसकी देवी है सर्वाकर्षिणो। चौथाचक्र है सर्व सौभाग्यदायकचक्र। इसकी अधिष्ठन देवता सर्ववशंकरी है। पांचवाँ सर्वार्थसाधकचक्र। इसकी मुद्रादेवी सर्वोन्मादिनी है। छठे चक्र सर्वरक्षाकरचक्र को मुद्रादेवी सर्वमहांकुशा। सातवां चक्र सर्वरोगहर है और उसकी मुद्रा देवी है सर्वखेचरी। आठवाँ चक्र है सर्वसिद्धिप्रद। इस चक्र की मुद्रा देवी है सर्वबीजा। नवाँ और श्रीचक्र का केन्द्र रूप है सर्वानन्दमयचक्र। उसकी मुद्रा देवी है सर्वयोनी। श्रीचक्र की समग्र मुद्रादेवी है सर्वत्रिखण्डा।

मुद्रा देवियों के नाम से ही मुद्रायें जानी जाती हैं। दशमुद्राओं के नाम इस प्रकार है: सर्व संक्षोभिणीमुद्रा, सर्वविद्राविणीमुद्रा, सर्वाकर्षिणीमुद्रा, सर्ववशंकरी मुद्रा, सर्वोन्मादिनी मुद्रा, सर्वमहांकुशामुद्रा, सर्वखेचरीमुद्रा, सर्वबीजामुद्रा, सर्वयोनिमुद्रा, सर्वत्रिखण्डामुद्रा इन मुद्राओं से विधि अनुसार आराधिता श्रीचक्रस्वरूपिणी।

९७८. त्रिपुराश्रीवशंकरी

त्रिपुराश्री को वश में करनेवाली। त्रिपुराश्री जिसके वश में है वह। त्रिपुराश्री वह है, जो श्रीचक्र के पांचवें चक्र सर्वार्थसाधकचक्र की अधिष्ठत्री देवी है। उस देवी को अपने वश में किये हुए जो है।

त्रिपुराश्री को श्री चक्रोपासक के वश में करा देनेवाली।

९७९. ज्ञानमुद्रा

ज्ञानमुद्रास्वरूपिणी। तर्जनी और अंगूढा दोनों को मिलाकर पकडना और अन्य ऊँगलियों को फैला रखना, इस मुद्रा को ज्ञानमुद्रा कहते हैं। दक्षिणामूर्ति श्री परमेश्वर ने सनकादि को मौन भाषा में जो उपदेश दिया है वह इस मुद्रा के द्वारा ही था। ज्ञान मुद्रा रूप में विराजनेवाली।

९८०. ज्ञानगम्या

ज्ञान से प्राप्त होवाली

"यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवं-
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतंपरं
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्तिते" (कर्मपुराण में देवी का कथन)

९८१. ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी

ज्ञान से जानने योग्य स्वरूपवाली। और एक व्याख्या इस प्रकार है कि ज्ञान और ज्ञेय रूप धरनेवाली। ज्ञान का सांकेतिक अर्थ दृक और ज्ञेय का दृश्य ये अर्थ भी आये हैं। दृक-दृश्य-रूपिणी

९८२. योनिमुद्रा

श्रीचक्र का केन्द्र सर्वानन्ददायकचक्र की ईश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी है और मुद्रादेवी योनिमुद्रा है। मुद्रा का नाम भी योनिमुद्रा है। मुद्रा के रूप में विराजनेवाली श्रीदेवी है, इसलिए योनिमुद्रा है।

९८३. त्रिखण्डेशी

दशमुद्रासमाराध्या नाम (९७७) की व्याख्या में दस मुद्रादेवियों और मुद्राओं का वर्णन किया गया है। प्रत्येक चक्र के अलग-अलग मुद्रादेवी होती है। इनके अलावा श्रीचक्र के समग्र आधार सर्वत्रिखण्डा नामक मुद्रा पर भी विचार हुआ है। तीन खण्डों की इस मुद्रा को नित्या षोडशिकार्णव में "सर्वस्य चक्रराजस्य व्यापिका परिकीर्तिता" कहा गया है। त्रिखंडमुद्रास्वरूपिणी।

मंत्रों को सोमखण्ड, सूर्यखण्ड, अनलखण्ड इन तीनों में विक्त किया गया है। इन्हें त्रिखण्ड कहते हैं। इन तीनों खण्डों की ईश्वरी। सर्वमन्त्र-स्वरूपिणी नाम की व्याख्या पर ध्यान दें।

९८४. त्रिगुणा

तीन गुणोंवाली। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का रूप धरनेवाली। सांख्यमत के अनुसार प्रकृतिस्वरूपिणी होकर रहनेवाली।

"योगेश्वरी शरीराणि करोति विकरोति च
नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्तिः स्वलीलया
त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्सा त्रिगुणोच्यते (वायुपुराण)
"दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया (गीता)
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं (श्वेताश्वरोपनिषद्)

९८५. अम्बा

जगत की माता। त्रिगुणों की माता। सर्व जगत और सब की कारणभूता होने से जगज्जननी।

९८६. त्रिकोणगा

त्रिकोण को गयी हुई। श्रीचक्रान्तस्थ योनीचक्र में विराजनेवाली।

९८७. अनघा

अघ के अर्थ हैं पाप, दोष, विपत्ति, दुःख, वेदना, अशुद्धि। इन सब से देवी परे हैं। इसलिए अनघा।

९८८. अद्भुतचारित्रा

अद्भूत चरित्रों से युक्त। स्वयं शक्ति और शिव का विभाजन, त्रिमूर्तियों की सृष्टि, जगत् की सृष्टि, मंत्ररूपिणी और श्रीचक्र रूपिणी, अनेक सन्दर्भों में अनेक रूपों मं अवतार, महिष, शुंभोपशुंभों और भण्डासुर आदियों का वध, इत्यादि लीलाओं से अद्भुत चरित है देवी के।

पतिव्रता सुमंगलियाँ देवी का अवतार मानी जाती हैं। सुमंगली का रूप धरनेवाली। ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी। मंगल शब्द का अर्थ ब्रह्म भी है।

"अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिं
श्रुति मात्रेण यत्पुंसां ब्रह्म तन्मंगलं विदु" (विष्णुपुराण)

९६८. सुखकरी

सुख देनेवाली। सुख से मतलब है प्रापंचिक और पारत्रिक। धर्मार्थ काम मोक्ष चारों को पाने का सुख।

९६९. सुवेषाढ्या

आछे वेषधारण से आढ्या बनी हुई। अच्छे ढंग से अलंकृता। शोभनवस्त्रों, आभरणों एवं अंगराग से सुसज्जित एवं अलंकृत।

९७०. सुवासिनी

भर्तृमती, सु विशेषण से सूचना है, चिरकाल तक जिनके रहनेवाले पति और उसके साथ रहनेवाली। आनादि और अन्तहीन परमेश्वर जिनके पति हैं, वे ही सुवासिनी हैं।

भर्तृमती के अर्थ में सुवासिनी रूप में रहनेवाली। सुमंगली नाम देखें।

सुवेष से आढ्या बनी हुई सुमंगली को सुवासिनी कहते हैं। विधवा स्त्री अलंकार वस्त्र नहीं पहनती। श्री परमेश्वर नित्य हैं इसलिए पार्वती को शाश्वत रूप से अलंकृत रहना है। इसलिए सुवासिनी।

९७१. सुवासिन्यर्चनप्रीता

सुवासिनियों के द्वारा की जानेवाली अर्चना पसन्द करनेवाली। सुवासिनियों की अर्चना को आनन्द माननेवाली। देवी की पूजारीतियों में सुमंगली पूजा भी आती है। सुमंगली स्त्री को देवी मानकर उनकी पूजा करना ही यह आचार है। ऐसी पूजा से प्रसन्न होनेवाली।

९७२. आशोभना

शुद्ध प्रकाशरूपिणी। शोभना शब्द का अर्थ है मंगलकर। मंगल रूप धारण करनेवाली। सर्वमंगलमंगल्या वही।

९७३. शुद्धमानसा

शुद्ध मन रखनेवाली। उपासाक का मन शुद्ध बनाये रखनेवाली देवी।

९७४. बिन्दुतर्पणसन्तुष्टा

बिन्दु पर दिये गये तर्पण पर प्रसन्न रहनेवाली। यह नाम चक्रपूजा विधियों में एक आचरण को सूचित करता है। श्रीचक्र के केन्द्र में रहनेवाले सर्वानन्दमय चक्र की विध्यनुसार की जानेवाली पूजा से प्रसन्न रहनेवाली। विधि यह है कि ब्राह्मण दूध से, क्षत्रिय घी से, वैश्य शहद से और शेष लोग मधु से बिन्दुतर्पण करें। श्रीचक्र पूजा का रहस्य इस व्याख्या की परिधि में नहीं आता। इसे जानने केलिए गुरु का निर्देश स्वीकार करना है।

९७५. पूर्वजा

सब से पूर्व जिसने जन्म लिया है वह। देवी अजा है। जिसका जन्म नहीं है। सभी अन्य जन्म लेनेवाले हैं। सब से पूर्व जात आकाश भी देवी से जनित है। ''अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य'' (तैत्तर्यापनिषद)

९७६. त्रिपुरांबिका

त्रिपुरांबिका के रूप में रहनेवाली। त्रिपुर शब्द से जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं की ओर संकेत है। उनकी जनयित्री होने से त्रिपुराम्बिका।

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन्हें त्रिपुर कहते हैं। इन की जनयित्री एवं अधिष्ठात्री होने से त्रिपुरांबिका। पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवः (श्रुति)

वाम, दक्षिण और मिश्र इन तीन उपासनाक्रमों के अनुसार त्रिपुर हैं और उनकी अम्बिका होने से त्रिपुरांबिका।

श्रीचक्र के आठवें आवरण सर्वसिद्धिप्रद चक्र की अधिष्ठात्री देवता (चक्रेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमालिनी इन तीन देवी मूर्तियोंके अधिवास से युक्त इस चक्र को त्रिपुरा कहते हैं। उसकी भी अधीश्वरी त्रिपुरांबिका।

९७७. दशमुद्रासमाराध्या

दशों मुद्राओं द्वारा सम्यक् रूप से आराधना की जानेवाली। उपासक के मन में भक्ति और समर्पण भाव जो होते हैं,ये ही उपासना का मुख्य अंश है। फिर आचार्यों ने कतिपय आचारों का क्रम आराधना के लिए बनाये रखा है। लगेगा कि आचारों में केवल कर्म का आभास है। उन सबके अर्थ और प्रयोजन हैं। मन की भक्ति के कारण शरीर से करनेवाली प्रवृत्तियां भी उसके अनुयोज्य हैं। इन्हें मुद्रायें कहते हैं। हाथ और ऊंगलियों से की जानेवाली ये मुद्रायें आराधक के मन के भावों को बल देती हैं। उपासना देवता के चैतन्य को आवर्तन सेआवाहन कर प्रतिष्ठित करती हैं। ये मुद्रायें उपासकों को देवता के साथ बातें करने की भाषा हैं। इतने से मुद्राओं का आन्तरार्थ साफ होता है।

ऊँगलियों एवं हाथों के प्रयोग से मुद्रा की अभिव्यक्ति होती है। पाँचों ऊँगलियाँ पंचभूतों एवं पंचतंत्रियों को द्योति करती हैं। दाहिना हाथ प्रकाशरूपी शिव और बायें हाथ विमर्शरूपी शक्ति को इंगित करता है। दोनों हाथों की ऊँगलियों को पक़डने की रीति और उनके चलन के अनुसार विविध मुद्राओं की अभिव्यक्ति मंत्रोच्चारण के साथ साधक प्रकट करते हैं। प्रत्येक मुद्रा के अधिष्ठन देवता भी होते हैं।

श्रीचक्र के नव चक्रों की अधिष्ठन देवियों की नौ मुद्रादेवियाँ भी होती हैं। उनकी उपासना श्रीचक्र पूजा में उपासक नौ मुद्राओं से करता है। नौ चक्रों के मुद्रादेवताओं और मुद्राओं के अलावा दसवां मुद्रा सर्वत्रिखण्डा मुद्रा है, जो श्रीचक्र को समग्रतः प्रतिनिधान करते हैं। ये सब मिलकर है दश मुद्रा।

श्रीचक्र के बाहर स्थित त्रैलोक्यमोहनचक्र की मुद्रादेवी का नाम सर्वसंक्षोभिणि है। दूसरा चक्र है सर्वाशापरिपूरकचक्र। उसकी मुद्रादेवी है सर्व विद्राविणि। तीसरा चक्र है सर्वसंक्षोभणचक्र। उसकी देवी है सर्वाकर्षिणो। चौथाचक्र है सर्व सौभाग्यदायकचक्र। इसकी अधिष्ठान देवता सर्ववशंकरी है। पांचवाँ सर्वार्थसाधकचक्र। इसकी मुद्रादेवी सर्वोन्मादिनी है। छठे चक्र सर्वरक्षाकरचक्र को मुद्रादेवी सर्वमहांकुशा। सातवां चक्र सर्वरोगहर है और उसकी मुद्रा देवी है सर्वखेचरी। आठवाँ चक्र है सर्वसिद्धिप्रद। इस चक्र की मुद्रा देवी है सर्वबीजा। नवाँ और श्रीचक्र का केन्द्र रूप है सर्वानन्दमयचक्र। उसकी मुद्रा देवी है सर्वयोनी। श्रीचक्र की समग्र मुद्रादेवी है सर्वत्रिखण्डा।

मुद्रा देवियों के नाम से ही मुद्रायें जानी जाती हैं। दशमुद्राओं के नाम इस प्रकार है: सर्व संक्षोभिणीमुद्रा, सर्वविद्राविणीमुद्रा, सर्वाकर्षिणीमुद्रा, सर्ववशंकरी मुद्रा, सर्वोन्मादिनी मुद्रा, सर्वमहांकुशामुद्रा, सर्वखेचरीमुद्रा, सर्वबीजामुद्रा, सर्वयोनिमुद्रा, सर्वत्रिखण्डामुद्रा इन मुद्राओं से विधि अनुसार आराधिता श्रीचक्रस्वरूपिणी।

९७८. त्रिपुराश्रीवशंकरी

त्रिपुराश्री को वश में करनेवाली। त्रिपुराश्री जिसके वश में है वह। त्रिपुराश्री वह है, जो श्रीचक्र के पांचवें चक्र सर्वार्थसाधकचक्र की अधिष्ठात्री देवी है। उस देवी को अपने वश में किये हुए जो है।

त्रिपुराश्री को श्री चक्रोपासक के वश में करा देनेवाली।

९७९. ज्ञानमुद्रा

ज्ञानमुद्रास्वरूपिणी। तर्जनी और अंगूठा दोनों को मिलाकर पकडना और अन्य ऊँगलियों को फैला रखना, इस मुद्रा को ज्ञानमुद्रा कहते हैं। दक्षिणामूर्ति श्री परमेश्वर ने सनकादि को मौन भाषा में जो उपदेश दिया है वह इस मुद्रा के द्वारा ही था। ज्ञान मुद्रा रूप में विराजनेवाली।

९८०. ज्ञानगम्या

ज्ञान से प्राप्त होवाली

"यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवं-
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतंपरं
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्तिते" (कर्मपुराण में देवी का कथन)

९८१. ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी

ज्ञान से जानने योग्य स्वरूपवाली। और एक व्याख्या इस प्रकार है कि ज्ञान और ज्ञेय रूप धरनेवाली। ज्ञान का सांकेतिक अर्थ दृक और ज्ञेय का दृश्य ये अर्थ भी आये हैं। दृक-दृश्य-रूपिणी

९८२. योनिमुद्रा

श्रीचक्र का केन्द्र सर्वानन्ददायकचक्र की ईश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी है और मुद्रादेवी योनिमुद्रा है। मुद्रा का नाम भी योनिमुद्रा है। मुद्रा के रूप में विराजनेवाली श्रीदेवी है, इसलिए योनिमुद्रा है।

९८३. त्रिखण्डेशी

दशमुद्रासमाराध्या नाम (९७७) की व्याख्या में दस मुद्रादेवियों और मुद्राओं का वर्णन किया गया है। प्रत्येक चक्र के अलग-अलग मुद्रादेवी होती है। इनके अलावा श्रीचक्र के समग्र आधार सर्वत्रिखण्डा नामक मुद्रा पर भी विचार हुआ है। तीन खण्डों की इस मुद्रा को नित्या षोडशिकार्णव में "सर्वस्य चक्रराजस्य व्यापिका परिकीर्तिता" कहा गया है। त्रिखंडमुद्रास्वरूपिणी।

मंत्रों को सोमखण्ड, सूर्यखण्ड, अनलखण्ड इन तीनों में विक्त किया गया है। इन्हें त्रिखण्ड कहते हैं। इन तीनों खण्डों की ईश्वरी। सर्वमन्त्र-स्वरूपिणी नाम की व्याख्या पर ध्यान दें।

९८४. त्रिगुणा

तीन गुणोंवाली। सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों का रूप धरनेवाली। सांख्यमत के अनुसार प्रकृतिस्वरूपिणी होकर रहनेवाली।

"योगेश्वरी शरीराणि करोति विकरोति च
नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्तिः स्वलीलया
त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्सा त्रिगुणोच्यते (वायुपुराण)
"दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया (गीता)
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं (श्वेताश्वरोपनिषद्)

९८५. अम्बा

जगत की माता। त्रिगुणों की माता। सर्व जगत और सब की कारणभूता होने से जगज्जननी।

९८६. त्रिकोणगा

त्रिकोण को गयी हुई। श्रीचक्रान्तस्थ योनीचक्र में विराजनेवाली।

९८७. अनघा

अघ के अर्थ हैं पाप, दोष, विपत्ति, दुःख, वेदना, अशुद्धि। इन सब से देवी परे हैं। इसलिए अनघा।

९८८. अद्भुतचारित्रा

अद्भूत चरित्रों से युक्त। स्वयं शक्ति और शिव का विभाजन, त्रिमूर्तियों की सृष्टि, जगत् की सृष्टि, मंत्ररूपिणी और श्रीचक्र रूपिणी, अनेक सन्दर्भों में अनेक रूपों मं अवतार, महिष, शुंभोपशुंभों और भण्डासुर आदियों का वध, इत्यादि लीलाओं से अद्भुत चरित है देवी के।

अद्भुत चारित्र्य से भूषित। शिव में रमती हुई उनकी अर्थांगिनी होकर रहनेवाली है जो श्रेष्ठतम चारित्र्य को द्योतित करता है।

अद्भुतचारियों पर नियंत्रण करनेवाली। भूकम्प, आंधी, संक्रामक रोग इत्यादि अद्भुतचारी हैं। इनको नियंत्रित कर अपने भक्तजनों को बचानेवाली।

९८९. वांछितार्थप्रदायिनी

इच्छित अर्थों को (पुरुषार्थ-धर्मार्थकाममोक्ष) देनेवाली। भक्तजन और उपासक सन्दर्भ और इच्छा के अनुसार जो भी चाहते हों उन्हें उनकी मनोकामना के अनुसार फल देनेवाली। यदि वे कुछ न माँगे, तब भी सब देनेवाली। आचार्यों ने इस प्रकार बताया है।

९९०. अभ्यासातिशयज्ञाता

अतिशय अभ्यास से जानीजानेवाली। मन को एकाग्र में रखकर देवी की ओर उन्मुख बनकर योगशास्त्र के अनुसार अभ्यास कर (आसन, प्राणायाम, मनन, ध्यान इत्यादि से) जानने और प्राप्त करने योग्य। मन तो इंद्रियों के व्यापारों के अधीन रहता है। इसलिए इन्द्रिय सम्बन्धी सुखों की ओर मन आकृष्ट रहेगा। इससे मोचित रहने से ही मन ईश्वरोन्मुख हो सकता है। पूर्वजन्म के सुकृत एवं गुरुप्रसाद से कोई न कोई भक्त देवी की ओर निकटता तथा एकाग्रता स्वभाव ही से तो प्राप्त करता है। ऐसे भाग्यशालियों को छोडकर अन्य भक्तों को दीर्घकालीन अभ्यास से ही मन पर नियंत्रण प्राप्त हो सकता है। और देवीचैतन्य की उपासना करने का भाग्य प्राप्त हो सकता है। उसके लिए अभ्यास तो कई प्रकार के होते हैं। ज्ञानार्जन करके उस ओर जा सकते हैं। और साक्षात्कार का अनुभव करें। सब कुछ भूलकर भक्ति में ही लग जाना। योगमार्ग का अनुसरण करके शरीर और मन को वश में लाना और कुंण्डलिनी शक्ति को जगाकर देवी को जानना। ऋषियों ने प्रत्येक मार्ग में भी कई आचारों का निर्देशन दिया है। किसी भी मार्ग से अभ्यास और यत्न के बल पर साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है।

९९१. षडध्वातीतरूपिणी

छहों अध्वावों (मार्गों) से अतीत रूपवाली। अध्वा का संकेत उपासनामार्गों को द्योतित करता है। षडध्वा निम्न हैं :-

शैव, वैष्णव, दौर्ग, (दुर्गा से सम्बन्धित) आर्क, (सूर्य से सम्बन्धित) गाणपत्यं (गणपति से सम्बन्धित) इन्दुसंभव (जैनदर्शन)। ये ही उपासनापरक षडध्वा हैं। पूर्व जन्मों में षडविध उपासनायें जो कर चुके हैं उन्हें इस जन्म में त्रिपुर सुन्दरी की उपासना करने का भाग्य मिलेगा। ''मन्त्रैर्विशुद्ध चित्तस्य कुलज्ञानं प्रकाशते'' (यही आप्तवाक्य है)

पदाध्वा, भुवनाध्वा, वर्णाध्वा, तत्वाध्वा, कलाध्वा, मन्त्राध्वा ये ही छे अध्वा हैं। इनमें वर्ण, पद, मंत्र ये तीनों शब्द रूप हैं। माया एवं शक्ति को द्योतित करते हैं। भुवन, कला और तत्व ये तीनों अर्थरूप हैं। ये प्रकाश और शिव को बताते हैं।

''अविमर्शस्येकार्णः पदमंत्रार्णात्मकत्रिधा भवति''

पुरतत्वकलात्मार्थोधर्मिण इत्थं प्रकारस्य (विरूपाक्षपंचाशिक)

अंत में बताये गये छे मार्ग मुख्यतः श्रीचक्र-पूजा में स्वीकृत है।

९९२. अव्याजकरुणामूर्तिः

श्रीदेवी के विविध अवतारों एवं विविध भावों और अपदानों-आराधना-विधियों के साथ मंत्रों तथा मुद्राओं और देवीपरक दर्शनों का वर्णन करनेवाले सहस्र नामों के अन्त में उपासक और देवी के बीच के सम्बन्ध को सूचित करने केलिए 'अव्याजकरुणामूर्ति' नाम प्रकट होता है। निष्कपट कारुण्य ही मूर्ति जो बनी हुई है।

प्रथम नाम की व्याख्या करते समय देवी को माता के रूप में संकल्प किया गया है और उस संकल्प की महिमा भी सूचित की गयी। आराधनाविधियाँ अधिक्तर क्लिष्ट हैं। पूजासाधन, यज्ञसाधन, मंत्र, मुद्रायें, उन सबके आधारभूत तत्व, योगक्रम, दीर्घ एवं विस्तृत पठन, तप इत्यादि सब लोगों के लिए अज्ञात अनेक बातें और सन्दर्भ उपासना के अन्तर्गत आते हैं। इनमें अक्षमता और अनवधानता के कारण गलतियाँ आ सकती हैं। विधिवश अथवा वासनाबल से धर्मभ्रंश हो सकता है। नियत अभ्यास बंद हो सकता है। धर्मभ्रंश भी वासना के बल से अथवा विधिवश हो सकता है। फिर भी डरने की बात नहीं है, यही सूचना यह नाम देता है। देवी अव्याज करुणामूर्ति है। सन्तान का हर अपराध देवी माँ माफ कर देंगी। बच्चे के पैर फिसलकर गिरने से माँ को क्रोध नहीं आता, दया आती है। गिरने से बचाने का दायित्व मा का है। उसे माँ निभा देंगी।

''अराला केशेषु प्रकृतिसरला मन्दहसिते
शिरीषाभा चित्ते दृषदुपलशोभा कुचतटे
भृशं तन्वी मध्ये पृथुरुरसिजारोहविषये
जगत्रातुं शंभोर्जयति करुणा काचिदरुणा'' (सौ. ल. ९३)

(घुंघुराले केशभार से मनोहरी, आर्जव बतानेवाले मन्दहास से दीप्त, भक्तजनों के क्लेश को बिलकुल सहन सकनेवाली, शिरीष पुष्प जैसा मृदुल हृदयवाली, पाषाण जैसे कठोर स्तनों से युक्त, अत्यंत कृश कमरवाली, बडे स्तन और नितंबों को रखनेवाली, अरुण वर्णोंवाली देवी परमेश्वर की करुणाशक्ति के रूप में प्रपंच की रक्षा के लिए सर्वोत्कर्ष के साथ विराजित होती है।

सौन्दर्यलहरी में शंकराचार्य जी ने देवी को अव्याज करुणामूर्ति का चित्र जो खींचा है वह जगद्ज्जननी स्वरूप को सार्थक कर देता है।

९९३. अज्ञानध्वांतदीपिका

अज्ञान रूपी अंधकार के लिए दीपरूपिणी। सब प्रकार के दुःखों का निदान अज्ञान है। अज्ञान तमोमय और ज्ञान प्रकाशमय है। प्रकाश से जैसे अन्धकार मिट जाता है वैसे ज्ञान से अज्ञान

नष्ट हो जाता है। अज्ञान का मिटना और ज्ञानोदय होना, यह ईश्वरकृपा से संभव है। देवी उपासक के मन से अज्ञान का अंधकार दूर करनेवाली महा दीप है। उपर्युक्त नाम में जैसे बताया गया है कि अव्याजकरुणामूर्ति इस स्वभाव से देवी उपासक के मन का अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करती है।

"तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता"

उन्हें (भक्तों को) दयापूर्वक् अनुग्रह देने के लिए मैं अंतःकरण में प्रतिबिंबित होकर ज्ञान रूपी दीप से अज्ञान रूपी तम का नाश करता है । (भगवद्गीता १०, ११)

९९४. आबालगोपविदिता

छोटे बच्चों और पशुवों को ही नहीं सबको विदिता। पंडितों एवं ज्ञानियों के अलावा निरक्षर गोपों एवं अपरिपक्व लडकों को भी जानी जानेवाली। बालगोपाल शब्द श्रीकृष्णावतार को सूचित करता है। श्रीकृष्ण गायों को चराकर जो जीवन विताते थे वह कथा प्रसिद्ध है। बालगोपाल शब्द का अर्थ शिव भी है। बालक गोप को निरक्षर गोपबालक लडका अर्थ भी लिया जा सकता है। हरि और हर से लेकर पामर पर्यंत सबको मालूम होनेवाली।

९९५. सर्वानुल्लंघ्यशासना

सब लोगों से याने सदाशिव भगवान शंकर से लेकर कीटपर्यंत सब से अनुल्लंघ्य याने लंघन करने न योग्य शासन से युक्त। प्रपंच जो कुछ है सब देवी के शासन के मुताबिक प्रवर्तननिरत है। कोई भी उस शासन का उल्लंघन कर नहीं सकता। ऐसा करने की शक्ति भी नहीं है।

सर्व तत्वों का उल्लंघन करनेवाली। ऐसे देव और मनुष्य हैं, जिन्हें शासन करने की क्षमता है। उनकी आज्ञा का उल्लंघन देवी कर सकती है। अलंघनीय विधि भी देवी के उपासकों के लिए बाधक नहीं है।

"जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते
तिरस्कुर्वन्नेतत् स्वमपि वपुरीशस्तिरयति
सदापूर्वसर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिव-
स्तवाज्ञामालंब्यक्षणचलितयोभ्रूलतिकयोः" (सौ.ल.२४)

(अयि विश्वमाता! ब्रह्मा तो संसार का सृजन करते हैं। महाविष्णु उसका संरक्षण करते हैं। रुद्रभगवान उसका नाश करते हैं। ईश्वर इन ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रों को अपने में विलीभूत करके अपना स्वरूप छिपा लेते हैं। सदाशिव तो ब्रह्मा विष्णुरुद्र ईश्वर चार मूर्तियों को आपके क्षणितचलित भौंहों के निर्देश मात्र से अनुग्रह देते हैं।) इस प्रकार श्री शंकराचार्य ललिता देवी की सर्वानुलंघ्य आज्ञाशक्ति का विवरण देते हैं।

९९६. श्रीचक्रराजनिलया

जिसका निवासस्थान श्रीचक्र है, वह। श्रीचक्र चक्रों में सर्वश्रेष्ठ होने से उसे राज शब्द से विशिष्ट माना गया है। श्रीचक्र का राज (केन्द्रस्थान) जिसका निलय जो होता है वह। दोनों व्याख्यानों में कोई अन्तर नहीं है। 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपु ' यही आप्तवाक्य है शिव और शिवा का शरीर ही श्रीचक्र है। शरीर के भीतर जैसे प्राण हैं वैसे श्रीचक्र के भीतर त्रिपुरा महादेवी निवसित है।

श्रीचक्र के प्रत्यक्ष और परोक्ष वर्णन इस सहस्रनाम में हैं। श्रीचक्र के बारे में विस्तृत रूप से लिखने की क्षमता इसके लेखक को नहीं है। सुने-पढे ज्ञान को केन्द्र बनाकर कुछ लिखना है तो लिखना पड़ेगा। पाठकों की जिज्ञासा का शमन करने के लिए एक छोटा सा विवरण श्रीचक्र के बारे में अनुबन्ध के रूप से दिया गया है।

९९७. श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी

श्रीमती एवं त्रिपर (शिव) की सुन्दरी (पत्नी) होकर रहनेवाली। तीन पुरोंवाला त्रिपुर। ब्रह्मा-विष्णु-शिव इन तीनों मूर्तियों को मिलाकर त्रिपुर बताया जाता है। पुर माने शरीर। त्रिपुरोंवाले शिव की पत्नी यह अर्थ भी है।

"प्रधानेच्चावशाच्छंभोः शरीरमभवत्रिधा
तत्रोर्ध्वभागः संजातः पंचवक्त्रश्चतुर्भुजः
पद्मकेसर गौरांगः कायो ब्राह्मो महेश्वरे
तन्मध्यभागो नीलांग एकवक्त्रश्चतुर्भुजः
शंखचक्रगदापद्मपाणिःकायः स वैष्णवः
अभवत्तदधोभागे पंचवक्त्रश्चतुर्भुजः
स्फटिकाभ्रमयः शुक्लः सकायश्चान्द्रशेखरः
एवं त्रिभिः पुरैर्योगात्रिपुरः परमः शिवः" (कालिकापुराण)

त्रिपुरात्मिका सुन्दरी। इस पक्ष में श्रीमत् शब्द को त्रिपुर सुन्दरी के विशेषण के रूप में लिया जाना चाहिए। यहाँ त्रिपुर से मतलब है, मातृ-मान-मेय नामक तीन पुर।

त्रिपर का अर्थ मन, बुद्धि, चित्त यह भी हो सकता है। इनमें विराजनेवाली सुन्दरी। (सर्वातिशायी सौन्दर्य का आधार)

तीन देव, तीन अग्नियाँ, तीन शक्तियाँ, तीन स्वर, तीन लोक, तीन पुरियाँ, तीन पुष्कर, तीन काल, तीन गुण, तीन वर्ण इसप्रकार त्रिवर्गात्मक सबको सूचित करने के लिए त्रिपुर शब्द का उपयोग कर सकते हैं, उन्हें देवी के पुर मानकर उनमें विराजनेवाली सुन्दरी इस अर्थ में त्रिपुरसुन्दरी की व्याख्या की जा सकती हैं। यही आचार्यों की सम्मति है। श्रीमत् शब्द इस पक्ष में विशेषण ही है।

२९८. श्रीशिवा

शिवा के अर्थ हैं, शुभ, मंगल, भाग्य, सन्तोष, मुक्ति इत्यादि नानार्थ। श्री शब्द मंगलवाची विशेषण है। तब मंगलरूपिणी, भाग्यरूपिणी, आनन्दमयी, मुक्तिरूपिणी। सारे पदों का तत्वार्थ बराबर है।

शिव के रूप में रहनेवाली। शिवा का अर्थ शिव से अभिन्न। शिवपत्नी। श्री इन सभी स्थानों में मंगलवाची विशेषण। नाम ५३ देखिए।

९९९. शिवशक्तैक्यरूपिणी

वह जो शिव और शक्ति दोनों के ऐक्य का रूप धारण करती है। दिये से प्रकाश और वाक् से अर्थ जहाँ भिन्न नहीं है वहाँ शिव से शक्ति अलग नहीं है। यदि प्रकाश नहीं है तो दीप नहीं। यदि अर्थ नहीं है तो शब्द का पदत्व भी नहीं है। इस प्रकार यदि शक्ति नहीं है तो शिव भी नहीं है। सौन्दर्य लहरी के प्रथम पद्य में शंकराचार्य ने इस बात को स्पष्ट किया है। (अन्यत्र उद्धृत हुआ है) शिव और शक्ति के ऐक्य को कोई भी अलग नहीं कर सकता । इसलिए शिवशक्तैक्यरूपिणी

श्रीचक्ररूपिणी भी व्याख्यायित होता है। शिवात्मक चार चक्र शक्त्यात्मक पांच चक्र दोनों मिलकर श्रीचक्र का स्वरुप है। (श्रीचक्र के बारे में अनुबन्ध देखें) शिवशक्ति रूपी श्रीचक्र का रूपधारिणी।

"शैवानां चैव शाक्तानां चक्राणां च परस्परम्
अविनाभावसंबन्धं यो जानाति स चक्रविद्" (ब्रह्माण्डपुराण)

शिवशक्तैक्यस्वरूपी हंसमंत्र-स्वरूप धारण करनेवाली यही मंत्र की व्याख्या है। मंत्र-रूप गुरुमुख से समझना है।

शिव की पांच शक्तियाँ , जैसे धूमावती, ह्लादा, भास्वती, स्पन्दा और विभ्वी। इनके समष्टि रूप धारण करनेवाली। (शिव शक्तियों का समान्वित रूप)

"धूमावती तिरोधौ भास्वत्यवभासनेऽध्वनां शक्तिः
क्षोभे स्पन्दा व्याप्तौ विभ्वी ह्लादा तु पुष्टौ मे
धूमावती पृथ्विव्यां ह्लादाप्सु शुचौ तु भास्वती प्रथते
वायौ स्पन्दा विभ्वी नर्भास व्याप्तं जगत्ताभिः" (विरूपाक्षपंचाशिका)

१०००. ललितांबिका

जो ललिता एवं अंबिका है।

"लोकानतीत्य ललते ललिता तेन चोच्यते" इस पद्मपुराण वाक्य का अर्थ है कि लोकों का अतिक्रमण करके रहनेवाली। ललिता शब्द का अर्थ यही है।

अम्बिका शब्द से माता को द्योतित किया जाता है। सर्व लोकों का अतिक्रमण करनेवालो पराशक्ति सारे प्रपंच की माँ यही नाम का अर्थ है।

सहस्रनाम का आरंभ और अन्त दोनों में देवी को माँ मानकर कीर्तित करते हैं, यह विशेष रूप से ध्यान में रखने की बात है।

ललिता शब्द का अर्थ श्रीललितोपाख्यान में ब्रह्मश्री वासुदेव मूसत ने परब्रह्म बताया है।

शब्द अपने अर्थ को अभिधा, लक्षणा, व्यंजना इन तीन शक्तियों में से किसी को लक्ष्य करके कहते हैं। इनमें अभिधा वाच्य लक्षणा लक्ष्यार्थ, और व्यंजना व्यंजित करनेवाला अर्थ बताता है। ललिता देवी शब्द परब्रह्म को जो बताती है वह लक्षणा अथवा व्यंजना से नहीं, बल्कि शक्तियों से श्रेष्ठ परम अभिधा शक्ति से है। ललिता शब्द को परब्रह्म जो बताया जाता है वह सीधे बताया जाता है। इसका तात्पर्य मां के रूप में रहनेवाला नाम साक्षात् परब्रह्म है।

'लोकानतीत्यललते' पद्मपुराण में लिखित इस उक्ति के अनुसार आवरणदेवताओं के परे रहनेवाली है देवी। यहाँ लोक शब्द से तात्पर्य है किरणें (अवरण देवताएं) । ललिता शब्द का अर्थ शोभित होनेवाली भी है। श्रीचक्र के बिन्दुस्थान में तेजोरूपिणी होकर रहनेवाली और आवरण शक्तियों का याने आवरण चक्रों की शक्तिस्वरूपिणी होनेवाली किरणों को पार करनेवाली भी है।

"शोभा विलासो माधुर्यं गांभीर्यं स्थैर्यतेजसी
लालित्यं च तथौदार्यमित्यष्टौ पौरुषा गुणाः"

और

'ललितं रतिचेष्टितं' यह कोश में है। इन अर्थों में विराजनेवाली। व्याख्या यह है कि वही रूप जिसे हो, वह। और यह भी व्याख्या की जा सकती है- शोभा-विलास-माधुर्य-गांभीर्य-तेज-लालित्य-औदार्य-रूपी। इन आठों गुणों से युक्त। 'ललितं रतिचेष्टितं' इसमें से रतिरूप में स्थित रहनेवाली और श्रृंगार रस रूपिणी ये अर्थ भी हैं। नामार्थ के लिए इसके साथ जगज्जननी भी मिलाकर रखें।

''सौकुमार्यं तु लालित्यं'' इस तत्व के आधार पर जो विशेष रूप से सुन्दर है वह ललिता है। ललिते सुन्दरं यही शब्दार्णव का उद्घोष है। सर्वांगसुन्दरी विशेषण अन्यत्र मिलता भी है। देवी से सम्बन्धित सारा-सर्व सुन्दर है, इसलिए सुन्दरी अंबिका ।

"ललितेति नाम युक्तं तव किल दिव्या नवावृतयः
धनुरैक्षवमस्त्राण्यपि कुसुमानि तथाखिलं ललितम्" (सौभाग्य भास्करम)

प्रयागा तीर्थ की अधिष्ठात्री देवी का नाम ललितांबिका है। ''प्रयागे ललिता देवी'' (पद्मपुराण) ।

(व्याख्या के आरंभ में जैसे हम ओं प्रणव का प्रयोग कर चुके उसी प्रकार अंत में भी प्रणव मंत्र जोडकर ही परिसमाप्ति है जैसे, ''ओं श्री ललितांबिकायै नमः ओं नमः)''

अनुबन्ध

श्रीचक्र

"चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पंचभिरपि
प्रभिन्नाभिः शंभोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः
चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रत्रिवलय
त्रिरेखाभिस्सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः" (सौन्दर्य लहरिः श्लोका ११)

श्रेष्ठ ऋषियों ने अरूपी और सर्वान्तर्यामी देवी चेतना को जानने और अपनाने एवं ध्यान करने हेतु अनेक विविध मार्गों को स्वीकार किया है। मनुष्य शरीर के प्रत्येक अंग के सब से सुन्दर स्वरूपों को मिलाकर निर्दोष रूप का संकल्प करना एक रीति है। चित्रों और मूर्तियों में देवताओं का आरोप करके उनकी पूजा करने की यही रीति है। रूप-संकल्प के बिना पत्थर, लकडी अथवा दीप में देवता का संकल्प करके पूजा करना भी यही रीति है। एक अतिथि के जैसे उपासनामूर्ति का आह्वान करके अर्घ्य, पाद्य, पीठ, वस्त्र, भोजन इनका अर्पण करके स्तोत्र एवं मंत्र इत्यादि से पूजा करते हैं, यही इसका आधार है।

अपनी उपास्यदेवता को हृदय में विराजमान जानकर उस शक्ति की आराधना करना और एक रीति है। इसप्रकार आराधना के कई प्रकारभेद हैं। उनमें सब से मुख्य कुण्डलिनी पूजा है। शरीर ब्रह्माण्ड का प्रतिरूप है, इसलिए उसे पिण्डाण्ड कहते हैं। ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियाँ पिण्डांड में भी विराजमान हैं। ब्रह्माण्ड की अवस्थिति और प्रवर्तन केलिए भी पराशक्ति आधारभूत रहती है, इसी प्रकार पिण्डाण्ड के प्रवर्तन के लिए भी पराशक्ति की स्फुरण रूपी कुण्डलिनी आधार रूप रहती है। योग शास्त्र यही बताता है।

रीढ की बाई ओर इडा नामक नाडी और दाहिनी तरफ पिंगला नाडी और मध्य में सुषुम्ना नाडी रहती है। सुषुम्ना नाडी के नीचे मूलाधार है। वहाँ सर्पाकार में साढे तीन वलय में बिसतन्तु जैसी तनीयसी और बिजली की तरह कुण्डलिनी सोती है। यदि इस कुण्डलिनी को जगा दिया जाय तो लिंगस्थान में रहनेवाले स्वाधिष्ठानचक्र, नाभीस्थान में रहनेवाले मणिपूरचक्र, हृदयस्थान में रहनेवाले आनाहतचक्र, कण्ठ में रहनेवाले विशुद्धिचक्र, भ्रूमध्य में रहनेवाले आज्ञाचक्र को भेदकर कुण्डलिनी इन सब के ऊपर वाले सहस्रार पद्म में पहूँच जायेंगी। सहस्रार में रहनेवाले सदाशिवचैतन्य से जब कुण्डलिनी मिल जाती है तब जो अमृत-स्राव होता है तब पिण्डाण्ड की सभी नाडियों का सेचन होगा। उस समय साधक परमानन्द का अनुभव करता है।

कुण्डलिनी शक्ति को जगाने की विधियाँ अनेक हैं। उनकी चर्चा यहाँ नहीं की जाती। उपास्य चेतना को संसारव्याप्त जानकर प्रपंच के साथ उस चेतना का आविष्कार करने का स्वरूपनिर्माण करना दूसरी रीति है। इस प्रकार प्रतीकात्मक रूप को यंत्र कहते हैं। यंत्रों रेखाओं

वर्णों के उपयोग से बनाये जानेवाले चित्र हैं। इनका वर्णों से निर्मित मण्डल है और मण्डल के भीतर जडित रेखाचित्र भी हैं। सोना चान्दी आदि लोहों मं जब बनते हैं तब रंगों का प्रयोग नहीं किया जाता।

इस यंत्र का स्वरूप प्रपंच में आवरण शक्तियों के साथ प्रवृत्तियों को करनेवाले चैतन्य स्वरूपी देवी देवता और केन्द्रस्वरूप में रहनेवाली उपासना मूर्ति इन सबका एकत्र रूप है। उपासना का उपकरण है यंत्र। वह चालक शक्ति का केन्द्र और शक्ति का खान है। अनियंत्रित शक्ति से सम्पन्न देवताशक्ति को नियंत्रित रूप में अपनाने का उपाय ही यंत्र है, यह नाम भी इसलिए है। निरंतर चलन का वहन करने से भी चक्र है। 'चंक्रमणात् चक्रः'

तंत्र शास्त्र में अनगिननत चक्र अथवा यंत्र हैं। देवताओं की भी गिनती नहीं है, उसी प्रकार चक्रों की भी (यंत्रों की भी) । उनमें सब से प्रमुख देवी के रूप और चैतन्य को धारण करनेवाला श्रीचक्र है। मण्डप एक ऐसा चित्राकार है जो एक परम देवताचैतन्य के क्रम-क्रम से लक्ष-लक्ष रूपों को सृजित करने के लिए नीचे की गति अथवा संक्रमण का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार एक योजना भी बनाकर रखी गयी है, जिससे परिणाम के पश्चात् प्रत्येक देव के प्रादुर्भाव के केन्द्र में यान प्रज्ञाकेन्द्र में याने मूलचैतन्य के केन्द्र में लौटा लाया जा सके। यह प्रतीकचिन्ह तांत्रिक क्रिया रूपी रहस्य मार्गों में जीवचैतन्य प्राप्त करता है। और मूल सृष्टि और बाद में हुई सृष्टि की पृष्ठभूमि में पुनः सृजन हो रहा है। एक प्रयोक्ता उस बाह्य रूप का उपयोग करता है, इसलिए कि फिर उसे शिथिल कर सके और फिर उसे मिला दे, इसप्रकार प्रापंचिक क्रिया को अपने केन्द्र में ला सके और शीघ्रता अपना सके ।

चक्र के द्वारा मनुष्य आराधना के लिए अपने प्रतिरूप में निर्मित प्रतिमा के ज़रिये करनेवाले पूजादिकार्यों में अधिक ध्यान देता है। तांत्रिक आराधना में चक्र को प्राथमिकता इसलिए दी जाती है कि मंत्रों की तरह यंत्र भी उपासक के लिए देवतास्वरूप जानने में लाभ प्रदान करता है।

सनातन चिच्छक्ति के द्वारा प्रपंच की सृष्टि जो हुई उसके लिए उपयुक्त मानों को पहचान कर ऋषीश्वरों के हाथों ऋजु रेखाओं एवं वृत्त और त्रिकोणचतुष्कोण इत्यादि से रेखांकित जो हुआ है। वहीं चक्र के प्रत्येक बिन्दु और रेखा, रेखा समन्वित त्रिकोण-चतुष्कोण इत्यादि प्रपंच शक्तियों के प्रतिनिधि हैं। आम तौर पर चक्र प्रपंच एवं प्रपंचकेन्द्रस्थ उपासनामूर्तियों तथा आवरण देवताओं के रूप में सहचर शक्तियों को अभिव्यक्त करता है। इष्टदेवता और उनके परिवारों की आकृतिस्वरूपी चक्र की आराधना के द्वारा उपासक उपास्य देवता के साथ तादात्म्य प्राप्त करता है। उपासक और उपासना देवता दोनों में अभेतत्व इंगित करनेवाली उपाधि है चक्र।

श्रीचक्र वही यंत्र है, जो श्री ललितांबा का वासस्थान है और देवी का शरीर है। जैसे श्रीचक्र की अधिष्ठात्री श्री ललितांबा सारे देवी देवताओं के उद्भवस्थान और रक्षाकर्त्री है वैसे श्रीचक्र में अन्य सारे चक्र अन्तर्भूत रहते हैं और संरक्षण चाहते हैं। इसलिए इसे चक्रों के राजा या

श्रीचक्रराज पुकारते हैं। इस चक्र को ललिताचक्र, त्रिपुर सुन्दरी चक्र, पराशक्तिचक्र इन नामों से पुकारा नहीं जाता। साधारणतः उसे श्रीचक्र ही पुकारा जाता है।

श्रीचक्र की घटना यह है कि अग्र नीचे किये पांच त्रिकोणों के ऊपर अग्र ऊपर की ओर चार त्रिकोणों को रखकर ही है। इस प्रकार नौ त्रिकोण ही मुख्यतः इसमें है। इसलिए इसे नवयोनि चक्र भी कहते हैं। केन्द्र के त्रिकोण, उसके बाहर चारों तरफ अष्टकोण में आठ कोण, भीतर और बाहर के दो दशार चक्रों के बीस कोण, चतुर्दश कोण के चौदह कोण, ये सब मिलकर ४३ कोण इसमें हैं। इसलिए इसे त्रिचत्वारिंशत्कोणम भी कहते हैं।

"चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पंचभिः
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः"

चार शिवचक्रों और पाँच शक्तिचक्रों के साथ नौ चक्रों से शिवशक्तियों का शरीर रूपी श्रीचक्र बना है। भैरवयामल इस प्रकार कहता हैः

"बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम्
चतुरश्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात्
त्रिकोणबैन्दवं शिष्टमष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्
दशारयोष्षोड़शारं भूग्रहं भुवनाश्रके
शैवानामपि शाक्तानाम् चक्राणां च परस्परम्
अविनाभावसंबन्धं यो जानाति स चक्रविद्"

बिन्दु चक्र, अष्टदलपद्म, षोडशदलपद्म और चतुरश्र ये शिवचक्र हैं। त्रिकोणचक्र, अष्टकोणचक्र, दोनों दशकोणचक्र और चतुर्दशकोणचक्र ये पांचों शक्तिचक्र हैं।

प्रारंभ में उद्धृत सौन्दर्य लहरी पद्य में, शंकर भगवद्पाद के अनुसार श्रीचक्र में त्रिकोणों की संख्या ४४ हैं। भैरवयामल के अनुसार यह ४३ हैं। यह अन्तर इसलिए है कि आचार्य स्वामी ने त्रिकोणों के साथ बिन्दु को भी मिला लिया है। यह अन्तर क्यों है, यह सेतुबन्ध में भास्कर राय इस प्रकार उल्लिखित करते हैं जैसे "त्रिचत्वारिंशतः त्रिकोणानां यत्तु सौन्दर्य लहर्या चतुचत्वरिंशत् वसुदलेत्यादिगणनं तत् बिन्दु साहित्याभिप्रायेण ।"

शक्त्यात्मक चक्र पांचों और शिवात्मक चक्र चारों के संयोग से प्रपंच के कारणभूत नवयोनियां पैदा होती हैं। शरीर केलिए कारणभूत नौ धातुएं नवयोनियों से उद्भूत होती हैं, जैसे त्वक्, रक्त, मांस, मेदस, अस्थि ये पांच शक्तिस्वरूपी हैं। मज्जा, शुक्ल, प्राण, जीव ये शिवमय हैं। नवधातु नवयोनियों से पैदा हुए। दसवां योनि जीवरूपी पराशक्ति ही है। चक्र का केन्द्र बिन्दु इसका प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार पिण्डाण्ड रूपी शरीर नवयोनियों से पैदा हुआ। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड मंडल भी नवयोनियों से पैदा हुआ है। ब्रह्माण्ड में पंचभूतों से सम्बन्धित सभी शाक्त हैं और माया, शुद्धविद्या, महेश्वर, सदाशिव ये चारों शैव हैं। पंचभूत संबन्धी ज्ञानेन्द्रिय पांच

मन और शब्दादि पांच तन्मात्राएं, पृथ्वी आदि पांच स्थूल भूत; इस तरह शक्तितत्व इकीस हैं। इनके साथ माया आदि चार शिवतत्व जब मिलते हैं तब तत्वसंख्या पचीस बनते हैं। (तत्वसंख्या छत्तीस है, इकावन है, इकानब्बे है ये मत भी हैं। इकावन कहे अथवा छयानब्बे कहे, वे सब उपर्युक्त पच्चीस में अन्तर्भूत हो जायेंगे। इसलिए नंबर पच्चीस तो सर्वसम्मत है ही। इनके साथ शिवशक्ति संपुट मूल तत्व को मिलाकर छब्बीस कह सकते हैं। सभी तत्वों के अतीत छब्बीसवें तत्व से सारे प्रपंच का उद्भव होता है।

श्रीचक्र कां नाम 'वियत्चक्र' भी है। यह नाम इसलिए है कि श्रीचक्र को हृदय में रखकर संकल्प से आराधाना करते हैं। हृदयाकाश को दहराकाश कहते हैं। उसमें से यह नाम उत्पन्न हुआ। लोकों की याने संसार की जननी विश्व की जननी ललिताम्बिका के सभी परिवारों का उद्भवस्थान होने से श्रीचक्र को मातृकाचक्र भी कहते हैं ।

चक्र की घटना बाहर से भीतर की ओर निम्नप्रकार है- तीन रेखाओं की सीमावाला भूपुर, उसके भीतर तीन वृत्त। सोलह दलोंवाला पद्म, आठ दलोंवाला पद्म, चौदह कोणोंवाला चक्र, दस कोणोंवाले दो चक्र, आठ कोणोंवाला एक चक्र, त्रिकोण और बिन्दु। बिन्दु के अलावा चक्र ही मानें तो, नौ चक्र श्रीचक्र में हैं। बिन्दु को चक्र न मानने पर अष्टचक्र और बिन्दु भी कहते हैं।

सब से बाहर का आवरण एक चतुर्भुज के रूप में है। चारों तरफ बराबर-बराबर के चतुर्भुज के प्रत्येक पार्श्व में बीच के स्थान पर दरवाज़े के रूप में द्वार है। चतुर्भुज के पार्श्व समान्तर तीन रेखाओं से विभक्त हैं। यहाँ चक्र रहता है उसकी परिधि इन चतुर्भुजों से भरा रहता है। इसकेलिए नाम है भूपुर। यदि लम्बाई और चौडाई इन दो मानों का बना है श्रीचक्र तो उसकी परिसीमा भूपुर की बाह्य रेखा है।

चक्र एक के ऊपर एक करके लगाने की रीति में भी श्रीचक्र का निर्माण बनता है। ऐसे श्रीचक्र को मेरु कहते हैं। मेरु रूपी श्रीचक्र की नींव भूपुर है। भूपुर के भीतर तीन कक्ष्यावृत्त हैं। एक के भीतर दूसरा इस क्रम से रेखांकित तीन वृत्त बने हैं चार कक्ष्या रेखाओं द्वारा। एक रेखा से दूसरी रेखा की दूरी बराबर है। याने तीनों रेखाओं का वज़न बराबर का है। समान्तर चार वर्तुल रेखाओं से निर्मित ये तीन वृत्ताकृतिवाले मण्डल बोडशदलपद्म की परिधि को इंगित करते हैं। यहाँ देवता नहीं, पूजा नहीं इसलिए इसे अप्रधान ही मान सकते हैं। चक्र के आकार की भंगिमा और षोडश दलों के एकात्मस्वरूप के लिए यह ज़रूरी है, बस। कहा जाता है कि ये वृत्त सत्व, रज, तम इन तीन खण्डों को द्योतित करता है। और यह भी मत है कि वागभवकूट के तीन खण्डों को भी द्योतित करते हैं। इन वृत्तों में सब से बाहर के और भूपुर के भीतर की तीसरी रेखा के बीच के स्थान को त्रैलोक्यमोहनचक्रं कहते हैं।

चतुर्भुज रूपी त्रैलोक्यमोहनचक्र की सबसे बाहरी रेखा में अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा, प्राप्ति, सर्वकामसिद्धि ये देवताएं विराजमान हैं। ये

सिद्धि देवता सब चार चार हाथोंवाले हैं। ये चंपक पुष्प के वर्णोंवाले हैं और चिन्तामणि, कपाल, त्रिशूल, सिद्धयंजन इन आयुधों को धारण करनेवाले हैं। और ये सब दयामूर्ति हैं।

मध्यरेखा में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, महालक्ष्मी ये आठ माताएं और उनसे मिली हुई समन्वित चेतनास्वरूपिणी भी रहती हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री ये देवियाँ यथाक्रम ब्रह्मा, महेश्वर, स्कन्द, विष्णु, वराहमूर्ति, इन्द्र इनकी शक्ति होने से उनके रुपसादृश्य, उनके जैसे आयुध, और उनके जैसे प्रभाव धारण करनेवाली हैं।

सब से भीतरवाली रेखा में सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशंकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहांकुश, सर्वखेचरी, सर्वबीज, सर्वमोहिनी, सर्व त्रिखण्डा ये दस देवियाँ विराजमान हैं। ये देवियाँ मंत्रशास्त्र से प्रसिद्ध विविध मुद्रारूपिणियाँ हैं।

बाह्य रेखा की सिद्धियाँ मध्यरेखा की आठ माताएं, तीसरी रेखा की दस मुद्रा देवियाँ कुल मिलाकर, त्रैलोक्यमोहनचक्र के आवरण देवियाँ सब मिलकर अठाईस हैं। इन्हें प्रकट भोगिनियाँ कहते हैं। त्रैलोक्यमोहनचक्र की मुद्रादेवता सर्वसंक्षोभिणी है।

भूपुर और षोडशदलपद्म के बीच के तीन वृत्तपरिधि का निर्णय करनेवाले होने से खासकर उन्हें विशिष्ट मानने की ज़रूरत नहीं हैं, यह पहले ही कहा जा चुका है। उसके बाद उसके भीतर सोलह दलोंवाला पद्मरूपी चक्र है। बाहर से भीतर की ओर आनेवाले दूसरा चक्र है, जिसका नाम है सर्वाशापरिपूरक चक्र इस चक्र के सोलह दलों में कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहंकाराकर्षिणी, शब्दाकर्षणी, स्पर्शाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, अमृताकर्षिणी, शरीराकर्षिणी ये देवियाँ विराजमान हैं।

जैसे नाम सूचित करते हैं वैसे ये देवियाँ यथाक्रम काम, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, धैर्य, स्मृति, नाम, बीज, आत्मा, अमृत, शरीर इनको आकर्षित करनेवाली शक्तियाँ हैं। इन सोलह देवियों को गुप्तयोगिनियाँ पुकारते हैं। ये योगिनियाँ मोतियों के रंगोंवालियाँ मुस्कराहट से प्रशोभित मुँहवालियाँ, चतुर्बाहुवालियाँ, त्रिनेत्रियाँ, चन्द्रकला से अलंकृत मुकुटधारण करनेवालियाँ और तलवार एवं धनुषबाण को धारण करनेवालियाँ हैं। सर्वाशापरिपूरकचक्र की अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी को त्रिपुरेशी नाम है। इस चक्र की मुद्रा देवता सर्वविद्राविणी है।

सर्वाशापरिपूरक चक्र के भीतर आठ दलोंवाले पद्म के रूप में विराजनेवाले चक्र को सर्वसंक्षोभणचक्र कहते हैं। इस चक्र के आठें दलों में अनंगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, अनंगरेखा, अनंगवेगिनी, अनंकांकुशा, अनंगमालिनी ये आठ देवियाँ विराजमान हैं। जपा पुष्प जैसे लाल रंग वाले और ईख के धनुष और पुष्पशर कुवलयपुष्पगुच्छा धारण करनेवाली, सब को पराजित करने योग्य विक्रमशालिनी देवयाँ हैं ये। और अनंग की शक्ति धारण

करनेवाली भी हैं। इन्हें गुप्ततर योगिनियाँ पुकारते हैं। इस चक्र पर अधिकार त्रिपुर सुन्दरी नामक देवी चक्रेशी का है। मुद्रादेवी सर्वाकर्षिणी।

अष्टदलपद्म के भीतर चौदह कोणोंवाला सर्वसौभाग्यदायक चक्र विराजमान है। अग्र ऊपर की ओर उन्मुख चार त्रिकोण (शिवचक्र) उनके ऊपर अग्र नीचे की ओर पाँच त्रिकोण (शक्ति चक्र ये मिलकर नौ त्रिकोण)। उनकी रेखाएं द्वारा परस्पर खण्डित चौदह छोटे त्रिकोण ही सर्वसौभाग्यदायकचक्र। उस चक्र में प्रत्येक दल के भीतर एक एक देवी, इस क्रम से चौदह देवियाँ इस चक्र में विराजमान हैं। इस चक्र के आवरण देवियाँ निम्न हैं- सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वसंमोहिनी, सर्वस्तंभिनी, सर्वजृंभिणी, सर्ववशंकरी, सर्वरंजिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्व सर्वसंपत्तिपूरणी, सर्वमंत्रमयी, सर्वद्वंद्वक्षयंकरि ये हैं। इन्हें आम तौर से सम्प्रदाय योगिनियाँ पुकारते हैं। इस चक्र की ईश्वरी को त्रिपुरवासिनी और मुद्रादेवी को सर्ववशंकरी नाम हैं। सम्प्रदाययोगिनियाँ एकवाणी (एकसाथ बाँधा हुआ केशवाली) कालाग्नि के समान ज्वलनेवाली तेजोयुक्त, चतुर्बाहुओंवाली, धनुषय, शर, तलवार और वह्निचक्र नामक परिच (ढाल) पहननेवाली हैं।

सर्वसौभाग्यदायक चक्र के भीतर दस कोणोंवाला सर्वार्थसाधकचक्र विराजमान है। शक्तित्रिकोणों की रेखाएं और शिवत्रिकोणों की रेखाएं मिलकर ही ये दस त्रिकोण चक्र बने हैं। इसे बहिर्दशारं नाम है। दसों त्रिकोणों से होकर सर्वमंगलदायिनी दस देवियाँ विराजमान हैं। जैसे सर्व सिद्धिप्रदा, सर्वसम्पद्प्रदा, सर्वप्रियंकरी, सर्वमंगलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्युप्रशमनी, सर्वविघ्ननिवारिणी, सर्वांगसुन्दरी और सर्व सौभाग्यदायिनी ये ही इनके नाम हैं। ये सिद्धियाँ सम्पत्ति, प्रियता, मंगल, काम, सन्तोष, आयु, कार्यसिद्धि, सौन्दर्य और सौभाग्य दान में देती हैं और स्वच्छ-स्पटिक जैसे रंग से सुन्दर हैं। ये अपने हाथों में परशु, पाश, घंटा इत्यादि पहननेवाली और दया की मूर्तियाँ हैं। इन्हें आम तौर से कुलोत्तीर्णादेवियाँ कहते हैं। सर्वार्थदायक चक्र की अधिष्ठात्री त्रिपुराश्री। मुद्रादेवी सर्वोन्मादिनी।

सर्वार्थसाधक चक्र के भीतर दस कोणोंवाला एक अन्य चक्र है सर्वरक्षाकर चक्र । भीतर भी दस कोणोंवाला , इस आशय से इस चक्र को अन्तर्दशारचक्र भी कहते हैं और सर्वरक्षाकर चक्र नाम से भी पुकारते हैं। इस चक्र के दस त्रिकोणों में सर्वज्ञा, सर्वशक्तिमयी, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधिविनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वेप्सितफलप्रदा, ये दस शक्तियाँ विराजमान हैं। इनके नाम इन देवियों के स्वभावों को द्योतित करते हैं। इनके स्वरूपवर्णन इस प्रकार हैः- ये शक्तियाँ चार भुजाओंवाली हैं। वज्र, भाला, तोमर, चक्र इन आयुधों को धारण करनेवाली हैं। इनके शरीर शुभ्रवर्ण के हैं और इनके कान्तिमयी स्वरूप हैं। इन्हें आमतौर से निगर्भयोगिनियाँ कहते हैं। इस चक्र की अधीश्वरी त्रिपुरमालिनी है। और मुद्रादेवी है सर्वमहांकुशा।

सर्वरक्षाकर चक्र के भीतर सर्वरोगहरचक्र विराजमान है। आठ कोणोंवाले इस चक्र की घटना आठ त्रिकोणों में है। इन त्रिकोणों में वशिनी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेशी, कौलिनी इन देवियों का वास है। इन आठों देवियों को रहस्ययोगिनियाँ कहते हैं। रहस्य योगिनियाँ वाग्देवताएं हैं। वशिनि आदि वाग्देवताओं ने ललिता सहस्रनाम की रचना की है। अशोकपुष्प जैसे लाल प्रभा से युक्त रहस्य मोहिनियाँ, धनुष शर और पुस्तक, तथा वीणा धारण किये हुए और ज्ञानमूर्तियाँ है। सर्वत्रिपुराचक्र की अधीश्वरी देवीपुराणसिद्धा है। मुद्रादेवी सर्वखेचरी है।

अष्टार सर्वरोगहरचक्र के भीतर अग्र नीचे को एक त्रिकोण है। उस त्रिकोण का सर्वसिद्धिप्रदचक्र नाम है। अष्टार चक्र और सर्वसिद्धिप्रदचक्र के बीच में ललिताम्बा के आयुधदेवता, पाश, अंकुश, ईख धनुष, पांच पुष्पबाण इत्यादि विराजमान हैं। सर्वसिद्धिप्रदचक्र में कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमालिनी ये तीन देवियाँ विराजमान हैं। इन्हें अतिरहस्य योगिनियाँ कहते हैं। ये अष्टबाहुओं से युक्त धनुष, शर, मद्यपात्र, मातुलुंग, तलवार, ढाल, नागपाश, घंटामणि इनको धारण करनेवाली हैं। सर्वसिद्धिप्रद चक्र की चक्रेश्वरी है त्रिपुरांबिका। मुद्रादेवी सर्वबीजा है।

सर्वसिद्धिप्रदचक्र के भीतर श्रीचक्र का केन्द्रबिन्दु सर्वानन्दमयचक्र विराजमान है। यहाँ विश्वमाता ललितांबिका महाकामेश्वरांकस्था होकर विराजित हैं। इस चक्र की चक्रेश्वरी महात्रिपुर सुन्दरी है। मुद्रा देवी योनिमुद्रा।

यही श्रीचक्र का विवरण है। हरेक चक्र में रहनेवाली शक्तियों का रूप ललितोपाख्यान में त्रिपुरवर्णन जो है, उसी से स्वीकार किया गया है। ललिता देवी के चिन्तामणि गृहांतस्थामंच और परिवार का वर्णन त्रिपुरवर्णन के साथ है, उसे यहाँ वर्णित नहीं किया जाता।

प्रत्येक चक्र का नाम और चक्र की अधीश्वरी, मुद्रादेवी, अवरण देवियाँ इनके नाम पर विचार करने पर श्रीचक्र और व्यक्ति तथा श्रीचक्र और प्रपंच के बीच के सम्बन्ध का सामान्य रूप समझ सकते हैं। त्रैलोक्यमोहनं, सर्वाशापरिपूरकं, सर्वार्द्धसाधकं, सर्वक्षोप, सर्वसौभाग्यदायक, सर्वसिद्धिप्रदम्, सर्वनन्दमय, ये तो चक्र के नाम हैं।

सब से भीतर के बिन्दुरूपी सर्वानन्दमय चक्र को कामकला नाम भी तांत्रिकों द्वारा प्रसिद्ध है। सर्वव्याप्त और सर्वशक्त पराशक्ति की सृष्टि की निर्म्मिति के प्रति वांच्छा को प्रस्तुत पद इंगित करता है। बिन्दुरूपी ललिताम्बिका स्वयं तीन भागों में विभक्त होकर चारों ओर विराजमान हैं। केन्द्र त्रिकोण है सर्वसिद्धिप्रद चक्र। तीन बिन्दुओं को सीधी रेखाओं से जोड देनेपर वह चक्र बन जायेगा। कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमालिनी ये तीन देवियाँ हैं सर्वसिद्धिप्रद चक्र की आवरण देवियाँ। चन्द्र, अग्नि, सूर्य ये तीन तेजों को ये पद सूचित करते हैं। (काम शब्द से स्नेह रूपी चन्द्र, वज्र शब्द से आकाशरूपी अग्नि और भग शब्द से सूर्य का संकेत देता है। शिवसंहिता ललितांबिका रूपिणी महातेजोमयस्वरूप बिन्दुरूप में सर्वानन्दमयी चक्र में विराजमान तीनों तेजोरूपिणियाँ मिलकर सर्वसिद्धिप्रदचक्र होकर विराजित हैं। श्री विद्यामंत्ररूप है सर्वानन्दमय चक्र। श्रीविद्या के तीन

खण्ड हैं जैसे वाग्भव, मध्य, शक्ति। एकरूपी श्रीविद्यामंत्र वाग्भवादि त्रिकूट बनकर स्वयं विभक्त होकर सर्वसिद्धिप्रद चक्र बन जाता है। श्रीविद्या पंचदशाक्षरी मंत्र और श्रीचक्र में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक के दो प्रकार के आविष्कार हैं। चित्ररूप में बना जो है वह श्रीचक्र है। वैखरी रूप में बना जो है वही श्रीविद्या। भीतर से बाहर की ओर इस क्रम से देखने पर सर्वानन्दमय चक्र को आवृत कर सर्वरक्षाकरचक्र, और उसे आवृतकर सर्वार्थसाधक चक्र, और उसे आवृतकर सर्वसौभाग्यदायकचक्र और उसे आवृतकर सर्वसंक्षोभणचक्र और उसे आवृतकर सर्वाशापरिपूरकचक्र और उसे आवृतकर त्रैलोक्यमोहनचक्र विराजमान हैं।

प्रपंच की निगूढ़ता इन चक्रों के विन्यास में रूढमूल रहती है। बिन्दुरूपी सर्वानन्दमय चक्र में विराजमान पराशक्ति तीनों बिन्दुओं के रूप में सर्वसिद्धिप्रदचक्र के रूप में और अन्य चक्रों के रूप में भी स्वयं व्यापित रहती है। अन्य सारे चक्र बिन्दु के परिणत रूप हैं। सारे चक्र स्वयं अम्बिका है। प्रपंच और पराशक्ति दोनों अलग अलग नहीं हैं। एक ही है। इस से एक बात स्वतः सिद्ध होती है।

हरेक चक्र में विराजित चक्राधीश्वरी, आवरणदेवियाँ, मुद्रादेवियाँ इनके नाम पहले उल्लिखित हुए हैं, वे देवियाँ भी ललिताम्बिका से भिन्न नहीं हैं। त्रिपुर सुन्दरी ही प्रत्येक चक्र के स्वभाव के अनुसार विविध शक्तियों के रूप में विराजमान हैं। अपने से उत्पन्न छब्बीस तत्वों से प्रपंचसृष्टि होती है। ये तत्व देवी में लय होते हैं प्रपंच सृष्टि में देवी से पुनः जन्म पाती हैं। तत्वों के बारे में सहस्रनाम व्याख्या के यहाँ वर्णित अंशों को देखें। सारे तत्व देवी से जनित हैं। देवी के वमन से पैदा हुए। ''विश्वं वमतियस्मात् तद्वामेयं परिकीर्तिता'' (ज्ञानार्णव तंत्र)

एक और एकतान रहनेवाली पराबिन्दु तीन भागों में विभक्त होकर त्रिकोण बनता है जो कामकला कहलाता है। कामकला इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति ये तीनों तीन भागों के त्रिकोण हैं। स्वयं विकसित होकर पराबिन्दु उनमें व्याप्त रहती है। आगे चक्र इससे अधिक व्याप्त रूप है। इस प्रकार क्रमशः भूपुर तक याने प्रपंच भर पराबिन्दु व्याप्त रहता है।

पहले ही सूचित किया गया है कि शब्दब्रह्म का पराबिन्दु और श्रीचक्र का पराबिन्दु दोनों एक हैं। पहले ही वर्णित त्रिकोण की सृष्टि परारूप में विराजमान शब्दब्रह्म जब वाग्भवकूट के रूप में बदलता है तब कामकला रूप में परिणत हो जाता है। बिन्दु प्रकटीकृत न होने पर भी पश्यन्ति और मध्यमा बनकर आगे वैखरी होकर रूपायित होने को सुसज्जित है, जो शब्दब्रह्म है।

केन्द्रत्रिकोण रूपी चक्र में आविष्कृत वाग्भवकूट जब वैखरी रूप धारण करता है तब वर्णों एवं अक्षरों में रूपान्तरित होता है। अक्षरों का संघात मंत्रों के रूप में क्रमशः बाह्य चक्र रूपाइत होता है। जब वह भूपुर तक व्याप्त हो जाता है तब भाषारूप में सारे प्रपंच में प्रवर्तित शब्दब्रह्म बनकर अनगिनत नादभेदों भाषाओं, संगीतादी नादाधिष्ठित कलाओं के रूप में प्रपंच के आधारस्पन्द बन जाते हैं।

यह भी स्मरण रखना है कि निर्गुण पराशक्ति ही सत्व रज तमोगुणों में रूपधारण करके श्रीचक्र के केन्द्रकोण बनी है। गुणरहित तुरीयावस्था (चौथी) स्वयं गुण बन जाती है। इन गुणों के विविध संघातों से प्रपंच का आविष्कार हुआ है। तीनों गुण परस्पर पूरक हैं। प्रपंचघटना में ऐसा कोई रूप नहीं है, जिसमें शुद्ध सत्व गुण मात्र हो, अथवा पूरा का पूरा रजोगुण हो, अथवा बिलकुल तमोगुण ही हो। इस प्रकार एक का स्मरण करने पर भी पहूँच जाते हैं पराबिन्दु पर। तीन पार्शों से बने केन्द्रत्रिकोण निर्गुण पराबिन्दु का विकसित रूप है। वे सब गुण क्रमक्रम से परस्पर अनेक विधों में मिलकर जब बाह्यचक्र के रूप धरते हैं तब अनंत गुण बनते हैं, उन गुणों से मिले वस्तुजगत बनते हैं।

पराबिन्दु की अवस्था वह है, जो सर्वावस्था विवर्जिता और क्षोभ रहिता, याने शान्ता संज्ञा से जानी जानेवाली। वह वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ इन तीन शक्तियों में विभक्त होकर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्थाओं में विराजित होती हैं। (जहाँ वैश्वानरः तैजसः, प्राज्ञः इसप्रकार पुल्लिंग प्रत्यय लगाकर भ्रम पैदा किया जाता है। पर भाषा में लिंगप्रत्यय न लगाकर ही कहना लागू नहीं है। वैश्वानरम, तैजसम, पाज्ञम इस प्रकार नपुंसकलिंग बनाकर अथवा वैशनरा, तैजसा, प्राज्ञा इसप्रकार स्त्रीलिंग रूप में लिखना भी काफी है। भाषा से जिसका वर्णन असंभव्य है उसे भाषा में वर्णित करते हुए इस प्रकार की कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। मनुष्य अपने आशय की व्याख्या करना चाहता है, तब इस प्रकार की लिंगव्यवस्था चाहिए। पराशक्ति, देवी, देव आदि संकल्प भाषा और व्याकरण की विधि से ऊपर है। लेकिन, उनके बारे में जब लिखना पड़ता है, तब लिंग का अन्तर लाया जाता है। सहस्रनाम की व्याख्या एवं उपनिषदों की व्याख्या में पदों का लिंगस्वरूप पाठकों को विभ्रांत करने का अवसर मिलता है। इसीलिए इतना कहना ज़रूरी हो गया।

इस विवरण के विश्लेषण से श्रीचक्र की प्रतीकात्मकता समझ में आयेगी। गुणों रूपों आदि से युक्त प्रपंच के आविष्कार के साथ श्रीचक्र श्रीपरमेश्वरी से उद्भूत इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति इनका, और पराशब्द के विविध रूपों वाले पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी इन शब्द-ब्रह्म रूपों का और सत्व, रज, तम इन गुणों का, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्थाओं का तथा सृष्टि, स्थिति, संहार इनका प्रतीक तो है। ध्यान दीजिये, याने तीन में विभाजित किये जा सकनेवाले सब तो देवी रूप हैं, इसका वर्णन ललिता सहस्रनाम में कई जगहों में सूचित भी किये गये हैं।

"त्रिकोणं मण्डलं चास्या भूपुरं च त्रिरेखकं
मन्त्रोपित्र्यक्षरः प्रोक्ताः तथारूप त्रयं पुनः
त्रिविधाकुण्डलीशक्तिः त्रिदेवानां च सृष्टये
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात् यस्मात्तु त्रिपुरा मता"

इसप्रकार तीन भागों में विभजित रहनेवाली देवी चेतनता का शाश्वती भाव तीनों से परे रहनेवाली तुरीय एवं बिन्दुरूप है। इसलिए उसे पराबिन्दु कहते हैं।

जैसे तीन की संख्या प्रधान है उसी प्रकार श्रीचक्र के लिए नौ की संख्या प्रधान है। श्रीचक्र की घटना शिवात्मक चार त्रिकोण और उसके ऊपर शक्त्यात्मक पांच त्रिकोण मिलकर बिन्दु के अलावा नौ त्रिकोणों की है।

भूपुर से लेकर बिन्दु तक श्रीचक्र में नौ चक्र हैं। नौ योगिनियों, नौ चक्रेश्वरियों और नौ मुद्रादेवियों से युक्त श्रीचक्र नवात्मिका है।

श्रीचक्र के अठाइस मर्मस्थान और चौदह सन्धियाँ हैं। दो रेखाएं जहाँ मिलती हैं, वहाँ को सन्धि कहते हैं और तीन रेखाओं के मिलने पर मर्म कहते हैं। शिवात्मक चार त्रिकोण और शक्त्यात्मक पांच त्रिकोण जो हैं उनमें से अग्र ऊपर की ओर गये चार त्रिकोणों पर अग्र नीचे की ओर जानेवाले पांच त्रिकोणों के पडने से होनेवाली परस्पर खण्डित रेखाओं से संधियां एवं मर्मों का होना संभव होता है। इस तत्व की अधिक जानकारी तभी हो सकती है, जब श्रीचक्र को जैसे खींच लें, उसे समझ सकें। श्रृष्टिक्रम में और संहारक्रम में श्रीचक्र का निर्माण किया जाता है।

पहले पहल एक वृत्त बनाया जाय। उस वृत्त के बीच में नवयोनी रूपी नौ त्रिकोण बनाना। केन्द्र त्रिकोण में, बीच में बिन्दु को रेखांकित करना यह संहारक्रम है।

पहले केन्द्रत्रिकोण और बिन्दु को बनाकर उससे अन्य त्रिकोण बनाना सृष्टिक्रम है। ये क्रम सौन्दर्यलहरी के ग्यारह्वें श्लोक की व्याख्या में लक्ष्मीधर द्वारा वर्णित हुए हैं। श्री एस. शंकरनारायण के अंग्रेज़ी ग्रंथ श्रीचक्र का अनुवाद श्री के. कृष्णन नायर ने मलयालम में किया है। उसमें श्रीचक्र लेखन विधि को अनुबन्ध रूप में वर्णित है। और भी अनेक ग्रन्थ हैं, जो इस विधि का विवरण देते हैं। ये सब आसानी से प्राप्त होनेवाले मलयालम ग्रन्थ हैं। चक्र लेखन की रीति को समझने पर संधियों और मर्मों के बारे में जल्दी समझ सकते हैं।

श्रीचक्र की निर्मिति में समयमतानुसारी पंडितों और कौलों में थोडा अंतर है। यह अन्तर गणनीय नहीं है। श्रीचक्रपूजा करनेवाले गुरु के उपदेश के सन्दर्भ में जो निर्देशन दिये जाते हैं उनका अनुसरण करना ही मान्य है। इन मतों में जो अन्तर है वह श्रीचक्र पर बाधित नहीं होता। मत जो भी हो, चक्र के रूप में अथवा शक्ति की आपेक्षिक अवस्था को अन्तर नहीं आता। श्रीचक्र के तीन प्रस्तार हैं। (प्रस्तार शब्द से तात्पर्य है विन्यास करना। यहाँ विन्यास प्रक्रिया की ओर संकेत है। मेरु प्रस्तार, कैलास प्रस्तार और भूप्रस्तार ये ही तीन प्रस्तार हैं।

सोलह नित्यादेवियों के साथ श्रीचक्र का तादात्म्य स्थापित करनेवाला है मेरुप्रस्तार। शोडश नित्याओं का वर्णन पहले ही हो चुका है। ये नित्या देवियाँ शुक्लपक्ष के प्रतिपदा से लेकर पौर्णमी तक की तिथियाँ और कृष्ण पक्ष के प्रतिप्रदा से अमावासी तक की तिथियाँ होकर विराजमान हैं। ये नित्या देवियाँ अनन्त काल की प्रतिनिधियाँ हैं। पन्द्रह तिथियों का संकल्परूप स्थापित कर ललितादेवी को मिलाकर सोलह याने शोडशी की नित्यायें कहते हैं। नित्यादेवियों

को चन्द्रकलाएं भी कहते हैं। चन्द्र की आदि कला प्रतिपदा दूसरी है द्वितीया, त्रितीया, चतुर्थी ये ही क्रम हैं। शुक्ल पक्ष में चन्द्र की आदिकला प्रतिपदा सूर्य मण्डल से निकलकर चन्द्रमण्डल से मिलती है। वह कला कृष्णपक्ष प्रतिपदा में चन्द्रमण्डल से निकलकर सूर्यमंडल को पहूँच जाती है। इस प्रकार अन्य कलाएं भी क्रमशः सूर्यमण्डल से निकलकर खुले पक्ष में चन्द्रमण्डल में पहूँच जाती है। पन्द्रह कलाएं जब चन्द्र में पहूँच जाती हैं तब पौर्णमी बनती है और पन्द्रह कलाएं जब सूर्य में पहूँ चाती हैं तब अमावासी बनती है। ज्योतिशास्त्रप्रसिद्ध यह कलासंक्रम तन्त्रविधि के समान प्रधान हैं। कौलमत के अनुसार और समयाचार के अनुसार भी। इनके पूजाक्रम में भी अन्तर है। कौलसम्प्रदाय में प्रत्येक तिथि में उसी दिन चन्द्रमण्डल की ओर जानेवाली नित्या की ही पूजा की जाती है। समयाचार में सभी नित्यावों की पूजा सभी दिनों में चलती हैं। कालरूपी तिथिदेवताओं के साथ श्रीचक्र का तादात्म्य स्थापित करता है मेरुप्रस्तार। तादात्म्य लायेजानेवाली प्रक्रियायें गुरुमुख से जानना हैं, इसलिए उनका विवरण यहाँ नहीं दिया जाता।

अकारादि मातृकाक्षर और श्रीचक्र का तादात्म्य है कैलास प्रस्तार। कैलास प्रस्तार में मंत्राक्षरों एवं श्रीचक्र के बीच के तादात्म्य के बारे में भिन्न मत है। लेकिन, वे सब अन्त में एक ही बात पर पहूँच जाते हैं। प्रत्यक्ष में दिखाई पडनेवाले अन्तर उनके सम्प्रदायों में हैं। उनका विशद वर्णन यहाँ अपेक्षित नहीं है। मंत्र क्या है, इस पर यहाँ विवेचना संगत है। परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी इन नामों की व्याख्या करते समय शब्दोत्पत्ति और शब्दब्रह्म के बारे में विवरण देना ध्यान देने की बात है। स्वेच्छा से प्रकटीभूत होनेवाले ब्रह्म का प्रकम्पन स्पन्दन परम्परा का कारण बनता है। पिण्डाण्डस्थ चिद्शक्ति के स्फुलिंग से निकलनेवाली स्पन्दनपरम्पराएं व्यक्ति के मुख से निकलनेवाली भाषणपरम्परा बनकर निकलती हैं। ब्रह्माण्ड में ब्रह्मकल्पित स्पन्दनपरम्पराएं गति में शब्दों की तरंगें होकर मनुष्यों के कानों के लिए अक्सर श्राव्य न होकर व्याप्त रहता है। ब्रह्मा की इच्छा का आविष्कार तो है यह प्रपंच जिसमें मूर्त हो या अमूर्त, सब स्पन्दन से पैदा हुए हैं। इसलिए सभी देवी-देवता इनके ही स्वरूप हैं। पिण्डाण्ड में परा , पश्यन्ति , मध्यमा और वैखरी के रूप में बननेवाले शब्द-ब्रह्म के विभेद ब्रह्माण्डस्थ देवी शक्तियों से अनुबन्धित एवं उनके प्रतिरूप हैं। यदि और भी कहा जाय तो, सभी देवी-देवताओं के शब्दरूप शरीर होते हैं। उन रूपों के द्वारा जिन ऋषियों ने उन्हें पहचाना है उन्हें मंत्रद्रष्टा कहते हैं। माने, देवताओं के शब्द रूपी शरीरों को पहचाननेवाले। किसी देवी अथवा देवता को इंगित मंत्र उस देवी का नाम नहीं है। उस देवी से सम्बन्ध स्थापित करने का उपाय भी नहीं है। शक्ति ही है। यहाँ मंत्र और यंत्र के अन्तर को समझ लेना चाहिए। चराचर की माता के यंत्र रूप में आविष्कार है श्रीचक्र। श्रीचक्र और श्रीदेवी दोनों एक हैं। उसी प्रकार जगदम्बा का शब्दरूपी पंचदशाक्षर है देवीमंत्र।

शब्द ब्रह्म वैखरी रूप में प्रत्यक्ष हो जाते हैं तो वे वर्णों अक्षरों में विश्लेषित किये जा सकते हैं। नाशरहित का भाव है अक्षर का। ब्रह्माण्ड के घटक निरन्तर स्पन्दन ही व्यक्ति के उच्चारण अवयव से निकलनेवाले अक्षर। भाषणशब्दों को वर्ण क्यों कहते हैं, इसका कारण अन्यत्र बताया

गया है। अक्षरों के विविध प्रकार के मिलन से पदों और वाक्यों का निर्माण चलता है। इसलिए अक्षरों को माताएं कहते हैं। सभी भाषाव्यापार का कारण होने से शब्दरुपी माताओं जैसा संकल्प है। पराशक्ति से, ललितांबा से प्रपंच बनता है। जगदंबा से उत्पन्न विविध शक्तियाँ प्रपंच के क्रियाकलाप पर नियंत्रण लाती हैं। इन शक्तियों के मंत्रशरीर उपर्युक्त शक्तियों के प्रतिरूप मानें, अथवा उनके शब्दरूप मानें। वे अक्षर मिलकर हैं देवी के शब्दरूप। एक मंत्र के उच्चारण करने पर उस मंत्र से लक्षित देवी चेतना जग जाती है और साधक के अनुकूल प्रवृत्तिन्मुख हो जाती है। मंत्रोच्चारण से देवियों को जगाने के कर्म को उद्धारं कहते हैं। गुरुमुख से मंत्रसिद्धि प्राप्त किये हुए लोगों के अलावा स्वयं करनेवालों को भी मंत्रोद्धार-शक्ति प्राप्त होती हे। इसकेलिए आचार्यों ने मंत्राक्षरबद्ध स्तोत्रों की रचना की है। इष्टदेवता के रूप और अपदानों का वर्णन करते समय वे बातें भक्त के मन में आया करती हैं। साथ ही उसे अज्ञानरूप से ही स्तोत्रों में जडे मंत्रबीजाक्षरों का उच्चारण करते ही मंत्रोद्धार भी होता है।

अक्षर दो विभाग में हैं- जैसे स्वर और व्यंजन। स्वर की सहायता के बिना व्यंजनों का उच्चारण संभव नही है। ऐसे स्वरों को जो व्यंजनों को उच्चारण-क्षम बना देते हैं उक्तिरूप माना जाता है, इसी प्रकार स्वर की सहायता से प्रवर्तित व्यंजनों को शिवस्वरूप मानते हैं, तांत्रिक विद्या में। श्रीचक्र के शक्ति-चक्र स्वरों और शिव चक्रों को व्यंजन के रूप में प्रतिनिधान करते हैं। श्री ललितांबिका शिव शक्तैक्य रूप तो हैं। जो श्रीचक्र मां का शरीर है वही शिवशक्तैक्य रूपी हैं। शक्तिरूपी स्वर और शिवरूपी व्यंजन दोनों श्रीचक्र से भिन्न नहीं है। अक्षर जहाँ श्रीचक्र में रहते हैं उस रीति को कैलास प्रस्तार कहते हैं।

श्रीचक्र को वशिनि आदि वाग्देवताओं के साथ तादात्म्य जो स्थापित करता है वही है भूप्रस्तार। श्रीचक्र की अंगदूतिकाओं के रूप में विराजित वशिनि आदि आठ वाग्देवियों के साथ अष्टकोणों में शोभित होनेवाली उनको मानकर उनका स्मरण करना चाहिए। उनसे परिसेविता होकर उनके मध्य में विराजनेवाली त्रिपुरसुन्दरी को बारह योगिनियाँ, गन्धाकर्षिणी आदि चार शक्तियाँ, वाग्देवियाँ, नित्यादेवियाँ इनको चक्र के विविध कोणों से कल्पित करना चाहिए।

प्रधान शक्ति और सारी शक्तियों की कारणभूता महात्रिपुरसुन्दरी को बिन्दुस्थान के आधे भाग में संकल्पित करना है। उसी प्रकार गन्धाकर्षिणी इत्यादि चार शक्तियों को चार द्वारों में उपस्थित मानना है। और प्रत्येक शक्ति को विशेषकर शक्तिकला के साथ शक्तिकला साकल्यमूर्ति महात्रिपुर सुन्दरी की पूजा जो की जाती है उसी रीति को भूप्रस्तार कहते हैं।

(उपर्युक्त तीनों प्रस्तारों का विवरण अनुवाचक की आकांक्षा का शमन करनेवाला नहीं हो सकता, ऐसा ही मेरा विश्वास है। श्रीचक्रपूजा गुरुमुख से प्राप्त निर्देशों को मानकर करना है। उस महान पूजाविधि के अनेक भेद हैं। क्योंकि कालभेद, देशभेद और आचार्यों के दर्शनभेदों में भिन्नता है। वे सब देवी की कृपा एवं प्रसाद के लिए योग्य भी हैं। यद्यपि विशद कार्यक्रमों में उक्तियों का विन्यास, मंत्राक्षरों का विन्यास, विविध देवी देवों के संकल्पों का स्थान, पूजा भागों,

उपचारों में भेद ये सब होने पर भी अन्तिम रूप में संकल्प एवं दर्शन में कोई भेद नहीं हैं। तीनों विधों के प्रस्तारों का सामान्य रूप और उस रूपसंकल्प का आधारस्वरूप तत्व यही यहाँ लिखा हुआ है। श्रीचक्र और उसकी पूजा सम्बन्धी अनेक ग्रंथ आचार्यों ने लिखे हैं। वे सब पढनीय हैं। प्रयोग गुरुनिर्देश से होना है।

मानव शरीर और श्रीचक्र दोनों में साधर्म्य कल्पित करनेवाला सम्प्रदाय भी है। तंत्रशास्त्र में ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड दोनों में अभेद्य सम्बन्ध है। तंत्रशास्त्र निर्देशित करता है कि ब्रह्माण्ड के सभी घटक मनुष्य के शरीर में भी हैं। मनुष्य शरीर को पिण्डाण्ड अथवा क्षुद्रब्रह्माण्ड का विशेषण देता है तंत्रशास्त्र। ब्रह्माण्ड में जो कुछ है वह सब शरीर में सूक्ष्म रूप में हैं। प्रपंचस्वरूप में अन्तर्भूत सभी तत्व शरीर में भी हैं। प्रपंच कारण स्वरूपिणी पराशक्ति भी कुण्डलिनी रूप में शरीर के भीतर रीढ के भीतर की नाडियों में चलती हैं, यही तंत्रशास्त्र का कथन है। इस कारण से तंत्रशास्त्र रीढ़ को मेरुदण्ड पुकारता है। भूमि के मेरुदण्ड के रूप में मेरुपर्वत का संकल्प किया गया है। उसी प्रकार श्रीचक्र के त्रिमानवाली अविष्क्रिया को मेरु नाम पडना विशेष पठन का कार्य है।

"अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत्
अग्नावन्तर्बभौ भानुरग्नीषोममयं स्मृतम्
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्
त्रिकोणं बैन्दवं सौम्यमष्टकोणं च मिश्रकम्
चक्रं चन्द्रमयं चैव दशारद्वितयं तथा
चतुर्दशारं वह्नेस्तु चनुश्चक्रं च भानुमत् ।।"

यही रुद्रयामल का वर्णन है। (श्रीचक्र अग्निसोमात्मक है। अग्निचन्द्रस्वरूप है। अग्निचन्द्ररूपी सूर्य अग्नि में अन्तर्लीन हैं। तीन खण्डोंवाला श्रीचक्र चन्द्रसूर्याग्निस्वरूपी है। श्रीचक्र के त्रिकोण और बिन्दु चन्द्रसम्बन्धी है। आष्टकोणचक्र चन्द्रसूर्यस्वरूपी मिश्रक है। चतुर्दशारचक्र अग्निस्वरूपी है और अन्य चार वृत्तचक्र सूर्यस्वरूपी हैं।

पिण्डाण्ड में (मनुष्यशरीर में) मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा इन नामों में छे चक्र हैं और उनके बारे में अन्यत्र वर्णन किया गया है। इन छे चक्रों में मूलाधार और स्वाधिष्ठानं दोनों को मिलाकर एक खण्ड, और मणि पूरक, अनाहत इन दोनों को मिलाकर दूसरा खण्ड और विशुद्धि और आज्ञा इन दोनों को मिलाकर तीसका खण्ड है। इस प्रकार बननेवाले तीन खण्डों में पहला खंण्ड अग्निस्थान है। दूसरा सूर्यस्थान है।

इन तीनों खण्डों को विभक्त करनेवाली तीन ग्रन्थियाँ हैं। ये ग्रन्थियाँ नाडियों एवं वासनाओं को बुरीतरह से मिलाकर सुषुम्ना मार्ग में रोक पैदा करती हैं। अग्निस्थान के ऊपर की ग्रन्थि को ब्रह्मग्रंथि कहते हैं। सूर्यस्थान के ऊपर की ग्रन्थि को विष्णुग्रंथि और चन्द्रस्थान के ऊप की ग्रन्थि को रुद्रग्रंन्थि कहते हैं।

श्रीचक्र और गुरु के बीच में तादात्म्य स्थापित करना श्रीचक्र की पूजा के अपेक्षित घटकों में माना जाता है, यही तंत्रशास्त्र का निर्देशन है। भारतीय भौतिक चाहे आध्यात्मिक किसी भी साधना में गुरु को प्रमुखता देते हैं।

"गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरर्देतो महेश्वर :
गुरुस्साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः"

यह मंत्र सभी आराधनाओं में विघ्नेश्वर स्तुति के पश्चात् उच्चरित किया जाता है। यह सिद्धिमंत्र है। गुरु को ब्रह्माविष्णु महेश्वर स्थापित करने के अलावा साक्षात् परब्रह्म रूप में मानकर पूजा करके फिर इष्टदेवता की पूजा की जाती है। गुरु, आराधनामूर्ति, उस मूर्ति का मूलमंत्र, मूर्ति के यंत्ररूपी आविष्कार इनमें कोई भेद नहीं है। पराशक्ति त्रिपुरसुन्दरी, जगज्जननी का मंत्रशरीर श्रीविद्या, शिवयोर्वपु ऐसा वर्णित श्रीचक्र, श्री गुरु इनमें भेद नहीं है। इनमें किसी की भी पूजा की जाये, तब वह श्रीचक्र पूजा ही है।

अपनी योगशक्ति से शिष्य के अन्तर्मन में घुसकर वहाँ बोधदीप जलानेवाले गुरु उस साधक के लिए, जो श्रीचक्रपूजा करता है, बिन्दुमण्डल मध्यस्था ललिताम्बा ही है। पराशक्ति से जो भी कुछ प्राप्त करना चाहता है वह साधक, जो श्रीचक्र पूजा करता है, अपने गुरु के माध्यम से ही पा सकता है। जैसा शिष्य केलिए शरीर से नाश पानेवाले गुरु अन्य नहीं हैं। यदि ऐसा कोई शिष्य मानता है, तो वह अपनी तपस्या शुरु में ही समाप्त करेगा। सभी शरीरों में चैतन्यस्वरूपी बनकर, जीवन का आधार होकर क्रियाओं का नियामक होकर, उत्पत्ति, जीवन, नाश इनसे अनिषेध्य बनकर, जो परमगुरु आत्मचेतना बनकर रहती है वही गुरु है। शिष्यत्वापादक पादवन्दन, पादोपसंग्रहण, इत्यादि से आत्मचैतन्य के लिए शिष्य योग्य बन जाने पर हस्तमस्तक संयोग, दृष्टि-संयोग आदि अंगकलापों द्वारा गुरु शिष्य में अन्तर्लीन ब्रह्मचैतन्य को जगा देते हैं। ज्ञान, बोध के भावों में उन्मीलित होकर साधक क्रमशः गुरु से अभिन्न स्थिति पर पहूँच जाते हैं।

अभी तक सूचित किये गये तादात्म्य सम्बन्धों को फिर एक बार देखें तो मालूम होगा कि विश्व और श्रीचक्र, श्रीचक्र और श्रीविद्यामंत्र, श्रीचक्र और मानव शरीर, श्रीचक्र और गुरु इस प्रकार चतुर्मुख तादात्म्य संकल्प श्रीचक्रपूजा में अन्तर्हित है। इस भावना और पूजा दोनों में कैसे समन्वय लाया जा सकता है और उसका क्रियान्वयन किस प्रकार है, यह सब कहना सरल नहीं है। यह केवल ऋषियों की क्रियासिद्धि है कि अत्यंत विशाल शक्ति को कतिपय कर्मों में बांध लेना और ब्रह्माण्ड कोटियों को कतिपय रेखाओं में बांध लेनेवाला श्रीचक्र-संकल्प और ब्रह्माण्ड कोटियों को कतिपय शब्दों में बांध लेना इत्यादि।

श्रीचक्र शिवशक्ति के ऐक्य से जनित प्रपंच और उसके केन्द्रिबिन्दु से प्रसरित और प्रपंच शक्तियों को नियंत्रित करनेवाली चिद्च्छक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। पहले ही सूचित किया गया है कि हम जिसे ब्रह्माण्ड मानते हैं वह प्रपंच का प्रतिरूप है जीविशरीर। जैसा व्यापार ब्रह्माण्ड

में चलता है वैसा ही मनुष्य शरीर में ही चलता है। और उनमें कोई अन्तर नहीं है। इसलिए श्रीचक्र पिण्डांड का ही प्रतिनिधि है।

"त्वग सृंग्मांसमेदोस्थिधातवश्शक्तिमूलकाः
मज्जाशुक्लप्राणजीवधातवश्शिवमूलकाः
नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः
दशमीयोनिरेकैव पराशक्तिस्तदीश्वरी
एवं पिण्डाण्डमुत्पन्नं तद्वत्ब्रह्माण्डमुद्बभौ
पंचभूतानि शाक्तानि मायादीनि शिवस्य तु
माया च शुद्धविद्या च महेश्वर सदाशिवौ
पंच विंशंतितत्वानि तत्र्यैवांतरभवन्ति ते" (यही कामिकातंत्र है।)

इस के अनुसार अनुसार त्वक्, रक्त, मांस, मेदस, अस्थि इत्यादि शक्तिस्वरूपी हैं और मज्जा, शुक्ल, प्राण, जीव, इत्यादि धातु शिवमय है। (इन धातुओं से मिलकर जो देह बना है वह नवयोनियों के निर्मित प्रपंच का प्रतिरूप है) दसवीं योनि ब्रह्माण्ड में जो है वही पिण्डांड में रहनेवाली पराशक्ति है। इसप्रकार ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड की उत्पत्ति, स्थिति, नाश ये सब समान होने से दोनों में ऐक्य स्थापित किया जाता है। श्रीचक्र प्रपंच की तरह शरीर और शरीरस्थ कुण्डलिनी रूप में रहनेवाली पराशक्ति को यंत्ररूप में कल्पित किया जाता है। पिण्डाण्ड में होनेवाले षडाधारचक्रों और श्रीचक्रान्दर्गत चक्रों के बारे में तुलना कर देखना उचित है, लेकिन, बहुत ज़्यादा वर्णन अपेक्षित है। इसलिए उसके लिए यहाँ सन्दर्भ नहीं मिलता।

इसी प्रकार पंचदशाक्षरी मंत्र और श्रीचक्र दोनों में घटकों में ऐक्य है। ज़्यादा समीक्षा इस प्रबन्ध में संभव नहीं है। श्रीपंचदशीमंत्र को तीन कूटों में विभाजित किया गया है। (मूलकूटत्रया नाम की व्याख्या देखें) श्रीचक्र को भी तीन खण्डों में विभक्त कर वर्णन किया गया है। श्रीचक्र, पिण्डाण्डस्थ छे आधारचक्र, श्रीदेवी का मंत्रशरीर माने जानेवाला पंचदशी मंत्र ये तीनों एक के ही तीन स्वरूप हैं, यही आचार्यों का कहना है। आचार्यों ने निश्चयपूर्वक कहा है कि ये तीनों एक ही है ।

महासागर का जल अंजली में भर लेनेवाले अविवेकी शिशु के समान श्रीचक्र के बारे में एक लघु लेख में समाहित करने का साहस जगज्जननी देवी वात्सल्यपूर्वक माफ करेंगी, इसी विश्वास के साथ उसके लिए विनम्र प्रार्थना करता हूँ। मेरा विश्वास है कि माँ उसमें मुझसे अप्रसन्न नहीं है। ऊपर का रूपविवरण मैंने लिखकर समाप्त किया। उसी दिन ललिता सहस्र नाम के व्याख्याता श्रीनारायण मठ की परंपरा के एक साधक ने मुझे एक श्रीचक्र जो पोस्ट द्वारा भेजा था मिला। प्राणप्रतिष्ठा के आवाहन के साथ तैयार किया गया वह श्रीचक्र जो मुझे मिला वह वस्तुतः देवीकृपा का प्रत्यक्ष उदाहरण है, ऐसा मानता हूँ।

श्रीचक्र पूजा को विधि अनुसार करने में गुरु का उपदेश चाहिए। गुरु से पूजाविधि न पाने पर भी श्रीचक्र भवन में रख सकते हैं और उनकी आराधना कर सकते हैं। सहस्रनामावली के प्रथम नाम में जो मातृभावना का निर्देश है, उसी प्रकार मातृभाव से ही करना है। श्रीचक्र के बारे में यह कहा गया है कि वह शिव शक्ति का संयोजित रूप है। सारा चराचर और दृश्यादृश्य जो कुछ प्रपंच में है वे सब ललिताम्बा है; इसलिए श्रीचक्र रूप में हो या अन्य रूप में हो, देवी ललिता लोकजननी है, सब कहीं हैं। इसलिए श्रीचक्र रूप में आविष्कृत माँ की आराधना करने के लिए निश्चित समय या सन्दर्भ की पाबन्दी नहीं है। यदि वह जाने, तो ठीक है।

श्रीचक्र को घर में रख सकते हैं? रखने पर पूजा नहीं करनी है? पूजाक्रम में गलती हुई तो कोई दोष है? इसप्रकार के सन्देह कोई न कोई उठाते हैं। ये सब संशय ठीक हैं। यदि कोई साधक अपने गुरु के निर्देश से पूजा करता है, तो उसे अपने संप्रदाय के अनुसार गुरु के निर्देश पर सारी बातों पर ध्यान रखना है। उसी प्रकार के साधक और लौकिक साधक दोनों का लक्ष्य एक नहीं। गृहस्थ भक्त अपनी असंख्य उधेडबुन में थोडी देर अंबा की ओर ध्यान देता है, तो सब से बडी बात है। उन्हीं भक्तों को लक्ष्य करके यह लिखा जाता है।

"सम्यक् शतक्रतून कृत्वा यत्फलं समवाप्नुयात्
तत्फलं लभते कृत्वा भक्त्या श्रीचक्रदर्शनम्"

यही आप्तवाक्य है। इसका तात्पर्य है कि सौ महायज्ञों के करने से जो फल मिलता है वही फल श्रीचक्र का एक बार दर्शन करने से मिलता है।

श्रीचक्र को पूजा गृह में रखकर उसे भक्तिसहित नमस्कार देना भी काफी श्रेयस्कर है। कुंकुम से अथवा सुगन्ध पुष्पों से श्रीचक्र की अर्चना करना उत्तम है। ललिता सहस्रनाम नामों को भक्तिपूर्वक उच्चरित करके अर्चना करने से और भी अच्छा है। गुरु के उपदेश से षोडशोपचार पूजा से श्रीचक्राराधना करने का भाग्य जिन्हें प्राप्त नहीं हुआ है, उनकेलिए यहाँ इतना कहा है।

विध्यनुसार श्रीचक्र तैयार किये जाने पर श्री त्रिपुर सुन्दरी का सान्निध्य श्रीचक्र में होता है। यह कहा जाता है कि प्राणप्रतिष्ठा करने की फिर ज़रूरत नहीं है। श्रीचक्र का निर्माण यदा-कदा निर्मित किया जा सकता है, अथवा ताम्बा, चान्दी, सोना आदि लोहों में खींचकर बनाया जा सकता है। तात्कालिक रीति से खींचकर बनाना साधारण जनों के लिए हितकर है। जो असाधारण रूप से अनुग्रहीत है, वही कर सकता है। सोने से बना श्रीचक्र जीवन भर बना रहेगा। चन्दी में बना ३२ वर्ष तक और ताम्बे का बारह वर्षों का रहेगा।

इस प्रकार की कालगणना ठीक नहीं है, यह मत भी है। ऐसा श्रीचक्र अब भी अनेक महाक्षेत्रों में है, जो सहस्राधिक वर्षों के पहले का है। तमिल नाडु में प्रसिद्ध चिदम्बर मन्दिर में मूलस्थान में 'चिदम्बर रहस्य का खान है।' उसमें कुछ भी नहीं है। कहा जाता है कि अरूपी बनकर वायुलिंग रूप में महेश का वहाँ वास है। पुराने लोगों का मत है कि उस गुहा में शंकराचार्य

द्वारा निर्मित एक श्रीचक्र है। चिदम्बर मन्दिर की कोई भूमि या धन नहीं है। तीन हज़ार लोग उस मंदिर के आसरे पर जीवन निर्वाह करते हैं। निस्व चिदम्बर स्वामी कनक सभापति है। उसके लिए कारण बताया जाता है वहाँ प्रतिष्ठित श्रीचक्र।

इतना तो इसलिए कहा है कि श्रीचक्र घर में रखने और आराधना करने का अधिकार स्थापित किया जाना था। माँ का संकल्परूप है श्रीचक्र। उस श्रीचक्र का वन्दन करने के लिए तंत्र विद्या पढ़ लेना जरूरी नहीं है। मंत्रदीक्षा भी ज़रूरी नहीं है। यदि मंत्र दीक्षा और गुरु का उपदेश मिले तो अति उत्तम है।

"बिन्दुत्रिकोण वसुकोण दशारयुग्मम्
मन्वश्रनागदलसंयुतशोडशारम्
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रमेददुदितं परदेवतायाः"

।। श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रम् ।।

ओं ऐं - ह्रीं - श्रीं - श्रीमात्रे नमः
श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी ।
चिदग्निकुण्डसंभूता देवकार्यमुद्यता ।।
उद्यद्भानुसहस्राभा चतुर्बाहुसमन्विता ।
रागस्वरूपपाशाढ्या क्रोधाकारांकुशोज्वला ।।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पंचतन्मात्रसायका ।
निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला ।।
चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचा ।
कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डिता ।।
अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभिता ।
मुखचन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषका ।।
वदनस्मरमांगल्यगृहतोरणचिल्लिका ।
वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचना ।।
नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजिता ।
ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरा ।।
कदम्बमंजरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरा ।
ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डला ।।
पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभूः ।
नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिरदनच्छदा ।।
शुद्धविद्यांङ्कुराकारद्विजपङ्क्तिद्वयोज्वला ।
कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षद्दिगन्तरा ।।
निजसल्लापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी ।
मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसा ।।
अनाकलितसादृश्यचुबुकश्रीविराजिता ।
कामेशबद्धमाङ्गल्यसूत्रशोभितकन्धरा ।।
कनकाङ्गदकेयूरकमनीयभुजान्विता ।
रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्विता ।।
कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तनी ।

नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वयी ।।
लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमा ।
स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रया ।
अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतटी ।।
रत्नकिङ्किणिकारम्यरशनादामभूषिता ।।
कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्विता ।
माणिक्यमकुटाकारजानुद्वयविराजिता ।।
इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजङ्घिका ।
गूढगुल्फा कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्विता ।।
नखदीधितिसंछन्ननमज्जनतमोगुणा ।
पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहा ।।
शिंजानमणिमंजीरमण्डितश्रीपदाम्बुजा ।
मरालीमन्दगमना महालावण्यशेवधिः ।।
सर्वारुणाऽनवद्याङ्गी सर्वाभरणभूषिता ।
शिवकामेश्वराङ्कस्था शिवा स्वाधीनवल्लभा ।।
सुमेरुमध्यशृंगस्थाश्रीमन्नगरनायिका ।
चिन्तामणिगृहान्तस्था पंचब्रह्मासनस्थिता ।।
महापद्माटवीसंस्था कदम्बवनवासिनी ।
सुधासागरमध्यस्था कामाक्षी कामदायिनी ।।
देवर्षिगणसङ्घातस्तूयमानात्मवैभवा ।
भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्विता ।।
सम्पत्करीसमारूढसिन्धुरव्रजसेविता ।
अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृता ।।
चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृता ।
गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेविता ।।
किरिचक्ररथारूढदण्डनाथापुरस्कृता ।
ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यगा ।।
भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षिता ।
नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुका ।।
भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दिता ।

मन्त्रिण्यम्बाविरचितविषंगवधतोषिता ।।
विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दिता ।
कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरा ।।
महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षिता ।
भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिणी ।।
करांगुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृतिः ।
महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिका ।।
कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभण्डासुरशून्यका ।
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवा ।।
हरनेत्राग्निसन्दग्धकामसंजीवनौषधिः ।
श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजा ।।
कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिणी ।
शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधारिणी ।।
मूलमन्त्रात्मिका मूलकूटत्रयकलबरा ।
कुलामृतैकरसिका कुलसंकेतपालिनी ।।
कुलाङ्गना कुलान्तस्था कौलिनी कुलयोगिनी ।
अकुला समयान्तस्था समयाचारतत्परा ।।
मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी ।
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी ।।
आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी ।
सहस्राराम्बुजारूढा सुधासाराभिवर्षिणी ।।
तटिल्लतासमरुचिः षट्चक्रोपरिसंस्थिता ।
महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी ।।
भवानी भावनागम्या भवारण्यकुठारिका ।
भद्रप्रिया भद्रमूर्तिर्भक्तसौभाग्यदायिनी ।।
भक्तिप्रिया भक्तिगम्या भक्तिवश्या भयापहा ।
शांभवी शारदाराध्या शर्वाणी शर्मदायिनी ।।
शांकरी श्रीकरी साध्वी शरच्चन्द्रनिभानना ।
शातोदरी शान्तिमती निराधारा निरञ्जना ।।
निर्लेपा निर्मला नित्या निराकारा निराकुला ।

निर्गुणा निष्कला शान्ता निष्कामा निरुपप्लवा ।।
नित्यमुक्ता निर्विकारा निष्प्रपञ्चा निराश्रया ।
नित्यशुद्धा नित्यबुद्धा निरवद्या निरन्तरा ।।
निष्कारणा निष्कलङ्का निरुपाधिर्निरीश्वरा ।
नीरागा रागमथनी निर्मदा मदनाशिनी ।।
निश्चिन्ता निरहंकारा निर्मोहा मोहनाशिनी ।
निर्ममा ममताहन्त्री निष्पापा पापनाशिनी ।।
निष्क्रोधा क्रोधशमनी निर्लोभा लोभनाशिनी ।
निस्संशया संशयघ्नी निर्भवा भवनाशिनी ।।
निर्विकल्पा निराबाधा निर्भेदा भेदनाशिनी ।
निर्नाशा मृत्युमथनी निष्क्रिया निष्परिग्रहा ।।
निस्तुला नीलचिकुरा निरपाया निरत्यया ।
दुर्लभा दुर्गमा दुर्गा दुःखहन्त्री सुखप्रदा ।।
दुष्टदूरा दुराचारशमनी दोषवर्जिता ।
सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता ।।
सर्वशक्तिमयी सर्वमंगला सद्गतिप्रदा ।
सर्वेश्वरी सर्वमयी सर्वमन्त्रस्वरूपिणी ।।
सर्वयन्त्रात्मिका सर्वतन्त्ररूपा मनोन्मनी ।
माहेश्वरी महादेवी महालक्ष्मीर्मृडप्रिया ।।
महारूपा महापूज्या महापातकनाशिनी ।
महामाया महासत्वा महाशक्तिर्महारतिः ।।
महाभोगा महैश्वर्या महावीर्या महाबला ।
महाबुद्धिर्महासिद्धिर्महायोगीश्वरेश्वरी ।।
महातन्त्रा महामन्त्रा महायन्त्रा महासना ।
महायागक्रमाराध्या महाभैरवपूजिता ।।
महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिणी ।
महाकामेशमहिषी महात्रिपुरसुन्दरी ।।
चतुःषष्ट्युपचाराढ्या चतुःषष्टिकलामयी ।
महाचतुःषष्टिकोटियोगिनीगणसेविता ।।
मनुविद्या चन्द्रविद्या चन्द्रमण्डलमध्यगा ।

चारुरूपा चारुहासा चारुचन्द्रकलाधरा ।।
चराचरजगन्नाथा चक्रराजनिकेतना ।
पार्वती पद्मनयना पद्मरागसमप्रभा ।।
पञ्चप्रेतासनासीना पञ्चब्रह्मस्वरूपिणी ।
चिन्मयी परमानन्दा विज्ञानघनरूपिणी ।।
ध्यानध्यातृध्येयरूपा धर्माधर्मविवर्जिता ।
विश्वरूपा जागरिणी स्वपन्ती तैजसात्मिका ।।
सुप्ता प्राज्ञात्मिका तुर्या सर्वावस्थाविवर्जिता ।
सृष्टिकर्त्री ब्रह्मरूपा गोप्त्री गोविन्दरूपिणी ।।
संहारिणी रुद्ररूपा तिरोधानकरीश्वरी ।
सदाशिवानुग्रहदा पञ्चकृत्यपरायणा ।।
भानुमण्डलमध्यस्था भैरवी भगमालिनी ।
पद्मासना भगवती पद्मनाभसहोदरी ।।
उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनाव(लिः)ली ।
सहस्रशीर्षवदना सहस्राक्षी सहस्रपात् ।।
आब्रह्मकीटजननी वर्णाश्रमविधायिनी ।
निजाज्ञारूपनिगमा पुण्यापुण्यफलप्रदा ।।
श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिका ।
सकलागमसन्दोहशुक्तिसम्पुटमौक्तिका ।।
पुरुषार्थप्रदा पूर्णा भोगिनी भुवनेश्वरी ।
अम्बिकानादिनिधना हरिब्रह्मेन्द्रसेविता ।।
नारायणी नादरूपा नामरूपविवर्जिता ।
ह्रींकारी ह्रीमती हृद्या हेयोपादेयवर्जिता ।।
राजराजार्चिता राज्ञी रम्या राजीवलोचना ।
रञ्जनी रमणी रस्या रणत्किंकिणिमेखला ।।
रमा राकेन्दुवदना रतिरूपा रतिप्रिया ।
रक्षाकरी राक्षसघ्नी रामा रमणलम्पटा ।।
काम्या कामकलारूपा कदम्बकुसुमप्रिया ।
कल्याणी जगतीकन्दा करुणारससागरा ।।
कलावती कलालापा कान्ता कादम्बरीप्रिया ।

वरदा वामनयना वारुणीमदविह्वला ।।
विश्वाधिका वेदवेद्या विन्ध्याचलनिवासिनी ।
विधात्री वेदजननी विष्णुमाया विलासिनी ।।
क्षेत्रस्वरूपा क्षत्रेशी क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिनी ।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्ता क्षेत्रपालसमर्चिता ।।
विजया विमला वन्द्या वन्दारुजनवत्सला ।
वाग्वादिनी वामकेशी वह्निमण्डलवासिनी ।।
भक्तिमत्कल्पलतिका पशुपाशविमोचिनी ।
संहृताशेषपाषण्डा सदाचारप्रवर्तिका ।।
तापत्रयाग्निसन्तप्तसमाह्लादनचन्दिका।
तरुणी तापसाराध्या तनुमध्या तमोऽपहा।।
चितिस्तत्पदलक्ष्यार्था चिदेकरसरूपिणी ।।
स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्माद्यानन्दसन्ततिः ।
परा प्रत्यक्चितीरूपा पश्यन्ती परदेवता ।
मध्यमा वैखरीरूपा भक्तमानसहंसिका ।।
कामेश्वरप्राणनाडी कृतज्ञा कामपूजिता ।
श्रृङ्गाररससम्पूर्णा जया जालन्धरस्थिता ।।
ओड्याणापीठनिलया बिन्दुमण्डलवासिनी ।
रहोयागक्रमाराध्या रहस्तर्पणतर्पिता ।।
सद्यःप्रसादिनी विश्वसाक्षिणी साक्षिवर्जिता ।
षडङ्गदेवतायुक्ता षाड्गुण्यपरिपूरिता ।।
नित्यक्लिन्ना निरूपमा निर्वणासुखदायिनी ।
नित्या षोडशिकारूपा श्रीकण्ठार्द्धशरीरिणी ।
प्रभावतो प्रभारूपा प्रसिद्धा परमेश्वरी ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।।
व्यापिनी विविधाकारा विद्याऽविद्यास्वरूपिणी ।।
महाकामेशनयनकुमुदाह्लादकौमुदी ।।
भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसन्ततिः।
शिवदूती शिवाराध्या शिवमूर्तिःशिवंकरी ।।
शिवप्रिया शिवपरा शिष्टेष्टा शिष्टपूजिता ।

अप्रमेया स्वप्रकाशा मनोवाचामगोचरा ।।
चिच्छक्तिश्चेतनारूपा जडशक्तिर्जडात्मिका ।
गायत्री व्याहृतिःसन्ध्या द्विजबृन्दनिषेविता ।।
तत्त्वासना तत्त्वमयी पञ्चकोशान्तरस्थिता ।
निस्सीममहिमा नित्ययौवना मदशालिनी ।।
मदघूर्णितरक्ताक्षी मदपाटलगण्डभूः ।।
चन्दनद्रवदिग्धाङ्गी चाम्पेयकुसुमप्रिया ।।
कुशला कोमलाकारा कुरुकुल्ला कुलेश्वरी ।
कुलकुण्डालया कौलमार्गतत्परसेविता ।।
कुमारागणनाथाम्बा तुष्टिःपुष्टिर्मतिर्धृतिः ।
शान्तिःस्वस्तिमती कान्तिर्नन्दिनी विघ्नाशिनी ।।
तेजोवती त्रिणयना लोलाक्षी कामरूपिणी ।
मालिनी हंसिनी माता मलयाचलवासिनी ।।
सुमुखी नलिनी सुभ्रुः शोभना सुरनायिका ।
कालकण्ठी कान्तिमती क्षोभिणी सूक्ष्मरूपिणी ।।
वज्रेश्वरी वामदेवी वयोऽवस्थाविवर्जिता ।
सिद्धेश्वरी सिद्धविद्या सिद्धमाता यशस्विनी ।।
विशुद्धिचक्रनिलयाऽरक्तवर्ण त्रिलोचना ।
खट्वाङ्गादिप्रहरणा वदनैकसमन्विता ।।
पायसान्नप्रिया त्वक्स्था पशुलोकभयङ्करी ।
अमृतादिमहाशक्तिसंवृता डाकिनीश्वरी ।
अनाहताब्जनिलया श्यामाभा वदनद्वया ।
दंष्ट्रोज्वलाऽक्षमालादिधरा रुधिरसंस्थिता ।।
कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृता स्निग्धौदनाप्रिया ।
महावीरेन्द्रवरदा राकिण्यम्बास्वरूपिणी ।।
मणिपूराब्जनिलया वदनत्रयसंयुता ।
वज्रादिकायुधोपेता डामर्यादिभिरावृता ।।
रक्तवर्णा मांसनिष्ठा गुडान्नप्रीतमानसा ।
समस्तभक्तसुखदा लाकिन्यम्बास्वरूपिणी ।।
स्वाधिष्ठानाम्बुजगता चतुर्वक्त्रमनोहरा ।

शूलाद्यायुधसम्पन्ना पीतवर्णऽतिगर्विता ।।
मेदोनिष्ठा मधुप्रीता व (ब) न्दिन्यादिसमन्विता ।
दध्यन्नासक्तहृदया का (डा) किनीरूपधारिणी ।।
मूलाधाराम्बुजारूढा पञ्चवक्त्राऽस्थिसंस्थिता ।
अङ्कुशादिप्रहरणा वरदादिनिषेविता ।।
मुग्दौदनासक्तचित्ता साकिन्यम्बास्वरूपिणी ।
आज्ञाचक्राब्जनिलया शुक्लवर्णा षडानना ।।
मज्जासंस्था हंसवतीमुख्यशक्तिसमन्विता ।
हरिद्रान्नैकरसिका हाकिनीरूपधारिणी ।।
सहस्रदलपद्मस्था सर्ववर्णोपशोभिता ।
सर्वायुधधरा शुक्लसंस्थिता सर्वतोमुखी ।।
सर्वौदनप्रीतचित्ता याकिन्यम्बास्वरूपिणी ।
स्वाहा स्वधा मतिर्मेधा श्रुतिःस्मृतिरनुत्तमा ।।
पुण्यकीर्तिःपुण्यलभ्या पुण्यश्रवणकीर्तना ।
पुलोमजार्चिता बन्धमोचनी बन्धुरालका ।।
विमर्शरूपिणी विद्या वियदादिजगत्प्रसूः ।
सर्वव्याधिप्रशमनी सर्वमृत्युनिवारिणी ।।
अग्रगण्याऽचिन्त्यरूपा कलिकल्मषनाशिनी ।
कात्यायनी कालहन्त्री कमलाक्षनिषेविता ।।
ताम्बूलपूरितमुखी दाडिमीकुसुमप्रभा ।
मृगाक्षी मोहिनी मुख्या मृडानी मित्ररूपिणी ।।
नित्यतृप्ता भक्तनिधिर्नियन्त्री निखिलेश्वरी ।
मैत्र्यादिवासनालभ्या महाप्रलयसाक्षिणी ।।
परा शक्तिःपरानिष्ठा प्रज्ञानघनरूपिणी ।
माध्वीपानालसा मत्ता मातृकावर्णरूपिणी ।।
महाकैलासनिलया मृणालमृदुदोर्लता ।
महनीया दयामूर्तिर्महासाम्राज्यशालिनी ।।
आत्मविद्या महाविद्या श्रीविद्या कामसेविता ।
श्रीषोडशाक्षरीविद्या त्रीकूटा कामकोटिका ।।
कटाक्षकिंकरीभूतकमलाकोटिसेविता ।

शिरःस्थिता चन्द्रनिभा भालस्थेन्द्रधनुःप्रभा ।।
हृदयस्था रविप्रख्या त्रिकोणान्तरदीपिका ।
दाक्षायणी दैत्यहन्त्री दक्षयज्ञविनाशिनी ।।
दरान्दोलितदीर्घाक्षी दरहासोज्वलन्मुखी ।
गुरूमूर्तिर्गुणनिधिर्गोमाता गुहजन्मभूः ।।
देवेशी दण्डनीतिस्था दहराकाशरूपिणी ।
प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डलपूजिता ।।
कलात्मिका कलानाथा काव्यालापविनोदिनी ।
सचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता ।।
आदिशक्तिरमेयात्मा परमा पावनाकृतिः ।
अनेककोटिब्रह्माण्डजननी दिव्यविग्रहा ।।
क्लीङ्कारी केवला गुह्या कैवल्यपददायिनी ।
त्रिपुरा त्रिजगद्वान्द्या त्रिमूर्तिस्त्रिदशेश्वरी ।।
त्र्यक्षरी दिव्यगन्धाढ्या सिन्दूरतिलकाञ्चिता ।
उमा शैलेन्द्रतनया गौरी गन्धर्वसेविता ।।
विश्वगर्भा स्वर्णगर्भाऽवरदा वागधीश्वरी ।
ध्यानगम्याऽपरिच्छेद्या ज्ञानदा ज्ञानविग्रहा ।।
सर्ववेदान्तसंवेद्या सत्यानन्दस्वरूपिणी ।
लोपामुद्रार्चिता लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डला ।।
अदृश्या दृश्यरहिता विज्ञात्री वेद्यवर्जिता ।
योगिनी योगदा योग्या योगानन्दा युगन्धरा ।।
इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिणी ।
सर्वाधारा सुप्रतिष्ठा सदसद्रूपधारिणी ।।
अष्टमूर्तिरजाजैत्री लोकयात्राविधायिनी ।
एकाकिनी भूमरूपा निर्द्वैताद्वैतवर्जिता ।।
बृहती ब्राह्मणी ब्राह्मी ब्रह्मानन्दा बलिप्रिया ।
भाषारूपा बृहत्सेना भावाभावविवर्जिता।
सुखराध्या शुभकरी शोभनासुलभागतिः ।।
राजराजेश्वरी राज्यदायिनी राज्यवल्लभा ।
राजत्कृपा राजपीठनिवेशितनिजाश्रिता ।।

राज्यलक्ष्मीःकोशनाथा चतुरङ्गबलेश्वरी ।
साम्राज्यदायिनी सत्यसन्धा सागरमेखला ।।
दीक्षिता दैत्यशमनी सर्वलोकवशङ्करी ।
सर्वार्थदात्री सावित्री सच्चिदानन्दरूपिणी ।।
देशकालापरिच्छिन्ना सर्वगा सर्वमोहिनी ।
सरस्वती शास्त्रमयी गुहाम्बा गुहरूपिणी ।।
सर्वौपाधिविनिर्मुक्ता सदाशिवपतिव्रता ।
सम्प्रदायेश्वरी साध्वी गुरुमण्डलरूपिणी ।।
कुलोत्तीर्णा भगाराध्या माया मधुमती मही ।
गणाम्बा गुह्यकाराध्या कोमलाङ्गी गुरुप्रिया ।।
स्वतन्त्रा सर्वतन्त्रेशी दक्षिणामूर्तिरूपिणी ।
सनकादिसमाराध्या शिवज्ञानप्रदायिनी ।।
चित्कलाऽनन्दकलिका प्रेमरूपा प्रियङ्करी ।
नामपारायणप्रीता नन्दिविद्या नटेश्वरी ।।
मिथ्याजगदधिष्ठाना मुक्तिदा मुक्तिरूपिणी ।
लास्यप्रिया लयकरी लज्जारम्भादिवन्दिता ।।
भवदावसुधावृष्टिः पापारण्यदवानला ।
दौर्भाग्यतूलवातूला जराध्वान्तरविप्रभा ।।
भाग्याब्धिचन्द्रिका भक्तचित्तकेकिघनाघना ।
रोगपर्वतदम्भोलिर्मृत्युदारुकुठारिका ।।
महेश्वरी महाकाली महाग्रासा महाशना ।
अपर्णा चण्डिका चण्डमुण्डासुरनिषूदनी ।।
क्षराक्षरात्मिका सर्वलोकेशी विश्वधारिणी ।
त्रिवर्गदात्री सुभगा त्र्यम्बका त्रिगुणात्मिका ।।
स्वर्गापवर्गदा शुद्धा जपापुष्पनिभाकृतिः ।
ओजोवती द्युतिधरा यज्ञरूपा प्रियव्रता ।।
दुराराध्या दुराधर्षा पाटलीकुसुमप्रिया ।
महती मेरुनिलया मन्दारकुसुमप्रिया ।।
वीराराध्या विराट्रूपा विरजा विश्वतोमुखी ।
प्रत्यग्रूपा पराकाशा प्राणदा प्राणरूपिणी ।।

मार्ताण्डभैरवाराध्या मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधूः ।
त्रिपुरेशी जयत्सेना निस्त्रैगुण्या परापरा ।।
सत्यज्ञानानन्दरूपा सामरस्यपरायणा ।
कपर्दिनी कलामाला कामधुक्कामरूपिणी ।।
कलानिधिः काव्यकलारसज्ञा रसशेवधिः ।
पृष्टा पुरातना पूज्या पुष्करा पुष्करेक्षणा ।।
परंज्योतिः परंधाम परमाणुः परात्परा ।
पाशहस्ता पाशहन्त्री परमन्त्रविभेदिनी ।।
मूर्ताऽमूर्ताऽनित्यतृप्ता मुनिमानसहंसिका ।
सत्यव्रता सत्यरूपा सर्वान्तर्यामिनी सती ।।
ब्रह्माणी ब्रह्म जननी बहुरूपा बुधार्चिता ।
प्रसवित्री प्रचण्डाज्ञा प्रतिष्ठा प्रकटाकृतिः ।।
प्राणेश्वरी प्राणदात्री पञ्चाशत्पीठरूपिणी ।
विश्रृङ्खला विविक्तस्था वीरमाता वियत्प्रसूः ।।
मुकुन्दा मुक्तिनिलया मूलविग्रहरूपिणी ।
भावज्ञा भवरोगघ्नी भवचक्रप्रवर्तिनी ।।
छन्दःसारा शास्त्रसारा मन्त्रसारा तलोदरी ।
उदारकीर्तिरुद्दामवैभवा वर्णरूपिणी ।।
जन्ममृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिनी ।
सर्वोपनिषदुद्घुष्टा शान्त्यतीतकलात्मिका ।।
गम्भीरा गगनान्तस्था गर्विता गानलोलुपा ।
कल्पनारहिता काष्ठाऽकान्ता कान्तार्धविग्रहा ।।
कार्यकारणनिर्मुक्ता कामकेलितरङ्गिता ।
कनत्कनकताटङ्का लीलाविग्रहधारिणी ।।
अजा क्षयविनिर्मुक्ता मुग्धा क्षिप्रप्रसादिनी ।
अन्तर्मुखसमाराध्या बहिर्मुखसुदुर्लभा ।।
त्रयी त्रिवर्गनिलया त्रिस्था त्रिपुरमालिनी ।
निरामया निरालम्बा स्वात्मारामा सुधासृतिः ।।
संसारपङ्कनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डिता।
यज्ञप्रिया यज्ञकर्त्री यजमानस्वरूपिणी ।।

धर्माधारा धनाध्यक्षा धनधान्यविवर्धिनी ।
विप्रप्रिया विप्ररूपा विश्वभ्रमणकारिणी ।।
विश्वग्रासा विद्रुमाभा वैष्णवी विष्णुरूपिणी ।
अयोनियोनिनिलया कूटस्था कुलरूपिणी ।।
वीरगोष्ठीप्रिया वीरा नैष्कर्म्या नादरूपिणी ।
विज्ञानकलना कल्या विदग्धा बैन्दवासना ।।
तत्वाधिका तत्वमयी तत्वमर्थस्वरूपिणी ।
सामगानप्रिया सौम्या सदाशिवकुटुम्बिनी ।।
सव्यापसव्यमार्गस्था सर्वापद्विनिवारणी ।
स्वस्था स्वभावमधुरा धीरा धीरसमर्चिता ।।
चैतन्यार्घ्यसमाराध्या चैतन्यकुसुमप्रिया ।
सदोदिता सदातुष्टा तरुणादित्यपाटला ।।
दक्षिणा दक्षिणाराध्या दरस्मेरमुखाम्बुजा ।
कौलिनीकेवलानर्घकैवल्यपददायिनी ।।
स्तोत्रप्रिया स्तुतिमती श्रुतिसंस्तुतवैभवा ।
मनस्विनी मानवती महेशी मङ्गलाकृतिः ।।
विश्वमाता जगद्धात्री विशालाक्षी विरागिणी ।
प्रगल्भा परमोदारा परामोदा मनोमयी ।।
व्योमकेशी विमानस्था वज्रिणी वामकेश्वरी ।
पञ्चयज्ञप्रिया पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिनी ।।
पञ्चमी पञ्चभूतेशी पञ्चसङ्ख्योपचारिणी ।
शाश्वती शाश्वतैश्वर्या शर्मदा शम्भुमोहिनी ।।
धरा धरसुता धन्या धर्मिणी धर्मवर्धिनी ।
लोकातीता गुणातीता सर्वातीता शमात्मिका ।।
बन्धूककुसुमप्रख्या बाला लीलाविनोदिनी ।
सुमङ्गली सुखकरी सुवेषाढ्या सुवासिनी ।।
सुवासिन्यर्चनप्रीता शोभना शुद्धमानसा ।
बिन्दुतर्पणसन्तुष्टा पूर्वजा त्रिपुराम्बिका ।।
दशमुद्रासमाराध्या त्रिपुरा श्रीवशङ्करी ।
ज्ञानमुद्रा ज्ञानगम्या ज्ञानज्ञेयस्वरूपिणी ।।

योनिमुद्रा त्रिखण्डेशी त्रिगुणाऽम्बा त्रिकोणगा ।
अनघाऽद्भुतचारित्रा वाञ्छितार्थप्रदायिनी ।
अभ्यासातिशयज्ञाता षडध्वातीतरूपिणी ।
अव्याजकरुणामूर्तिरज्ञानध्वान्तदीपिका ।।
आबालगोपविदिता सर्वानुल्लङ्घ्यशासना ।
श्रीचक्रराजनिलया श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।।
श्रीशिवा शिवशक्त्यैक्यरूपिणी ललिताम्बिका ।

एवं श्रीललितादेव्या नाम्नां साहस्रकं जगुः ।।
इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे उत्तरखण्डे श्रीहयग्रीवागस्त्यसंवादे
श्रीललितारहस्यनामस्तोत्रकथनं नामऽध्यायः ।।

नामावलि

ओं श्रीमात्रे नमः
ओं श्रीमहाराज्ञ्यै नमः
ओं श्रीमत्सिंहासनेश्वर्यै नमः
ओं चिदग्निकुण्डसंभूतायै नमः
ओं देवकार्यसमुद्यतायै नमः
ओं उद्यद्भानुसहस्राभायै नमः
ओं चतुर्बाहुसमन्वितायै नमः
ओं रागस्वरूपपाशाढ्यायै नमः
ओं क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वलायै नमः
ओं मनोरूपेक्षुकोदण्डायै नमः
ओं पञ्चतन्मात्रसायकायै नमः
ओं निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डलायै नमः
ओं चम्पकाशोकपुन्नागसौगन्धिकलसत्कचायै नमः
ओं कुरुविन्दमणिश्रेणीकनत्कोटीरमण्डितायै नमः
ओं अष्टमीचन्द्रविभ्राजदलिकस्थलशोभितायै नमः
ओं मुखचन्द्रकलङ्काभमृगनाभिविशेषकायै नमः
ओं वदनस्मरमाङ्गल्यगृहतोरणचि(झि)ल्लिकायै नमः
ओं वक्त्रलक्ष्मीपरीवाहचलन्मीनाभलोचनायै नमः
ओं नवचम्पकपुष्पाभनासादण्डविराजितायै नमः
ओं ताराकान्तितिरस्कारिनासाभरणभासुरायै नमः
ओं कदम्बमञ्जरीक्लृप्तकर्णपूरमनोहरायै नमः
ओं ताटङ्कयुगलीभूततपनोडुपमण्डलायै नमः
ओं पद्मरागशिलादर्शपरिभाविकपोलभुवे नमः
ओं नवविद्रुमबिम्बश्रीन्यक्कारिरदनच्छदायै नमः
ओं शुद्धविद्याङ्कुराकारद्विजपङ्क्तिद्वयोज्जलायै नमः
ओं कर्पूरवीटिकामोदसमाकर्षद्दिगन्तरायै नमः
ओं निजसल्लापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छप्यै नमः
ओं मन्दस्मितप्रभापूरमज्जत्कामेशमानसायै नमः
ओं अनाकलितसादृश्यचुबुकश्रीविराजितायै नमः

ओं कामेशबद्धमाङ्गल्यसूत्रशेभितकन्धरायै नमः
ओं कनकाङ्गदकेयूरकमनीयभुजान्वितायै नमः
ओं रत्नग्रैवेयचिन्ताकलोलमुक्ताफलान्वितायै नमः
ओं कामेश्वरप्रेमरत्नमणिप्रतिपणस्तन्यै नमः
ओं नाभ्यालवालरोमालिलताफलकुचद्वय्यै नमः
ओं लक्ष्यरोमलताधारतासमुन्नेयमध्यमायै नमः
ओं स्तनभारदलन्मध्यपट्टबन्धवलित्रयायै नमः
ओं अरुणारुणकौसुम्भवस्त्रभास्वत्कटीतट्यै नमः
ओं रत्नकिङ्किणिकारम्यरशनादामभूषितायै नमः
ओं कामेशज्ञातसौभाग्यमार्दवोरुद्वयान्वितायै नमः
ओं माणिक्यमकुटाकारजानुद्वयविराजितायै नमः
ओं इन्द्रगोपपरिक्षिप्तस्मरतूणाभजङ्घिकायै नमः
ओं गूढगुल्भायै नमः
ओं कूर्मपृष्ठजयिष्णुप्रपदान्वितायै नमः
ओं नखदीधितिसञ्छन्ननमज्जनतमोगुणायै नमः
ओं पदद्वयप्रभाजालपराकृतसरोरुहायै नमः
ओं शिञ्जानमणिमञ्जीरमण्डितश्रीपदाम्बुजायै नमः
ओं मरालीमन्दगमनायै नमः
ओं महालावण्यशेवधये नमः
ओं सर्वरुणायै नमः
ओं अनवद्याङ्ग्यै नमः
ओं सर्वाभरणभूषितायै नमः
ओं शिवकामेश्वराङ्कस्थायै नमः
ओं शिवायै नमः
ओं स्वाधीनवल्लभायै नमः
ओं सुमेरुमध्यश्रृङ्गस्थायै नमः
ओं श्रीमन्नगरनायिकायै नमः
ओं चिन्तामणिगृहान्तःस्थायै नमः
ओं पञ्चब्रह्मासनस्थितायै नमः
ओं महापद्माटवीसंस्थायै नमः
ओं कदम्बवनवासिन्यै नमः

ओं सुधासागरमध्यस्थायै नमः
ओं कामाक्ष्यै नमः
ओं कामदायिन्यै नमः
ओं देवर्षिगणसंघातस्तूयमानात्मवैभवायै नमः
ओं भण्डासुरवधोद्युक्तशक्तिसेनासमन्वितायै नमः
ओं सम्पत्करीसमारूढसिंधुरव्रजसेवितायै नमः
ओं अश्वारूढाधिष्ठिताश्वकोटिकोटिभिरावृतायै नमः
ओं चक्रराजरथारूढसर्वायुधपरिष्कृतायै नमः
ओं गेयचक्ररथारूढमन्त्रिणीपरिसेवितायै नमः
ओं किरिचक्ररथारूढदण्डनाथापुरस्कृतायै नमः
ओं ज्वालामालिनिकाक्षिप्तवह्निप्राकारमध्यमायै नमः
ओं भण्डसैन्यवधोद्युक्तशक्तिविक्रमहर्षितायै नमः
ओं नित्यापराक्रमाटोपनिरीक्षणसमुत्सुकायै नमः
ओं भण्डपुत्रवधोद्युक्तबालाविक्रमनन्दितायै नमः
ओं मन्त्रिण्यम्बाविरचितविषङ्गवधतोषितायै नमः
ओं विशुक्रप्राणहरणवाराहीवीर्यनन्दितायै नमः
ओं कामेश्वरमुखालोककल्पितश्रीगणेश्वरायै नमः
ओं महागणेशनिर्भिन्नविघ्नयन्त्रप्रहर्षितायै नमः
ओं भण्डासुरेन्द्रनिर्मुक्तशस्त्रप्रत्यस्त्रवर्षिण्यै नमः
ओं कराङ्गुलिनखोत्पन्ननारायणदशाकृत्यै नमः
ओं महापाशुपतास्त्राग्निनिर्दग्धासुरसैनिकायै नमः
ओं कामेश्वरास्त्रनिर्दग्धसभाण्डासुरशून्यकायै नमः
ओं ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रादिदेवसंस्तुतवैभवायै नमः
ओं हरनेत्राग्निसंदग्धकामसंजीवनौषध्यै नमः
ओं श्रीमद्वाग्भवकूटैकस्वरूपमुखपङ्कजायै नमः
ओं कण्ठाधःकटिपर्यन्तमध्यकूटस्वरूपिण्यै नमः
ओं शक्तिकूटैकतापन्नकट्यधोभागधरिण्यै नमः
ओं मूलमन्त्रात्मिकायै नमः
ओं मूलकूटत्रयकलेबरायै नमः
ओं कुलामृतैकरसिकायै नमः
ओं कुलसंकेतपालिन्यै नमः

ओं कुलाङ्गनायै नमः
ओं कुलान्तःस्थायै नमः
ओं कौलिन्यै नमः
ओं कुलयोगिन्यै नमः
ओं अकुलायै नमः
ओं समयान्तस्थायै नमः
ओं समयाचारतत्परायै नमः
ओं मूलाधारैकनिलयायै नमः
ओं ब्रह्मग्रन्थिविभेदिन्यै नमः
ओं मणिपूरान्तरुदितायै नमः
ओं विष्णुग्रन्थिविभेदिन्यै नमः
ओं आज्ञाचक्रान्तरालस्थायै नमः
ओं रुद्रग्रन्थिविभेदिन्यै नमः
ओं सहस्राराम्बुजारूढायै नमः
ओं सुधासाराभिवर्षिण्यै नमः
ओं तटिल्लतासमरुच्यै नमः
ओं षट्चक्रोपरिसंस्थितायै नमः
ओं महासक्त्यै नमः
ओं कुण्डलिन्यै नमः
ओं बिसतन्तुतनीयस्यै नमः
ओं भवान्यै नमः
ओं भावनागम्यायै नमः
ओं भवारण्यकुठारिकायै नमः
ओं भद्रप्रियायै नमः
ओं भद्रमूर्त्यै नमः
ओं भक्तसौभाग्यदायिन्यै नमः
ओं भ(क्त) क्तिप्रियायै नमः
ओं भक्तिगम्यायै नमः
ओं भक्तिवश्यायै नमः
ओं भयापहायै नमः
ओं शांभव्यै नमः

ओं शादाराध्यायै नमः
ओं शर्वाण्यै नमः
ओं शर्मदायिन्यै नमः
ओं शांकर्यै नमः
ओं श्रीकर्यै नमः
ओं साध्व्यै नमः
ओं शरच्चन्द्रनिभाननायै नमः
ओं शातोदर्यै नमः
ओं शान्तिमत्यै नमः
ओं निराधारायै नमः
ओं निरञ्जनायै नमः
ओं निर्लेपायै नमः
ओं निर्मलायै नमः
ओं नित्यायै नमः
ओं निराकारायै नमः
ओं निराकुलायै नमः
ओं निर्गुणायै नमः
ओं निष्कलायै नमः
ओं शान्तायै नमः
ओं निष्कामायै नमः
ओं निरुपप्लवायै नमः
ओं नित्यमुक्तायै नमः
ओं निर्विकारायै नमः
ओं निष्प्रपञ्चायै नमः
ओं निराश्रयायै नमः
ओं नित्यशुद्धायै नमः
ओं नित्यबुद्धायै नमः
ओं निरवद्यायै नमः
ओं निरन्तरायै नमः
ओं निष्कारणायै नमः
ओं निष्कलङ्कायै नमः

ओं निरूपाधये नमः
ओं निरीश्वरायै नमः
ओं नीरागायै नमः
ओं रागमथन्यै नमः
ओं निर्मदायै नमः
ओं मदनाशिन्यै नमः
ओं निश्चिन्तायै नमः
ओं निरहंकारायै नमः
ओं निर्मोहायै नमः
ओं मोहनाशिन्यै नमः
ओं निर्ममायै नमः
ओं ममताहन्त्र्यै नमः
ओं निष्पापायै नमः
ओं पापनाशिन्यै नमः
ओं निष्क्रोधायै नमः
ओं क्रोधशमन्यै नमः
ओं निर्लोभायै नमः
ओं लोभनाशिन्यै नमः
ओं निःसंशयायै नमः
ओं संशयघ्न्यै नमः
ओं निर्भवायै नमः
ओं भवनाशिन्यै नमः
ओं निर्विकल्पायै नमः
ओं निराबाधायै नमः
ओं निर्भेदायै नमः
ओं भेदनाशिन्यै नमः
ओं निर्नाशायै नमः
ओं मृत्युमथन्यै नमः
ओं निष्क्रियायै नमः
ओं निष्परिग्रहायै नमः
ओं नीलचिकुरायै नमः

ओं निरपायायै नमः
ओं निरत्यायै नमः
ओं दुर्लभायै नमः
ओं दुर्गमायै नमः
ओं दुर्गायै नमः
ओं दुःखहन्त्र्यै नमः
ओं सुखप्रदायै नमः
ओं दुष्टदूरायै नमः
ओं दुराचारशमन्यै नमः
ओं दोषवर्जितायै नमः
ओं सर्वज्ञायै नमः
ओं सान्द्रकरुणायै नमः
ओं समानाधिकवर्जितायै नमः
ओं सर्वशक्तिमय्यै नमः
ओं सर्वमङ्गलायै नमः
ओं सद्गतिप्रदायै नमः
ओं सर्वेश्वर्यै नमः
ओं सर्वमय्यै नमः
ओं सर्वमन्त्रस्वरूपिण्यै नमः
ओं सर्वयन्त्रात्मिकायै नमः
ओं सर्वतन्त्ररूपायै नमः
ओं मनोन्मन्यै नमः
ओं महेश्वर्यै नमः
ओं महादेव्यै नमः
ओं महालक्ष्म्यै नमः
ओं मृडप्रियायै नमः
ओं महारूपायै नमः
ओं महापूज्यायै नमः
ओं महापातकनाशिन्यै नमः
ओं महामायायै नमः
ओं महासत्वायै नमः

ओं महाशक्त्यै नमः
ओं महारत्यै नमः
ओं महाभोगायै नमः
ओं महैश्वर्यायै नमः
ओं महावीर्यायै नमः
ओं महाबल़ायै नमः
ओं महाबुद्ध्यै नमः
ओं महासिद्ध्यै नमः
ओं महायोगीश्वरेश्वर्यै नमः
ओं महातन्त्रायै नमः
ओं महामन्त्रायै नमः
ओं महायन्त्रायै नमः
ओं महासनायै नमः
ओं महायागक्रमाराध्यायै नमः
ओं महाभैरवपूजितायै नमः
ओं महेश्वरमहाकल्पमहाताण्डवसाक्षिण्यै नमः
ओं महाकामेशमहिष्यै नमः
ओं महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः
ओं चतुःषष्ट्युपचाराढ्यायै नमः
ओं चतुःषष्टिकलामय्यै नमः
ओं महाचतुःषष्टिकोटियोगिनीगणसेवितायै नमः
ओं मनुविद्यायै नमः
ओं चन्द्रविद्यायै नमः
ओं चन्द्रमण्डलमध्यगायै नमः
ओं चारुरूपायै नमः
ओं चारूहासायै नमः
ओं चारूचन्द्रकलाधरायै नमः
ओं चराचरजगन्नाथायै नमः
ओं चक्रराजनिकेतनायै नमः
ओं पार्वत्यै नमः
ओं पद्मनयनायै नमः

ओं पद्मरागसमप्रभायै नमः
ओं पञ्चप्रेतासनासीनायै नमः
ओं पञ्चब्रह्मस्वरूपिण्यै नमः
ओं चिन्मय्यै नमः
ओं परमानन्दायै नमः
ओं विज्ञानघनरूपिण्यै नमः
ओं ध्यानध्यातृध्येयरूपायै नमः
ओं धर्माधर्मविवर्जितायै नमः
ओं विश्वरूपायै नमः
ओं जागरिण्यै नमः
ओं स्वपन्त्यै नमः
ओं तैजसात्मिकायै नमः
ओं सुप्तायै नमः
ओं प्राज्ञात्मिकायै नमः
ओं तुर्यायै नमः
ओं सर्वावस्थाविवर्जितायै नमः
ओं सृष्टिकर्त्र्यै नमः
ओं ब्रह्मरूपायै नमः
ओं गोप्त्र्यै नमः
ओं गोविन्दरूपिण्यै नमः
ओं संहारिण्यै नमः
ओं रुद्ररूपायै नमः
ओं तिरोधानकर्यै नमः
ओं ईश्वर्यै नमः
ओं सदाशिवायै नमः
ओं अनुग्रहदायै नमः
ओं पञ्चकृत्यपरायणायै नमः
ओं भानुमण्डलमध्यस्थायै नमः
ओं भैरव्यै नमः
ओं भगमालिन्यै नमः
ओं पद्मासनायै नमः

ओं भगवत्यै नमः
ओं पद्मनाभसहोदर्यै नमः
ओं उन्मेषनिमिषोत्पन्नविपन्नभुवनावल्यै नमः
ओं सहस्रशीर्षवदनायै नमः
ओं सहस्राक्ष्यै नमः
ओं सहस्रपादे नमः
ओं आब्रह्मकीटजनन्यै नमः
ओं वर्णाश्रमविधायिन्यै नमः
ओं निजाज्ञारूपनिगमायै नमः
ओं पुण्यापुण्यफलप्रदायै नमः
ओं श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जधूलिकायै नमः
ओं सकलागमसंदोहशुक्तिसंपुटमौक्तिकायै नमः
ओं पुरूषार्थप्रदायै नमः
ओं पूर्णायै नमः
ओं भोगिन्यै नमः
ओं भुवनेश्वर्यै नमः
ओं अम्बिकायै नमः
ओं अनादिनिधनायै नमः
ओं हरिब्रह्मेन्द्रसेवितायै नमः
ओं नारायण्यै नमः
ओं नादरूपायै नमः
ओं नामरूपविवर्जितायै नमः
ओं ह्रींकार्यै नमः
ओं ह्रींमत्यै नमः
ओं हृद्यायै नमः
ओं हेयोपादेयवर्जितायै नमः
ओं राजराजार्चितायै नमः
ओं राज्ञ्यै नमः
ओं रम्यायै नमः
ओं राजीवलोचनायै नमः
ओं रञ्जन्यै नमः

ओं रमण्यै नमः
ओं रस्यायै नमः
ओं रणत्किङ्किणिमेखलाये नमः
ओं रमाये नमः
ओं राकेन्दुवदनायै नमः
ओं रतिरूपायै नमः
ओं रतिप्रियायै नमः
ओं रक्षाकर्यै नमः
ओं राक्षसघ्न्यै नमः
ओं रामायै नमः
ओं रमणलम्पटायै नमः
ओं काम्यायै नमः
ओं कामकलारूपायै नमः
ओं कदम्बकुसमप्रियायै नमः
ओं कल्याण्यै नमः
ओं जगतीकन्दायै नमः
ओं करूणारससागरायै नमः
ओं कलावत्यै नमः
ओं कलालापायै नमः
ओं कान्तायै नमः
ओं कादम्बरीप्रियायै नमः
ओं वरदायै नमः
ओं वामनयनायै नमः
ओं वरूणीमदविह्वलायै नमः
ओं विश्वाधिकायै नमः
ओं वेदवेद्यायै नमः
ओं विन्ध्याचलनिवासिन्यै नमः
ओं विधात्र्यै नमः
ओं वेदजनन्यै नमः
ओं विष्णुमायायै नमः
ओं विलासिन्यै नमः

ओं क्षेत्रस्वरूपायै नमः
ओं क्षेत्रेश्यै नमः
ओं क्षेत्रक्षेत्रज्ञपालिन्यै नमः
ओं क्षयवृद्धिर्विनिर्मुक्तायै नमः
ओं क्षेत्रपालसमर्चितायै नमः
ओं विजयायै नमः
ओं विमलायै नमः
ओं वन्द्यायै नमः
ओं वन्दारुजनवत्सलायै नमः
ओं वागवादिन्यै नमः
ओं वामकेश्यै नमः
ओं वह्निमण्डलवासिन्यै नमः
ओं भक्तिमत्कल्पलतिकायै नमः
ओं पशुपाशविमोचिन्यै नमः
ओं संहताशेषपाषण्डायै नमः
ओं सदाचारप्रवर्तिकायै नमः
ओं तापत्रयाग्निसन्तप्तसमाह्लादनचन्द्रिकायै नमः
ओं तरुण्यै नमः
ओं तापसाराध्यायै नमः
ओं तनुमध्यायै नमः
ओं तमोपहायै नमः
ओं चित्यै नमः
ओं तत्पदलक्ष्यार्थयै नमः
ओं चिदेकरसरूपिण्यै नमः
ओं स्वात्मानन्दलवीभूतब्रह्माद्यानन्दसन्तत्यै नमः
ओं परायै नमः
ओं प्रत्यक्चितीरूपायै नमः
ओं पश्यन्त्यै नमः
ओं मध्यमायै नमः
ओं वैखरीरूपायै नम.
ओं भक्तमानसहंसिकायै नमः

ओं कामेश्वरप्राणनाड्यै नमः
ओं कृतज्ञायै नमः
ओं कामपूजितायै नमः
ओं श्रृङ्गाररससम्पूर्णायै नमः
ओं जयायै नमः
ओं जालन्धरस्थितायै नमः
ओं ओड्याणपीठनिलयायै नमः
ओं बिन्दुमण्डलवासिन्यै नमः
ओं रहोयागक्रमाराध्यायै नमः
ओं रहस्तर्पणतर्पितायै नमः
ओं सद्यःप्रसादिन्यै नमः
ओं विश्वसाक्षिण्यै नमः
ओं साक्षिवर्जितायै नमः
ओं षडङ्गदेवतायुक्तायै नमः
ओं षाड्गुण्यपरिपूरितायै नमः
ओं नित्यक्लिन्नायै नमः
ओं निरूपमायै नमः
ओं निर्वाणसुखदायिन्यै नमः
ओं नित्याषोडशिकारूपायै नमः
ओं श्रीकण्ठार्धशरीरिण्ये नमः
ओं प्रभावत्यै नमः
ओं प्रभारूपायै नमः
ओं प्रसिद्धायै नमः
ओं परमेश्वर्यै नमः
ओं मूलप्रकृत्यै नमः
ओं अव्यक्तायै नमः
ओं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिण्यै नमः
ओं व्यापिन्यै नमः
ओं विविधाकारायै नमः
ओं विद्याविद्यास्वरूपिण्यै नमः
ओं महाकामेशनयनकुमुदाह्लादकौमुद्यै नमः

ओं भक्तहार्दतमोभेदभानुमद्भानुसंतत्यै नमः
ओं शिवदूत्यै नमः
ओं शिवाराध्यायै नमः
ओं शिवमूर्तै नमः
ओं शिवंकर्यै नमः
ओं शिवप्रियायै नमः
ओं शिवपरायै नमः
ओं शिष्टेष्टायै नमः
ओं शिष्टपूजितायै नमः
ओं अप्रमेयायै नमः
ओं स्वप्रकाशायै नमः
ओं मनोवाचामगोचरायै नमः
ओं चिच्छक्त्यै नमः
ओं चेतनारूपायै नमः
ओं जडशक्त्यै नमः
ओं जडात्मिकायै नमः
ओं गायत्र्यै नमः
ओं व्याहृत्यै नमः
ओं संध्यायै नमः
ओं द्विजबृन्दनिषेवितायै नमः
ओं तत्वासनायै नमः
ओं तस्मै नमः
ओं तुभ्यं नमः
ओं अय्यै नमः
ओं पञ्चकोशान्तरस्थितायै नमः
ओं निःसीममहिम्ने नमः
ओं नित्ययौवनायै नमः
ओं मदशालिन्यै नमः
ओं मदघूर्णितरक्ताक्ष्यै नमः
ओं मदपाटलगण्डभुवे नमः
ओं चन्दनन्द्रवदिग्धाङ्ग्यै नमः

ओं चाम्पेयकुसुमप्रियायै नमः
ओं कुशलायै नमः
ओं कोमलाकारायै नमः
ओं कुरुकुल्लायै नमः
ओं कुलेश्वर्यै नमः
ओं कौलमार्गतत्परसेवितायै नमः
ओं कुमारगणनाथाम्बायै नमः
ओं तुष्ट्यै नमः
ओं पुष्ट्यै नमः
ओं मत्यै नमः
ओं धृत्यै नमः
ओं शान्त्यै नमः
ओं स्वस्तिमत्यै नमः
ओं कान्त्यै नमः
ओं नन्दिन्यै नमः
ओं विघ्ननाशिन्यै नमः
ओं तेजोवत्यै नमः
ओं त्रिनयनायै नमः
ओं लोलाक्षीकामरूपिण्यै नमः
ओं मालिन्यै नमः
ओं हंसिन्यै नमः
ओं मात्रे नमः
ओं मलयाचलवासिन्यै नमः
ओं सुमुख्यै नमः
ओं नलिन्यै नमः
ओं सुभ्रुवे नमः
ओं शोभनायै नमः
ओं सुरनायिकायै नमः
ओं कालकण्ठ्यै नमः
ओं कान्तिमत्यै नमः
ओं क्षोभिण्यै नमः

ओं सूक्ष्मरूपिण्यै नमः
ओं वज्रेश्वर्यै नमः
ओं वामदेव्यै नमः
ओं वयोऽवस्थाविवर्जितायै नमः
ओं सिद्धेश्वर्यै नमः
ओं सिद्धविद्यायै नमः
ओं सिद्धमात्रे नमः
ओं यशस्विन्यै नमः
ओं विशु(द्धि)द्धचक्रनिलयायै नमः
ओं आरक्तवर्णायै नमः
ओं त्रिलोचनायै नमः
ओं खट्वाङ्गादिप्रहरणायै नमः
ओं वदनैकसमन्वितायै नमः
ओं पायसान्नप्रियायै नमः
ओं त्वक्स्थायै नमः
ओं पशुलोकभयङ्कर्यै नमः
ओं अमृतादिमहाशक्तिसंवृतायै नमः
ओं डाकिनीश्वर्यै नमः
ओं अनाहताब्जनिलयायै नमः
ओं श्यामाभायै नमः
ओं वदनद्वयायै नमः
ओं दंष्ट्रोज्ज्वलायै नमः
ओं अक्षमालादिधरायै नमः
ओं रुधिरसंस्थितायै नमः
ओं कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृतायै नमः
ओं स्निग्धौदनप्रियायै नमः
ओं महावीरेन्द्रवरदायै नमः
ओं राकिण्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ओं मणिपूराब्जनिलयायै नमः
ओं वदनत्रयसंयुतायै नमः
ओं वज्रादिकायुधोपेतायै नमः

ओं डामर्यादिभिरावृतायै नमः
ओं रक्तवर्णायै नमः
ओं मांसनिष्ठायै नमः
ओं गुडान्नप्रीतमानसायै नमः
ओं समस्तभक्तसुखदायै नमः
ओं लाकिन्याम्बास्वरूपिण्यै नमः
ओं स्वाधिष्ठानाम्बुजगतायै नमः
ओं चतुर्वक्त्रमनोहरायै नमः
ओं शूलाद्यायुधसम्पन्नायै नमः
ओं पीतवर्णायै नमः
ओं अतिगर्वितायै नमः
ओं मेदोनिष्ठायै नमः
ओं मधुप्रीतायै नमः
ओं व (ब) न्दिन्यादिसमन्वितायै नमः
ओं दध्यन्नासक्तहृदयायै नमः
ओं का(डा)किनीरूपधारिण्यै नमः
ओं मूलाधाराम्बुजारूढायै नमः
ओं पञ्चवक्त्रायै नमः
ओं अस्थिसंस्थितायै नमः
ओं अङ्कुशादिप्रहरणायै नमः
ओं वरदादिनिषेवितायै नमः
ओं मुद्गौदनासक्तचित्तायै नमः
ओं साकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ओं आज्ञाचक्राब्जनिलयायै नमः
ओं शुक्लवर्णायै नमः
ओं षडाननायै नमः
ओं मज्जासंस्थायै नमः
ओं हंसवतीमुख्यशक्तिसमन्वितायै नमः
ओं हरिद्रान्नैकरसिकायै नमः
ओं हाकिनीरूपधारिण्यै नमः
ओं सहस्रदलपद्मस्थायै नमः

ओं सर्ववर्णोपशोभितायै नमः
ओं सर्वायुधधरायै नमः
ओं शुक्लसंस्थितायै नमः
ओं सर्वतोमुख्यै नमः
ओं सर्वौदनप्रीतचित्तायै नमः
ओं याकिन्यम्बास्वरूपिण्यै नमः
ओं स्वाहायै नमः
ओं स्वधायै नमः
ओं अमत्यै नमः
ओं मेधायै नमः
ओं श्रुत्यै नमः
ओं स्मृत्यै नमः
ओं अनुत्तमायै नमः
ओं पुण्यकीर्त्यै नमः
ओं पुण्यलभ्यायै नमः
ओं पुण्यश्रवणकीर्तनायै नमः
ओं पुलोमजार्चितायै नमः
ओं बन्धमोचन्यै नमः
ओं बर्बरालकायै नमः
ओं विमर्शरूपिण्यै नमः
ओं विद्यायै नमः
ओं वियदादिजगत्प्रसवे नमः
ओं सर्वव्याधिप्रशमन्यै नमः
ओं सर्वमृत्युनिवारिण्यै नमः
ओं अग्रगण्यायै नमः
ओं अचिन्त्यरूपायै नमः
ओं कलिकल्मषनाशिन्यै नमः
ओं कात्यायन्यै नमः
ओं कालहन्त्र्यै नमः
ओं कमलाक्षनिषेवितायै नमः
ओं ताम्बूलपूरितमुख्यै नमः

ओं दाडिमीकुसुमप्रभायै नमः
ओं मृगाक्ष्यै नमः
ओं मोहिन्यै नमः
ओं मुख्यायै नमः
ओं मृडान्यै नमः
ओं मित्ररूपिण्यै नमः
ओं नित्यतृप्तायै नमः
ओं भक्तनिधये नमः
ओं नियन्त्र्यै नमः
ओं निखिलेश्वर्यै नमः
ओं मैत्र्यादिवासनालभ्यायै नमः
ओं महाप्रलयसाक्षिण्यै नमः
ओं पराशक्त्यै नमः
ओं परानिष्ठायै नमः
ओं प्रज्ञानघनरूपिण्यै नमः
ओं माध्वीपानालसायै नमः
ओं मत्तायै नमः
ओं मातृकावर्णरूपिण्यै नमः
ओं महाकैलासनिलयायै नमः
ओं मृणालमृदुदोर्लतायै नमः
ओं महनीयायै नमः
ओं दयामूर्त्यै नमः
ओं महासाम्राज्यशालिन्यै नमः
ओं आत्मविद्यायै नमः
ओं महाविद्यायै नमः
ओं श्रीविद्यायै नमः
ओं कामसेवितायै नमः
ओं श्रीषोडशाक्षरीविद्यायै नमः
ओं त्रिकूटायै नमः
ओं कामकोटिकायै नमः
ओं कटाक्षकिङ्करीभूतकमलाकोटिसेवितायै नमः

ओं शिरःस्थितायै नमः
ओं चन्द्रनिभायै नमः
ओं भालस्थायै नमः
ओं इन्द्रधनुःप्रभायै नमः
ओं हृदयस्थायै नमः
ओं रविप्रख्यायै नमः
ओं त्रिकोणान्तरदीपिकायै नमः
ओं दाक्षायण्यै नमः
ओं दैत्यहन्त्र्यै नमः
ओं दक्षयज्ञविनाशिन्यै नमः
ओं दरान्दोलितदीर्घाक्ष्यै नमः
ओं दरहासोज्ज्वलन्मुख्यै नमः
ओं गूरुमूर्त्यै नमः
ओं गुणनिधये नमः
ओं गोमात्रे नमः
ओं गुहजन्मभुवे नमः
ओं देवेश्यै नमः
ओं दण्डनीतिस्थायै नमः
ओं दहराकाशरूपिण्यै नमः
ओं प्रतिपन्मुख्यराकान्ततिथिमण्डलपूजितायै नमः
ओं कलात्मिकायै नमः
ओं कलानाथायै नमः
ओं काव्यालापविनोदिन्यै नमः
ओं सचामररमावाणीसव्यदक्षिणसेवितायै नमः
ओं आदिशक्त्यै नमः
ओं अमेयायै नमः
ओं आत्मने नमः
ओं परमायै नमः
ओं पावनाकृतये नमः
ओं अनेककोटिब्रह्माण्डजनन्यै नमः
ओं दिव्यविग्रहायै नमः

ओं क्लींकार्यै नमः
ओं केवलायै नमः
ओं गुह्यायै नमः
ओं कैवल्यपददायिन्यै नमः
ओं त्रिपुरायै नमः
ओं त्रिजगद्वन्द्यायै नमः
ओं त्रिमूर्त्यै नमः
ओं त्रिदशेश्वर्यै नमः
ओं दिव्यगन्धाढ्यायै नमः
ओं सिन्दूरतिलकाञ्चितायै नमः
ओं उमायै नमः
ओं शैलेन्द्रतनयायै नमः
ओं गौर्यै नमः
ओं गन्धर्वसेवितायै नमः
ओं विश्वगर्भायै नमः
ओं स्वर्णगर्भायै नमः
ओं अवरदायै नमः
ओं वागधीश्वर्यै नमः
ओं ध्यानगम्यायै नमः
ओं अपरिच्छेद्यायै नमः
ओं ज्ञानदायै नमः
ओं ज्ञानविग्रहायै नमः
ओं सर्ववेदान्तसंवेद्यायै नमः
ओं सत्यानन्दस्वरूपिण्यै नमः
ओं लोपामुद्रार्चितायै नमः
ओं लीलाक्लृप्तब्रह्माण्डमण्डलायै नमः
ओं अदृश्यायै नमः
ओं दृश्यरहितायै नमः
ओं विज्ञात्र्यै नमः
ओं वेद्यवर्जितायै नमः
ओं योगिन्यै नमः

ओं योगदायै नमः
ओं योग्यायै नमः
ओं योगानन्दायै नमः
ओं युगन्धरायै नमः
ओं इच्छाशक्तिज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिस्वरूपिण्यै नमः
ओं सर्वाधारायै नमः
ओं सुप्रतिष्ठायै नमः
ओं सदसद्रूपधारिण्यै नमः
ओं अष्टमूर्त्यै नमः
ओं अजाजैत्र्यै नमः
ओं लोकयात्राविधायिन्यै नमः
ओं एकाकिन्यै नमः
ओं भूमरूपायै नमः
ओं निर्द्वैतायै नमः
ओं द्वैतवर्जितायै नमः
ओं अन्नदायै नमः
ओं वसुदायै नमः
ओं वृद्धायै नमः
ओं ब्रह्मात्मैक्यस्वरूपिण्यै नमः
ओं बृहत्यै नमः
ओं ब्राह्मण्यै नमः
ओं ब्राह्म्यै नमः
ओं ब्रह्मानन्दायै नमः
ओं बलिप्रियायै नमः
ओं भाषारूपायै नमः
ओं बृहत्सेनायै नमः
ओं भावाभावविवर्जितायै नमः
ओं सुखाराध्यायै नमः
ओं शुभकर्यै नमः
ओं शोभनासुलभागत्यै नमः
ओं राजराजेश्वर्यै नमः

ओं राज्यदायिन्यै नमः
ओं राज्यवल्लभायै नमः
ओं राजत्कृपायै नमः
ओं राजपीठनिवेशितनिजाश्रितायै नमः
ओं राज्यलक्ष्मै नमः
ओं कोशनाथायै नमः
ओं चतुरङ्गबलेश्वर्यै नमः
ओं साम्राज्यदायिन्यै नमः
ओं सत्यसन्धायै नमः
ओं सागरमेखलायै नमः
ओं दीक्षितायै नमः
ओं दैत्यशमन्यै नमः
ओं सर्वलोकवशंकर्यै नमः
ओं सर्वार्थदात्र्यै नमः
ओं सार्वगाये नमः
ओं सच्चिदानन्दरूपिण्यै नमः
ओं देशकालापरिच्छिन्नायै नमः
ओं स्वर्गायै नमः
ओं सर्वमोहिन्यै नमः
ओं सरस्वत्यै नमः
ओं शास्त्रमय्यै नमः
ओं गुहाम्बायै नमः
ओं गुह्यरूपिण्यै नमः
ओं सर्वोपाधिविनिर्मुक्तायै नमः
ओं सदाशिवपतिव्रतायै नमः
ओं सम्प्रदायेश्वर्यै नमः
ओं साधुने नमः
ओं यै नमः
ओं गुरुमण्डलरूपिण्यै नमः
ओं कुलोत्तीर्णायै नमः
ओं भगाराध्यायै नमः

17631

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर
पुस्तकालय
क्रमांक 17631

ओं मायायै नमः
ओं मधुमत्यै नमः
ओं मह्यै नमः
ओं गणाम्बायै नमः
ओं गुह्यकाराध्यायै नमः
ओं कोमलाङ्ग्यै नमः
ओं गुरुप्रियायै नमः
ओं स्वतन्त्रायै नमः
ओं सर्वतन्त्रेश्वर्यै नमः
ओं दक्षिणामूर्तिरूपिण्यै नमः
ओं सनकादिसमाराध्यायै नमः
ओं शिवज्ञानप्रदायिन्यै नमः
ओं चित्कलायै नमः
ओं आनन्दकलिकायै नमः
ओं प्रेमरूपायै नमः
ओं प्रियङ्कर्यै नमः
ओं नामपारायणप्रीतायै नमः
ओं नन्दिविद्यायै नमः
ओं नटेश्वर्यै नमः
ओं मिथ्याजगदधिष्ठानायै नमः
ओं मुक्तिदायै नमः
ओं मुक्तिरूपिण्यै नमः
ओं लास्यप्रियायै नमः
ओं लयकर्यै नमः
ओं लज्जायै नमः
ओं रम्भादिवन्दितायै नमः
ओं भवदावसुधावृष्ट्यै नमः
ओं पापरण्यदवानलायै नमः
ओं दौर्भाग्यतूलवातुलायै नमः
ओं जराध्वान्तरविप्रभायै नमः
ओं भाग्याब्धिचन्द्रिकायै नमः

ओं भक्तचित्तकेकिघनाघनायै नमः
ओं रोगपर्वतदम्भोलये नमः
ओं मृत्युदारुकुठारिकायै नमः
ओं महेश्वर्यै नमः
ओं महाकाल्यै नमः
ओं महाग्रासायै नमः
ओं महाशनायै नमः
ओं अपर्णायै नमः
ओं चण्डिकायै नमः
ओं चण्डमुण्डासुरनिषूदिन्यै नमः
ओं क्षराक्षरात्मिकायै नमः
ओं सर्वलोकेश्यै नमः
ओं विश्वधारिण्यै नमः
ओं त्रिवर्गदात्र्यै नमः
ओं सुभगायै नमः
ओं त्र्यम्बकायै नमः
ओं त्रिगुणात्मिकायै नमः
ओं स्वर्गापवर्गदायै नमः
ओं शुद्धायै नमः
ओं जपापुष्पनिभाकृतयै नमः
ओं ओजोवत्यै नमः
ओं द्युतिधरायै नमः
ओं यज्ञरूपायै नमः
ओं प्रियव्रतायै नमः
ओं दुराराध्यायै नमः
ओं दुराधर्षायै नमः
ओं पाटलीकुसुमप्रियायै नमः
ओं महत्यै नमः
ओं मेरूनिलयायै नमः
ओं मन्दारकुसुमप्रियायै नमः
ओं वीराराध्यायै नमः

ओं विराट्रूपायै नमः
ओं विरजायै नमः
ओं विश्वतोमुख्यै नमः
ओं प्रत्यग्रूपायै नमः
ओं पराकाशायै नमः
ओं प्राणदायै नमः
ओं प्राणरूपिण्यै नमः
ओं मार्ताण्डभैरवाराध्यायै नमः
ओं मन्त्रिणीन्यस्तराज्यधुरे नमः
ओं त्रिपुरेश्यै नमः
ओं जयत्सेनायै नमः
ओं निस्त्रैगुण्यायै नमः
ओं परापरायै नमः
ओं सत्यज्ञानानन्दरूपायै नमः
ओं सामरस्यपरायणायै नमः
ओं कपर्दिन्यै नमः
ओं कलामालायै नमः
ओं कामुदुघे नमः
ओं कामरूपिण्यै नमः
ओं कलानिधयै नमः
ओं काव्यकलायै नमः
ओं रसज्ञायै नमः
ओं रसशेवधये नमः
ओं पुष्टायै नमः
ओं पुरातनायै नमः
ओं पूज्यायै नमः
ओं पुष्करायै नमः
ओं पुष्करेक्षणायै नमः
ओं परस्मै ज्योतिषे नमः
ओं परस्मै धाम्नै नमः
ओं परमाणवे नमः

ओं परात्परायै नमः
ओं पाशहस्तायै नमः
ओं पाशहन्त्र्यै नमः
ओं परमन्त्रविभेदिन्यै नमः
ओं मूर्तायै नमः
ओं अमूर्तायै नमः
ओं अनित्यतृप्तायै नमः
ओं मुनिमानसहंसिकायै नमः
ओं सत्यव्रतायै नमः
ओं सत्यरूपायै नमः
ओं सर्वान्तर्यामिन्यै नमः
ओं सत्यै नमः
ओं ब्रह्माण्यै नमः
ओं ब्रह्मणे नमः
ओं जनन्यै नमः
ओं बहुरूपायै नमः
ओं बुधार्चितायै नमः
ओं प्रसवित्र्यै नमः
ओं प्रचण्डायै नमः
ओं आज्ञायै नमः
ओं प्रतिष्ठायै नमः
ओं प्रकटाकृतयै नमः
ओं प्राणेश्वर्यै नमः
ओं प्राणदात्र्यै नमः
ओं पञ्चाशत्पीठरूपिण्यै नमः
ओं विश्रृङ्खलायै नमः
ओं विविक्तस्थायै नमः
ओं वीरमात्रे नमः
ओं वियत्प्रसवै नमः
ओं मुकुन्दायै नमः
ओं मुक्तिनिलयायै नमः

ओं मूलविग्रहरूपिण्यै नमः
ओं भावज्ञायै नमः
ओं भवरोगघ्न्यै नमः
ओं भवचक्रप्रवर्तिन्यै नमः
ओं छन्दःसारायै नमः
ओं शास्त्रसारायै नमः
ओं म(त)न्त्रसारायै नमः
ओं तलोदर्यै नमः
ओं उदारकीर्तयै नमः
ओं उद्दामवैभवायै नमः
ओं वर्णरूपिण्यै नमः
ओं जन्ममृत्युजरातप्तजनविश्रान्तिदायिन्यै नमः
ओं सर्वोपनिषदुद्घुष्टायै नमः
ओं शान्त्यतीतकलात्मिकायै नमः
ओं गम्भीरायै नमः
ओं गगनान्तःस्थायै नमः
ओं गर्वितायै नमः
ओं गानलोलुपायै नमः
ओं कल्पनारहितायै नमः
ओं काष्ठायै नमः
ओं अकान्तायै नमः
ओं कान्तार्द्धविग्रहायै नमः
ओं कार्यकारणनिर्मुक्तायै नमः
ओं कामकेलितरङ्गितायै नमः
ओं कनत्कनकताटङ्कायै नमः
ओं लीलाविग्रहधारिण्यै नमः
ओं अजायै नमः
ओं क्षयविनिर्मुक्तायै नमः
ओं मुग्धायै नमः
ओं क्षिप्रप्रसादिन्यै नमः
ओं अन्तर्मुखसमाराध्यायै नमः

ओं बहिर्मुखसुदुर्लभायै नमः
ओं त्रय्यै नमः
ओं त्रिवर्गनिलयायै नमः
ओं त्रिस्थायै नमः
ओं त्रिपुरमालिन्यै नमः
ओं निरामयायै नमः
ओं निरालम्बायै नमः
ओं स्वात्मारामायै नमः
ओं सुधासृत्यै नमः
ओं संसारपङ्कनिर्मग्नसमुद्धरणपण्डितायै नमः
ओं यज्ञप्रियायै नमः
ओं यज्ञकर्त्र्यै नमः
ओं यजमानस्वरूपिण्यै नमः
ओं धर्माधारायै नमः
ओं धर्माध्याक्षायै नमः
ओं धनधान्यविवर्धिन्यै नमः
ओं विप्रप्रियायै नमः
ओं विप्ररूपायै नमः
ओं विश्वभ्रमणकारिण्यै नमः
ओं विश्वग्रासायै नमः
ओं विद्रुमाभायै नमः
ओं वैष्णव्यै नमः
ओं विष्णुरूपिण्यै नमः
ओं अयोनये नमः
ओं योनिनिलयायै नमः
ओं कूटस्थायै नमः
ओं कुलरूपिण्यै नमः
ओं वीरगोष्ठिप्रियायै नमः
ओं वीरायै नमः
ओं नैष्कर्म्यायै नमः
ओं नादरूपिण्यै नमः

ओं विज्ञानकलनायै नमः
ओं कल्यायै नमः
ओं विदग्धायै नमः
ओं बैन्दवासनायै नमः
ओं तत्त्वमय्यै नमः
ओं तत्त्वमर्थस्वरूपिण्यै नमः
ओं सामगानप्रियायै नमः
ओं सौम्यायै नमः
ओं सदाशिवकुटुम्बिन्यै नमः
ओं सव्यापसव्यमार्गस्थायै नमः
ओं सर्वापद्विनिवारिण्यै नमः
ओं स्वस्थायै नमः
ओं स्वभावमधुरायै नमः
ओं धीरायै नमः
ओं धीरसमर्चितायै नमः
ओं चैतन्यार्घ्यसमाराध्यायै नमः
ओं चैतन्यकुसुमप्रियायै नमः
ओं सदोदितायै नमः
ओं सदातुष्टायै नमः
ओं तरूणादित्यपाटलायै नमः
ओं दक्षिणादक्षिणाराध्यायै नमः
ओं दरस्मेरमुखाम्बुजायै नमः
ओं कौलिनीकेवलायै नमः
ओं अनर्घ्यकैवल्यपददायिन्यै नमः
ओं स्तोत्रप्रियायै नमः
ओं स्तुतिमत्यै नमः
ओं श्रुतिसंस्तुतवैभवायै नमः
ओं मनस्विन्यै नमः
ओं मानवत्यै नमः
ओं महेश्यै नमः
ओं मङ्गलाकृत्यै नमः

ओं विश्वमात्रे नमः
ओं जगद्धात्रै नमः
ओं विशालाक्ष्यै नमः
ओं विरागिण्यै नमः
ओं प्रगल्भायै नमः
ओं परमोदारायै नमः
ओं परामोदायै नमः
ओं मनोमय्यै नमः
ओं व्योमकेश्यै नमः
ओं विमानस्थायै नमः
ओं वज्रिण्यै नमः
ओं वामकेश्वर्यै नमः
ओं पंचयज्ञप्रियायै नमः
ओं पञ्चप्रेतमञ्चाधिशायिन्यै नमः
ओं पञ्चम्यै नमः
ओं पञ्चभूतेश्यै नमः
ओं पञ्चसङ्ख्योपचारिण्यै नमः
ओं शाश्वत्यै नमः
ओं शाश्वतैश्वर्यायै नमः
ओं शर्मदायै नमः
ओं शम्भुमोहिन्यै नमः
ओं धरायै नमः
ओं धरसुतायै नमः
ओं धन्यायै नमः
ओं धर्मिण्यै नमः
ओं धर्मवर्धिन्यै नमः
ओं लोकातीतायै नमः
ओं गुणातीतायै नमः
ओं सर्वातीतायै नमः
ओं शामात्मिकायै नमः
ओं बन्धूककुसुमप्रख्यायै नमः

ओं बालायै नमः
ओं लीलाविनोदिन्यै नमः
ओं सुमङ्गल्यै नमः
ओं सुखकर्यै नमः
ओं सुवेषाढ्यायै नमः
ओं सुवासिन्यै नमः
ओं सुवासिन्यर्चनप्रीतायै नमः
ओं आशोभनायै नमः
ओं शुद्धमानसायै नमः
ओं बिन्दुतर्पणसन्तुष्टायै नमः
ओं पूर्वजायै नमः
ओं त्रिपुराम्बिकायै नमः
ओं दशमुद्रासमाराध्यायै नमः
ओं त्रिपुराश्रीवशंकर्यै नमः
ओं ज्ञानमुद्रायै नमः
ओं ज्ञानगम्यायै नमः
ओं ज्ञानज्ञेयस्वरूपिण्यै नमः
ओं योनिमुद्रायै नमः
ओं त्रिखण्डेश्यै नमः
ओं त्रिगुणायै नमः
ओं अम्बायै नमः
ओं त्रिकोणगायै नमः
ओं अनघायै नमः
ओं अद्भुतचारित्रायै नमः
ओं वाञ्छितार्थप्रदायिन्यै नमः
ओं अभ्यासातिशयज्ञातायै नमः
ओं षडध्वातीतरूपिण्यै नमः
ओं अव्याजकरूणामूर्तयै नमः
ओं अज्ञानध्वान्तदीपिकायै नमः
ओं आबालगोपविदितायै नमः
ओं सर्वानुल्लङ्घ्यशासनायै नमः

ओं श्रीचक्रराजनिलयायै नमः
ओं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नमः
ओं श्री शिवायै नमः
ओं शिवशक्त्यैक्यरूपिण्यै नमः
ओं ललिताम्बिकायै नमः

ओं -ऐं- ह्रीं- श्री ललिताम्बिकायै नमः
इति श्री ललितासहस्रनामावलिःसम्पूर्णा ।

अनुबंध

इस ग्रंथ में उद्धरित पौराणिकग्रंथों की सूचि निम्न प्रकार है :

१. अन्तर्यामीब्राह्मणं
२. अन्नपूर्णास्तोत्रं
३. अमरकोशं
४. अम्बास्थुति
५. अरुणोपनिषद्
६. उत्तरचतुश्शति
७. कठोपनिषद्
८. कन्याप्रकरणं
९. कल्पसूत्रं
१०. कादिमतं
११. कामिकातंत्रं
१२. कुलान्नंवं
१३. कालिकापुराणं
१४. कूर्मपुराणं
१५. गरुडपुराणं
१६. गौडपादसंहिता
१७. गौडपादीयसूत्रं
१८. चतुर्वेदशिखा
१९. चतुश्शति
२०. चिद्गगनचन्द्रिका
२१. जयमंगला-
ललितासहस्रनामव्याख्या
२२. ज्ञानार्णवं
२३. ज्योतिषचिन्तामणि
२४. तन्त्रराजं
२५. ताराष्टकं
२६. तैत्तिरियोपनिषद्
२७. त्रिपुरार्णवं
२८. त्रिपुरासारं
२९. त्रिपुरोपनिषद्
३०. देवीभागवतम
३१. देवीमाहात्म्यं
३२. देवीपुराणम
३३. देवीस्तवं
३४. देवीस्तोत्रं
३५. नारायणीयं
३६. नित्याहृदयं
३७. नित्याषोडाशिकार्णवं
३८. पद्मपुराणं
३९. परानन्दतंत्रं
४०. पञ्चदशीस्तवं
४१. पाञ्चरात्रलक्ष्मीतंत्रं
४२. पातञ्जलयोगसूत्रं
४३. बृहत्पराशरस्तुति
४४. बृहदारण्यकोपनिषद्
४५. बृहत्नारदीयोपनिषद्
४६. ब्रह्मगीता
४७. ब्रह्मवैवर्तं
४८. ब्रह्मसूत्रं
४९. ब्रह्मसूत्रभाष्यं
५०. ब्रह्माण्डपुराणं
५१. भक्तितंत्रसूत्रं
५२. भक्तिमीमांसासूत्रं
५३. भगवतिपुराणं
५४. भगवद्गीता
५५. भरतनाट्यशास्त्रं
५६. भविष्यत्पुराण
५७. भागवतं
५८. भारतं
५९. भारद्वाजस्मृति
६०. भावनोपनिषद्
६१. भैरवयामलं
६२. मत्स्यपुराणं
६३. मनुस्मृति
६४. मन्त्रवर्णव्याख्या
६५. महिम्नस्तवं
६६. मार्क्कण्डेयपुराणं
६७. मातृकाकोशं
६८. मातृकामन्त्रमाला
६९. मातृकाविवेकं
७०. मूकपञ्चशति
७१. मृगेन्द्रसंहिता

७२. मेदनीनिखण्डु
७३. मैरालतंत्रं
७४. मोहमुद्गरस्तोत्रं
७५. योगवासिष्ठं
७६. योगशास्त्रं
७७. योगसूत्रं
७८. रत्नकाशं
७९. रहस्यागमं
८०. रुद्रयामलं
८१. लघुनारदीयपुराणं
८२. लघुस्तवं
८३. ललितोपाख्यानभाष्यं
८४. ललितोपाख्यानं
८५. ललितात्रिशतीस्तोत्रं
८६. ललितात्रिशतीभाष्यं
८७. ललितास्तवरत्नं
८८. ललितास्तवराजं
८९. लिंगपुराणं
९०. वराहपुराणं
९१. वरिवस्यारहस्यं
९२. वामकेश्वरतत्रं
९३. वामनपुराणं
९४. वायवीयसंहिता
९५. वायुपुराणं
९६. वाराहीपूजाविधि
९७. वार्त्तिकं
९८. वासिष्ठतंत्रं
९९. वासिष्ठरामायणं
१००. वासिष्ठसंहिता
१०१. वासिष्ठस्मृति
१०२. विरूपाक्षपञ्चाशिका
१०३. विश्वकोशं
१०४. विष्णुपुराणं
१०५. विष्णुसहस्रनामं
१०६. व्रतखण्डं
१०७. शक्तिमहिम्नस्तोत्रं
१०८. शक्तिरहस्यं
१०९. शक्तिसूत्रं
११०. शरदातिलकं
१११. शिवपुराणं
११२. शिवरहस्यं
११३. शिवशक्तिसामरस्यं
११४. शिवसूत्रं
११५. शुकतंत्रं
११६. शैवतंत्रं
११७. शैवागमं
११८. श्यामलादण्डकं
११९. श्रीचक्रं
१२०. श्वेताश्वतरोपनिषद्
१२१. सनकतंत्रं
१२२. सनत्कुमारतंत्रं
१२३. सनत्कुमारसंहिता
१२४. सनन्दनतंत्रं
१२५. सनन्दनसंहिता
१२६. संकेतपद्धति
१२७. समयाचारस्मृति
१२८. संक्षेपशारीरकं
१२९. संवर्तस्मृति
१३०. सहस्राक्षरविद्यामंत्रं
१३१. सांख्यतत्वकौमुदि
१३२. सामुद्रिकाशास्त्रं
१३३. सुभगोदयं
१३४. सूतगीता
१३५. सूतसंहिता
१३६. सेतुबंधं
१३७. सौन्दर्यलहरी - लक्ष्मीधरव्याख्या
१३८. सौन्दर्यलहरी
१३९. सौभाग्यभास्करं
१४०. सौभाग्यसुधोदयं
१४१. सौरसंहिता
१४२. स्कान्दपुराणं
१४३. स्पन्दशास्त्रं
१४४. स्वच्छन्दतंत्रं
१४५. स्वच्छन्दसंग्रहं
१४६. हरिवंशं
१४७. हरिनामकीर्तनं

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक.....
17631

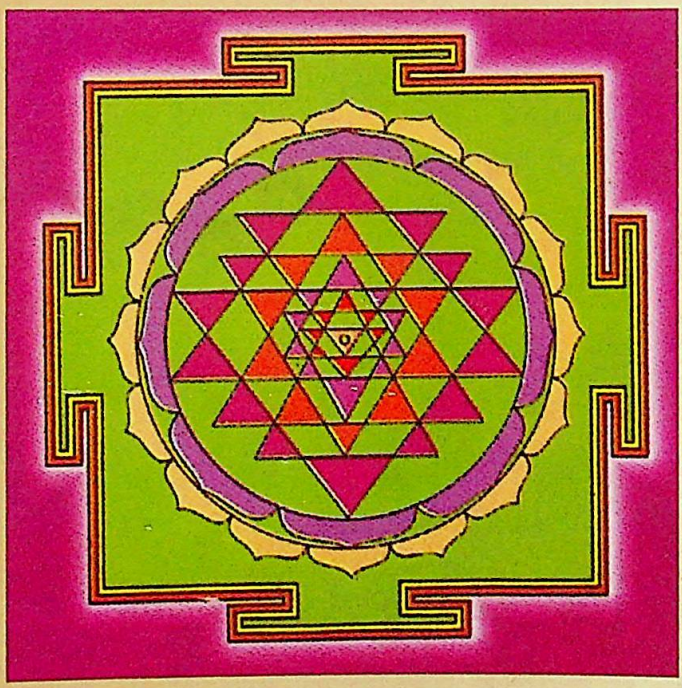

294
NA
JACL

जे०पी० पब्लिशिंग हाउस
27/28, शक्ति नगर, दिल्ली - 110007